आंखें वे देखी हैं जबसे

विश्वनाथ त्रिपाठी

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' आधुनिक हिन्दी साहित्य समाज के सर्वाधिक चर्चित मिथक पुरुष हैं। उनका व्यक्तित्व और शारीरिक आकार प्रकार भी बहुचर्चित है। मैंने 1956 ई. में जुलाई के प्रथम सप्ताह में उनके दर्शन किये थे। मेरी शादी तय हो गयी थी। मेरे भावी श्वसुर श्री अमरेन्द्र कृष्ण मिश्र ने पूछा इलाहाबाद में तुम कहां जाना चाहते हो? मैंने कहा निराला जी को देखना चाहता हूं। उन्होंने कहा श्रीनारायण चतुर्वेदी के यहां चलते हैं निराला जी उन्हें बहुत मानते हैं। वे निराला जी से मिलवा देंगे। श्रीनारायण चतुर्वेदी नहीं मिले। हम दोनों निराला जी को देखने दारागंज की गली के उस मकान पर पहुंचे जहां वे उन दिनों रहते थे। एक छोटा सा कमरा। तख्त। नीचे दरी बिछी हुई। एक नवयुवक दरी पर बैठे चुपचाप कुछ पढ़ रहे थे। उन्होंने कहा बैठिये। वे नहा रहे हैं। अभी आ जायेंगे। कमरे के एक कोने से जो सीढ़ी ऊपर जा रही थी उसी में नीचे कमरे के एक ओर स्नानागार था। थोड़ी देर में निराला जी निकले। सिर्फ एक कौपीन पहने। कौपीन लंगोट से कुछ लम्बा और घुटन्ने से छोटा अधोवस्त्र। सर के बालों में पानी चुचुआ रहा था। तौलिए से अच्छी तरह पोंछा नहीं था। वे छोटे से स्नानागार से निकले। देखते हुए ऐसा लगा जैसे गुफा से सिंह निकल रहा हो। ऐसा अनुभव मुझे सिनेमा के पर्दे पर माओत्से तुंग और आइंसटीन से नेहरू को मिलते हुए देखने पर हुआ था। लम्बी काया, हल्की सी तोंद, आकर तख्त पर बैठ गये। मैंने चरणस्पर्श करना चाहा तो नमो नमः बोले और पैर पीछे कर लिए।

मैं उनसे क्या बात करूं। उन्होंने पूछा कहां से आये हो। क्या करते हो। आवाज बंधी हुई स्पष्ट और गम्भीर। मैंने कहा काशी विश्वविद्यालय से मैं हिन्दी में एम.ए. कर रहा हूं।

उन्होंने कहा वहां पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी हैं। मुझे जानते हैं।

आपको कौन नहीं जानता महाराज।

वे विद्वान एवं वाग्मी हैं।

समझ में नहीं आ रहा था कि क्या बात करूं। उन्हें देखते जाने का ही मन कर रहा था। बोला काशी के लोग आपका दर्शन करना चाहते हैं। चाहते हैं कि आप वहां आयें। आप बहुत दिनों से वहां नहीं आये। निराला जी एकदम अंग्रेजी बोलने लगे दियर इज नो डिफरेंस बिट्वीन वाराणसी एंड प्रयागराज। बोथ आर होली प्लेसेज। मैंने डा. रामविलास शर्मा और आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री की चर्चा की। वे बोले डा. कम्स हियर सम टाइम्स। उनका स्वर स्पष्ट था। उच्चारण ऐसा मानो जानबूझ कर शब्दों को तौल कर बोल रहे हों।

थोड़ी देर बाद सहसा बोले जाओ घर। खाना खाकर शाम को आना।

मैं चला आया। लगता था कि उनके भोजन का समय हो गया था।

उनके होंठ पतले थे। इस उमर में होठ मोटे हो जाते हैं। वे युवक के होंठ लगते थे। नाक उन्नत लम्बी। हाथ लम्बे। चिबुक दृढ़ और हुमसे हुए थोड़ा नुकीले। उंगलियां असाधारण लम्बी। आंखें विशाल एक अजीब किस्म की रिक्तता। गौर करें तो लगे कि आंखों की रिक्तता और दीर्घता में निर्वासन साफ झलकता हुआ। उनको एक बार देख ले तो उन आंखों को कोई भूल नहीं सकता था। आंखें काली नहीं कुछ कुछ भूरी थीं बहुत मामूली भूरी।

आंखें वे देखी हैं जबसे
कुछ नहीं देखा फिर तबसे

तुलसीदास की यह पंक्ति उपर्युक्त पंक्तियों से पहले याद आनी चाहिए

अब न आंखि तर आवत कोऊ

निराला की आंखें अविस्मरणीय थीं। विशेष बात यह है कि हिन्दी खड़ी बोली कविता में आंखों पर लिखी गयी उनकी कविताएं भी अविस्मरणीय हैं। हिन्दी में इस क्षेत्र में उनके साथ या उनके भी पहले केवल तुलसीदास का नाम आ सकता है। इन दोनों कवियों ने आंखों को अनेकानेक रूपों में शब्दांकित किया है। निराला की ऐसी पंक्तियों पर विचार करते समय तुलसीदास अपनेआप आ जाते हैं। लेकिन आंखों से सम्बंधित काव्य पंक्तियों पर विचार करने के पूर्व एक बात। उस बात का भी बहुत गहरा सम्बंध निराला से ही है।

भारत के कवियों ने बादल और आंखों पर बहुत ज्यादा और बहुत अच्छी काव्यरचना की है। हिन्दी में बादल के सबसे बड़े कवि निराला हैं अपनी आंखों से सम्बंधित कविताओं के साथ। उनकी इन विलक्षण कविताओं पर बात करते समय कालिदास की याद न आना असम्भव है। और वे बादल के ही नहीं आंखों के भी महान कवि हैं अतुलनीय कवि आप 'बे बहरा हैं जो मोतिकदे मीर नहीं' वाली बात समझिये।

मैंने 1953 ई. में कानपुर में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेता श्रीपाद अमृत डांगे का जो भाषण सुना था (तब मैं बी.ए. का छात्र था) उसका प्रारम्भ उन्होंने मेघदूत की इन पंक्तियों से किया था

त्वय्यात्तं कृषि फलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धै जनपद वधू लौचनैः पीयमानः। 15
सद्यः सीरोत्कर्षण सुरभि क्षेत्रमारुस्यमालं
किंचित्पश्चातव्रज लघुगति भूर्य एवोत्तरेण। 16

का. डांगे ने दोनों श्लोकों की व्याख्या किसानों के श्रम के प्रति कालिदास की सहानुभूति प्रकट करने के लिए की थी। प्रकृति के सौन्दर्य और समाजवादी श्रम संस्कृति को राजनीति में संदर्भित करते हुए मुझे कालिदास की इन पंक्तियों में बादल और आंख दोनों का अदभुत संयोग बिम्ब दिखलायी

पड़ा जैसा अन्यत्र नहीं दिखा। जनपद वधुओं की प्रीतिस्निग्ध भ्रूविलासानभिज्ञ निरीह आंखें। प्रीतिस्निग्धता का कारण भी मौजूद है मेघ का आगमन दर्शन कृषिफल का कारण है। आगमन पर आंखों में छलकता हुआ प्रेम दृढ़ आधारित है। प्रेम ऐसा गहरा मानो जनपद वधुएं बादलों को देख नहीं रही हैं, पी रही हैं आंखों से। संसार के शायद ही किसी अन्य कवि ने निरीह नयनों बादलों और कृषिफल का ऐसा अतलगामी श्लेष बिम्बित किया हो। और यह शब्द अर्थ संयोग शायद भारत की प्रकृति और जलवायु में ही सम्भव था। भारतीय कविता में बादल और आंखों का यह महत्व मन में गूंजता रहता है। कालिदास आंखों के महान कवि हैं। कालिदास के संदर्भ में महान का मतलब अतुलनीय। कालिदास के चक्कर में पड़ना निराला के साथ अन्याय होगा। लेकिन मेघदूत के ही एक और श्लोक का उल्लेख मैं अवश्य करूंगा। आंखों से सम्बंधित। कालिदास प्राचीन कथाओं के प्रसंग गर्भत्व का उपयोग करके व्यंजना की सर्वोत्तम प्रस्तुति करते हैं। यादवों के कुल कलह से खिन्न होकर बलराम द्वारका छोड़ कर सरस्वती तट पर रहने लगे थे। सरस्वती के जल की महिमा का गान करते हुए कालिदास

हित्वा हालामभिगत रसां रेवती लोचनांकां
बंधुप्रीत्या समरविमुखो लांगली याः सिषेवे। 49

बलराम हालाप्रेमी अर्थात पियक्कड़ थे। पियक्कड़ तो थे किन्तु सद्गृहस्थ थे। कृष्ण के भाई बलराम एक पत्नी वाले थे। कैसी हाला पीते थे हाला परोसती थी पत्नी रेवती। रेवती की आंखें सुंदर थीं। हाला पिलाते समय चषक पात्र में रेवती की आंखें प्रतिबिम्बित हो उठती थीं। रेवती की आंखों से प्रतिबिम्बित हाला को छोड़ कर बलराम सरस्वती का जल पीने लगे थे। रेवती लोचनांकिता हाला मय और प्याला फारसी और उर्दू कविता की चीज है। मैंने उर्दू का कोई शेर ऐसा नहीं पढ़ा सुना जिसमें साकी की आंखों की छाया शराब पर पड़ रही हो उसे पीने का आंनद अकथनीय है सो मेघदूत के कवि ने नहीं कहा है वे व्यंजना के कवि हैं। आंखों की शराब का वर्णन है। आंखों को शराब का प्याला कहा गया है। आंखों की छवि की काकटेलिंग से वह कितनी मादक हो जाती होगी?

निराला के यहां बादल और आंखों का संयोग खूब है। पर्याप्त मात्रा में है। यह संयोग मात्रा और प्रकार में कालिदास से अधिक है।

निरंजन बने नयन अंजन 1/122
बादल में आये जीवन धन
अपल नयन सुवास यौवन नव
देख रही तरुणी कोमल तन
जग के अंतराल से उमड़
नयन पलकों पर छाये सुख पर 1/122
विदाई के अनिमेष नयन 1/117

बादल राग

निराला कम से कम शब्दों का इस्तेमाल तो करते ही हैं। उन शब्दों में अर्थ कस कस के भरते हैं। कम परिचित प्रसंगों के उपयोग के कारण पाठकों को काफी जूझना पड़ता है। निराला ने पूर्व कवियों को बहुत ध्यान से पढ़ा और उनका रचनात्मक उपयोग अपने ढंग से किया। सबसे ज्यादा उपयोग उन्होंने कालिदास और तुलसी का किया है, रवीन्द्रनाथ का भी। पकड़ वे मुश्किल से आते हैं। बादल राग में उन्होंने कालिदास के मेघदूत की कुछ पंक्तियों का उपयोग इतने कौशल से किया है कि जल्दी खुलता नहीं

रुद्ध कोष है, क्षुब्धतोष
अड़ाना अंग से लिपटे भी

आंतक अंक पर कांप रहे हैं
धनी वज्र गर्जन से बादल

निराला के दिमाग के कालिदास की पंक्तियां हैं

मेघालोके भवति सुखिनोण्यन्थावृत्ति चेतः
कंठाश्लेषप्रणयिनिजने किं पुनर्दूर संस्थे। 1/3

कंठाश्लेषप्रणयिनिजने तो साफ अड़ना अंग से लिपटे हैं। प्रणयिनिजने सुखी हैं तो भी उन्यथा वृत्ति चेतः हो जाते हैं। सुखी हैं। प्रिया कंठ से लिपटे है, तो भी अन्यमनस्क अन्यथा वृतिचेतः हो जाते हैं। निराला के यहां ये सुखी धनी बन गये हैं जो वज्र गर्जन से कांप रहे हैं। गर्जना सुन कर मस्त नयन हैं मुख ढांप रहे हैं क्योंकि बादल विप्लव वीर हैं। उनका कोष रुद्ध है और तोष क्षुब्ध है। मन में चैन नहीं और धन की इच्छा है। अगर मेघ को यक्ष से जोड़ कर देखें तो एक पर्त और खुल सकती है यक्ष घनी व्यापरियों की कौम थी। इसी कविता में 'ऐ अटूट पर टूट छूट पड़ने वाले उन्माद' तुलसी के जटायु और रावण के बीच संग्राम वर्णन से जुड़ता है।

धावा क्रोधवंत खग कैसे। छूटह पवि पर्वत कहुं जैसे

तुलसीदास निराला से कहीं अधिक वर्णानुप्रास प्रेमी हैं लेकिन यहां निराला बाजी मार ले गये हैं। तुलसी के यहां अनुप्रास तो केवल पवि पर्वत में ही है। निराला के अटूट पर टूट छूट पड़ने वाले उन्माद में अटूट छूट टूट तीनों शब्दों में है हिन्दी की संयुक्त क्रियाएं जादू पैदा करती हैं अर्थ छायाओं को प्रकट करने में। निराला के यहां टूट पड़ना और छूट पड़ना दोनों में छूट पड़ना आक्रमण के लिए त्वरित वेग का और टूट पड़ना उस त्वरित वेग के साथ लक्ष्य पर भिड़ जाने का द्योतक है। तुलसी का पर्वत निराला के यहां अटूट बन कर छूट और टूट के वर्णक्रम में आ जुड़ा है। यह तो सिर्फ शब्द संयोग की बात है। बादल को उन्माद कह कर निराला ने अर्थ में असीम भाव भर दिया है।

निराला कौशल के ऐसे उदाहरण इतने अधिक हैं कि उन्हें एक लेख या एक किताब में भी नहीं लिखा जा सकता है। लेकिन दो उदाहरण ऐसे हैं जिन्होंने मुझे चौंकाया भी था और चौंकाने के पहले परेशान भी बहुत किया था 'जागो फिर एक बार' की पंक्तियां हैं

सिंह की गोद से छीनता रे शिशु कौन
मौन भी क्या रहती वह रहते प्राण रे अजान!
एक मेषमाता ही निर्निमेष रहती है
दुर्बल वह छिनती संतान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त तृप्त आंसू बहाती है
किन्तु क्या योग्य जन जीता है
पश्चिम की उक्ति नहीं
गीता है गीता है
स्मरण करो बार बार
जागो फिर एक बार

और सब ठीक है। मेरी समझ में आ जाता है। पश्चिम की उक्ति नहीं 'गीता है गीता है' पर रुक जाता था। यह गीता कहां से आ रही। गीता का अर्थ गेय पंक्तियां तो हो सकती हैं किन्तु 'पश्चिम की उक्ति' के आगे जो गीता रखी गयी है वह तो विश्रुत गीता ही हो सकती थी। किन्तु क्या योग्य जन जीता है? यह पश्चिम की उक्ति नहीं है। गीता है गीता है कहां है गीता में यह उक्ति? मैं परेशान रहता इतनी अच्छी उद्‌बोधक कविता पढ़ता यहीं आकर रुक जाता। एक दिन सहसा ध्यान में आया

सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते

सम्भावित के लिए अकीर्ति मरण से भी अधिक है।

पूरा श्लोक यह है

अकीर्तिं चापि भूतानि कर्थायष्यन्तितेऽव्यायाम
सम्भाविवस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते 2/34

गीता का सम्भावित निराला के यहां योग्य बन गया है। गीता की इस पंक्ति का निराला ने उद्‌बोधन में उपयोग किया।

इस क्रम में एक उदाहरण और देकर निराला के बादल और आंख के संयोग पर लौटूंगा।

निराला की रचना 'तुलसीदास' में चित्रकूट की प्रकृति का दर्शन करके तुलसीदास को लगा कि प्रति जड़ वस्तु जंगम जीवन (मनुष्य) से कुछ कह रही है। उसके कथन की दो पंक्तियां इस प्रकार हैं

फिर असुरों से होती क्षण क्षण
स्मृति की पृथ्वी यह, दलित चरण

पंक्तियों का अन्वय होगा स्मृति की यह पृथ्वी क्षण क्षण असुरों से दलित चरण होती है। इसमें स्मृति की पृथ्वी का समझ में आना मुश्किल है। 1977-78 के आसपास यह किताब दिल्ली विश्वविद्यालय के एम.ए. (हिन्दी) पाठ्यक्रम में निर्धारित डा. नित्यानंद तिवारी पढ़ाते थे। मैंने उनसे कहा तो उन्होंने यह काम मुझे दे दिया। सौभाग्यवश उन दिनों विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में त्रिलोलन शास्त्री कोश निर्माण की योजना में काम कर रहे थे। मैं उनके पास गया और कहा आप मुझे पढ़ा दीजिए। अगर आप नहीं पढ़ायंगे तो मैं नहीं पढ़ा पाऊंगा। वे मुझे स्नेह देते थे, तैयार हो गये। मैं उनसे सवेरे पढ़ता और तीसरे पहर क्लास में पढ़ाता। उनके साथ बैठ कर मुझे यह अर्थ सूझा कि हिन्दुओं में प्रचलित प्रातः स्मरण के जो श्लोक हैं उनमें एक है

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तन मंडले।
विष्णुपत्नी नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।

श्लोक में पृथ्वी की स्तुति है। हे समुद्रवसने देवि, हे पर्वतस्तन मंडले। हे विष्णु पत्नी। मैं सवेरे तुम पर अपने चरण रख रहा हूं। पृथ्वी पर विचरण कर रहा हूं इसके लिए मुझे क्षमा करो। प्रकृति तुलसीदास से कहती है कि जो पृथ्वी विष्णु की पत्नी है और जिस पर चरण रखने के पूर्व भारतीय क्षमा मांगता है उसी पृथ्वी को असुर अपने चरणों से रौंद रहे हैं। प्रातःस्मरण की क्रिया का संकेत निराला 'स्मृति' से देकर पंक्तियां रच रहे हैं।

अथ निरंजन बने नयन अंजन

बादल ताप से वाष्प बन कर उमड़ते हैं और विस्तृत अनंत स्वच्छ नीलाकाश में प्रकट होते हैं। वे कहीं नहीं होते और उमड़ कर अनंत आकाश को घेर लेते हैं। भारतीय जीवन पर, आर्थिक सांस्कृतिक जीवन पर बादल का अत्यधिक परम व्यापक प्रभाव है। कृषिफल तो है ही। प्रकृति का असहनीय ताप और उसके बाद वर्षण और पृथ्वी का वसुधा बन जाना यह महाभूतात्मक नाट्य भारतीय जीवन की प्राण प्रक्रिया है। ताप और वर्षण निराला ने इतने रूपों में आजीवन खींचा है कि वह उनके महाप्राणत्व का पर्याय है। जहां तक बादलों के रूपचित्रण का सवाल है, निराला कालिदास के सहचर है।

बादल काले हैं, पूरे आकाश पर छा जाते हैं। निरंजन अर्थात अदृश्य। अंतस्साधना में निरंजन विकाररहित। अलख और निरंजन अदृश्य और शुद्ध सत्ता। निराला के यहां बादल मूल रूप में निरंजन

था। वही निरंजन नयन का अंजन बन गया है। नयन का अंजन, तो नयन क्या है? नयन आकाश है। नयन को आकाश निराला ने ही नहीं प्रसाद ने भी कहा है अपलक जगती हो एक रात यहां आकाश सहित पूरी सृष्टि नयन है। आकाश नयन है और काले बादल अंजन। निराला ऐसे विशाल उदात्त, सृष्टि विस्तृत बिम्बों को रचने में माहिर हैं। एक जगह कहते हैं समीर सागर के अस्थिर सुख पर दुख की छाया तिर रही है। यह समीर सागर आकाश (में) है जिस पर दुख की छाया तिर रही है। यहां बादल दुख की छाया बन गये हैं।

मेघदूत में बादल कृषिफल के आधार थे। जनपद वधुओं के नयनों में उनके लिए प्रीति थी। वे कृषिफल के आधार होने के साथ साथ नयन सुभग और श्रवण सुभग भी थे। नयन मोहक और श्रवण मोहक भी थे। वस्तुतः उपयोगिता के साथ अन्य आकर्षण स्वतः खिंच आते हैं। निराला की एक कविता में बादल नयन मनोरंजन हैं। बादल जीवन धन परम प्रिय हैं। उन्हें नवयौवन के सुवास से युक्त कोमल तन तरुणी अपलक देख रही है।

बादल राग में बादलों को 'विदाई के अनिमेष नयन' कहा गया है। विदाई के समय प्रिय को अपलक देखती हुई आंखें कहा गया है। निराला के यहां अनिमेष अपलक आंखें प्रभूत मात्रा में हैं। आंखें सुख में प्रायः मुंद जाती हैं

मुंदे पलक देखें केवल उर में

नहीं तो अपलक निष्पलक ज्यादा रहती हैं।

एक कविता में लिखा है

गगन मेघ छाये/नये नयन नये।

आकाश में मेघ छा गये हैं। आकाश नवशोभादायक नयन बन गया है।

कालिदास को निराला ने बहुत पढ़ा था। कालिदास उनके ध्यान में रहते थे। अनामिका काव्य संकलन का नाम ही उन्हें ध्यान में लाकर रखा गया है। अद्यापि तत्तुल्य कवेरभावात अनामिका सार्थवती बभूव। इसके साथ ही साथ निराला हिन्दी की जमीन पर दृढ़ता से खड़े होकर विचार भी करते हैं। रुचि का निर्माण भी करते हैं। संस्कृत का भाषा माधुर्य हिन्दी के भाषा माधुर्य से भिन्न है। हिन्दी भाषा शणवल से नहीं चलती। हिन्दी का अपना जातीय छंद कबित्त है। श्यामातन्वी शिखरदशना में शकार की बहुलता पर वे कहते हैं शपाशप के मारे बुरा हाल है। प्रशंसक होने का अर्थ अनुकर्ता होना नहीं होता। निराला के बाद कालिदास को जज्ब कर लेने वाले दूसरे कवि नागार्जुन हैं वे भी कालिदास से जवाबतलब करते हैं कालिदास सच सच बतलाना।

निराला की बादल राग कविता में भी कृषि है। वर्षण है लेकिन कालिदास जैसी फुहारें ही नहीं, पूजा अर्चना ही नहीं, बार बार गर्जन मूसलाधार वर्षण है। विप्लवरव से शोभा पाने वाले छोटे लघु भार पौधे हैं। अलका की अट्टालिकाएं यहां आतंक भवन बन गयी हैं। बादल नयन सुभग और श्रवण सुभग नहीं विप्लव के वीर है। धनीत्रस्त नयन है। और जीर्ण बाहु शीर्ण शरीर अधीर कृषक है। वह सिर्फ देख नहीं रहा, बादलों को बुला रहा है। बादल जीवन के पारावार हैं और कृषक का जीवन सार चूस लिया गया है। निराला कालिदास के पाठक, प्रभाव गाहक और प्रशंसक थे इसलिए उन्होंने कालिदास के मेघ से भिन्न बादल की सृष्टि की।

निराला सघोष और द्वित्व व्यंजनों के और कबित छंद की लय का उपयोग करते हुए बादल के गर्जन, तर्जन, गति वेग के ध्वनि बिम्ब बनाते हैं। जायसी ने 'चढ़ा असाढ़ गगन घन गरजा' और तुलसी ने 'घन घंमड गर्जन घनघोरा' जैसे बिम्ब बनाये हैं किन्तु मात्रा में बहुत कम वर्षा ऋतु वर्णन के प्रसंग में। बादल का चित्रण उन्होंने सीमित किया है। निराला ने स्वाधीनता युग के आंदोलन का

क्षोभ, आक्रोश और स्वप्न बादल में भर दिया है। बादल राग में निराला की ध्वनि योजना का चरम उत्कर्ष है। निराला का बादल चित्रण कालिदास तुलसीदास की तरह नहीं। कालिदास और तुलसी की अपेक्षा सूरदास के ब्रज में इंद्र कोप के अवसर के वर्णन से मिलता जुलता है। सूरदास के वर्णन में ध्वनि योजना ध्यानाकर्षक है। मेघ दल प्रबल ब्रज लोग देखें

घटा घनघोर हहरात, अररात
दररात, घररात ब्रज लोग डरपे,
तड़ित आघात तररात उतपात सुनि
नारि नर सकूचि तन प्रान अरपे

बादर बहु उमड़ि घुमड़ि बरखत ब्रज आगे बढ़ि
कारे धौरे धूमरे धारे अति ही जल

निराला के बादल राग का स्वर ऐतिहासिक है साथ ही साथ महाभूतात्मक संगीत का प्रभाव पैदा करता हुआ। आप कभी सुर मल्हार पं. भीमसेन जोशी का गाया हुआ सुनें तो निराला की बादल राग कविता याद आयेगी। मुझे बादल राग का चित्रण उसकी शब्दार्थ योजना ऋृगवेद में पर्जन्य स्तुति की याद दिलाती है। कालिदास, जायसी, तुलसी के मेघ या वर्षा वर्णन की नहीं।

पर्जन्य वृषभ के समान निर्भीक हैं और पृथ्वी तल की औषधियों में बीजारोपण करके नवीन जीवन का संचार करते हैं। वे वृक्षों को उत्पादित करते हैं, राक्षसों का वध करते हैं, अपने महान अस्त्र से समूचे जगत को त्रस्त विकम्पित कर देते हैं। उनके भयंकर वज्र प्रहार से निरपरवाह लोग भी भय से कांप उठते हैं। पर्जन्य देवता अपने शाही घोड़े पर कशाघात करते हुए उन्हें और भी वेग से हांकते हैं। जब वे मेघाच्छदित आकाश में गरजते हैं तब जान पड़ता है मानो दूरस्थ अरण्य गुहा से सिंह दहाड़ रहा है। भावानुवाद : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी रचनावली, 9/65

अच्छावद तवसंगी भिरामिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास
कनिकद वृषभो जीरदान रेतो दधात्योषधीम् गर्भम।

.....

निराला ने भी जनपद वधू की आंखों से मिलती जुलती एक कविता लिखी है 'वे किसान की नयी बहू की आंखें'। ये आंखें भी भ्रूविलासानभिज्ञ हैं। वे अपने सौन्दर्य की क्षमता नहीं जानतीं। वे नहीं जानती कि वे विश्व के वैभव की सृष्टि कर रही हैं। उन्हें जो भी देखता है, वशीभूत हो जाता है। इसलिए वे सम्राज्ञी हैं। उनकी इच्छाएं कभी पूरी नहीं होतीं। उनसे आत्मीयता सिर्फ निर्जन के दिशाकाश की है। वे दूर दिशाओं के आकाश को निहारती रहती हैं। यहां भी आंखों का सम्बंध आकाश से है। यह रूपक आगे की पंक्तियों में बढ़ता है। निराला किसान की नयी बहू की आंखों का रूपक हरीतिमा में बैठे दो पंक्षियों से बांधते हैं जो अपनी आंखें बंद किये हैं। वे चंचल नहीं हैं। सहमी जरूर हैं। बाहरी दुनिया से डरे हुए पक्षी हैं लोग कहीं हाथ से पकड़ न लें। अंतिम पंक्ति है बढ़ो क्यों न वह पुलकित हो कैसे भी बरसो।

उनका पति चाहे जैसा हो, गरीब, कुरूप, अनपढ़ वे उसके पास हंसी खुशी रह कर प्रसन्न होती हैं। दुनिया के हाथों पकड़े जाने से डरती हैं। अपने चाहे जैसे पति के सान्निध्य से आंखें बढ़ती हैं।

किसान की नयी बहू की आंखों के सौन्दर्य से प्रभावित होकर उनकी उपमा हरीतिमा में बैठे दो विहगों से करने के बाद निराला उनकी निरीहता और निरीहता से अधिक उनकी बेबसी से उलझ गये। उनकी बेबसी भी उनके सौन्दर्य को अधिक निरीह बनाती है। किन्तु कविता उन आंखों वाली

बहुओं को अभाव के कारागार में रहने के यथार्थ को अंकित करती है। जो भी मिल जाये उसमें वे प्रसन्न हैं। उनकी यह प्रसन्नता दारुण है। आंखें या तो आकाश हैं या आकाश की ओर देखती हैं। आकाश से उनका सम्बंध प्रायः बन जाता है। शेफाली रात में खिलती है। जब संसार आंखें मूंद लेता है तब शेफाली पांखें खोलती है। खिलती है। मानो आकाश की ओर उड़ने को ताकती उपवन में परियां आती हैं।

मूंदी जब जग में आंखें
खोली रे उसने पाखें
उड़ने को नभ को ताके
उपवन की परियां आतीं 234

किसान की नयी बहू की आंखें हरीतिमा में बैठे बिहग हैं जो आंखें बंद किये है। और निराला की एक कविता में नायिका की आंखों से चिड़ियां उड़ती हैं

खिरनी के पेड़ के तले
बैठी थीं तुम भले भले
आंखों से चिड़ियां उड़ती थीं
उससे कुल पिड़ियां जुड़ती थीं
पहने साड़ी सफेद/भावों से गया भेद
लोगों ने रूप पी लिया गले गले
धूप उठ रही थी, नम सोनी/झरता था सर पर सुख बोना
धीरे धीरे चल दीं/सारी दुनिया छल दीं
पीछे भाई के हरहों के डगले। 2/441

इतने आसान, देसी शब्दों में यह कविता लिखी गयी है कि कविता लगती ही नहीं। निराला की अनेक कविताओं के साथ ऐसी स्थिति है। कभी कभी अति परिचय अपरिचय बन जाता है। कविता में हम कुछ अपरिचित ढूंढ़ते हैं। अपरिचित स्थितियां नहीं होतीं, उनका बोध या व्यंजना नयी होती है। इस कविता की प्राथमिक दो पंक्तियां त्रिलोचन ने सुनायी थीं। सुना कर पूछा कुछ समझे? मैं हक्का बक्का। आंखों से चिड़ियां उड़ती हैं क्या मतलब? त्रिलोचन ने समझाया किशोरी की आंखें सघन पक्ष्मल होती है। लम्बी बरौनियों की सघन काली पात चिड़ियों के पंख की तरह हैं। कहते भी पक्ष्मल हैं न। किशोरी जब आंखें जल्दी जल्दी ऊपर उठा कर नीचे करती है तो उन काली बरौनियों के कारण लगता है मानो आंखों से चिड़ियां उड़ रही हैं। फिर गौरवपूर्वक बोले आप तो अवध के हो। अवधी में चलता है निराला ने वहीं से लिया है। अब पिड़ियों की समस्या थी। पिड़िया सर के बालों का गुच्छा है। बरौनियों वाली पलकें ऊपर उठती थीं तो सिर के केश गुच्छों से जुड़ जाती थीं। आगे की पंक्ति में घोर शृंगार है। पहने साड़ी सफेद। भावों से गया भेद, भेद गया के भेद में श्लेष है। थोड़ी देर में जब वह वहां से चल दी तो लोगों ने अनुभव किया मानो उन्हें छला जा रहा हो। नायिका का भाई भी चित्र में है। वह चला अपनी बहन के चलने पर तो उसके पीछे हरहों के बच्चे भी चले। डगले का अर्थ याद नहीं पड़ता त्रिलोचन जी ने क्या बताया था। हरहा गोरुओं के झुंड को कहते हैं यह जानता हूं। पिडिया का अर्थ शब्दकोश देख कर किया है। आंखों की गति का विलक्षण चित्रण पदमावत में किया गया है। जायसी ने भी आंखों को आकाश से जोड़ा है अपनी तरह से पदमावती के बांके नयनों की बराबरी में कोई नहीं पहुंच सका। मानो मानसरोवर उथल रहे हैं (उथलना जल का ऊपर उछलना और ऊपर नहीं)

उनकी गति ऐसी है कि तुरंग वल्गा से नहीं थमते। उछल कर आकाश से लग जाना चाहते हैं। वे पवन गति से हिलोल कर झकोर देते हैं। स्वर्ग से लग कर फिर भूमि पर लग जाते हैं। उनके

डोलने से जगत डोलने लगता है। पल में अड़ार (अवरोध) को उलट देते हैं।

नैन बाक सरि पूजन कोऊ। मान सरोदक उथलहिं दोऊ
उठहिं तुरंग लेहि नहि बागा। चहहिं उलथि गगन मंह लागा।
पवन झकोरहिं देहि हिलोरा। सरग लाई मुंह लाइ बहोरा
जग डोले डोलत नयनाहां। उलटि अड़ार जाकिं पल मांहा

नखशिख खंड

इस चित्र में नयनों के प्रभाव को गति वेग से व्यंजित किया गया है। यह प्रेम से प्रगाढ़ या स्थापित गहरे ठहरे हुए अनुभव का चित्र नहीं है। रूपवर्णन का संदर्भ है। यह प्रेमी की दृष्टि से देखा हुआ नयन सौन्दर्य नहीं है। निराला के यहां होने को चल चितवन भी नयनों के प्रभाव की गति का वेग होगा। लेकिन वह कम है उनके यहां अपलक निष्पलक, आंखें ज्यादा है। 'मुंदे पलक देखें केवल उर में' की स्थितियां प्रायः हैं। विभिन्न स्थितियों और चेष्टाओं में आंखों के रूप विशिष्ट हैं। निराला की कविता में आंखों के आंसुओं का सम्बंध करुणा से होता है। और ऐसे में ज्यादा रोने धोने का अवसर नहीं रहता। करुणा के आंसू कम दिखलाई पड़ते हैं। वे जितना ही कम दिखायी पड़ते हैं उतने ही गहरे होते हैं। मितव्ययी होते हैं। अपार भाव समृद्ध होते हैं। इस विषय में निराला तुलसी की तरह हैं। तुलसीदास के यहां 'नयन जल छाए' आता है। अब तुलसीदास की बात आ गयी है तो थोड़ी देर उनके साथ हो लें।

तुलसी के यहां अश्रुपात लगभग नहीं है। भक्त कवि हैं राम के। सो राममिलन के या राम स्मरण के प्रसंगों में भावातिरेक का वर्णन चित्रण करने के अवसर अनेकानेक हैं। वहां प्रायः सर्वत्र 'नयन जल छाए' की स्थिति है। रामचरितमानस में पुष्पवाटिका प्रसंग सर्वाधिक मनमोहक लगता है। यह अंश तुलसी का मौलिक है वाल्मीकि रामायण से स्वतंत्र कहते हैं कि कम्ब रामायण में वाटिका प्रसंग है। खैर। मध्यकालीन किशोरी उपवन में किसी अपरिचित किशोर के रूप पर मोहित होते हुए उससे मिल रही है। यह दो स्वतंत्र सत्ताओं का मिलन है। तुलसी ने उसे भी थोड़ा राम के लीलाधारी रूप से जोड़ दिया है। लेकिन वह अंश परम रमणीय है। सीता सखियों के साथ पुष्पवाटिका में गयी थीं। राम पुष्पचयन कर रहे थे। एक सखी सबका साथ छोड़ कर अलग हो गयी थी। उसने राम लक्ष्मण को देखा तो विह्वल होकर सीता समेत सखियों के पास लौटी उसकी दशा उसका गात पुलकित था, आंखों में जल था

तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जल नैन

सखी राम लक्ष्मण के रूप का बयान कैसे करे?

स्याम गौर किम कहौं बखानी गिरा अनयन नयन बिनु बानी

रचना प्रक्रिया, सौन्दर्यशास्त्र और काव्यशास्त्र का यह महान सिद्धांत गिरा अनयन नयन बिनु बानी एक सखी के मुंह से तुलसी ने कहलाया। सौन्दर्य साक्षात्कार से भावित, सौन्दर्य समाधि में लीन प्राणी अनुभव को बयान करने में अपने को अक्षम पाता है। तुलसी राम के रूप या अन्य चेष्टाओं का वर्णन करते समय प्रायः कहते हैं मैं यह वर्णन नहीं कर सकता। शेष सारद नहीं कर पाते तो मैं मतिमंद तुलसी क्या कर पायेगा। इसके बाद वे चित्रण में प्रवृत्त होते हैं। सभी भाषाओं के बड़े कवियों ने यह बात अपने अपने ढंग से कही है। कवियों ने बार बार कही है तुलसी ऐसे अवसरों पर प्रायः संक्षिप्ति से ही काम चलाते हैं, ज्यादा नहीं कहते। आंसू भी ज्यादा नहीं कम, या काम भर के ही अश्रुपात लगभग नहीं

लोचन जल रह लोचन कोना जैसे परम कृपन कर सोना

भावाभिव्यक्ति और भाव प्रदर्शन में विरोध है। इसे कवियों, सुसंस्कृत व्यक्तियों कवियों विशेषतः भक्त कवियों और प्रेमियों से ज्यादा कोई नहीं जानता। भरत ने निषाद के बताने पर वह वृक्ष देखा

जिसके तले राम बैठे थे।

सखा वचन सुनि विटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी

यमुना नदी का नीला जल देखा तो राम के देह की कांति का स्मरण हो आया और

बीच वासु करि जुमना आये। निरखि नीर लोचन जल छाये।

रामचरितमानस में एक प्रसंग ऐसा जरूर है जिसमें अत्यधिक अश्रुपात का वर्णन है। सुखजन्य अश्रुपात केवल सुख नहीं सुख और दुख दोनों का भावाश्रुपात चित्रकूट में कौशल्या राम लक्ष्मण से मिलीं बीच में अनेक घटनाएं घट चुकी थीं। सबसे दुखद घटना दशरथ का निधन हो चुका था। उसके बाद कौशल्या पुत्रों से पहली बार मिल रही थीं। विधवा कौशल्या बनवासी निष्कासित पुत्रों से पहली बार मिल रही थीं।

अति अनुराग अम्ब उर लाये। नयन सनेह सलिल अन्हलाये।

निराला के यहां निष्पलक नयन जगह जगह है। तुलसी के यहां अपेक्षाकृत कम। पुष्पवाटिका में राम को देख कर 'भये बिलोचन चारु अचंल' राम और सीता ने एक दूसरे को देखा। यह मर्यादा विरुद्ध था। सो तुलसी ने इसकी सफाई भी दी है। राम ने लक्ष्मण से कहा हम रघुवंशी गलत बात सोच नहीं सकते। वह मेरा मन जो चंचल हो रहा है कुछ कारण होगा सो सब कारन जान विधाता। सीता राम को नयनों के मार्ग से हृदय में ले आयीं फिर राम लौट कर बाहर न निकल पायें सो आंखों की पलकों के कपाट बंद कर लिए

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी

यहां किशोरी सीता 'सयानी' हो गयी हैं और तुलसी ने भी थोड़ा कविपना दिखा दिया है। तुलसीदास जब कविपना दिखाते हैं तो बड़े बड़े रीतिबद्ध कवियों को मात कर देते हैं। केशवदास के समकालीन थे न। पुष्पवाटिका में सीता का रूप इतना मनोहर इसलिए है क्योंकि वह मानवी किशोरी का है। 'यन्मायावशवर्ति ब्रह्मादि देवा सुरा' वाली नहीं, राम को देखने के लिए यानी जो लड़का अच्छा लगा है उसे देखने के लिए चारों तरफ देख रही हैं। आंखें चारों तरफ ढूंढ रही हैं और मन में यह भय भी कि कोई देख तो नहीं रहा है कि वे किसी किशोर को देखने के लिए व्याकुल हैं

सीधे चितवत चकित चहूं दिसि सीता। कंह गये नृप किशोर मन चीता

लगता है बाबा ने जयदेव का गीत गोविन्द घोंट लिया था। प्रकट न होने देते हों। कभी कभी नहीं छिपा पाते थे

चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी समीत

ये सीधे 'चकित बिलोकित सकल दिशा रति रहस भरेण हसंतम' से ले लिया गया है।

इसी तरह जहं बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहं बरस कमल सित श्रेनी कालिदास की उपमा है।

कालिदास की जनपद वधुएं अपनी प्रीतिस्निग्ध आंखों से मेघ को पी लेती हैं। तुलसीदास के यहां भी आंखों से रूप पी लेने का चित्र है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का विचार है कि जो तापस राम का रूप पी रहा है वह स्वयं तुलसीदास है। राम वन गमन प्रसंग में राम जब उस प्रदेश में पहुंचते हैं जो तुलसी की जन्मभूमि समझी जाती है तब तुलसी काल पार करके राम का स्वागत करने उनके पास पहुंच जाते हैं।

तेहि अवसर इक तापस आवा। तेजपुंज लघु बयस सुहावा
सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेव पहिचान
परेउ दंड जिमि घर नितल दसा न जाइ बखान
पियत नयनपुट रूप पियूषा/मुदित सुअन्न पाह जिमि भूखा।

सजल नयन तन पुलकि तुलसी का आवर्ती बिम्ब है। प्रेमभाव की अभिव्यक्ति में इससे अधक और कुछ नहीं। प्रेमाभिव्यक्ति में ऐसी शब्द मितव्ययिता और स्फीति से बचने का यह आग्रह तुलसी की विशेषता है। इस प्रसंग में कालजयी एवं अद्वितीय उदाहरण सीता के प्रति राम का हनुमान के माध्यम से दिया गया संदेश है। दूरस्थ शत्रु के यहां बंदिनी प्रिया को इतना संक्षिप्त संदेश शायद ही किसी और ने दिया हो अल्पतम शब्दों में विस्तृत भाव से समृद्ध संदेश

राम ने संदेश में कहा कहने से दुख कुछ घट जाता है लेकिन यह दुख कहूं किससे। मेरा दुख कौन जानेगा। मेरे और तुम्हारे प्रेम का तत्व सिर्फ मेरा मन जानता है और वह मन तुम्हारे पास ही रहता है।

कहेहू से कछु दुख घटि होही। काहि कहौं यह जान न कोई
तत्व प्रेमकर मय अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा
सो मन रहत सदा तुम्ह पाही। जान प्रेम रसु एतनहि माही

तुलसी उद्भट विद्वान कवि हैं। वे काव्यशास्त्र के निष्णात पंडित थे। संस्कृत साहित्य और भाषा के परम जानकार। लेकिन कवि हिन्दी के थे (अवधी और ब्रज भाषा के)। वे तद्भव की भाषा लय को, उस लय को जो संस्कृत में नहीं अवधी और ब्रज में छवियों के ध्वनि बिम्ब उकेरती है, पहचानते थे और इस लय प्रयोग के वे अद्वितीय कवि हैं। इस क्षेत्र में वे जयदेव से इसलिए कहीं अधिक बड़े हैं क्योंकि जयदेव की पदावली केवल शृंगार में सक्रिय है। तुलसी की शब्द योजना की लय जीवन के विस्तृत क्षेत्र में व्याप्त है। संस्कृत के शणवल से नहीं। तुलसी त द ब र ल स और प्रायः ह्रस्वस्वरांत पदों से बिम्ब संयोजित करते हैं। नाद बिम्बों पर विचार करते समय एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि शब्दार्थ में नाद योजना अर्थ की असीमता भर देती है। शब्दार्थ, मेरा मतलब कोशगत अर्थ तो सीमित अर्थ वाले यानी कामचलाऊ होते हैं। ध्वनि और नाद उस मनुष्य की भाषापूर्व आदिम ध्वनियों की असीमता लिए रहते हैं, उन्हें बचाये रखते हैं (रखे हैं) जिससे अर्थ सीमित न रह कर असीम अबूझ और रहस्यमय बने रहते हैं। विकसित मनुष्य की भाषा इतनी कामकाजी हो गयी है कि उसने वह अबूझता, रहस्यमयता, असीमता खो दी है। ये ध्वनि व्यवहार आज व्यर्थ लगते हैं। आह, ओह, हाय, आदि जब कभी अनुभव का आघात होता है तभी हम इसकी सार्थकता पहचान पाते हैं। तब पता चलता है कि शिशु की अस्पष्ट ध्वनि में पशुओं की ध्वनियों का कितना असीम अर्थ और भाव भरा है। आगे बढ़ें तो प्रकृति के मर्मर, सरसर, सरित प्रवाह, समुद्र गर्जन। कविता को जो शब्दार्थ का साहित्य बताया जाता है उसकी परिधियों में ये सब बातें आ जाती हैं। इस बात को आगे बढ़ाने के लिए मैं दागिस्तान के प्रसिद्ध कवि रसूल हम्जातोव की एक छोटी कविता के भाव की चर्चा करना चाहता हूं। रसूल हम्जातोव की कविता का शीर्षक है कवि की मां का कवि के प्रति कथन। यह कविता मैंने अंग्रेजी में पढ़ी है रूसी या अवर (दागिस्तान की भाषा) मुझे नहीं आती।

जब यह छोटा था, बोल नहीं पाता था
तो क्या कहता या कहना चाहता था
मैं सब समझ लेती थी।
अब यह कवि हो गया है
भाषाविद बड़ा पढ़ाकू और लिक्खाड़
अब यह क्या कहता है
यह मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आता।

संगीत और लय नाद बिम्ब ये सब शब्दार्थ कोशगत अर्थ में असीम अर्थ भर देते हैं जो विस्तृत व्यापक जीवनानुभव और जगत साक्षात्कार के पर्याय होते हैं। तुलसीदास की लय योजना में

शब्दों में जो अथाह अर्थ है और जिसका अनुभव शिक्षित बुद्धिजीवियों की अपेक्षा क्षेत्रीयजन अधिक करते हैं उसमें अवध की प्रकृति, जीवन, नदियों के जलप्रवाह, खेतों की फसलों, पक्षियों के कलरव और इतिहास संस्कृति, सुख, दुख, मिथकों, लोकगीतों के अनुभव बिम्ब भी समाहित हैं। वे सौन्दर्य के महानतम संश्लिष्ट महाभूतात्मक रूप हैं

कहि न जाह अस अद्‌भुत बानी।

तुलसीदास अपनी असमर्थता की घोषणा रचनाभूमि पर स्थित होकर करते हैं। वे जब अपनी असमर्थता प्रकट करें समझिये कि सुंदर पंक्तियां रचने जा रहे हैं। कोई दूसरा कवि मिलना मुश्किल है जो अपनी काव्यक्षमता की दुर्बलता इतना ज्यादा घोषित करता हो। विशेषतः मार्मिक प्रसंगों में। चित्रकूट में राम भरत का मिलन ऐसा ही प्रकरण है

भरत की प्रीति, विनय, नम्रता और उनकी बड़ाई सुनने में तो सुखद है किन्तु उनका वर्णन कठिन है। जिनकी भक्ति का थोड़ा अंश लवलेश देख कर ही मुनिगण और जनक प्रेममग्न हो गये उनकी महिमा तुलसी कैसे कह सकता है! उनकी भक्ति, स्वभाव, सुमति हृदय में (कवि के तुलसी के) उल्लसित हो रही है। भरत की भक्ति की महिमा बड़ी और मैं छोटा (असमर्थ) हूं यह समझ कर कविकुल की मानि (मर्यादा) संकुचित हो गयी। पीछे हट गयी। भरत की भक्ति के गुणों में रुचि तो बहुत है लेकिन कह नहीं पाते। कवि की भक्ति बालवचन की तरह हो गयी। कहती तो है कह नहीं पाती।

भरत प्रीति नति विनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई
जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू
महिमा तासु कहै किम तुलसी। भगति सुभायं सुमति हिम हुलसी
आप छोटि महिमा बड़ि जानी। कवि कुल कानि मानि सकुदानी
कहिन सकत गुन रुचि अधिकाई। मति गति बालबचन की नाई

तुलसी की मनःस्थिति को जानने का प्रयास करने के लिए राम भरत मिलन के चित्रकूट के ही एक और प्रसंग को साथ जोड़िये।

अब राम और भरत के प्रेम को कौन प्रकट करे। कविकुल तो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सबको विस्मृत कर चुका है। प्रेम देख कर कवि मति किसके सहारे, या प्रकाश का अनुसरण करे। कवि को तो केवल शब्द के अर्थ का ही वास्तविक बल है। इसी के सहारे, जैसे ताल की गति पर नट नाचता है वैसे ही कवि शब्द के अर्थ के बल पर रचना करता है।

कहहुं सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कवि मति अनुसरई
कबिहि अरथ आखर बल सांचा। अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा

आखिर में बात निहारने पर आ गयी। कोई काम नहीं आया तो आंख काम आयी

भरत विमल जसु विमल बिधु सुमति चकोर कुमारि
उदित विमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि

भरत का विमल यश चंद्रमा है। वह भक्तजन के हृदय आकाश में उदित है। सुमति (वही कवि सुमति जो हार चुकी है) चकोर की तरह भरत यश चंद्रमा को निहार रही है।

भरत का यश पहले कवि की ही मति में था अब वह भक्तजन के हृदय आकाश में उदित हो गया है। चंद्रमा बन कर कवि से छिटक कर दूर एक दृश्य वस्तु बन कर आकाश में उदित हो गया है। एका हो गया है। कवि उसे सबको हृदयंगम ही कराना चाहता था न! वह जन हृदय में, आकाश में उदित हो गया। सबको हृदयंगम हो गया। कविता ने अशक्त होकर भी अपना काम कर लिया।

आप कहे भाव सम्प्रेषित साक्षात्कृत हो गया। 'एकटक रही निहारि' में निहारि शब्द का अर्थ परम्परा ध्यातव्य है। निहारना भावपूर्वक देखना है। दशरथ ने विवाह का संदेश लाने वाले जनक के दूतों से राम लक्ष्मण का कुशल पाने के लिए पूछा

भइया कहहु कुसल दोउ बारे/तुम कीके निज नयन निहारे

सरोज स्मृति में भाई ने छोटी बहन सरोज को पीट दिया। बड़े भाई ने उसको चुमकारा कैसे?

चुमकारा फिर उसने निहार

इन छोटे छोटे शब्दों की महिमा अपार है अच्छे कवि उनका उपयोग करना जानते हैं।

तुलसी के बहुप्रयुक्त 'नयन जल छाये' का रूप या प्रभाव निराला की कविता में कैसा है। यह देखने में निराला की एक अल्पचर्चित कविता 'स्वप्न स्मृति' सहायता करती है। इस कविता में दो छलछलाये नेत्रों का परिचय उनकी व्यथा कथा के साथ अंकित है। उन 'दो छलछलाये नेत्रों की' भाषा मौन थी लेकिन भाव व्यक्त था। वे अंतरतल में करुणा का क्षीण अव्यक्त प्रभाव छोड़ते थे। उनके भीतर दमन का नग्न रूप था बाहर दुखमय जीवन का अचल धैर्य था। भीतर सिंधु अनाम की ज्वाला धधक रही थी बाहर शांत भाव से निश्चल विकल जलधि के जर्जर मर्मस्थल की दो बूंदें थीं। जैसे थोड़े जल में अंतिम श्वास छोड़ते हुए वे भाव में बहते निमेषविहीन नेत्र कहते थे, हम अब यहां न रहेंगे। यहां हमारा केवल हाहाकार है। तुम्हारा एकमात्र आधार है। तुम कर दो एक प्रहार तो हमें मुक्ति मिलेगी।

एक प्रहार किस पर हो यह विवाद का विषय हो सकता है। क्रूर सत्ता पर या दुर्बल पर जो प्रहार से मर कर मुक्ति पा जायेगा? लेकिन दो आंखों की व्यथा अपार है। अग्नि समुद्र की ज्वाला में दग्ध है किन्तु केवल दो छलछलाती हुई आंखें हैं। करुणा का प्रभाव छोड़ने वाली। अपार भाव को व्यक्त करने वाली छलछलाती हुई मौन, अनिमेष दो आंखें। तुलसी की आंखें निराला के कवित्त में मानो चली आयी हैं लेकिन अव्यक्त अपार वस्तु के भाव प्रकार में महान अंतर है तुलसी की छलछलाती हुई आंखें प्रेमाश्रुपूरित हैं निराला की कविता में वे बूंदें दग्ध जीवन की मौन अभिव्यक्ति हैं। करुणा का प्रभाव छोड़ती हैं।

आंख लगी थी पल भर
देखा, नेत्र छलछलाये दो
.....
मौन भाषा थी उनकी, किन्तु व्यक्त था भाव
एक अव्यक्त प्रभाव
छोड़ते थे करुणा का अंतस्थल में क्षीण
.....
भीतर नग्न रूप था घोर दमन का,
बाहर अचल धैर्य था उनके उस दुखमय जीवन का
भीतर ज्वाला धधक रही थी सिन्धु अनल की
बाहर थी दो बूंदें पर थीं शांत भाव से निश्चल
विकल जलधि के जर्जर मर्मस्थल की... 8283/1/

निराला के यहां ऐसी पंक्तियों की प्रचुरता है जहां नयन कोरों, पलकों पर करुणा के बिन्दु अटके हैं 'करुणा जलपूरित नयन' के बिम्ब निराला के यहां तुलसी के बाद हिन्दी कविता में सर्वाधिक मिलते हैं

उसकी अश्रु भरी आंखों पर मेरे करुणांचल का स्पर्श

दुखी भाई की आंखों के अश्रु को कवि की करुणा का अंचल स्पर्श कर रहा है। 'विधवा' कविता में

है करुणा रस से पुलकित इसकी आंखें
देखा तो भीगी मन मधुकर की पाखें

विधवा की आंखों का करुणाजल किसी ने नहीं पोछा। वह पल्लवों से ओस जैसा झर गया। (पल्लव आंखें हैं, ओस करुणाजल) उस अश्रु (विधवा की करुण स्थिति के कारण) से भारत सर गया

ओस कण सा पल्लवों से झर गया
जो अश्रु भारत का उसी से सर गया 61/1

तुलसी ने अपने ईष्टदेव राम एवं हनुमान की भावना में ऐतिहासिक परिवर्तन किये हैं। भरत तो उनकी मौलिक निर्मिति हैं। इसी तरह अन्नपूर्णा। निराला ने सरस्वती में मौलिक ऐतिहासिक परिवर्तन किया है तुलसी और निराला के ये रूपांतरण मौलिक और साहसपूर्ण हैं। निराला की सरस्वती कृषिदेवी है। यह तो विदित है कि निराला ने सरस्वती विद्या की देवी को किसानों की निर्धनता, असहायता, उनकी ईमानदारी और कृषि रूप प्रकृति के सौन्दर्य से विभूषित कर दिया है। हरे भरे खेतों की लहराती सरस्वती के कारण

सुख के आंसू, दुखी किसानों की जाया के
भर आये आंखों में खेती की माया से 186/2

निराला की स्वतंत्रता, सरस्वती, भारती, भारत माता, विश्वश्री महाशक्ति आदि सब एक दूसरे में घुली मिली हैं। निराला की मातृदेवी की विशेषता है कि वे करुणाजल से पूरित आंखों वाली हैं। उनका मुखमंडल अश्रुजल धौत विमल है। निराला की यह मातृशक्ति मौलिक प्रतिभा, उनकी एतदविषयक मौलिक कल्पना की छवि है।

'खेती की माया' निराला की सरस्वती का रूप है। उससे दुखी किसानों की जाया की आंखों में सुख के आंसू भर आये हैं। साहित्य में आंसुओं से भरी आंखों की कमी नहीं है। लेकिन ऐसी आंखें सिर्फ निराला की कविता में पायी जाती हैं।

निराला मां (मातृदेवी, मातृशक्ति) के चरणों पर अपने जीवन के सकल स्वार्थ और श्रम संचित फल निछावर करते हैं। वे जीवनरथ पर चढ़ कर मृत्युपथ पार कर रहे हैं। महाकाल के प्रखर शर झेल रहे हैं। देवी से वरदान पाकर दृढ़तर होने की कामना करते हैं और ऐसा वरदान पाने के लिए मां के अभूतपूर्व रूप की कल्पना करते हैं। निराला मां की जो मूर्ति गढ़ते हैं वह अश्रुजल धौत विमल है। आंसुओं के जल से धुली निखरी मां की मूर्ति। आंसुओं के जल से धुली मूर्ति मैंने अन्यत्र नहीं देखी है। संतान के लिए आंखों में आये हुए आंसुओं से निखरा मुख निश्चित रूप से यह अश्रुजल करुणा का है। लेकिन मां के आंसू बन कर यह करुणा जल आत्मीय हो गया है। निजता की तीव्रता की सीमा मां के संदर्भ में सीमाहीनता से भावान्वित करुणा का जल। ऐसा जो सिर्फ मां संतान के संदर्भ में ही कल्पनीय है। मां की या किसी भी देवी की ऐसी मूर्ति न कालिदास के यहां है न तुलसीदास के यहां। करुणा एकात्मता की सेतु है। मां और संतान, देवी और निराला दोनों के हृदय में दोनों विराजमान हैं दोनों एक दूसरे को देख रहे हैं

जागे मेरे उर में तेरी
मूर्ति अश्रुजल धौत विमल
देखूं तुझे नयन मन भर
मुझे देख तू सजल दृगों से
अपलक उर के शतदल पर

एकल होकर एक दूसरे को देखने वाली आंखों के अविस्मरणीय बिम्ब निराला काव्य में अन्यत्र भी हैं, यथाप्रसंग उनकी चर्चा होगी।

नयन को वाणी नहीं है लेकिन नयनों की अभिव्यक्ति अचूक होती है। जो अभिव्यक्ति जितना ही कम मुखर होती है या जितना ही मौन होती है वह उतनी ही अचूक और अधिक व्यक्त करने वाली होती है। अनायास एवं सहज चेष्टा में भावों का संश्लेष निहित होता है। निराला नयनों की उस अभिव्यक्ति की चर्चा नहीं करके उसका चित्र खींचते हैं जिसमें विरह और मिलन दोनों के भाव एक साथ खिल पड़ते हैं। अपभ्रंश के एक दोहे में विरहजन्य दुर्बलता और मिलन सुखजनित विस्फार का वर्णन है तात्कालिकता में लेकिन एक ही संकेत में दोनों समाविष्ट हैं ऐसा अनुभाव चित्र

कहा नयन कोरों के नीरव
अश्रु कणों में भर मुस्कान
विरह मिलन के एक साथ ही
खिल पड़ते वे भाव महान 112/1

निराला की वाणी स्वाधीनता आंदोलन की भावभूमि पर स्थापित है। वह स्वतंत्रता के साथ नयी नैतिकता और सौन्दर्यबोध की मौलिक कल्पना करती है, यथार्थ का चित्र खींचती है। इतिहास को पुनर्व्यवस्थित करने का उद्योग करती है। जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में नयी आचारसंहिता बनाती है। पुराने को उदार बनाती हुई नयी अनुशासनसंहिता के साथ। निराला के मिथकीय ऐतिहासिक पात्र और उनकी चेष्टा में, कविता, कथा साहित्य की भाषा, छंद, शब्द, कथानक को निराला भी उद्योग से पुनर्गठित करते हैं। बादल और आंखों का वर्णन करते समय यह ऐतिहासिक सांस्कृतिक चेतना सक्रिय होती है। इस चेतना में संकीर्णता का लवलेश नहीं है। उनका विद्रोही स्वभाव इतना युगांतरकारी, अनगढ़ और पथभिन्न इसलिए लगता है क्योंकि वे समाज के निम्नतम प्राणी, प्रकृति के, जड़ चेतन सबके दुख को अपना लेते हैं। गांधी या तिलक की तरह कोई आंदोलन नहीं छेड़ पाते लेकिन चराचर के दुख को अपना लेते हैं। वे सकर्मक वैयक्तिक धरातल पर और वैयक्तिक क्षेत्र में होते हैं लेकिन स्वाधीनता आंदोलन भक्तियुग का आंदोलन नहीं था। वहां वैयक्तिक आचार पर्याप्त माना जाता था। निराला कविता की इयत्ता समझते हुए भी कविता को इतिहास का साधन नहीं बना सकते थे। इस सीमा ने उनकी सामाजिकता को क्षीण कर दिया। मानसिक असंतुलन इसी का परिणाम रहा होगा। इस विषय में वे मुक्तिबोध के पूर्वज भी हैं और एक दो पीढ़ी पहले होते हुए भी उनके सहयात्री वैयक्तिक स्तर पर सकर्मक लेकिन ऐतिहासिक सामाजिक स्तर पर अकर्मक ज्ञानात्मक संवेदन के कवि। एक पूर्ण कवि की अपर्याप्तता के दंश से पीड़ित। निराला इस दंश का शमन उत्तर जीवन में भक्तिभाव की कविताओं से करते हैं। निराला के यहां अनुमानतः मानसिक असंतुलन उनकी रक्षा करता है। मुक्तिबोध मानसिक संतुलन नहीं खोते हैं तो मृत्युशैय्या पर कराहते हुए नेहरू के स्वास्थ्य की चिन्ता करते हैं।

छायावादी सौन्दर्य चेतना स्वाधीनता आंदोलन की स्वातंत्र्य चेतना का अंग है। वह यथार्थ, स्वप्न, पराधीनता से जूझ कर स्वाधीनता प्राप्ति के लिए संघर्षजनित औदात्य से पुनर्निर्मित है। वहां आत्मविस्तार है। विश्वबंधुत्व मानवप्रेम उसी आत्मविस्तार का रूप है। आत्मविस्तार से समृद्ध यह सौन्दर्यबोध निराला द्वारा आंखों के चित्रण में दृष्टव्य है। 'सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति' कविता में वीक्षण अराल यह अराल वीक्षण बांकी चितवन कितनी समावेशी है। इसकी मारकता में कितनी व्याप्ति है। 'वो इक नजर जो बजाहिर निगाह से कम है' की मानो इतिहास व्याख्या कर रहा हो। इस प्रेमिका (मिस सिम्पसम) की बांकी चितवन में दिग्देश काल बंधा है। उसमें साहित्यिक स्वर भी बंधा है। साम्राज्य का विशाल वैभव उससे छोटा, उसके सामने अपदार्थ है।

वैभव विशाल
साम्राज्य सप्त सागर तरंग दल दल माल

है सूर्य क्षत्र
मस्तक पर सदा विराजित
लेकर आतपत्र
विच्छुरित छटा जल, स्थल, नभ में
विजयिनी वाहिनी विपुल घटा
.....
नरेन्द्र वंदित ज्यों देवेश्वर
पर रह न सके
हे मुक्त!
बंध का सुखद भार भी सह न सके 321/1

निराला अष्टम एडवर्ड और उनकी प्रेमिका के भाव सम्बंध से साहित्यिक स्वर, छंद, ताल, स्वर, संगीत, प्रियंगु की डाल (प्रकृति) से मिला कर वस्तुतः विंशतिशताब्दि की ऐतिहासिक नयी मानवता की प्रतिमा गढ़ते हैं। नयी सौन्दर्य चेतना वाला मनुष्य निर्मित करते हैं। निराला की कविता का अश्रुजल धौत विमल मुखमंडल और सम्राट एडवर्ड की प्रेमिका का वीक्षण अराल उसी नयी मानवता वाले विश्व नागरिक (भारतीय स्वातंत्र्य से जुड़ा) के नयन हैं। निराला की कविता ने उन्हें पहचाना, चित्रित और परिभाषित, प्रेषित किया है।

निराला की मां (देवी) की आंखों में करुणा के आंसू हैं। निराला की कविता में करुण विशेषण का प्रचुर प्रयोग है। अश्रु के साथ करुण विशेषण प्रायः आता है। विशेषण संज्ञा को विशिष्ट बनाता है। यहां अश्रु करुणा का ही दूसरा रूप है। छायावादी सौन्दर्यबोध और आज की करुणा की अवधारणा अतीव महत्वपूर्ण है। नैतिक संहिता का तो यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण शब्द है। तब यह सौन्दर्यबोध और काव्य का भी होगा। काव्य के लिए इसके महत्व का प्रमाण भवभूति दे गये हैं। भवभूति के कथन 'एको रसः करुण रसैव' की समुचित व्याख्या अब तक अच्छी तरह नहीं हो सकी है। 'उत्पत्स्यते कोऽपि समानधर्मा' उन्होंने सिर्फ अपनी कविता के आस्वादक के लिए नहीं, अपने काव्य सिद्धांत के लिए भी कहा होगा। मानवीय स्वभाव की गरिमा इस बात में है कि जिससे कोई वैयक्तिक लाभ या स्वार्थ नहीं उसके लिए भी वह दौड़धूप करता है। उद्योगी, त्यागी या बलिदानी स्वार्थ से जितना ही निरपेक्ष होगा उसका भाव उतना ही उच्च होगा। सत्वस्थ भाररहित होता है। भार स्वहित का होता है। आस्वादक जिन पात्रों से रसमग्न होता है, उनसे उसका दूर दूर तक कोई हितप्रद सम्बंध नहीं। इसलिए उसके आवस्वाद की प्रक्रिया में सामाजिक श्रोता, पाठक अनायास स्वतः सत्वस्थ हो जाता है।

करुणा दया, उदारता या सहानुभूति नहीं है। वह परकाया प्रवेश नहीं, परानुभूति प्रवेश भी नहीं उससे बढ़ कर है। बुद्ध को करुणावतार कहा जाता है। करुणा बौद्धशीलों में एक शील है। करुणा, मुदिता, तितिक्षा आदि। वह ब्रह्मविहार करने वाले की मनःस्थित है। मानव चेतना की उदात्ततम भूमि है। भावयोग में मनुष्य आत्म से (अपने से) परांगमुख होता है जिसे व्यपगतकरण कहते हैं वह स्थिति। अपने से विमुख लेकिन दूसरे के सुख दुख हित में लीन। यह दूसरा जरूरी नहीं कोई व्यक्ति ही हो, वह कोई विचार, उद्देश्य, लक्ष्य हो सकता है। अपने पराये सब एक समान हो जाते हैं। फैज अहमद फैज ने गांधी जी की हत्या पर सम्पादकीय में (तब वे पाकिस्तान टाइम्स के सम्पादक थे) लिखा अपनी कौम और मिल्लत के लिए शहीद होने वाले 'हीरोज' मानव इतिहास में अनेक हैं लेकिन जिस कौम व मिल्लत से अपनी कौम व मिल्लत का झगड़ा चल रहा है उसके लिए शहीद होने वाले हीरो मानव इतिहास में सिर्फ गांधी हैं।

करुणा की व्याप्ति और गहराई असीम और अथाह है। उसमें तीव्रता भी है और आत्म निरपेक्षता भी। दया, सहानुभूति आदि में आत्म निरपेक्षता नहीं होती उनमें अहंकार (अपनापन) बचा रहता है। करुणा में अपनापन भी अन्य को इतना समर्पित हो जाता है कि अन्य भी अपना हो जाता है। करुणा आत्मविस्तार है। इसीलिए उसमें प्रदर्शन की प्रवृत्ति नहीं बचती। यह अनन्यता करुणा की पहचान है। मनोविकार अपने आपमें अच्छे या बुरे नहीं हैं। यहां तक कि क्रोध और भय भी संदर्भानुसार उदात्त हो सकते हैं। उत्खात लोकत्रय कंटक राम के लिए आता है। क्योंकि उनका क्रोध उदात्त था। यदि आप इस बात से भयभीत हैं कि आपके द्वारा किसी का अहित न हो जाये तो यह भय भी करुणा की ही व्याप्ति में आयेगा। बलात्कारी के मन में भी रति का ही भाव होता है, प्रेमी के भी मन में। उत्साह साहस डाकू में भी होता है, देशप्रेमी के मन में भी। आत्मनिरपेक्षता और अन्य की चिन्ता इन मनोविकारों को मानवीय बनाती है। इसलिए मनोविकारों का निर्णायक करुणा का भाव होता है। निराला काव्य में अश्रुजल धौत विमल वाली देवी निराला के उर शतदल में विराजमान है। वो निराला के व्यक्तित्व से अभिन्न है। कवि की जननी है। करुणा और प्रेम एवं भक्ति में समानता दिखलाई पड़ती है लेकिन कुछ न कुछ अंतर जरूर है। करुणा में वह विह्वलता नहीं दिखलाई पड़ती है। विह्वलता होती भी है तो सिर्फ दर्शन या चरणों में गिर जाने या सम्पर्क की नहीं बल्कि करुणा के आलम्बन की रक्षा और सुख शांति की जो अपनी ही सुरक्षा सुख शांति से अभिन्न या उससे बढ़ कर महसूस होती है। करुणा शुद्ध आत्मनिरपेक्ष होती है। निराला के अतिरिक्त करुण विशेषण या करुणा का प्रयोग हिन्दी के अन्य कई रचनाकारों ने किया है, जो करुणा की अर्थवत्ता को समझने में सहायक हैं और शब्द का अर्थ स्वयं करते हैं। इन रचनाकारों के शब्द प्रयोग में करुणा करुण शब्द की अर्थछायाएं पूर्ववर्तियों से थोड़ा भिन्न हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के बाणभट्ट ने कालिदास से शिकायत की है तुमने ऐसा करुण मोहक स्मित देखा होता तो दुनिया को बता सकते कि वह कैसा था। एक जगह द्विवेदी जी ने करुणादीप्त सौन्दर्य की बात की है।

मुक्तिबोध ने लिखा *जन मन करुणा सी मां को हकाल दिया*
अंधेरी कुटिया में रहने वालों को देख कर वाचक के मन में
तन गये करुणा के कांटे
करुणा के दृश्यों से हाय मुंह मोड़ गये।

मुक्तिबोध के भावतंत्र में करुणा के ये आलम्बन उनके आत्म के रूप हैं जिनसे पृथक होकर वे अपूर्ण हैं, आत्मस्थ नहीं हो पाते, अनात्म बने रहे हैं। द्विवेदी जी के यहां करुण असीम की ओर खुला हुआ, अबूझ, गहरा, आत्मीय है।

परसाई व्यंग्यकार हैं। उनका व्यंग्य करुणागर्भी होता है। उनका एक निबंध है 'फिर उसी नर्मदा मैया की जय'। करुणा का ऐसा किरदार (जीवित वास्तविक जीवन का, कल्पित नहीं) समकालीन लेखन में अन्यत्र नहीं मिलता। करुणा भाव का जीवित व्यक्ति सम्बंधी यह विवरण एक केवट कन्या का है जिसने मध्यप्रदेश की भंयकर बाढ़ में अपने प्राणों की परवाह न करके अनेक लोगों की जान बचायी थी।

आत्मरक्षा आदमी पहले करता है। जब खुद सुरक्षित हो जाता है तब दूसरे की रक्षा करता है। दूसरा वह होता है जो थोड़ा खतरा उठा कर दूसरे को बचाता है मगर इतना खतरा नहीं लेता कि अपनी जान चली जाये। पर यह साहस बिल्कुल अलग है। समुद्र सरीखा हाल है, तेज लहरें हैं। चट्टानें छिपी हैं। ऐसे में कोई लड़की यह मान कर कि मैं तो निश्चित मरूंगी दूसरों को बचाने निकल पड़े। अपनी मौत के बदले में तय करके दूसरों की प्राणरक्षा करने निकल पड़ना यह कैसा साहस है।

मुझे लगता है इसमें वही भावना है जो मेरी मां में मुझे बचाते वक्त थी मातृत्व की भावना। छोटी केवट लड़की उस वक्त मां हो गयी होगी और सोचा होगा बच्चों को बचाना है। साथ ही मानवी करुणा... यह केवल शारीरिक साहस नहीं है, गहरा है, भीतरी है।

शहर में उसका सार्वजनिक सम्मान हुआ, सम्मानित केवट कन्या का चित्र पचासों मालाएं गले में डल रही हैं। जय बोली जा रही है। पर लड़की न प्रसन्न न उत्तेजित भावुक। ऐसे बैठी रही जैसे झोपड़े में, घर में बैठी है और उसने कोई खास काम नहीं किया है। 263/3

अश्रुजल की बात रहने भी दी जाये तो निराला के यहां सौन्दर्य वर्णन में भी आंखों की सजलता प्रायः रहती है। यह सजलता हार्दिकता का ही एक रूप है जो आंखों में छलकता है। हार्दिकता इसलिए कि इससे आंखों के माध्यम से व्यक्तित्व का अंतरतम उद्‌भासित हो उठता है। अब यह सौन्दर्य के दृश्य और चितेरे की क्षमता है जो आंखों के इस प्रकाश (जल प्रकाश) में रूपांतरित है। आंखों से फूटती हुई हार्दिकता सौन्दर्य का रूपांग है। वह तो आंखों के सौन्दर्य को विशिष्ट बनाता है। आंखों में हृदय झलकने की बात इसी सजलता या प्रकाश से प्रकट होती है। निराला इस हार्दिकता को अंतस्तल से उद्‌भूत बताते हैं। प्रकाश में रूपांतरित होती हुई आंखों की यह सजलता बहुत गहरे व्यक्तित्व के अंतरतम से आती है और उसे आलोकित करती है।

बादल जग के अंतस्थल से उमड़ कर नयन पलकों पर छा जाते हैं। बादल जलद है जल से युक्त। 122/1

अंतस्तल से उमड़ कर आंखों में दिखलाई पड़ने वाली सजलता का भरपूर चित्र 'सरोज स्मृति' में है मानो पातालगंगा ऊर्ध्वमुखी ऊपर की ओर प्रवाहित हो उठी है। नीला जल लीलापूर्वक टलमल टलमल है। लेकिन देह के दिव्य बांध से बंधा रहने के कारण ऊपर आंखों के माध्यम से साध साध कर दृगों से छलकता है। 'साध साध' का प्रयोग कविता में मौलिक प्रयोग है। सुनत सुखद बरनत कठिनाई। उचित मात्रा में उचित अवसर पर विवेकपूर्वक औचित्य का प्रतिमान शब्द है अवधी का साध। साध साध छलकता में दुहराव निरंतरता का बोधक है। जितना, जब और जैसा चाहिए वैसा आंखों से छलकती हुई पातालगंगा की सजलता आंखों से व्यक्त होने वाली व्यक्तित्व के सौन्दर्य की परम आंतरिकता प्रकट करती है। सजलता को सरोज का सहज स्वभाव बताती है। शोभा की आंतरिकता को व्यक्त करती है। आगे चल कर आंखों की इस सजलता को निराला ही आलोक में रूपांतरित करते हैं।

नत नयनों से आलोक उतर
कांपा अधरों पर चरचर कर

इस सहज निरीह एवं पवित्र शृंगार वर्णन के सामने जो मर्यादापूर्ण से कहीं अधिक है, सारा रीतिकालीन शृंगार वर्णन तुच्छ मालूम पड़ता है। कालिदास के यहां तपस्यारत पार्वती के अधरों से वर्षा की पहली बूंद टकरायी थी। शृंगार भाव से नयन मस्त हुए तो नयनों में साध साध कर छलकने वाला पातालगंगा का जल आलोक के रूप में अधरों पर उतर आया। मानो वेग में स्पंदन। थरथराहट निराला का आवर्ती अनुभाव है। यह मानुष देह से ज्यादा प्रकृति में है। प्रकृति को सजीव बना कर निराला चित्रित करते हैं। प्रकृति के बाह्यांत पर मनोवेगों के प्रभाव का चित्रण निराला ने अन्य कवियों से अधिक ही किया है।

एक फिल्म है आशीर्वाद इसमें संजीव कुमार और अशोक कुमार ने भूमिका निभायी है। नायिका है सुमिता सन्याल। शरद दत्त ने मुझे बताया है कि सुमिता पहाड़ी सान्याल की पुत्री है। सुमिता नायक संजीव कुमार की प्रतीक्षा करते हुए गाना गाती है सांवरिया घर आ। गाती हुई नायिका के

अधरों पर ऐसा प्रकाश देख कर मुझे निराला की यह पंक्ति साक्षात हुई थी *नत नयनों से आलोक उतर कांपा अधरों पर थरथर था।*

इसी वर्णन में निराला ने सरोज की मंद हंसी का वर्णन किया है

देखती मुझे तू हंसी मंद
होठों में बिजली फंसी स्पंद

हंसी को होठों में फंसी हुई बिजली कहा। गुरुवर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी होते तो डांट खाने का खतरा उठा कर भी पूछता क्या कालिदास ने मंद हंसी की ऐसी या इससे अच्छी उपमा दी है।

वयप्राप्त कन्या के अधरों और विवाह के अवसर पर होठों में बिजली फंसी वाली मुस्कान के वर्णन चित्रण में जो भाव और रूप का संयम है वह अन्यत्र कम मिलेगा। निराला ने सरोज को 'शुचिते मेरी' कहा है। यह शुचिते शब्दशः तो नहीं लेकिन भावतः कालिदास की याद दिलाता है। कालिदास ने लिखा है

यक्षश्चक्रे जनकतनया स्नान पुण्योदकेषु
स्निग्धछायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु

यक्ष ने रामगिरि में अपना निवास बनाया वहां पेड़ों की स्निग्ध छाया में वह सरोवर था जिसका जल जनकतनया के स्नान करने से पवित्र हो गया था। ध्यान दीजिये। कालिदास ने विवाहिता सीता का उल्लेख राम की पत्नी कह कर नहीं, जनकतनया कह कर किया है। पुष्पवाटिका में राम ने भी सीता को जनकतनया कहा था

तात! जनकतनया यह सोई/धनुषजग्य मोहि कारन होई

पिता के लिए कन्या से बढ़ कर पवित्रता का प्रतीक और क्या हो सकता है। यह सम्बंध मानवीय संस्कृति के विकास का स्मारक स्तम्भ है।

जनकतनया के साथ मुझे इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ने वाली मजदूरनी की याद आ रही है। क्या सरोज में और उसमें कोई समानता है। उस पत्थर तोड़ने वाली को निराला ने किस रूप में देखा होगा? सरोज की दृष्टि और उस पत्थर तोड़ने वाली की दृष्टि में कोई समानता नहीं है। लेकिन 'वह तोड़ती पत्थर' पढ़ते समय मुझे 'सरोज स्मृति' की ये पंक्तियां याद आती हैं

आंसुओं सजल दृष्टि की छलक
पूरी न हुई जो रही कलक
प्राणों की प्राणों में दब कर
कहती लघु लघु उसांस में भर
समझता हुआ मैं रहा देख
हटती भी पथ पर दृष्टि टेक

मुझे लगता है कि इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ने वाली के प्रति निराला के मन में वात्सल्य जैसा ही भाव रहा होगा। 'जो माार खा रोयी नहीं' दृष्टि में आंसू नहीं है। निराला की कविता में प्रायः सजल अश्रु कण आने वाले कण भी नहीं हैं। दृष्टि अपलक भी नहीं। कर्मरत मन की आंखें हैं। मुझे 'प्रिय' विशेषण नत नयन के साथ जोड़ना नहीं जंचता। निराला के यहां हो सकता है कहीं आ गया हो लेकिन नयन के साथ प्रिय विशेषण निराला का नहीं है। उसे कर्म के साथ लगाना मुझे इसलिए ठीक लगता है कि इससे उसकी आमदनी होगी। कष्टपूर्ण शारीरिक श्रम के बावजूद इसकी उसे जरूरत है।

लेकिन मार खाकर न रोने वाली दृष्टि का अश्रुपूर्ण या सजल न होना मनःस्थिति की अभिव्यक्ति के लिए उपर्युक्त कलात्मक संयम विशेषण अभाव की पराकाष्ठा है। और भी

देख कर कोई नहीं
देखा मुझे उस दृष्टि से जो माार खा रोयी नहीं।

'देख कर कोई नहीं' में अनेकानेक भावों का संश्लेष है। मजदूरनी है तो क्या हुआ, है तो लड़की, किसी को देखना ठीक नहीं, वह मजदूरनी है काम नहीं रुकना चाहिए। किसी को देखने की फुर्सत नहीं लेनी चाहिए। आदि।

आप बच्चे को या किसी निर्बल दुर्बल गूंगे बहरे को भी मारें और डांट दें कि रोना मत, तो वह रोयेगा तो नहीं लेकिन उसकी आंखें सब कुछ बता देंगी। वह रोना चाहे, यह भी और यह भी कि मुझे रोने से रोक दिया गया है। यह भी आंखें छिपा नहीं पातीं। यह कालजयी पंक्ति बिना कहे ही, न कह पाने की विवशता को भी कह देती है। जिसको कहे जाने की इतनी जरूरत है जिसको इतना कहना चाहिए वह कहने से भी रोक दी गयी है। यह शोषण की और शोषित की पाषाणी स्थिति है।

इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ने वाली मजदूरनी की मार खा न रोने वाली आंखों की निर्जलता कलात्मक संयम अर्थात कला क्षमता का प्रतिमान है। यह एक पदबंध इस कविता को कालजयी बनाता है।

राम की शक्तिपूजा के प्रबंधात्मक आख्यान में आंखों का महत्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। दिवंगत विद्वान पं. विद्यानिवास मिश्र ने एक लेख में इस पर भलीभांति विचार किया है। पुष्पवाटिका में राम और सीता के प्रथम मिलन के अवसर पर आंखों का वर्णन चित्रण निराला साहित्य में भी विशिष्ट है। राम और सीता की आंखों का वैसा मिलन संयोग रामकथा में अन्यत्र नहीं मिलता है।

प्रियमिलन संयोग में निराला ने आंखों के विविध चित्र खींचे हैं। प्रियमिलन लगभग समाधि है मुंदे पलक देखें कंवल उर में। 'प्रेयसी' कविता 'राम की शक्तिपूजा' के एक वर्ष पूर्व लिखी गयी। उसमें प्रिय से बिछुड़ते हुए आंखों का जो चित्र है वह मूलतः शक्तिपूजा में मिलन दृश्य के मेल में है। इसके पहले बादल कविता में निराला बादल को विदाई के अनिमेष नयन कह चुके थे। मिलन और विदाई दोनों के समय प्रिय मन की आंखों में उतर आता है इसलिए वहां मिलन विदाई नहीं बल्कि कबीरदास के अमिलन की अवस्था हो जाती है

देखते निमेषहीन नयनों से तुम मुझे
रखने को चिरकाल बांध कर दृष्टि से
अपना ही नारी रूप, अपनाने के लिए
मर्त्य में स्वर्ग सुख पाने के अर्थ, प्रिय
पीने को अमृत अंगों से झरता हुआ।
कैसी निरलस दृष्टि

निराला तत्सम शब्दों का हिन्दी कविता में ऐसा प्रयोग करते हैं कि वे मंत्र की तरह जाग्रत हो जाते हैं। उनमें अभूतपूर्व अर्थवत्ता आ जाती है। अभूतपूर्व विशेषण का प्रयोग मैं सोच समझ कर कर रहा हूं अपना ही नारी रूप अपनाने के लिए। अर्धनारीश्वर तो आधे आधे हैं। प्रेमिका प्रेमी पुरुष का ही नारी रूप है। वह उसे पाकर विकल से सकल हो रहा है। पूर्ण आत्म हो रहा है। इस धारणा को प्रेम के क्षेत्र से बाहर ले जाकर मुक्तिबोध ने प्रयुक्त किया है। दृष्टि के साथ निरलस विशेषण अभूतपूर्व है।

'राम की शक्तिपूजा' में पुष्पवाटिका में सीता की स्मृति राम को घोर निराशा के क्षण में आती है। घनांधकार में विद्युत के समान उनकी छवि चमकती जाती है। निराशा की पृष्ठभूमि में स्मृतिलोक में पुष्पवाटिका मिलन और गहरे उतर जाता है।

पुष्पवाटिका में सीता राम मिलन के चित्रण में प्रारम्भिक पंक्तियां निराला की कविता में पहले भी बार बार आयी हैं। घनघोर निराशा के क्षण के संदर्भ में उनकी भाव सांद्रता प्रगाढ़ हो गयी है। औदात्य का भाव गहरा हो गया है। 'नयनों का नयनों से गोपन में' गोपन विशिष्ट है। सौन्दर्य की अलौकिकता मन में उसकी आकस्मिकता जो भाव पैदा करती है वह गोपनीयता का है। आत्यधिक सौन्दर्य नारी का या नारी के लिए पुरुष का। देख कर हम प्रायः दूसरी ओर देखने लगते हैं। देखने से, स्तब्ध रह जाने से बचने का प्रयास करते हैं। मुझे इसका समाधान मुक्तिबोध की इन पंक्तियों से हुआ संयोग से मुक्तिबोध की यह कविता आंखों पर ही है

मुख है कि मात्र आंखें हैं आलोक भरी
.....
मानो अनजाने रत्नों की अनपहचानी सी चोटी में
धर लिए गये
निज में बसने निज में कसने

मात्र आंखों वाला मुख देखने पर लगा मानो रत्नों की कोई अनजानी चोरी करते हुए धर लिए गये हों। इतने परम सौन्दर्य के साक्षात्कार का अनुभव मानो हम जितने के अधिकारी थे उससे कहीं ज्यादा मिल गया है यह अपराध तो नहीं है लेकिन अनुचित प्राप्ति का भावबोध जरूर है। नहीं तो यह गोपन क्या है! यह आंखें चुराना क्या है? यह गोपन सम्भाषण से नहीं जुड़ता।

पलक पर पलक पहली बार इस तरह गिर उठ रहे थे। सब कुछ नये जीवन का परिचय दे रहा था। यह नवजीवन परिचय कम्पन, सिहरन, थरथराहट, निष्पलक नयन निराला की कविताओं में कई प्रकार से आया है। लेकिन पुष्पवाटिका में सीता राम के नयनों की चेष्टा अभूतपूर्व है। अलौकिक ज्योति प्रपात झरने लगा राम ने पहली बार अपनी छवि देखी जल में या दर्पण में देखी होती तो और बात थी राम ने अपनी छवि (की मनोहरता) जानकी के नयनों में देखी

ज्ञात छवि प्रथम स्वीय जानकी नयन कम्पन तुरीय, तुणद यानी चतुर्थ जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति से आगे समाधि की अवस्था। लंका की रणभूमि से मन पुष्पवाटिका पहुंचा तो एक समाधि स्थिति पहले ही थी यह समाधि में समाधि की स्थिति है।

व्यंजित होना चाहिए कि राम ने ही सीता के नयनों में पहली बार अपनी छवि नहीं देखी होगी। सीता ने भी राम के नयनों में पहली बार अपना सौन्दर्य देखा होगा। प्रिय के नयनों में खिंची हुई अपनी छवि देखना प्रेयसी की इन पंक्तियों की याद आनी चाहिए

अपना ही नारी रूप अपनाने के लिए
मर्त्य में स्वर्ग सुख पाने के लिए प्रिय

आगे मानो इसे ही स्पष्ट करने के लिए आता है

खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन

सीता के राममय नयन राम की आंखों में हैं और राम के सीतामय नयन सीता की आंखों में। प्रिय की आंखों से अपनी छवि निहारना। डा. रामविलास शर्मा ने 'खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन' की व्याख्या करते हुए और उसका संदर्भ देते हुए लिखा है ''उन्हें (निराला को) शेक्सपियर की एक सानेट बहुत प्रिय थी Mine eye hath playd the painter इत्यादि। इसमें भावगरिमा उतनी नहीं जितनी कल्पना की गरहबाजी है। काव्य माधुरी नवम्बर 30 लेख में उन्होंने इस सानेट को प्रशंसा के साथ उद्धृत किया था। कवि की आंखें चित्रकार हैं। उन्होंने प्रियतमा की तस्वीर खींच कर कवि के

हृदय में टांग दी है। अब देखो कि आंखों ने आंखों को कैसा बदल दिया। मेरी आंखों ने तुम्हारी तस्वीर खींच ली और तुम्हारी आंखें मेरे लिए हृदय की खिड़कियां हैं।'' पृ. 528, निराला की साहित्य साधना, भाग-2

''शेक्सपियर का मन एक ओर ट्रेजडी के उदात्त भावदृश्य देखता था। दूसरी ओर कल्पना की गिरह लगाना भी उसका प्रिय व्यापार था। निराला के मन का साया भी कुछ वैसा ही था। तुलसीदास की भाव गम्भीर पंक्ति से शेक्सपियर की कल्पना क्रीड़ा सानेट ज्यादा अच्छी लगी। अब जब तक उसे कहीं कविता में खपा न लें उन्हें चैन नहीं। यह कार्य उन्होंने 'राम की शक्तिपूजा' के लिए रख छोड़ा था... निराला ने शेक्सपियर के सानेट का सारतत्व खींच कर एक पंक्ति लिखी खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन।'' (उप.)

निराला पूर्ववर्ती कवियों की पंक्तियों के सारतत्व खींच कर अपनी कविता में खपा लेने में उस्ताद हैं। कालिदास, गीता, रवीन्द्रनाथ और सबसे ज्यादा तुलसीदास की पंक्तियों को उन्होंने अपनी कविता में खपा लिया है। इस विषय में उनके गुरु तुलसीदास हैं। खपा लेना उपर्युक्त है निराला की इस प्रवृत्ति के लिए। वे भाव सादृश्य तक नहीं रुकते। उठाये हुए भावों को खड़ी बोली हिन्दी की पदशय्या की रीति, नाद योजना और अपने विशिष्ट ध्वनि प्रवाह में बांध लेते हैं। उसे अपना कर अभिव्यक्त करते हैं। वह अनुवाद नहीं रचना करते हैं और रचना अनुकरण नहीं आत्माभिव्यक्ति होती है। इसका प्रमाण है कि खिंच गये दृगों में... सीता के राममय नयन की भाव योजना अन्यत्र भी उनकी कम से एक अन्य कालजयी रचना 'सरोज स्मृति' में भी सक्रिय है।

सीता और राम के नयनों में एक दूसरे की छवि अंकित होना उनकी एकात्मता, आत्मीयता का लक्षण है। यह एकात्मता एक और सम्बंध में भी घटित होती है।

पिछले पृष्ठों में हमने दया, सहानुभूति और करुणा पर विचार करते हुए निराला के चित्रण में अश्रुजल की चर्चा की थी। जो विपन्न है उन पर दया, उनसे सहानुभूति नहीं, करुणा उनसे आत्मीयता का सम्बंध बनाती है। वे अपने हैं यह मैं हूं, उनकी पीड़ा उनकी नहीं मेरी है। वह और मैं का यह एकात्म वेदांत से लेकर निराला और मुक्तिबोध तक दार्शनिकों और कवियों का विषय रहा है। किस पक्ष से एकात्म यह रेखांकनीय है। सीता राम में प्रिय युगल का एकात्म है। वेदांत में जीव ब्रह्म का, मुक्तिबोध के यहां रक्तलोकस्नात और वायकर का। 'सरोज स्मृति' के क्षीण का न छीना कभी अन्न, मैं लख न सका वे हम विपन्न में निराला (कवि) और विपन्न का।

अन्न प्रायः क्षीण का ही छीना जाता है। मानवीय सभ्यता के इतिहास की त्रासदी यह है कि अन्यायी प्रायः ताकतवर होता है और पीड़ित निर्बल अन्न की जिसे जरूरत है और जिसके पास अन्न का अभाव है उसी का अन्न छीना जाता है। अन्न छीन लिए जाने पर उसकी आंखें कैसी हो जाती होंगी देखा मुझे उस दृष्टि से जो मार खा रोयी नहीं की मजदूरनी से कहीं अधिक विषण्ण। निराला क्षीण के उन विपन्न दृगों को अश्रुजल धौत विमल की करुणा देते होंगे। और मातृ देवी के करुण अश्रुजल निराला (कवि) की आंखों में छलकते हैं और

अपने आंसुओं अतः बिम्बित
देखे हैं अपने ही दुख चितः

अपने आंसुओं से बिम्बित जिनके मुख और जिनकी वेदना देखी हैं, वे मेरे ही मुख और मेरी ही वेदना है। यहां कवि और क्षीण जनों का विपन्न दृग के माध्यम से एकात्म हो गया है। निराला की आंखों में क्षीण का बिम्बित दुख मुख में प्रभावी आंखें पढ़िए 'मैं लख न सका वे दृग विपन्न'।

खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन

यहां केवल निराला की आंखों का चित्र है। क्षीण की आंखों में तो ऐसी विपन्नता है कि उन्हें लखा ही नहीं जा सकता। एकात्म का यह भिन्न रूप है। मेरी समझ में सीता राम के एकात्म का स्वाधीनता आंदोलन की चेतना से उद्भूत ऐतिहासिक रूप। कवि के व्यक्ति स्तर पर औदात्य का चरम रूप।

दृगों में खिंच जाने का एक और प्रसंग। वह इतना आत्मीय जिसे आत्मीय विशेषण की कोई जरूरत नहीं

तू खिंची दृष्टि में मेरी छवि

सरोज की आंखों में खिंची निराला की ही छवि है। यहां सीता राम नहीं अपनी ही छवि कन्या के रूप में खिंची है। सीता राम की तरह निराला और क्षीण विपन्न निराला और सरोज। सबकी खिंची दृष्टि में निराला की अपनी ही छवि।

'राम की शक्तिपूजा' में राम की आंखों में कविता का कथाक्रम समाया हुआ है। कथानक राम के नयनों की भाव चेष्टाओं से गठित और क्रमित होता है। युद्धश्लथ राम विच्छुरित बह्नि राजीव नयन हैं, विश्व विजय करने वाले बाणों को भंग होते देख राम निष्पलक हैं। निराशा के घोर अंधकार में पृथ्वी तनया कुमारि की अच्युत छवि देखते हुए राम निष्पलक हैं। इसके बाद में कमनीय जानकी नयन के ज्ञान छवि प्रथम स्वीय का प्रसंग! विभीषण के छद्म उदात्त प्रोत्साहन पर 'कहते छल छल हो गये नयन'।

जाम्बवान की सलाह पर प्रकृतिस्थ एवं पुलकित होते हुए राम के इंदीवर निन्दित लोचन खुल गये। शक्तिपूजा के प्रारम्भ पर 'रघुनंदन के दृग महिमा ज्योति हिरण' (फूटी) अंतिम कमल न पाकर निराश राम के भर गये नयन द्वय और वह एक और मन रहा राम का। 'न थका' वाले मनस्वी राम का कथन

यह है उपाय कह उठे राम ज्यों मंद्रित घन
कहती थी माता मुझे सदा राजीव नयन

फिर *'ले अस्मवाम कर दक्षिण कर दक्षिण लोचन'।*

निराला स्त्री पुरुष के शारीरिक मिलन सुख का वर्णन तन्मय होकर करते हैं। ब्यौरों में पारम्परिक और मौलिक व्यवहार(ों) की, खजुराहो की चित्रावली प्रस्तुत करते हैं। डा. रामविलास शर्मा ने उन्हें वयस्क शृंगार का कवि कहा है। वे सौन्दर्य से अभिभूत नहीं होते, इधर उधर नहीं झांकते। सौन्दर्य को भोगना, उसका आस्वाद लेते हैं। और उस पर विचार करते हुए मानो उससे ऊपर उठ जाते हैं। रति सुख से प्रसन्न, संतुष्ट और फिर वासना से मुक्त (मुक्त त्याग के तागी) प्रिया (प्रिय) 'यामिनी जागी' में है। प्रिय के गले में स्नेह की जयमाल है। इस गृहस्वामिनी का दृष्टिपात

हेर उर पट फेर मुख के बाल
लख चतुर्दिक चली मंद मराल

वक्षस्थल का पट हेरा, मुख पर आ गये केश फेरे, चारों ओर देख कर मंद मराल गति से चली। यह प्रिय यामिनी का सवेरा है। वक्षस्थल के वस्त्रों को देखा फिर यह देखा कि उस वस्त्र को देखते तो किसी ने नहीं देखा केश ठीक किये। मानो रात को जो कुछ हुआ उसे कोई न ताड़ पाये। इस कोशिश के अनुभाव चित्रण में निराला ने बहुत कुछ बता दिया

हेर उर पट
फिर *'लख चतुर्दिक'*

नयनों के डोरे लाल में नाद व्यंजना और ध्वनि की तरंगें उठाने के व्यसनी निराला ध्वनि आवर्तों से ध्वनि लिपियों का (कहीं अधिक) काम लेते हैं। शब्द और ध्वनि योजना से ऐसा कसा

गीत और कौन है मैं नहीं जानता वह भी अपने ऊबड़खाबड़पन के लिए कुख्यात हिन्दी खड़ी बोली की कविता में

प्रिय कर कठिन उरोज परस, कस कसक मसक गयी चोली
एक वसन रह गयी मंद हंस अधर दशन, अनबोली
कली सी कांटे की तोली

क्या ये पंक्तियां गीत गोविन्द से तुलनीय नहीं हैं और ये पंक्तियां संस्कृत की नहीं खड़ी बोली की हैं। मैथिली या अवधी की नहीं और भाव

त्रिलोचन शास्त्री ने बताया था कली सी कांटे की तोली विपरीत रति का चित्र है।

नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली

पूरा गीत नयनों के डोरे गुलाल भरे, लाल डोरे की चित्रात्मक व्याख्या है। चित्र दर्शन है।

इस कविता का एक चित्र है। पंक्ति का अंत होता है

श्रम सुख की हद होली।

यह श्रम सुख क्या है? बाणभट्ट की आत्मकथा में अघोर भैरव बाणभट्ट से कहते हैं देवी के व्यायाम वपु का वर्णन कर सकता है? बाणभट्ट दो बार प्रयास करते हैं। अघोर भैरव देख देवी के व्यायाम मनोहर शरीर का वर्णन कर भला।

बाणभट्ट ने एक श्लोक सुनाया। अघोर ने डांटा पशु है अभागा! इसी को व्यायाम रम्य वपु कहते हैं? और सुना।

बाणभट्ट ने दूसरा सुनाया। अघोर ने हंस कर कहा तुझसे नहीं होगा उठ भाग यहां से।

पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाणभट्ट व्यायाम मनोहर शरीर का वर्णन नहीं कर सकते थे। निराला श्रमसुख की हद होने की चित्रावली प्रस्तुत कर सकते थे।

और यह वासना नहीं 'वासना की मुक्ति' मुक्ता त्याग की प्रक्रिया थी। जीवनचरित्री कविता का रूप था।

'वन बेला' में पृथ्वी नायिका है। सूर्य नायक। दोनों का महाभूतात्मक रतिसुख चेष्टा का वर्णन

पुलकित शतशत व्याकुल कर भर
चूमता रसा को बार बार चुम्बित दिनकर
क्षोभ से लोभ से ममता से
उत्कंठा से, प्रणय के नयन की समता से

रसा को बार बार चूमने वाला दिनकर (भी) चुम्बित हो रहा है। सूर्य और पृथ्वी का यह रति व्यायाम समान भाव से है जिसका पता चलता है 'प्रणय के नयन की समता' से।

'तुलसीदास' में इसका भाव अवकाश नहीं था निराला जैसे संस्कारी व्यक्ति के मन में। लेकिन कामबाण पीड़ित तुलसी और रत्नावली के प्रेम (रत्नावली के वशीभूत तुलसी) के चित्रण का अवकाश था। भारत दुर्दशा देख कर तुलसीदास ने भारत का अपार भ्रम हरने के लिए, विषम वज्र द्वार तोड़ने के लिए मन बना लिया था कि नभतल की सुघर तारिका के समान रत्नावली का उदय हुआ। पत्नी रत्नावली तुलसीदास के मार्ग में पड़ने वाली सरिता साबित हुई। कैसी थी रत्नावली की आंखें? प्रियतम पति तुलसीदास को, ज्योति की माला पहनाते हुए तुले तिर्यक (तिरछी स्मरणीय अष्टम एडवर्ड कविता की वीक्षण अराल) आंखों ने सम्यक शासनपूर्वक पूछा

जाते हो कहां! तुले तिर्यक

दृग, पहना कर ज्योतिर्मय सुक
प्रियतम को ज्यों बोले सम्य के शासन से

तिरछी निगाहों ने पहले अपने प्रकाश की माला पहनायी, फिर सम्यक के पूरे शासन से पूछा कहां जा रहे हो? यानी बिना मुझसे आज्ञा लिए। भाव यह कि तुम्हें कहीं नहीं जाना है। तुम कहीं नहीं जा सकते। यह कांता सम्मित उपदेश नहीं, कांता सम्मित आदेश है। प्रमाण यह हुआ

ऊंचे नभ को उड़ने वाला गुंजन करता हुआ सुंदर जीवन के नभ का वह भ्रमर आंखों की उस खुलती हुई छवि में बंध कर रह गया, छवि बिखेरती हुई उन आंखों में क्षण भर के लिए बैठते ही उन आंखों के मृदुतर पलकों के दल मुंद गये और वह उसी हृदय में अशक्त होकर पड़ा रहा।

उस ऊंचे नभ का, गुंजन पर
मंजुल जीवन का मन मधुकर
खुलती उस दृग छवि में, बंध कर सौरभ को
बैठा ही था सुख से क्षण भर
मुंद गये पलों के दल मृदुतर
रह गया उसी उर के भीतर अक्षम हो

निराला ने आंखों की सुंदरता को विविधि रूपों में और विविध भावों में देखा। उनके द्वारा चित्रित ऐसे अनेकानेक नयन रूप हैं जो यहां नहीं आये हैं। एक लेख में वे नहीं आ सकते। कम से कम एक पूरी किताब चाहिए, निराला द्वारा रूपायित नयनभावों को समझने और उन पर बात करने के लिए। लेकिन एक बात का ध्यान रखना बेहद जरूरी है। निराला ने केवल आकर्षक और अमृत आस्वादी नयन रूप नहीं देखे हैं। केवल सुखी, सुंदर नयन रूप देखे होते तो वे आंखों की वास्तविक सुंदरता न देख पाते न इस रूप में चित्रित कर पाते। निराला बादल को युगांतरकारी विप्लवी रूप में देख पाये इसके लिए उनकी इस कविता को ध्यान में रखना चाहिए

जला है जीवन यह
आतप में दीर्घकाल
सूखी भूमि, सूखे तरु
सूखे सिक्त आल बाल;
बंद हुआ गुंज धूल
धूसर हो गये कुंज
किन्तु पड़ी व्योम उर
बंधु नील मेघ माल

बादल वर्ष का हर्ष नयन अंजन है, घनश्याम है, क्योंकि वह दीर्घकाल तप्त जल का रूप है। निराला का जीवन भी ऐसा है। जो एकात्म खिंच गये दृगों के द्वारा राम सीता, निराला और विपन्न, एवं निराला और सरोज में है वही निराला और बादल में है।

निराला में निर्निमेष आंखों का भाव रूप बहुत है, शायद सर्वाधिक। इस निर्निमेष भाव रूप की व्याप्ति कैसी हो

राम की शक्तिपूजा के राम, रवि कुल गौरव, अतुल बलशेष शयन राम अनिमेष हैं

अनिमेष राम विश्व जिददिव्यभाव

अनिमेष राम की तरह निर्निमेष आंख मेषमाता, भेड़ की है जो बेहद असहाय है। उसकी गोद से उसकी संतान वधिक छीन लेता है

एक मेषमाता ही रहती है निर्निमेष
दुर्बल वह छिनती संतान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त तप्त आंसू बहाती है।

निराला ने घोर निराशा की पराकाष्ठा दुख उघड़ी हुई पलकों वाली आंखें राम की देखी थीं और असहाय मेषमाता की भी, वह दोनों को एक विशेषण देते थे।

निराला की एक कविता है रानी और कानी। कानी की मां कानी को रानी कहती है। कानी रानी का रूप

चेचक के दाग, काली नकचिप्टी
गंजा सर, एक आंख कानी

यह लड़की अब सयानी हो गयी है। सयानी लड़की यानी विवाह योग्य। लड़की की शादी की चिन्ता और ऐसी लड़की की शादी की चिन्ता। रानी कितना काम करती है

बीनती है, कांड़ती है, कूटती है, पीसती है
डलियों के सीले अपने रूखे हाथों मीसती है
घर बुहारती है करकट फेंकती है
और घड़ों भरती है पानी

जांगरतोड़ लड़की से शादी कौन नहीं करता अगर वह ऐसी कुरूप, कानी न होती। मां तो कुछ नहीं कहती लेकिन पड़ोसन कहती हैं

औरत की जात रानी,
ब्याह भला कैसे हो
कानी जो है यह
सुन कर कानी का दिल हिल गया
दायीं आंख से आंसू भी बह चले मां के दुख से
लेकिन वह बायीं आंख कानी
ज्यों की त्यों रह गयी करती निगरानी

'रह गयी करती निगरानी' लिख कर निराला ने दारुणता को छुपाने की कोशिश की है जिससे वह और मारक हो गयी है।

'राजीव नयन', 'निरंजन बने, नयन अंजन', 'अनिमेष नयन' को 'रह गयी करती निगरानी' के साथ देखें तब निराला चित्रित नयनों के भाव रूप खुलते हैं।

मीरां का जीवन संघर्ष

अरविन्द सिंह तेजावत

इस लेख से अरविन्द सिंह तेजावत तद्भव में शामिल हो रहे हैं। 1978 में जन्मे तेजावत की शोध में गहन निष्ठा है। भारतीय कविता की अमर शख्सियत मीरा पर उनके विचारों को ध्यान से सुना पढ़ा जाता है।

जन्मस्थान, जन्मतिथि एवं नाम की व्युत्पत्ति

मीरां का जन्म मारवाड़ के मेड़ता प्रदेश में हुआ था परंतु मेड़ता प्रदेश में जन्म का ठीक ठीक स्थान कौन सा है इसे लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। नाभादासजी का प्रसिद्ध ग्रंथ भक्तमाल संवत् 1642 के पीछे बना और संवत् 1769 में प्रियादासजी ने उसकी टीका लिखी।[1] प्रियादास की टीका में 'मेरता' को मीरां की जन्मभूमि बताया गया है।[2] राघौदास सुंदरदास के शिष्य थे। राघौदास की भक्तमाल पर नाभादास की भक्तमाल का प्रभाव देखा जा सकता है। नाभादास के समान राघौदास ने भक्तमाल में मीरां का उल्लेख किया है परंतु नाभादास के समान राघौदास भी मीरां के जन्मस्थान व जन्मतिथि को लेकर मौन हैं। राघौदास की भक्तमाल पर चतुरदास अथवा छत्रदास ने टीका लिखी। इस टीका में उन्होंने मीरां पर दस सवैये लिखे हैं। प्रथम सवैये में उन्होंने मेड़ता नगर को मीरां की जन्मभूमि बताया है।[3] दादूपंथ से सम्बंध रखने वाले चारण ब्रह्मदास ने अपने भगतमाल में मीरां का सम्बंध मेड़त्यां कुल से स्थापित किया है।[4]

सुखसारण कृत 'मीरांबाई री परची' में मीरां के जन्मस्थान से सम्बंधित एक दोहा तथा एक चौपाई मिलती है। दोहा में मेड़ता को मीरां की जन्मभूमि बताया गया है जबकि चौपाई में राव रतन सिंह को मीरां का पिता एवं राव दूदा को मीरां का दादा बताने के साथ साथ अनौपा का उल्लेख मीरां

की बहन के रूप में हुआ है।[5]

यह भी उल्लेख किया गया है कि कुड़की नगर 'राव रतन' द्वारा बसाया गया है। राव रतन सिंह को कुड़की नगर जागीर में मिला था परंतु यह मीरां के जन्म के बाद की घटना है।

परवर्ती ग्रंथकारों में श्यामलदास ने मीरां का सम्बंध मेड़ता से निर्धारित करते हुए लिखा है कि *''मेड़ता जोधपुर के राज्य में एक कसबा है जिसके नाम से एक परगना 'मेड़ता की पट्टी' कहाता है।''*[6] उर्दू मिश्रित हिन्दी में लिखित श्यामलदास का ग्रंथ सन् 1886 में मुद्रित हुआ था। ग्रंथकार को मीरां की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान का ठीक ठीक अनुमान नहीं था।[7]

मुंशी कृत 'मीरांबाई का जीवन चरित्र' बंगीय हिन्दी परिषद ने प्रकाशित किया था। 'मीरांबाई का जन्म, ब्याह और वैधव्य' शीर्षक के अंतर्गत मुंशीजी ने मेड़ता के समीप कुड़की गांव को मीरां की जन्मभूमि बताया एवं लिखा कि मीरां की परवरिश मेड़ता में राव दूदा के संरक्षण में हुई। मुंशी ने मीरां को अपने पिता की इकलौती संतान बताया।[8] मुंशी देवीप्रसाद ने राठौर सिसोदिया वैवाहिक सम्बंधों का जो वंशवृक्ष पुस्तक में दिया है उसमें मीरां का जन्म 1504 ई. बताया गया है।[9]

हरविलास सारडा 'महाराणा सांगा' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि मीरां का जन्म 1498 में हुआ था।[10] सारडा द्वारा समर्थित इस तिथि का उल्लेख मुंशी देवीप्रसाद एवं गौरीशंकर हीराचंद ओझा दोनों ही करते हैं। मुंशी मीरां के जन्म के प्रसंग में एक पाद टिप्पणी में लिखते हैं *''हरविलास सारडा के अनुसार इनका जन्म 1498 ई. के आसपास माना जाता है।''* इसी प्रकार गौरीशंकर हीरचंद ओझा ने 'उदयपुर राज्य का इतिहास' में लिखा है *''मीरांबाई मेड़ते के राठौड़ राव दूदा के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की, जिसको दूदा ने निर्वाह के लिए 12 गांव दे रक्खे थे, इकलौती पुत्री थी। उसका जन्म कुड़की गांव में वि.सं. 1555 (ई. स. 1498) के आसपास होना माना जाता है। बाल्यावस्था में ही उसकी माता का देहांत हो गया, जिससे राव दूदा ने उसे अपने पास बुलवा लिया और वहीं उसका पालन पोषण हुआ।''*[11] ओझा उपर्युक्त कथन के समर्थन में सारडा की पुस्तक 'महाराणा सांगा' से संदर्भ ग्रहण करते हैं।

हरिनारायण पुरोहित मीरां के जन्मस्थान के सम्बंध में मुंशी देवी प्रसाद का संदर्भ देते हुए लिखते हैं ''मुंशी देवीप्रसाद (स्वर्गवासी) ने 'महिला मृदुवाणी' ग्रंथ में मीरांजी का जन्म गांव 'चोकड़ी' लिखा है। परंतु इनकी जन्मभूमि का स्थान 'कुड़की' ही सर्वसम्मति से माना जाता है और सुप्रसिद्ध है।''[12] कुड़की के संदर्भ में वे बताते हैं कि *''कुड़की गांव जोधपुर की पूर्व सीमा पर मेड़ते से कोई 18 मील पर है। गांव कुछ तो पहाड़ पर है और कुछ तलैटी पर है। छोटा सा किला पहाड़ पर है। उसी में जागीरदार रहते थे। परंतु अब कुड़की गांव में रतन सिंह जी का वंशज कोई भी नहीं रहता है। वहां पर चांदावत खांप के राजपूत रहते हैं।''*[13] हरिनारायण पुरोहित के अनुसार *''मीरांजी का जन्म हुआ, सं.वि. 1555 में। भक्तजन नदी से प्रगट होना कहते हैं। अन्यमत में जन्म वि.सं. 1561 सावण सुदि 1 को हुआ।''*[14]

मीरां के जन्मस्थान से सम्बंधित पूरे विवाद में तब एक नया रुचिकर तथ्य जुड़ गया जब सर्वेक्षण के दौरान मेवाड़ के झाला राजपूतों [15] ने यह दावा किया कि मीरां का जन्म मेवाड़ के झाला सामंत के यहां पर हुआ था। उनका तर्क था कि राजपूती प्रथाओं के अनुसार विवाह के पश्चात् बेटी की प्रथम संतान का प्रसूति कार्य पीहर में किया जाता है। यदि मीरां रत्नसिंह की एकमात्र एवं प्रथम संतान थी तो यह सम्भव है कि मीरां का जन्म उसके ननिहाल में हुआ हो। सुखसारण ने 'मीरांबाई री परची' में 'बैन अनौपां और न भाई' लिख कर मीरां की अनोपा नामक बहिन का उल्लेख करते हुए बताया है कि मीरां का कोई भाई नहीं था परंतु पुरोहित हरिनारायण के अनुसार *''मीरांजी के पूर्व रत्नसिंहजी उनके पिता के एक पुत्र हुआ था, उसका नाम गोपालजी था। वह कुछ समय पीछे*

मर गया।''[16] सम्भव है मीरां पिता की इकलौती संतान न हो तब भी मीरां का जन्म उसके ननिहाल में होना सम्भव है क्योंकि पीहर में बेटी की प्रथम संतान का ही प्रसूति कार्य अनिवार्य शर्त नहीं थी वरन् अन्य संतानों की प्रसूति हेतु भी पीहर को सर्वोपयुक्त माना जाता रहा है।

मीरां का ठीक ठीक जन्म कहां हुआ था यह प्रश्न पहले से ही इतना उलझा हुआ है कि चाहते हुए भी एक और विवाद खड़ा करने का मन नहीं करता। मीरां का जन्म मेड़ता में हुआ हो चाहे नहीं हुआ हो मीरां के जन्म के ठीक ठीक स्थान का प्रश्न इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि मीरां के अवदान की चर्चा करना और यह जांच करना कि आखिर वह क्या वजह थी कि पूरे भारतवर्ष में मीरां को बेशुमार प्यार एवं प्रसिद्धि मिली।

मीरां के जन्मस्थान एवं जन्मतिथि का प्रश्न जितना उलझा हुआ है उतना ही उलझन भरा प्रश्न है मीरां नाम की व्युत्पत्ति। विवाद यह भी है कि मीरां शब्द में रां सानुनासिक (रां) है अथवा निरनुनासिक (रा)।

डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने 'सरस्वती पत्रिका' में एक बहस प्रारम्भ की थी, जिसे उनके गुरुभाई नरोत्तम स्वामी, शिष्य चंद्रबली पांडेय, राजस्थान के हरिनारायण पुरोहित, गुजरात के के.का. शास्त्री और बंगीय परिषद् के ललिता प्रसाद सुकुल आदि विद्वानों ने बागे बढ़ाया।[17] डॉ. बड़थ्वाल ने इस विषय पर चर्चा करते हुए लिखा है कि ''फारसी में मीरां, मीर का बहुवचन है, पर साधुओं के लिए यह प्रयोग उचित ही है।''[18] बड़थ्वाल के मत का सार है कि मीरां शब्द में रां सानुनासिक (मीरां) है, मीरां शब्द फारसी भाषा के शब्द से व्युत्पन्न है एवं यह किसी मुसलमान फकीर द्वारा दिया गया उपनाम था। मीरां शब्द का अर्थ है परमात्मा एवं बाई शब्द का अर्थ है पत्नी। अतः मीरांबाई का अर्थ हुआ 'परमात्मा की पत्नी'।

हरिनारायण पुरोहित ने 'मीरां वृहत्पदावली' (प्रथम भाग) की भूमिका में लिखा है कि *''मीरां नाम सम्भवतः 'मीरां साहिब' (अजमेरी) के कारण ही रखा गया था। निश्चित रूप से यही व्युत्पत्ति होती है। मीरां नाम पर हमने एक विस्तृत लेख भी लिखा है। पुरोहित जी ने जिस लेख की चर्चा की है वह 'संतवाणी' नामक पत्रिका में छपा था जिसके अनुसार मीरां मूलतः अरबी भाषा का शब्द है, अमीर का संकुचित रूप मीर है एवं मीर का बहुवचन मीरां। इस प्रकार मीरां मारवाड़ी, अथवा मेवाड़ी का शब्द नहीं है, अतः संस्कृत, पाली या प्राकृत से उनकी व्युत्पत्ति ढूंढ़ना निरर्थक प्रयास है।''* [19] पुरोहित जी ने मीरां शब्द में रां को सानुनासिक माना।

डॉ. बड़थ्वाल ने मीरां शब्द को फारसी भाषा से तो पुरोहित जी ने इसे अरबी से व्युत्पन्न बताया तो कुछ विद्वान मीरां शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत से मानते हैं। ललिता प्रसाद सुकुल ने मीरां को मीरता से सम्बद्ध करते हुए निष्कर्ष दिया कि राव दूदा द्वारा बसाया गया मेड़ता नगर मूलतः मीरता कहलाता था। मीरता नगर के मीर शब्द के आधार पर राव दूदा ने अपनी पौत्री का नाम मीरा रखा। सुकुलजी मीरा शब्द को मीर शब्द से व्युत्पन्न मानते थे परंतु उनका यह मीर अरबी फारसी का मीर शब्द न होकर संस्कृत का मीर शब्द था जो जलराशि का अर्थ देता है।[20] सुकुलजी ने मीरां शब्द में रां को निरनुनासिक माना।

स्वामी आनंद स्वरूप मीरां सुधा सिन्धु में लिखते हैं *''इस प्रकार समय बीतने पर (वि. सं. 1559 के लगभग) एक दिन मंगल मुहूर्त में बालिका ने जन्म लिया। क्षण भर में ये शुभ समाचार सर्वत्र फैल गये। राजपुत्र के समान इस राजकुमारी का जन्मोत्सव मनाया जाने लगा। चारों ओर वाद्यध्वनि होने लगी। नगर भर में मंगलाचार होने लगे। जन्म के समय बालिका के अपूर्व तेजोमय मुखमंडल को देख कर उसका नाम 'मिहिरां बाई' (मिहिर सूर्य) रक्खा गया। राज ज्योतिषी द्वारा पुत्री की जन्मकुंडली में पड़े अपूर्व ग्रहों और लक्षणों को सुन कर माता पिता के आनंद का पार नहीं रहा।* [21]

स्वामी जी का अनुसरण करते हुए पंडित केशवराम काशीराम शास्त्री ने भी मीरां शब्द को संस्कृत से व्युत्पन्न माना। शास्त्री जी ने अतिरिक्त सम्भावना के रूप में मीरां शब्द की व्युत्पत्ति का आधार मारवाड़ी अथवा गुजराती भाषा को भी बताया।[22] शास्त्री जी की नजर में मीरां शब्द में रां सानुनासिक है।

मीरां शब्द की व्युत्पत्ति के संदर्भ में एक अन्य उल्लेखनीय मत डॉ. गोपीनाथ शर्मा का है। डॉ. शर्मा के अनुसार *''विद्वानों ने भाषा के आधार पर मीरां शब्द की व्युत्पत्ति 'मीर', 'पीर', 'मिहिर', 'बीरा' आदि शब्दों से की है, यह संकेत करते हुए कि इन संतों की मनौती से उनका नामकरण किया गया हो। ये बहुत भ्रामक तर्क है, क्योंकि राजपूत समाज में मीरां शब्द प्रचलित नाम था। मालदेव की लड़की मीरांबाई का विवाह वागड़ के एक राजकुमार से हुआ था। उस युग में नामकरण खेती से सम्बंधित शब्दों से पश्चिमी राजस्थान में राजपरिवार में किये जाते थे। राव आस्थान के पुत्र का नाम हेड़क था। हेड़क खेत जोतने वाले बैलों के लिए काम आता था। जयमल के लड़के का नाम बीजड़ था, जो बीजों का द्योतक है। राव चुंडा की स्त्री का नाम इंडी था जो कांटेदार छोटे खेत में जाने के मार्ग के लिए प्रयुक्त होता है। सातल की पत्नी का नाम फूला था, जो मक्की को भून कर बनाये जाते हैं। राव गांगा की पत्नी का नाम जेवड़ा था। इस शब्द का प्रयोग गाय बैल की रस्सी के लिए किया जाता है। इसी परम्परा में मीरां का नाम मेर से लिया गया था। मेर का अर्थ फसल से है। पश्चिमी राजस्थान में अच्छी फसल होना खुशहाल जमाने का सूचक होने से मेर को लेकर नामकरण किया जाना स्वाभाविक था। 'मीर' और 'पीर' शब्द से मीरां शब्द का कोई सम्बंध नहीं था। राठौड़ों की संतान के उस युग के नाम कृषि से सम्बंधित भी होते थे, क्योंकि कृषि से जुड़े नाम शुभ सूचक होते थे। 'मीरां' नाम भी ऐसे कृषि जीवन से चुन कर लिया गया हो, जिसमें पुत्री स्नेह व मांगलिक भावना की कामनाएं निहित थीं।''*[23] डॉ. शर्मा मीरां शब्द में रां को सानुनासिक मानते थे परंतु मीरां के शोधार्थी डॉ. सी.एल. प्रभात ने मीरां शब्द में रां को निरनुनासिक माना। डॉ. प्रभात ने लिखा कि *''भारत के विभिन्न क्षेत्रों में लिपिबद्ध प्राचीन और कतिपय मध्यकालीन प्रतियों में सुरक्षित 'मीरा' शब्द के विभिन्न रूपों का, वर्ण विन्यास की दृष्टि से तुलनात्मक विवेचन किया और विभिन्न प्रदेशों के लिपिकर्ताओं और उनके समकालीन आलेखन की लिपिगत प्रवृत्तियों को ध्यान में रख कर इस शब्द के मूल और सही उच्चारण को खोजने की कोशिश की। इन प्रतियों में 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' की वह प्रति भी सम्मिलित है, जो 'भाई बानो' द्वारा तैयार की गयी थी। ...'विद्या सभा' (अहमदाबाद) की प्रतियों और महाराष्ट्र के संतों के कुछ पुराने गुटके भी इस प्रश्न पर प्रकाश डालते हैं। उन पर भी विचार किया गया है। इस संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण और विचारणीय तथ्य यह है कि इन समस्त प्राचीन प्रतियों में 'मेड़तणी मीरा' के पदों में उनका नाम 'मीरां' नहीं, 'मीरा है। 'रा' पर बिन्दी वहां नहीं है। जिन प्रतियों में 'मीरां' शब्द है भी, यानी 'रा' पर बिन्दी है, उनमें 'राम' को 'रांम' और नाम' को नांम' लिखा मिलता है।''*[24] डॉ. प्रभात को मीरां शब्द के अरबी फारसी मूल की अवधारणा पर आपत्ति नहीं थी।[25] परंतु वे मीरां शब्द में निरनुनासिक 'रा' को उपयुक्त मानते थे।

मीरां का सम्बंध वैष्णव परिवार से था। मीरां के दादा राव दूदा ने मेड़ता नगर बसाने के साथ ही वहां विष्णु के एक लोकरूप चारभुजानाथ के मंदिर की नींव रखी थी। अतः अनेक विद्वान इस मत से सहमत नहीं हो पाते कि मीरां शब्द का मूल स्रोत अरबी फारसी है! प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि अरबी फारसी से प्रेरित मीरां नाम का होना एकमात्र उदाहरण नहीं है। मीरां की ददिया सास महाराणा रायमल की पत्नी का नाम मेहताब कंवर था।[26] तो महाराणा सांगा की एक पुत्री रंबा कंवर थी।[27] मीरां के देवर महाराणा उदयसिंह के एक पुत्र का नाम कुंवर खानसिंह था जो पंवार राजकुमारी लालकंवर का पुत्र था।[28] अतः मीरां शब्द की व्युत्पत्ति के स्रोत अरबी फारसी में ढूंढ़ना उचित ही है।

बचपन एवं कृष्णभक्ति का सच

नाभादास की भक्तमाल पर प्रियादास द्वारा लिखी गयी टीका में कहा गया है कि मीरा को पिता के घर में ही गिरिधारीलाल से प्रेम हो गया था। राघौदास की भक्तमाल पर छत्रदास ने टीका लिखते हुए यही बात दोहरायी और कहा कि मीरां को हरि से प्रीति पीहर में ही हो गयी थी। सुखसारण कृत 'मीरांबाई री परची' में मीरां को पूर्वजन्म में राधा के गांव बरसाना की ब्राह्मण कन्या बताया गया है।[29] ब्रजमंडल में प्रचलित एक किंवदंती के अनुसार मीरां बरसाने की किसी गोपी का अवतार थी।[30]

'मीराबाई री परची' में सुखसारण ने अपने समय में प्रचलित किंवदंतियों के आधार पर मीरां की कृष्णभक्ति को पूर्वजन्म का संस्कार बताया।[31] इसी प्रकार मेवाड़ एवं मारवाड़ अंचल में प्रचलित किंवदंतियों के अनुसार मीरां में कृष्णभक्ति का बीजाकुंरण बचपन में ही हो गया था।[32]

ब्राह्मण भक्त कवियों एवं कथावाचकों द्वारा मीरां में कृष्णभक्ति के बीजांकुरण को दो रूपों में प्रचारित किया गया। प्रथम यह कि मीरां की कृष्णभक्ति को पूर्वजन्म का संस्कार बताया गया एवं दूसरे यह कहा गया कि मीरां में कृष्ण के प्रति प्रेम और भक्ति का बीजाकुंरण बाल्यावस्था से ही हो गया था। ब्राह्मण भक्त कवियों एवं कथाकारों द्वारा प्रचारित प्रसारित दोनों ही बातें झूठी हैं। मीरां का कृष्णभक्त बनने का कारण न तो पूर्वजन्म का संस्कार था एवं न ही बचपन का प्रेम। मीरां के लिए कृष्णभक्ति एक परवर्ती आवश्यकता थी। मीरां के पति भोजराज की मृत्यु पर मीरां को सती होने के लिए प्रेरित किया गया परंतु मीरां ने सती होने से साफ इनकार कर दिया।

मीरां ने कृष्ण को अपना पति घोषित करते हुए कहा कि वह किसी ऐसे कुंवर को अपना पति नहीं मान सकती जो जन्म लेता है और मर जाता है। मीरां ने सांवरे स्वरूप कृष्ण को अपना पति स्वीकार किया जिसकी पत्नी बनने पर मीरां का चुड़ला (सुहाग) हमेशा हमेशा के लिए अमर हो गया क्योंकि कृष्ण अजर अमर है।[33] मीरां यदि कृष्ण को अपना वर (पति) घोषित नहीं करती तो उसे सती होने के लिए बाध्य होना पड़ता।

राव दूदा, राव बीरमदेव, राव जयमल समेत मेडितिया कुल के लगभग सभी सदस्य विष्णु (चारभुजानाथ) के भक्त थे। ऐसे में मीरा को बचपन से ही कृष्णभक्त मानना अनुचित है। मीरां को पारिवारिक परम्परानुसार चारभुजानाथ का भक्त होना चाहिए था न कि कृष्ण का परंतु मीरां चार भुजाओं वाले विष्णु को अपना आराध्य न मान कर मोर मुकुट वाले कृष्ण को अपना आराध्य मानती थी।[34]

मीरां के लिए कृष्ण की स्वघोषित पत्नी बनना विष्णु की पत्नी बनने की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक था। पुराणों के अनुसार विष्णु के एकमात्र पत्नी लक्ष्मी थी। अतः मीरां के लिए विष्णु की दूसरी पत्नी बनना सम्भव न था परंतु कृष्ण का व्यक्तित्व एवं चरित्र मीरां के लिए सम्भावना से युक्त था। वह कृष्ण को आसानी से अपना पति घोषित कर सकती थी।

जहां तक किंवदंतियों का प्रश्न है, जो मीरां को बचपन से ही कृष्ण का भक्त घोषित करती हैं उनके सम्बंध में यह जान लेना ठीक रहेगा कि किंवदंतियों का अपना विशिष्ट समाजशास्त्र होता है। किंवदंतियों को ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में उद्धृत करने से पूर्व उनके उत्पत्ति स्रोत एवं उनके उद्देश्य को भली प्रकार जांच लेना आवश्यक है। बाल्यावस्था में मीरां में कृष्णभक्ति के प्रेमांकुरण की कथाएं ज्यादातर ब्राह्मण भक्त कवियों द्वारा लिखित भक्तमालों तथा उन भक्तमालों पर लिखी गयी टीकाओं में मिलती हैं। बचपन में मीरां में कृष्णभक्ति के प्रेमाकुंरण की किंवदंतियां भी प्रायः उन क्षेत्रों में अधिक लोकप्रिय हैं जहां ब्राह्मण धर्म का व्यापक प्रसार है। मेवाड़ के आदिवासी अंचलों में प्रायः ऐसी किंवदंतियां नहीं मिलती हैं। ऐसा जान पड़ता है कि मीरां से सम्बंधित प्रचलित तमाम किंवदंतियों का प्रचार

प्रसार बाद में सोद्देश्य किया गया है। मीरा को ब्राह्मणवादी संस्कारों से युक्त समाज में आत्मसातीकृत करने के लिए ऐसा करना आवश्यक था। इन किंवदंतियों का सच इतना ही है कि लोक ने मीरा को कृष्ण का अनन्य भक्त माना। परंतु मीरां को बाल्यावस्था से ही कृष्णभक्त मानना सर्वथा अनुचित है।

विवाह एवं पति कुंवर भोजराज के साथ सम्बंध

मीरां एवं कुंवर भोजराज का विवाह मेवाड़ के सिसोदियों एवं मारवाड़ के राठौड़ों द्वारा लिया गया राजनीतिक निर्णय था। साथ ही यह धारणा भ्रांत है कि मीरां स्वयं को कृष्णासक्त मानती थी। अतः कुंवर भोजराज से विवाह करना नहीं चाहती थी। नाभादास की भक्तमाल पर प्रियादास द्वारा प्रणीत 'भक्तिरसबोधिनी टीका' में 'राना के सगाई भई, करी ब्याह सामा नई' लिखा गया है एवं बताया गया है कि भांवरों (शादी के फेरों) के समय मीरां का मन 'सावरे सरूप' (कृष्ण) में ही रमा रहा अर्थात मीरां का मेवाड़ कुंवर से विवाह, उसकी इच्छा के विरुद्ध किया गया।[35]

राघौदास की भक्तमाल पर छत्रदास द्वारा प्रणीत टीका में भी ऐसी ही अभिव्यक्ति है। लिखा गया है कि *''रांनहि जाइ सगाइ करावत ब्याहन आवत भावत नांहीं।।फेर फिरावत बा न सुहावत, यौं मन में पति साथि न जांहीं।। देन लगे पितमान आभूषन, नैंन भरे जल मोहि न चाहीं।* सुखसारण कृत 'मीरां बाई री परची' में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है।''[36]

सुखसारण के अनुसार मीरां स्वयं को कृष्णार्पित मानती थी। मीरा कृष्ण के अलावा किसी अन्य से विवाह के विरुद्ध थी किन्तु माता के दबाव डालने एवं समझाने पर उसने मेवाड़ कुवंर से विवाह करना मंजूर किया। मीरां की माता यह जानती थी कि महाराणा से बैर (शत्रुता) का अर्थ है महाविनाश को आमंत्रण देना। सुखसारण के अनुसार पतिव्रता नारी का एक ही पति होता है एवं दूसरे पति की कल्पना भी व्यभिचार के समान है चूंकि मीरा पतिव्रता थी अतः उसके लिए मेवाड़ कुंवर से विवाह व्यभिचार के समान था।[37] 'मीराबाई री परची' में मीरां का विवाह मेवाड़ कुंवर के साथ विवाह से पूर्व ही स्वप्निल मूर्च्छावस्था में कृष्ण के साथ करा कर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि मेवाड़ कुंवर से मीरां का विवाह मात्र औपचारिकता थी।[38] मूर्छित स्वप्नावस्था में कृष्ण से मीरां के विवाह के संदर्भ में मीरा के नाम पर अनेक पद भी, प्रचलित हैं।[39]

मीरां से सम्बंधित मेवाड़ के मारवाड़ में ऐसी अनेक कथाएं प्रचलित हैं जिनसे ध्वनि निकलती है कि मीरां का मेवाड़ कुंवर भोजराज से विवाह नाटक मात्र था।[40] प्रचलित किंवदंतियों के अनुसार भांवर (विवाह के फेरे) के समय मीरां ने विवाह मंडप में अपने साथ कृष्ण को विराजमान कर दिया था एवं भांवर भी वस्तुतः कृष्ण की मूर्ति के साथ ही लिए गये न कि मेवाड़ कुंवर के साथ।[41] स्वप्निल मूर्च्छावस्था में कृष्ण के साथ मीरां के विवाह एवं भांवर लेते समय मंडप में मीरां व कुंवर भोजराज के मध्य कृष्ण मूर्ति को विराजमान करने का प्रपंच ब्राह्मण भक्त कवियों एवं परवर्ती कथाकारों द्वारा मीरां की शुचिता बनाये रखने के लिए रचा गया है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि इस प्रकार की किंवदंतियां एवं कथाएं जिनमें मीरां की शुचिता को बनाये रखा गया है मेवाड़, गोड़वाड़, मारवाड़, गुजरात एवं शेष भरत के उन क्षेत्रों में अधिक स्वीकार्य हैं जहां ब्राह्मण धर्म का व्यापक प्रसार प्रचार है। मेवाड़ के आदिवासी अंचलों में ढूंढ़ने पर भी मीरां से सम्बंधित ऐसी किंवदंतियां नहीं मिलती हैं जिनमें मीरां की शुचिता की प्रयत्नपूर्वक रक्षा की गयी हो। ब्राह्मण भक्त कवियों एवं परवर्ती कथाकारों द्वारा यह भी प्रचारित किया गया कि मीरां का कुंवर भोजराज से विवाह मात्र औपचारिकता थी एवं विवाह के पश्चात मीरां का कुंवर भोजराज से किसी प्रकार का कोई दैहिक सम्बंध न रहा।[42] यह प्रचारित किया जाता है कि कुंवर भोजराज

की मृत्यु का कारण उसके द्वारा मीरां को दिये हुए वचन को भंग करके मीरां की देह को छू लेना था परिणामस्वरूप ईश्वरीय कोप ने कुंवर भोज को तेज ज्वर का दंड दिया एवं उसकी मृत्यु हुई।[43]

मध्यदेश कुंवर भोज एवं मीरां के परस्पर सम्बंधों की प्रकृति पर राजपूताने में ही नहीं वरन् गुजरात, मध्यदेश, ब्रजमंडल एवं देश के अन्य प्रदेशों में ढेर सारी किंवदंतियां एवं कथाएं मिलती हैं। इन किंवदंतियों एवं कथाओं में साम्यता के साथ साथ विरोधाभास भी दृष्टिगत होते हैं। प्रायः प्रदेश एवं पात्र के अनुसार कथा का स्वरूप एवं कथ्य बदल जाता है। किंवदंतियों एवं कथाओं पर सम्बंधित प्रदेश की लोकचेतना का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है।

भक्त कवियों के विवरण, किंवदंतियों एवं कथाओं की प्रकृति, उद्देश्य एवं उनके उत्पत्ति स्रोत के अध्ययन के पश्चात यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है की इनका आधार शुचितावादियों द्वारा रचा गया प्रपंच है। इस प्रपंच का शिकार मीरां की वे स्त्री अध्येता भी हुई हैं जो मीरां से वैचारिक प्रेरणा ग्रहण करती हैं। इन स्त्री अध्येताओं में शहरी जीवन व्यतीत करने वाली स्त्रियों से लेकर ग्रामीण परिवेश में पली बढ़ी वे समस्त स्त्रियां शामिल हैं जो सांस्कृतिक आत्मसातीकरण का शिकार हुई हैं। वस्तुतः 500 वर्षों के इस लम्बे अंतराल में मीरां का ही आत्मसातीकरण किया जा चुका है, ऐसे में मीरां की स्त्री अध्येताओं का भ्रमित होना आश्चर्यजनक नहीं है।[44] कुमकुम संगारी का मीरां के सामंत पति कुंवर भोजराज के प्रति आक्रोश तो समझ में आता है किन्तु उनका यह कहना अनुपयुक्त है कि *''वह विवाह की मर्यादा को तोड़ती है, पति के साथ सम्भोग से इनकार करके एवं स्वाभाविक धार्मिकता द्वारा उस क्षण से जब उसका विवाह हुआ। उसने स्वप्न में पहले से ही कृष्ण के साथ विवाह का दावा किया (माई म्हनै सपनें में परण गयी गोपाल, बी एम :70) जनश्रुतियों के उस रूप में जहां वह अपने पति द्वारा दोषी ठहरायी गयी है, वहां उसके दृढ़ निश्चय का संकेत है। कृष्ण के प्रति आकर्षण एवं पति के प्रति अरुचि को उसके पति एवं श्वसुर दोनों के द्वारा तिरस्कार के रूप में देखा गया।...''*[45] पति के प्रति मीरां का प्रेम उसकी शक्ति थी। स्वाधिकारों की चेतना स्त्री को स्वतंत्रता के लिए संघर्ष हेतु प्रेरित तो करती है किन्तु पुरुष के प्रति घृणा नहीं सिखाती। मीरां ने स्वाधिकार रक्षा एवं स्त्री स्वतंत्रता के लिए संघर्ष तो किया किन्तु पति से घृणा नहीं की। वास्तव में चित्तौड़गढ़ में मीरां की हैसियत एवं स्थिति मीरां के उसके पति के साथ सम्बंधों पर निर्भर थी। पति के साथ कटु अथवा असहज सम्बंधों की स्थिति में कुंवरानी मीरां को निश्चय ही चित्तौड़गढ़ से निष्कासित कर दिया जाता। मीरां के देवर, महाराणा उदय सिंह ने पत्नी जेवंता बाई से असहज सम्बंधों के कारण उसे कुम्भलगढ़ निर्वासित कर दिया था। महारानी करमेती भी महाराणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् रणथम्भौर दुर्ग चली गयी थी। महाराणा मेवाड़ एवं मेवाड़ कुंवर से वैर लेकर मीरां का चित्तौड़ दुर्ग में बने रहना सम्भव न था।

कुंवर भोजराज एवं मीरां के सम्बंध सामान्य थे। ख्यातों, भक्तमालों एवं इतिहास ग्रंथों में मीरां का कुंवर भोजराज के साथ विवाह का उल्लेख तो मिलता है किन्तु कुंवर भोजराज के किसी दूसरे विवाह का जिक्र नहीं है। मेवाड़, एवं मारवाड़ में प्रचलित किंवदंतियों में प्रायः कुंवर भोजराज के मीरां के साथ एकमात्र विवाह की ही चर्चा मिलती है। अपवादस्वरूप ही किसी किंवदंती में कुंवर भोजराज के दूसरे विवाह की चर्चा हो। उल्लेखनीय है कि कुंवर भोजराज के दादा महाराणा रायमल ने ग्यारह शादियां की थीं[46] एवं उसके पिता महाराणा सांगा ने अठाइस।[47] पारिवारिक जीवन के समानांतर महाराणाओं और कुंवरों के अनेक प्रेमप्रसंग चला करते थे। भोजराज के भाइयों ने अपने जीवनकाल में अनेक शादियां[48] कीं। उसके भाई रत्नसिंह, विक्रमादित्य एवं उदयसिंह ने क्रमशः चार, चार एवं बीस शादियां कीं। कुंवर भोजराज जैसे शक्तिशाली सामंत के लिए दूसरा विवाह करना अथवा किसी प्रकार के प्रेम प्रसंग में लिप्त होना विशेष कठिन नहीं था परंतु कुंवर द्वारा ऐसा किये जाने का कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता है।

मीरां के अतिरिक्त महाराणा परिवार की अनेक रानियां, युवरानियां एवं राजकुमारियां भक्त के रूप में प्रसिद्ध थीं। मीरां की एक सास झाली रानी की ख्याति भक्त के रूप में थी जिसके बारे में माना जाता है कि इसने मीरां मंदिर के सामने स्थित रैदास की छतरी का निर्माण करवाया था। भक्तमाल में नाभादास ने झाली रानी का उल्लेख भक्त के रूप में किया है। ऐसा नहीं लगता कि कुंवर भोजराज की जीवितावस्था में मीरां को कृष्णोपासना से रोका गया हो अथवा कुंवर भोजराज के लिए यह ईर्ष्या का विषय रहा हो। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि मीरां में कृष्णभक्ति का बीजांकुरण बचपन में नहीं वरन कुंवर भोजराज की मृत्यु के पश्चात् हुआ था अतः ऐसा कोई कारण नजर नहीं आता जिसके आधार पर यह घोषित किया जाये कि कृष्णभक्ति के कारण कुंवर भोजराज एवं मीरां के आपसी सम्बंध सामान्य नहीं थे।

नाभादास की भक्तमाल पर प्रियादास की भक्तिरसबोधिनी टीका में मीरां व कुंवर भोज के आपसी सम्बंधों का वर्णन है।[49] वैष्णव कवियों का कृष्णप्रेम सर्वविदित है अतः प्रियादास द्वारा मीरां को कृष्ण की अनन्य भक्त साबित करने एवं कुंवर भोज को खलनायक घोषित करने का कारण समझा जा सकता है। वैष्णवदास कृति 'भक्तमाल का दृष्टांत' में 'राना' का उल्लेख तो है किन्तु यह 'राना' मीरां का पति कुंवर भोजराज ही है यह स्पष्ट नहीं है। 'राना' मीरां का देवर महाराणा विक्रमादित्य भी हो सकता है। मीरां का पति भोजराज कुंवर था 'राणा' अथवा महाराना नही।[50]

राघौदासकृत भक्तमाल एवं उसकी टीका में 'मीराबाई को बरनन' शीर्षक के अंतर्गत 'राना' का उल्लेख तो है किन्तु वैष्णवदास कृत भक्तमाल के समान राघौदास कृत भक्तमाल में भी यह स्पष्ट नहीं है कि जिस राणा का वर्णन किया गया है वह मीरां का पति कुंवर भोजराज है अथवा मीरां का देवर महाराणा विक्रमादित्य। जबकि राघौदास की भक्तमाल पर छत्रदास द्वारा लिखित टीका में मीरां के उसके पति के साथ असहज सम्बंधों की चर्चा है।[51]

वैष्णव भक्त कवियों ने मीरां को कृष्ण का अनन्य भक्त माना एवं उसका वर्णन उसी रूप में किया! ऐसा प्रतीत होता है कि भक्त कवि मीरां के व्यक्तित्व एवं महाराणा परिवार के सम्बंध में सीमित जानकारी ही रखते थे। चित्तौड़ दुर्ग के वातावरण एवं दुर्ग की आंतरिक राजनीति से इन भक्त कवियों का विशेष परिचय नहीं था एवं न ही वे मीरां एवं उसके पति के परस्पर सम्बंधों की प्रकृति को जानते थे।

सती होने से इनकार एवं जीवन संघर्ष का आरम्भ

मीरां का सुखद वैवाहिक जीवन चल ही रहा था कि एक दुर्घटना ने मीरां के जीवन को ही बदल दिया। यह दुर्घटना थी उसके पति कुंवर भोजराज की मृत्यु। आधारभूत सामग्री के अभाव में यह कहना तो कठिन है कि कुंवर भोजराज युद्ध में लड़ते हुए मारा गया अथवा उसकी सहज मृत्यु ज्वर के कारण हुई परंतु इतिहासकार इस बात से सहमत है कि कुंवर भोजराज महाराणा सांगा की जीवितावस्था में ही परलोक सिधार गया था।[52] पति भोजराज की मृत्यु पर राजपरिवार की ओर से यह इच्छा प्रकट की गयी कि मीरां को अपने पति की चिता के साथ जल कर सती हो जाना चाहिए। मीरां को यह स्वीकार नहीं था। मीरां ने सती होने से स्पष्ट इनकार करते हुए कहा कि वह केवल कृष्ण को अपना पति मानती है। वह किसी मेवाड़ कुंवर की मृत्यु पर सती नहीं होगी एवं कृष्ण की आराधना के लिए जिन्दा रहेगी।[53]

जोधपुर स्थित राजस्थान प्राच्यविधा प्रतिष्ठान के संग्रह में सुखसारण द्वारा रचित 'मीरांबाई री परची' की उपलब्ध अप्रकाशित प्रति में उक्त घटना का उल्लेख है।[54] परंतु जोधपुर के निकट

चौपासनी गांव में स्थित राजस्थानी शोध संस्थान के संग्रह में सुखसारण द्वारा रचित 'मीरांबाई री परची' की उपलब्ध दो हस्तलिखित प्रतियों में से किसी एक प्रति में भी उक्त घटना का उल्लेख नहीं मिलता है। राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर की त्रैमासिक शोध पत्रिका 'परम्परा' का एक विशेषांक 'मीरांबाई री परची व परची काव्य' नाम से प्रकाशित किया गया था। इस विशेषांक में उक्त प्रतियों के आधार पर सुखसारण द्वारा रचित 'मीरांबाई री परची' का प्रथम बार प्रकाशन किया गया। दुर्भाग्यवश उक्त पत्रिका के सम्पादन के दौरान 'मीराबाई री परची' के उन अंशों को हटा दिया गया जो मीरां को राजपरिवार द्वारा सती किये जाने के प्रयासों से सम्बंधित थे एवं जिन अंशों में मीरां ने कृष्ण को अपना पति घोषित करते हुए सती होने से इनकार किया था। राजपूत सामंतों द्वारा संचालित किसी शोध संस्थान की त्रैमासिक पत्रिका में ऐसा होना आश्चर्यजनक नहीं है। यह अवश्य आश्चर्यजनक है कि प्रगतिशील माने जाने वाले भक्तमाल के रचियताओं नाभादास, प्रियासदास, वैष्णवदास, राघौदास, छत्रदास जिन्होंने अपने ग्रंथों में मीरा का उल्लेख किया है में से किसी एक ने भी राज परिवार द्वारा मीरां को सती किये जाने के प्रयासों का वर्णन नहीं किया है।

मीरां के काव्य के संदर्भ में अंतःसाक्ष्य का प्रश्न जटिल है तथापि मीरां के काव्य में प्राप्त अंतःसाक्ष्य के अलावा मीरां को महाराणा परिवार द्वारा सती होने के लिए प्रेरित करने के प्रयासों का प्रथम उल्लेख मीरां की मृत्यु के लगभग दो सौ वर्षों पश्चात नागरीदासकृत सिंगार सागर के अंतर्गत पद प्रसंगमाला में मिलता है।[55] नागरीदास वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे। वल्लभ सम्प्रदाय के लोग मीरां की भक्ति के स्वरूप को नापसंद करते थे। परंतु नागरीदास ने पद प्रसंगमाला में मीरां के सम्बंध में जो छः प्रसंग एवं तत्सम्बंधी पद लिखे हैं उनमें मीरां की मुक्त कंठ से प्रशंसा की गयी है। अपने छोटे भाई बहादुर सिंह द्वारा पैतृक जागीर किशनगढ़ छीन लिए जाने के कारण नागरीदास को मुगलों की शाही सेवा में प्रविष्ट होना पड़ा था। शाही सेवा में रहने के कारण नागरीदास पर मुगल विचारों का प्रभाव था। अतः अनुमान किया जाता है कि नागरीदास मुगल वादशाहों के समान सती प्रथा का विरोधी रहे होंगे।[56]

मेड़तणी मीरां मारवाड़ के मेड़तिया राठौड़ों को मेवाड़ के सिसोदिया महाराणा से जोड़ने वाली कड़ी थी, अतः इस बात की सम्भावना कम ही है कि मेड़तिया राठौड़ मीरां को सती करने के पक्षधर रहे होंगे परंतु इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि मेवाड़ राठौड़ों के विरोधी सामंत मीरां को सती कर देना चाहते थे। ऐसा करने से मेड़तिया राठौड़ों को महाराणा सांगा से जोड़ने वाली कड़ी समाप्त हो जाती एवं साथ ही साथ मेड़तिया राठौड़ों का मेवाड़ की राजनीति में प्रभावी हस्तक्षेप भी समाप्त हो जाता। मीरां यदि सती होने से बची रही तो इसका कारण मीरां द्वारा किये गये प्रभावी प्रतिरोध के अलावा मेड़तिया राठौड़ों का मेवाड़ की राजनीति में उपस्थित प्रभाव भी था। साथ ही मेवाड़ व मारवाड़ के इतिहास ग्रंथों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु रानियों अथवा कुंवरानियों को सती होने से रोका गया। उल्लेखनीय है कि (मुंदियाड़ री ख्यात) मीरां को सती न किया जाना राजनीतिक दृष्टि से मेड़तियों के लिए लाभदायक था। मीरां के काव्य एवं उपलब्ध स्रोत सामग्री से ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे अनुमान लगाया जा सके कि विधवा मीरां का महाराणा सांगा से किसी प्रकार का कोई विरोध था। महाराणा रत्नसिंह के साथ भी मीरां के सहज सम्बंधों की कल्पना की जा सकती है। खानवा के युद्ध में महाराणा सांगा की मृत्यु होने पर उसके जीवित पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ रत्नसिंह मेवाड़ का महाराणा बना था। वह मारवाड़ के राव बाधा की बेटी धनकंवर का पुत्र था[57]। धनकंवर राठौड़ थी एवं मीरां भी। मारवाड़ का राव सुजा धनकंवर का दादा था जो मीरां के दादा राव दूदा का ज्येष्ठ भ्राता था। इस प्रकार मेड़तणी मीरां एवं नये महाराणा

रत्नसिंह की मां धनकंवर आपस में चचेरी बहने थीं। राठौड़ों का भांजा होने के कारण रत्नसिंह मेड़तिया राठौड़ों से समर्थन की उम्मीद रखता था। अतः विधवा मीरां के साथ महाराणा रत्नसिंह के सहज सम्बंधों का अनुमान है। मीरां के काव्य एवं विभिन्न भक्तमालों, वार्ता साहित्य एवं परवर्ती स्रोत सामग्री के विश्लेषणात्मक अध्ययन से ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता जिससे अनुमान लगाया जा सके कि विधवा मीरां का महाराणा विक्रमादित्य से पूर्ववर्ती महाराणाओं महाराणा सांगा तथा महाराणा रत्नसिंह के साथ किसी प्रकार का विवाद था। सच कहें तो इस समय तक मीरां का मेवाड़ की राजनीति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं था।

मेड़तियां हाड़ा संघर्ष एवं चित्तौड़ दुर्ग में मीरां का जीवन

महाराणा सांगा की मृत्यु के समय विक्रमादित्य एवं उदयसिंह जो हाड़ी रानी करमेती का पुत्र था रणथम्भौर की जागीर का मालिक था। बूंदी के राव भांडा के दूसरे पुत्र नरबद की पुत्री करमेती के पुत्रों को महाराणा सांगा ने अपने जीवनकाल में ही रणथम्भौर की जागीर दे दी थी।[58] साम्राज्य के दो टुकड़े कर देना महाराणा सांगा की महान भूल थी। इस भूल की कीमत उसके पुत्र रत्नसिंह को अपनी जान गंवा कर चुकानी पड़ी। वीर विनोद में लिखा है *''रणथम्भौर के साथ पचास साठ लाख का मुल्कथा, इतने बड़े देश और मजबूत व नामी किले का छोटे भाइयों के हाथ में रहना रत्नसिंह को नहीं भाया; इसी भीतरी आशय से माजी हाड़ी को किसी तरह चित्तौड़ बुला लेना ठीक समझ, कोठारिया पुर्णमल चहुवाण पूर्णमल्ल को उन्हें लेने के लिये रणथम्भौर भेजा और कहलाया कि 'आप हमारे सिर पर तीर्थ हैं, और विक्रमादित्य व उदयसिंह मेरे भाई हैं; इसलिए उन्हें लेकर आपको यहां पधारना चाहिए;' ...मा साहब (करमेती हाड़ी) ने इस बात को रत्नसिंह का कपट समझ, उत्तर दिया कि 'विक्रमादित्य और उदय सिंह अभी बच्चे हैं, और उनकी सम्हाल रखने के लिए श्रीहुजूर वैकुंठवासी ने मेरे भाई सूर्यमल्ल को हुक्म दिया है', ...गरमी के दिनों में महाराणा रत्नसिंह शिकार को बूंदी की तरफ रवाना हुए। उधर से सूर्यमल्ल अपनी मां की आज्ञानुसार आते थे सो रास्ते में ही मिलाप हो गया, ...तब झुंझला कर घोड़े को झपटाया और तलवार का एक वार सूर्यमल्ल पर किया; फिर तो पूर्णमल्ल ने भी एक तीर मारा जो छाती फोड़ निकल गया; सूर्यमल्ल ने दौड़ कर पूर्णमल्ल को कटार से मारा; महाराणा ने पूर्णमल्ल की मदद करके दूसरा वार सूर्यमल्ल पर करना चाहा, परंतु इसने कटार का एक हाथ उनकी छाती में ऐसा मारा कि महाराणा भी इस संसार को छोड़ गये।*[59]

महाराणा सांगा जैसे शक्तिशाली एवं प्रभावशाली महाराणा की मृत्यु एवं इसके थोड़े ही दिनों बाद उसके योग्य एवं बहादुर पुत्र मेवाड़ के नये महाराणा रत्नसिंह की मृत्यु ने मेवाड़ में शक्ति शून्यता की स्थिति पैदा कर दी थी। रत्नसिंह की मौत के पश्चात् विक्रमादित्य मेवाड़ का महाराणा बना। विक्रमादित्य किशोरवय का अबोध बालक था जो अक्सर नादानियां किया करता था।[60] इस समय के मेवाड़ की परिस्थिति एवं वातावरण का सजगता के साथ अध्ययन किया जाये तो मीरां एवं महाराणा विक्रमादित्य के आपसी सम्बंधों एवं चित्तौड़ दुर्ग में मीरां की हैसियत का उचित अनुमान हो जायेगा।

महाराणा सांगा के समय चित्तौड़ दुर्ग में जो रौनक रहा करती थी वह रौनक उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गयी थी। महाराणा विक्रमादित्य अभी बालक था एवं चित्तौड़ की राजगद्दी मिलने के साथ ही वह उद्दंड हो गया था। सामंत अवज्ञाकारी हो चले थे एवं वे चित्तौड़ दुर्ग महाराणा की चाकरी बजाने के स्थान पर अपनी जागीरों में लौटने लगे थे। पर्याप्त सैनिकों के अभाव में चित्तौड़ दुर्ग असुरक्षित हो गया था। राजपरिवार का कोई भी वरिष्ठ व्यक्ति जीवित नहीं बचा था। पुरुषजनों

में सबसे वरिष्ठ स्वयं महाराणा विक्रमादित्य था जो अभी किशोर था। जीवित स्त्रियों में पदक्रम के अनुसार सबसे वरिष्ठ महाराणा विक्रमादित्य की राजमाता मां करमेती थी एवं उसके पश्चात मेवाड़ कुंवर की विधवा युवरानी मीरां। रत्नसिंह की चार पत्नियों में से तीन को सती किया जा चुका था। इस प्रकार मेवाड़ राजघराने के सबसे प्रभावशाली लोगों में तीन नाम थे हाड़ी रानी करमेती, मेड़तणी मीरां, एवं हाड़ी रानी का पुत्र महाराणा विक्रमादित्य। चित्तौड़ दुर्ग में हाड़ी रानी अपने पुत्रों महाराणा विक्रमादित्य एवं उदय सिंह के साथ सूरजगोखड़ा के महलों में रहती थी। मीरां का निवास स्थल कुंवरपदा के महल थे। महाराणा विक्रमादित्य की अल्पवयस्कता के कारण शासन की समस्त शक्तियां हाड़ी रानी करमेती एवं मेड़तणी मीरां के आसपास ध्रुवीकृत हो रही थी। राठौड़ों की शक्ति एवं समर्थन से युवरानी मीरां का राजनीतिक तौर पर प्रभावशाली बनना राजमाता करमेती के लिए असह्य था। स्वाभाविक तौर पर मेड़तणी मीरां हाड़ी रानी करमेती के मध्य संघर्ष आरम्भ हो गया।[61]

मीरां को सती करके जला कर मार दिया गया होता तो मेवाड़ की राजनीति में मेड़तियां राठौड़ों के हस्तक्षेप की सम्भावना समाप्त हो गयी होती। मीरां ने सती होने से इनकार कर दिया था अतः जीवित मीरां मेड़तियां राठौड़ों को मेवाड़ की राजनीति में हस्तक्षेप का मंच उपलब्ध करा रही थी। मेड़तियां राठौड़ों की चित्तौड़ दुर्ग में उपस्थिति एवं मेवाड़ की राजनीति में उसके हस्तक्षेप के कारण राजमाता करमेती के लिए अपने पुत्र महाराणा विक्रमादित्य के नाम पर शासन का संचालन कठिन हो रहा था। राजमाता करमेती एवं महाराणा विक्रमादित्य यह चाहते थे कि मीरां की हत्या कर दी जाये अथवा चित्तौड़ दुर्ग में मीरां के लिए ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी जाये कि मीरां का चित्तौड़ दुर्ग में रुके रहना असम्भव हो जाये। वे चाहते थे कि परिस्थिति से बाध्य होकर मीरां अन्यत्र चली जाये। मीरां द्वारा ऐसा करने पर मेड़तिया राठौड़ों के लिए चित्तौड़ दुर्ग एवं राजमहलों की परिधि में घुसने की वजह समाप्त हो जाती एवं राजमाता करमेती व महाराणा विक्रमादित्य स्वयं को अधिक सुरक्षित महसूस करते। मीरां को जहर दिया जाना, मीरां को डसने के लिए सांपों एवं बिच्छुओं को उसके शयनकक्ष में छोड़ना, मीरां को कालकोठरी में कैद किया जाना एवं इसके अतिरिक्त राजमाता व महाराणा द्वारा मीरां पर किये गये अन्य सभी अत्याचारों की मूल वजह उनके द्वारा मीरां एवं मेड़तियां राठौड़ों से महसूस किया जाने वाला असुरक्षा का भाव था।

भक्तमालों के मीरा सम्बंधी उल्लेखों एवं परवर्ती ग्रंथों में महाराणा एवं राजमाता द्वारा किये गये अत्याचारों का वर्णन है। मेवाड़, गोड़वाड़, मारवाड़, गुजरात, मालवा एवं देश के अन्य प्रदेशों में ऐसी तमाम किंवदंतियां मिल जायेगी जो मीरां पर किये गये अत्याचारों से सम्बंधित है। 'मीरां काव्य' में भी इन अत्याचारों से सम्बंधित अनेक पद प्राप्त होते हैं। नाभादास ने लिखा है

लोक लाज, कुल शृंखला तजि, मीरां गिरधर भजी।
सृदश गोपिका प्रेम प्रगट, कलियुगहिं दिखायौ।।
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायौ।।
दुष्टनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयौ।।
बार न बांको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयौ।।
भक्ति निशान बजाय कै, काहू ते नाहिन लजी।।
लोक लाज कुल शृंखला तजि, मीरां गिरधर भजी।।[62]

नाभादास की भक्तमाल पर प्रियादास कृत 'भक्तिरसबोधिनी टीका में प्रियादास ने लिखा है

देबी के पुजायबे कौ, कियौ लै उपाय सासु,
बर पै पुाइ, 'सुनि बधू पूजि' भाखियै।

बोली 'जू बिकायौ माथौ लाल गिरिधारी हाथ',
और कौ न नवै एक वही अभिलाखियै।।
'बढ़त सुहाग याके पूजे ताते पूजा करौ,
करौजिनि हठ सीस पायनि पै राखियै'।
कही बार बार 'तुम यही निरधार जानौ,
वही सुकुमार जापै वारी नाखियै'।।3।।
तब तौ खिसानी भई, अति जरि बरि गयी,
गयी पति पास 'यह बधू नहीं काम की।
अब ही जवाब दियौ, कियौ अपमान मेरौ,
आगे क्यों प्रमान करै? भरै स्वास चाम की।।
राना सुनि कोपकरयौ, धरयौ हिये मारिबोई
दई ठौर न्यारी, देखि रीझी मति बाम कीं।
लालनि लड़ावै गुन गाय के मल्हावै साधु,
संग ही सुहावै, जिन्हें लागी चाह श्याम की ।।4।।
आय कै ननद कहै 'गहै किन चेत भाभी?
साधुनि सों हेतु में कलंक लागै भारियै।
राना देसपती लाजै बापकुल रती जात,
मानि लीजै बात बेगि संग निरवारियै।
लागे प्रान साधू संत, पावत अनंत सुख,
जाको दुख होय, ताको नीके करि टारियै।
सुनिकै, कटोरा भरि गरल पठाय दियौ,
लियौ करि पान रंग चढ्यौ यों निहारियै ।।5।।
गरल पठायौ, सो तौ सीस लै चढ़ायो, संग,
त्याग विष भारी, ताकी झार न संभारी है।
राना नै लगायौ चर, बैठे साधु ढिंग ढर,
तब ही खबर कर, मारौ यहै धारी है।।
राजै गिरिधारीलाल, तिनहीं सों रंग जाल,
बोलत, हंसत ख्याल, कान परी प्यारी है।
जाय कै सुनायी, भई अति चपलाई, आयौ,
लिये तरवार, दै किवार, खोलि न्यारी है ।।6।।
जाके संग रंगभीजि, करत प्रसंग नाना,
कहां वह नर गयौ बेगि दै बताइयै।
आगे ही बिराजै, कछू तोसों नहीं लाजै, अभूं,
देखि सुख साजै, आंखें खोलि दरसाइयै।।
भयोई खिसानौ राना, लिख्यौ चित्र भीत मानो,
उलटि पयानौ कियौ, नेकु मन आइयै।
देख्यौ हूं प्रभाव ऐ पै भाव में न भिद्यौ जाइ,
बिना हरिकृपा कहौ कैसे करि पाइयै।।7।।[63]

प्रियादास के वर्णन के अनुसार मीरां की सास ने नाराज होकर मीरां की शिकायत राणा से की। राणा ने क्रोधित होकर मीरां को एकांतवास का दंड दिया और उसे मारने की सोची। प्रियादास के वर्णन में राणा मीरां का पति भोजराज है अथवा उसका श्वसुर महाराणा सांगा यह स्पष्ट नहीं है।

प्रियादास के पौत्र वैष्णवदास कृत 'भक्तमाल के दृष्टांत' से मीरां को राजपरिवार द्वारा विष दिये जाने का पता चलता है।

गरल पठाय दियो :

राना तो बड़ो भक्त है और तो भक्त छुछि सो।।
चरनामृत देहै यह कटोरा भर देहै।

आखै षोलि दरसाईयै :

राना ने रसाईनी को बांधा। रसाइन सीषा चाहै सो वह बतावै नहीं। नित्य मारने का उद्योग करै। रात्री को सखा का रूप करिकै सेवा करै। जीस रोज मारन की ठीक पड़ी आजू नै बताबै तो कल्हि मारौ। जिस रोजै सखा को बताया सो सेवा सो पाया। बिन सेबा चाहै तो नहीं।

राघौदास का सम्बंध निर्गुणवादी दादू पंथ से है परंतु उनकी भक्तमाल पर नाभादास की भक्तमाल का अत्यधिक प्रभाव है। 'मीरांबाई को बरनन' शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने मीरां का वर्णन अपनी भक्तमाल में किया है।

राघौदास ने मीरां को राजपरिवार द्वारा विष दिये जाने का उलेख किया है।

मीरांबाई को बरनन

(मूल)

लोक बेद कुल जगत सुख मुचि मीरां श्री हरि भजे।
गोपिन की सी प्रीति रीति कालिकाल दिषाई।
रसिकराय जस गाइ, निडर रही संत सभाई।
रानै रोस उपाइ जहर कौ प्यालौ दीन्हों।
रोम पुस्यौं नहीं एक मंनि चरनामृत लीन्हों
नौबति भक्ति घुराई कैं पति सो गिरिधर ही सजे।
लोक बेद कुल जगत सुष मुचि मीरां श्री हरि भजे।

मनहर

रामजी की भक्ति न भावै काहू दुष्टन कौं,
मीरां भई वैष्णव जहर दीन्हो जानि कैं।
रानौ कहै मारै लाज, मारि डारौ याहि आज,
आप करै कौरतन, संत बैठे आनि कैं।।
प्रेम मधि पीयो विस, पद गाये अहर्निस,
भै न ब्याप्यौ नैकहूं, न लीन्हौं दुष मानि हैं।

राघौदास की भक्तमाल पर छत्रदास द्वारा लिखित टीका में राजपरिवार द्वारा मीरां पर किये गये अत्याचारों एवं राजपरिवार द्वारा मीरां को विष दिये जाने का उल्लेख इस प्रकार है

आइ नणंद कहै सुनि भाभिहि साधुन संग निवारि भजीजे।
लाजत है नृप तासु बड़ौ कुल लाजत द्वै वंश बेगि तजीजे।।
संत हमाराहि जीवन मानस तारत द्वै कुल सत्य मनीजे।
जाई कही तब झैर पठावत लै चरनांमृत पांन करीजै।।5।।

सीस नवाई कै पीत भई विष संतन छोड़न है दुष भारी।
भूप कहै भृति चौकस राषहु आइ कनै जन बोलत मारी।।
स्यांमहि सौं बतलात सुनी तब जाइ कही अब है सत यारी।
सो सुनिकैं तरबारि लई कर दौरि गयो पट गोलि निहारी।।6।।
बोलत हौस गयो कत मानंस देहु लषाइ न मारत तोही।
येह षरे कछू नांहि डरे चित लेत हरे किन बाहत मोही।।
भूप लजाइ रह्यौ जड़ होइर ऊठि गयो तजिकैं उर छोही।
देषि प्रताप न मानत आप रहै उर ताप करै हरि बोही।।7।।

सुखसारण ने मीरां को विष दिये जाने एवं उस पर महाराणा परिवार द्वारा किये गये अत्याचारों का वर्णन इस प्रकार किया है

अब इनकूं विष दीजे पाई,
बिन मारी आपे मर जाई।
रांणौ विष प्यालो भर भेज्यौ,
मेडतणी रांणी कूं देजयौ।।
दयाराम पिंडो एक नांमा,
राज मिंदर सेवौ अठ जांमां
सीसोद्यौ बौहौ भांत सिखायौ,
यूं कैहैज्यौ चरणामति लायौ।
गुप्त दांन वाकूं ले घाल्यौ,
सो मारण मीरां कूं चाल्यौ।
पिंडो कहै भाग घिन रांणी,
जिण प्रभू की भक्त पिछांणी।
जांण्यौ जैहैर मरणा के काजै,
बिन पियां मेरौ विड़द लाजै।
चरणामृत सुण मीरां लीयो,
राम भरोसै प्यालौ पीयो।
ज्यूं मरतक ईमरत पीजियौ,
ईधक रूप नाराइण दीयौ।
प्रोयत जाई कचैड़ी कैई
रांणी विष प्यालो पी गयी।
सीसोद्यौ कहै मरी क जीवी,
अजू न देखी विष की पीवो।
जेन न वयाप्यौ गैल न आयी,
विष होतो कन ईमरत राई।
वावै लुणौ करै सो पावै,
सेंस गुणौ साहब भुगतवै।
रांणौ विस मीरां कूं पायौ
घर सीसोद्यां वध्यौ सवायौ।

गदी बैस मरै मर जावे,
विष की घात अजु होई आवै।
ब रांणा दूजी घात उपाई,
अबकै मेड़तणी मर जाई।
सरब सोवनी पेई मंगाई,
देज्यौ मेड़तणी कुं जाई।
मांही कालौ नाग भरायौ,
चंद्रहार दूर तैं आयौ।।।।
कैज्यो रांणी कूं गल पहैरै,
वडै जेठ क्रिपा करी तेरै।
खोलै देख विसम्बर कालो,
पैरत गले में कीयो उजालो।
हीरा पना लाल कण मोती,
कण कण में दीपग की जोती।
देख हार रांण्यां सब रूती,
अंजल तज रांणी सूती।
इनकै हार हर मारै नांही,
महं सूं आ ईधकी है कांही।
हार चंद्र बोता घर होता,
वै तो दीपग उण मै जुता।
रांणा वात हुती जयुं कही,
रांण्यां सुण परसण होइ गयी।
अब एक दल उपजायो भरी,
सुणतां ही डरपै नर नारी।
गिर किंद्र निपजै विष कीरा,
लागत ही फट जाय सरीरा।
बअवा मै बीदु जड़ दीना,
अै रांणी के वीछड़ा लीना।
केज्यौ मेड़तणी पग पैरै,
खोलीज्यौ ईकांत अंधेरै।
खोलै तो विदहर विछुडयां,
हाथ लीयां हीरा की कण्यां।
हार पेर हर मिंदर जाई,
बिछवां का बिछड़ा पग मांही।
ईम्रत पीयो बदन भरलावै,
बिन दीपग अंधियारो जावै।
जेठ कहै मैहैलां रै बैठी,
जे तू बड़ा बाप की बेटी,

धोह धगा कीना बोहो घातां,
अजूं जीवती मारूं हातां।
दूहा रांणों मारण नीसरयौ, हाथां लियो कटार।
आगो होय उ झांकीयौ, मैहैलां में मीरांच्यार।
सीसोद्या पच पच मुवो, कीनी बोहोत उपाई।
जिण जनकूंडर काहको, जांके राम सिहाई।

नागरीदास द्वारा रचित 'शृंगार सागर' के अंतर्गत 'पद प्रसंग माला' में मीरां को विष देने की घटना का वर्णन इस प्रकार है *मीरांबाई सों राना बहौत दुष पायै रहै। राना के घर की रीति तें इनके भिन्न रीत। यह भगवत सम्बन्ध सतयसंग विशेष करै। देह सम्बंध को नातौ व्यौहार कछु न मानें, राना बहुत समुझाय रह्यो, निदान एक विष को प्यालो उनको पठयो, कह्यो चरनामृत को नाम लैकें दीजियो, उनकैं प्रण है चरणामृत के नाम तें पी ही जायेगे, सो ऐसें ही भयो, जांनि बूझ पीयो, राना तो इनके मरिबे की राह देखत रह्यो, अरु यह झांझ मृदंग संग लैके परमरंग सो एक नयो पद बनाय ठाकुर आगे गावत भये, पद बहुत प्रसिद्ध भयो,* सो वह यह पद

रानैजू विष दीनो हम जानी।
जान बूझि चरनामृत सुनि पियो नहिं बौरी भोरानी।।
कंचन कसत कसौटी जैसे तर रह्यो बारह बानी।
आपुन गिरधर न्याव कियो यह दांनयौ दूधरू पानी।।
राना कोटिक बारौ जिहिं पर हौं तिंहि हाथ बिकानी।।
मीरां प्रभु गिरधर नागर के चरन कमल लपटानी।[64]

मीरां काव्य से ऐसा प्रतीत होता है कि मीरां महाराणा विक्रमादित्य एवं राजमाता करमेती द्वारा उस पर किये गये अत्याचारों की जानकारी समस्त प्रजा जनों को देना चाहती थी ताकि वह मेवाड़, मारवाड़ एवं शेष राजपूताने की जनता व जागीरदारों को अपने पक्ष में कर सके। यही वजह है कि मीरां बार बार अपनी कविता में कृष्णोपासना के साथ साथ महाराणा व राजमाता द्वारा उस पर किये गये अत्याचारों का भी वर्णन करती है।

महाराणा विक्रमादित्य के कुशासन, मेवाड़ की खराब आर्थिक हालात एवं महाराणा के आदेश पर लगान वसूलने के लिए प्रजाजनों पर किये गये अत्याचारों से मेवाड़ की जनता त्रस्त हो चुकी थी अतः पूरे मेवाड़ में मीरां के पक्ष में व्यापक जनसमर्थन का सैलाब उमड़ पड़ा। इस प्रकार महाराणा एवं राजकुल के प्रतिकार में मीरां द्वारा गाये गये पद लोकप्रिय होने लगे। प्रजाजन महाराणा विक्रमादित्य के विरुद्ध प्रतिकार के स्वर बुलंद करने लगे। प्रसंगवश यह बताना उचित होगा कि मीरां की ख्याति भक्त के रूप में थी अतः एक कृष्णभक्त को दूसरे भक्त कवियों का समर्थन मिलना स्वाभाविक था। यही वजह है कि मेवाड़ राजकुल द्वारा मीरां पर किये गये अत्याचारों का व्यापक वर्णन भक्त कवियों ने अपने द्वारा रचित भक्तमालों एवं रचित ग्रंथों में किया है।

चित्तौड़ दुर्ग त्यागना एवं मेड़ता वृंदावन हेतु प्रस्थान

चित्तौड़ दुर्ग में मेड़तियां राठौड़ों एवं हाडा चौहानों के मध्य उपस्थित प्रतिद्वंद्विता, महाराणा एवं राजमाता का मीरां के प्रति वैमनस्य एवं मीरां को मारने के लिए उनके द्वारा किये गये प्रयासों से यह तय हो गया था कि मीरां का अधिक समय तक चित्तौड़ दुर्ग रुके रहना असुरक्षित था। इस समय राजमाता

द्वारा संरक्षित महाराणा विक्रमादित्य एवं कुंवरानी मीरां के मध्य वैमनस्य चरम पर था, अतः चित्तौड़ दुर्ग को असुरक्षित पाकर मीरां ने अपने सहयोगियों के साथ दुर्ग छोड़ने का निर्णय लिया। चित्तौड़ दुर्ग से प्रस्थान कर मीरां मेड़तियां राठौड़ों से सहायता की उम्मीद में मेड़ता पहुंची जहां उसका ताऊ राव वीरमदेव शासन कर रहा था। जब वह मेड़ता पहुंची उस समय उसके ताऊ राव वीरमदेव का माारवाड़ के शासक राव मालदेव से संघर्ष चल रहा था। वहां पहुंच कर उसे ज्ञात हुआ कि मेड़ता राव वीरमदेव के हाथ से निकल चुका है एवं वह शरणार्थी जीवन जीने के लिए बाध्य है। मीरां जिन मेड़तियां राठौड़ों से समर्थन की उम्मीद कर रही थी वे शक्तिहीन हो चुके थे।[65]

राव मालदेव के आक्रमण ने राव वीरमदेव को दर दर की ठोकरें खाने के लिए मजबूर कर दिया था अतः ऐसी स्थिति में मीरां का अपने ताऊ राव वीरमदेव के साथ अधिक समय तक रुकना सम्भव नहीं था। मारवाड़ की परिस्थितियों को देखते हुए मीरां के लिए मारवाड़ को छोड़ना अनिवार्य हो गया था! जब कि चित्तौड़गढ़ में मीरां के लिए परिस्थितियां पहले से ही प्रतिकूल थीं। परिस्थितियों का आंकलन करते हुए वृंदावन यात्रा का निर्णय लिया। मीरां की वृंदावन यात्रा के अनेक पुष्ट प्रमाण मिलते हैं। जहां मीरां की भेंट जीव गोस्वामी से हुई। नाभादास की भक्तमाल पर प्रियादास कृत 'भक्तिरसबोधिनी टीका' में लिखा गया है

वृंदावन आयी, जीवगुसांई जू सों मिली झिलीं,
तिया मुख देखिबे को पन लै छुटायो है।
देखी कुंज कुंज लाल प्यारी सुखपंज भरी,
घरी र मांझ, आय देस, बन षायो है।।

वैष्णवदास कृत 'भक्तमाल का दृष्टांत' में निम्नलिखित वर्णन पाया जाता है।

वृंदावन आय गोसांई
इही बूझत फीरे वृन्दावन में कोउ मसाल है।।
कोई ने कहा आजू तौ जीवगुसांई है।
तिया मुष देषवे को पन ले छुड़ायो है माता स्वस्त्र दुहिताज नोविवक्तासनं भवेत।। बलवान् इंद्रिय श्रामंविद्वांममतिवकषति।।

राघौदास की भक्तमाल पर छत्रदास की टीका में लिखा गया है कि जा बृज जीव मिली पन हौ तिय देषतनैं मुष ताहि छुड़ायौ/ कुंजन कुंज निहारि बिहारिहि अई रु देस बनैं बन गायौ। नागरीदास ने 'सिंगार सागर' के अंतर्गत 'पद प्रसंग माला' में मीरां के गंगादिक तीर्थों के साथ वृंदावन यात्रा का भी वर्णन किया है जहां मीरां जीव गोस्वामी से मिली थी।

राना को छोटो भाई मीरां को देह सम्बंध को भर्ता हो, सो ताको परलोक भयों, ता पीछै मीरांबाई गंगादिक तीरथ करिकै अरु री वृदावन हू आये, तहां जीऊ गुसांईजी को प्रण स्त्री के न देषिबे को दुटाय सब सों गुरु गोविंदवत सनमान सत्यसंग करि द्वारका को चले, ऊहां बास करिबै कैं लियैं, तहीं एक मारग में एक नयो पद बनायो, बहुत प्रसिद्ध भयो, सो वह यह पद

राय श्रीरनछोड़ दीज्यो द्वारका को बास।।
संख चक्र गदा पद्य दरसें मिटै जम की त्रास।।
सकल तीरथ गोमती के राहत नित निवास।।
संष झालर झांझ बाजै सदा सुष की रास।।
तज्यो देसरु बेसहू तजि तज्यो राना राज।।
दास मीरा सरन आवत तुम्हैं अब सब लाज।।

मीरां के काव्य से भी मीरां की वृंदावन यात्रा के पुष्ट प्रमाण मिलते है।

आली म्हांणे लागां बृनदाबण णीकां।
घर घर तुड़सी इाकर पूजां दरसण गोविंद जी का।
निरमड़ नीर बह्य जमणा का भोजण दूध दह्यां कां।
रतण सिंघासण आप बिराज्यां मुगत धरयां तुड़शी कां।
कुंजण कुंजण फिरयां सांवरा सबद सुरणया मुरड़ी कां।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर भजण बिणा नर फीकां।।[66]

भक्ति से सम्बंधित मीरां के उद्देश्य वृंदावन के वैष्णव भक्तों से भिन्न थे अतः उसके लिए वृंदावन का वातावरण अरुचिपूर्ण था। सुरक्षा की दृष्टि से भी अधिक समय तक मीरां के लिए वृंदावन रुके रहना अनुपयुक्त था क्योंकि रणथम्भौर दुर्ग वृंदावन से कुछ ही दूरी पर था जहां घड़ चौहानों का प्रभाव अब भी शेष था। नाभादास की भक्तमाल पर प्रियादास कृत भक्तिरसबोधिनी टीका में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राना की मलीन मति देख कर ही मीरां ने वृंदावन छोड़ कर द्वारका बस जाने का निर्णय लिया था।

राना की मलीन मति, देखि, बसी द्वारावति,
रति गिरिधारीला, नित ही लड़ाइयै।

अतः परिस्थितियों को समझते हुए मीरां ने वृंदावन से द्वारका जाने की निश्चय किया।

द्वारकावास एवं द्वारका के पश्चात्

द्वारका मीरां के लिए अधिक सुरक्षित था जो मेवाड़ से दूर होने के साथ साथ मुस्लिम शासकों के साम्राज्य की सीमाओं से घिरा हुआ था। ये मुस्लिम शासक मेवाड़ से शत्रुता का भाव रखते थे अतः मेवाड़ के सैनिकों के लिए गुजरात की सीमाओं का अतिक्रमण सरल न था। मीरां यहां सुरक्षित थी अतः उसने द्वारका को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाने का निश्चय किया। मीरां के द्वारकावास से सम्बंधित हमें अनेक पुष्ट प्रमाण मिलते है।[67] साथ ही ऐसी ढेरों किंवदंतियां भी मिलती हैं जो मीरां के द्वारकावास से सम्बंधित हैं। नाभादास की भक्तमाल पर प्रियादासकृत 'भक्तिरसबोधिनी' टीका,[68] वैष्णवदास कृत 'भक्तमाल का दृष्टांत'[69] राघौदास की भक्तमाल पर छत्रदास की टीका[70] तथा नागरीदासकृत सिंगार सागर के अंतर्गत 'पद प्रसंग माला[71] में मीरां के द्वारकावास से सम्बंधित विवरण मिलते हैं।

कहा जाता है कि मीरां जब द्वारका में थी तब मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा तथा मीरां के देवर उदयसिंह ने मीरां को पुनः मेवाड़ लौट आने का आग्रह करने के लिए अपने जागीरदारों एवं पुरोहितों को द्वारका भेजा था। मीरां पुनः मेवाड़ लौटना नहीं चाहती थी अतः प्रचलित किंवदंतियों के अनुसार वह द्वारकाधीश कृष्ण की मूर्ति में लीन हो गयी।[72]

प्रियादास ने 'भक्तिरसबोधनी टीका' में मीरां को पुनः मेवाड़ लौट आने का आग्रह करने के लिए महाराणा द्वारा भेजे गये ब्राह्मणों तथा मीरां के द्वारकाधीश कृष्ण की मूर्ति में लीन होने का कथन लिखा है। जब कि वैष्णवदास ने भक्तमाल का दृष्टांत में मीरां के कृष्ण की मूर्ति में लीन होने की बात कही है। प्रियादास के समान नागरीदास ने भी पद प्रसंग माला के अंतर्गत महाराणा द्वारा मीरां को पुनः मेवाड़ लौट आने का आग्रह करने के लिए भेजे गये पुरोहितों एवं मीरां के द्वारकाधीश कृष्ण की मूर्ति में विलीनीकरण की बात लिखी है। मीरां के चित्तौड़गढ़ छोड़ने के साथ ही मेवाड़ की परिस्थितियां बहुत कुछ बदल चुकी थी। किशोरवय के महाराणा विक्रमादित्य को मार कर महाराणा सांगा

के बड़े भाई पृथ्वीराज पासवान का पुत्र बनवीर चित्तौड़ का नया महाराणा बन गया था। कुछ वर्षों पश्चात ही मेवाड़ के सामंतों द्वारा महाराणा बनवीर को मार दिया गया[73] एवं वयस्क हो चुके उदयसिंह को मेवाड़ का नया महाराणा बनाया। इसी समय चित्तौड़ से उदयपुर में राजधानी परिवर्तन के साथ ही मेवाड़ में भयंकर अकाल पड़ा एवं मेवाड़ की जनता त्राहिमाम करने लगी। अकबर के नेतृत्व में मेवाड़ पर मुगलों के लगातार आक्रमण हो रहे थे तथा मेवाड़ की जनता में कमजोर शासकों के विरुद्ध असंतोष फैल रहा था। इस समय मेवाड़ को मेड़तियां राठौड़ों से समर्थन की अत्यंत आवश्यकता थी। हाड़ा चौहानों तथा मेड़तियां राठौड़ों के मध्य व्याप्त पुरानी प्रतिद्वंद्विता को समाप्त करने तथा मीरां की लोकप्रियता को शासन के पक्ष में भुनाने के लिए यदि मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह ने मीरां को पुनः मेवाड़ लौट आने का आग्रह करने के लिए पुरोहितों एवं जागीरदारों को भेजा हो तो विशेष आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

द्वारका नगर में प्रचलित एक किंवदंती के अनुसार द्वारका के बघेर जाति के लोगों ने मीरां की महाराणा के लोगों द्वारा सम्भावित हत्या, उसकी मृत्यु अथवा द्वारका से मीरां के पलायन की आशंका से व्यथित होकर मेवाड़ की लौटती सेना पर भयंकर आक्रमण किये थे।

द्वारका में महाराणा उदयसिंह द्वारा भेजे गये लोगों ने यदि मीरां की हत्या नहीं की तो द्वारका के पश्चात् आखिर मीरां गयी कहां? कुछ विद्वानों का मानना है कि द्वारका से मीरां दक्षिण भारत चली गयी। इस मत के पक्ष में वे दक्षिण भारत की अनेक स्थानीय भाषाओं में पाये जाने वाले मीरां के पदों का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। द्वारकावास के पश्चात मीरां के जीवन की गुत्थी सुलझाते हुए परिता मुक्ता लिखती हैं क्या मीरां राणा द्वारा भेजे गये आदमियों द्वारा बदला लेने की नीयत से मार दी गयी थी? यह इतना उपयुक्त सुझाव नहीं है जैसा कि दिखायी देता है। राजपूती आन में कुल वैरियों का पीछा समय एवं भौगोलिक सीमाओं के पार किया जाता है। एक विचार निशस्त्र व्यक्तियों के प्रति कायरतापूर्ण हिंसा एवं शस्त्रों के उपयोग न करने की वचनबद्धता है। यद्यपि राजपूतों का इतिहास निरीह प्राणियों के प्रति ऐसी कायरतापूर्ण एवं विश्वासघाती घटनाओं से भरा पड़ा है। (टॉड, 1971:858,539) योजनाबद्ध हत्या की किंवदंतियां भी प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। (एम.जी., 1908 :132) बहरहाल मीरां ने उदयपुर लौटने से इनकार कर दिया। यह उसके आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव का प्रश्न था एवं साथ ही साथ थोड़ा भय का भी। उसने जीवन को उस स्थान से आत्मसातीकृत करने से इनकार कर दिया। मीरां की हत्या से क्या तात्पर्य है? इसका अर्थ एक ऐसी शक्ति के हाथों उसकी हत्या जिसका उसने तिरस्कार किया एवं जिसके विरुद्ध वह दृढ़तापूर्वक खड़ी थी। अर्थात एक तुच्छ प्राणी की गौरवपूर्ण विजय जो उसके विरोधी खेमे में था।

मीरां की मृत्यु वस्तुतः तारण में भक्ति की असमर्थता एवं बदला लेने की तीव्र प्रवृत्ति का रूपांतरण ही जाहिर करेगी। यद्यपि सत्संगियों का मीरां की उस शक्ति में पूर्ण विश्वास था जो उन्हें राणा की क्रूरता के विरुद्ध टिकाये रखती थी। उनके लिए मीरां की हत्या कर दिये जाने की आशंका का भी प्रश्न नहीं था। मीरां को इस संसार से विदा करने का निर्मित विचार एवं उसे शक्ति संघर्ष की राजनीति के धरातल पर अवतरित करना जिससे सतसंगी बचना चाहते थे का प्रश्न उलझन पैदा करने वाला था। इस प्रकार मीरां भक्ति के इस फलक पर राजनीतिक प्रभुसत्ता, उच्च नैतिकता एवं आध्यात्मिकता द्वारा समाप्त कर दी गयी।

क्या हम हमारे ऐतिहासिक चरित्र को समय से पहले ही मार देना चाहते हैं ताकि उसके गौरव की रक्षा उदात्तता में संशोधन के साथ की जा सके? क्या यह जरूरी है कि स्वतंत्रता की प्रतीक मीरां शहीद बन जाये? मैंने इस प्रश्न के साथ लम्बी जद्दोजहद की एवं अंत में मैंने मीरां को सतसंगियों

के बीच जीवित छोड़ दिया, बिना किसी आत्मघात अथवा शत्रुओं द्वारा हत्या के, यात्रा करते हुए, गाते हुए उस समुदाय के मध्य जो समाज के हाशिए पर था, यह ऐसा उदार समुदाय था जहां मीरां को शरण मिली तथा जहां वर्चस्वशील समुदाय की समस्त वर्जनाओं को अस्वीकृत किया गया।

इस बात का प्रमाण है कि द्वारका के मंदिर से बाहर की तरफ एक भूमिगत रास्ता है। जब राणा के प्रतिनिधि मीरां से मिले तब उसका वहां से भागना बहुत मुश्किल नहीं रहा होगा एवं बाद में वह गाते हुए यात्रियों के दल में सम्मिलित हो गयी होगी। इस प्रकार मीरां हाथ में इकतारा लेकर यात्रा करती रही। स्वयं की स्वतंत्रता की स्वीकार्यता एवं दूसरे लोगों को प्रेरणा देते हुए, उसके गीत दमित एवं पीडित जनता तक सतत पहुचते रहे, स्वतंत्रता के संदेश का आह्वान करते हुए।''[74]

द्वारका नगर एवं गुजरात में प्रचलित एक मान्यता के अनुसार मीरां का द्वारकावास चार दशकों से भी अधिक समय का था। उक्त मान्यता पर विश्वास करें तो हमें मीरां का जीवनकाल 80 वर्षों से भी अधिक मानना पड़ेगा। ऐसा होना सम्भव है, यह अविश्वसनीय नहीं है। ऐसी स्थिति में मीरां एवं बादरशाह अकबर को समकालीन मानना पड़ेगा। प्रियादास की भक्तिरसबोधिनी टीका में तानसेन, अकबर एवं मीरां भेंट का प्रसंग दिया गया है।[75] वैष्णव दास प्रणीत भक्तमाल के दृष्टांत में तानसेन अकबर एवं मीरां की भेंट की बात स्वीकार की गयी है।[76] राघौदास की भक्तमाल पर छत्रदास द्वारा लिखी टीका में भी ऐसी ही अभिव्यक्ति है।[77]

अकबर द्वारा मीरां के चचेरे भाई जयमल एवं उसके सहयोगी कल्ला की मूर्तियों को फतहपुर सीकरी स्थित दुर्ग के द्वार पर स्थापित करवाना मात्र संयोग नहीं माना जा सकता। मीरां एवं अकबर में निश्चय की कोई सम्बंध एवं समानता रही होगी अन्यथा वे दोनों ही सती प्रथा के विरोधी न होते।

गुजराती साहित्य के समीक्षक विद्वान निरंजन भगत ने हरमान ग्योत्स के निष्कर्ष एवं प्रचलित किंवदंतियों के आधार पर मीरां व अकबर के मध्य व्याप्त कालगत शून्य को भरने का प्रयास किया है एवं लिखा है *''मीरां हृदयमां द्वारकात्यागनां निर्णय साथे मंदिरना गर्भद्वारमां ऐकांतमां संन्यासिनीनां वस्त्रो द्वारकामां पोतानुं पवनकार्य पूर्ण भयु. प्रतीक रूपे कृष्णनी मूर्तिनी समक्ष अर्पण करीने अज्ञातवासमां वस्त्रो धारण करीने द्वारकात्याग कर्यो अज्ञातवास, दक्षिण भारत यात्रा 1546 थी 1556 लगी, दसे वर्ष लगी, मीरां चैतन्य अने वल्लभाचार्यानी जेम, दक्षिण भारतनी, दक्षिणमारतयां तीर्थस्थानोनी, रामानंद, रामानुज, मध्व अने निम्बार्क तथा अनेक संतों नी जन्मभूमिनी यात्राए होय अज्ञातवास, उत्तर भारतयात्रा 1556 नी आसपास मीरांए पूर्व भातनां तीर्थस्थानोनी, जयदेव, विधापति, चंडीदास अने चैतन्यनी जन्मभूमिनी यात्रानो आरम्भ कार्यो होय अने ऐ प्रथम बंधोगढ़मां आबी ने वसी होय, बंधोगढ़नो राज रामचंद्र वघेला कविता कला रसिक हतो ऐने तानसेन ने राज्यागायकनु पद अर्पण कर्यु हतुं अहीं तानसेन अने मीरांनु मिलन प्यु होय. वाणा विचकूट बंधोगढ़नी निकट हतुं चित्रकूरमां तुलसीघासनी साधनावो आ समय हतो। अही युनान तुलसीदास अने मध्य वयती मीरांनु मिलन क्युं होय। अंते मीरां अंबरमां आवी ने बसी हो पछी तरत ज अकबर अनी मीसेनु मिलनथयु होय. जनश्रुति में ऐम छे के तानसेन, तुलसीदास, मानसिंह, बीरबलअने अकबर साथेमीरांनुं मिलय थयुं हतुं... जनश्रुतियां ऐम छे के मीरां दीर्घायुशी हती अने 65-67 वर्षनी वये ऐनु अवसान थयुं हतुं. ऐथी ज 1546 मां नहीं पाण 1563-64 यां मीरांनु अवसान थयु होय.*[78]

निरंजन भगत के अनुसार द्वारकात्याग के पश्चात् मीरां दक्षिण भारत गयी। उनके अनुसार यह मीरां के अज्ञातवास का समय था जहां पर रामानुजन, निम्बार्क, महव आदि के जन्मस्थलों पर गयी। दक्षिण से लौट कर मीरां अम्बेर आयी एवं इसी समय वह तुलसीदास, अकबर एवं बीरबल से मिली। उनका यह भी मानना है कि मीरां की प्रेरणा से ही अम्बेर नरेश ने अपनी बहन का विवाह

अकबर से किया था। निरंजन भगत मीरां द्वारा चैतन्य की जन्मभूमि बंगदेश की यात्रा करने की बात भी लिखते हैं। निरंजन भगत की सारी बातें सही नहीं हों परंतु जिन किंवदंतियों के आधार पर उन्होंने अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं उनमें सचाई का थोड़ा सा अंश तो अवश्य विद्यमान होगा।

द्वारका के पश्चात् मीरां कहां गयी यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है किन्तु इतना तय है कि द्वारका में महाराणा उदयसिंह द्वारा भेजे गये लोगों ने मीरां की हत्या कर दी थी अथवा मीरां द्वारका से भी आगे इतनी दूर चली गयी थी जहां चाह कर भी महाराणा के सैनिकों के लिए पहुंचना आसान नहीं था। द्वारका में प्रचलित किंवदंतियों के अनुसार मीरां बघेर जाति के लोगों की सहायता से भगवान कृष्ण की मूर्ति लेकर अरब सागर के गहरे समुद्र में विलीन हो गयी थी। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि बघेर जाति के लोग अरब सागर में समुद्री लुटेरों के रूप में लूटपाट का काम करते थे। बघेर जाति के लोग मीरां का नाम बहुत सम्मान के साथ याद करते हैं।

मीरां के जीवन से सम्बंधित स्रोत सामग्री : मीरां जैसे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के जीवन से सम्बंधित स्रोत सामग्री का लगभग अभाव पाया जाता है तथापि हमारे पास जो स्रोत सामग्री उपलब्ध है उसकी चर्चा कर लेना प्रासंगिक होगा। मीरां के जीवन से सम्बंधित स्रोत सामग्री का बेहद संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है

नाभादास एवं अन्य भक्त कवियों के भक्तमाल : भक्तमालयुगीन भक्तों के परिचयात्मक विवरण होते थे। लोक ने मीरां को कृष्णभक्त के रूप में स्वीकार किया अतः इन भक्तमालों में मीरां का विवरण इसी रूप में मिलता है। जयपुर के निकट गलता नामक रमणीय स्थान पर नाभादास रहते थे। वे संवत 1657 के लगभग वर्तमान थे और गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु के बहुत पीछे तक जीवित रहे। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ भक्तमाल संवत् 1642 के पीछे बना और सं. 1769 में प्रियादास ने उसकी टीका लिखी। इस ग्रंथ में 200 भक्तों के चमत्कारपूर्ण चरित्र 316 छप्पयों में लिख गये हैं। इन चरित्रों में पूर्ण जीवनवृत्त नहीं है, केवल भक्ति की महिमासूचक बातें लिख गये हैं। इनका उद्देश्य भक्तों के प्रति जनता में पूज्यबुद्धि का प्रचार जान पड़ता है। नाभादास के भक्तमाल में मीरां से सम्बंधित छप्पय इस प्रकार है

लोकलाजकुलश्रृंखलातजिमीरागिरिधरभजी।
सदृश गोपिकीप्रेमप्रगट कलियुगहिदिखायो।
नरअंकुशअतिनिडररसिक यशरसनागायो
दुष्टनदोषविचारमृत्युकोउद्यमकीयो।
बारनबां कोभयोगरलअमृतज्योंपीयो।
भक्तनिशानबजायकेकाहूतेनाहिंनलजी।

नाभादास के छप्पय में मीरां का विद्रोही चरित्र उभर कर सामने आता है। छप्पय से मीरां एवं महाराणा परिवार के आपसी संघर्ष का भी ज्ञान होता है।

नाभादास कृति पर प्रियादास द्वारा लिखी गयी टीका में विषपान की घटना, सम्राट अकबर एवं मीरां के भेट का प्रसंग एवं द्वारका में रणछोड़जी की मूर्ति में मीरां के विलीनीकरण का जिक्र है।[80] इस समय तक मीरां के साथ अनेक किंवदंतियां जुड़ चुकी थीं एवं मीरां के इर्द गिर्द अनेक चमत्कारिक घटनाओं का तानाबाना हुआ बुना जाने लगा था। वैष्णवदासजी प्रियादासजी के पौत्र थे जिन्होंने प्रियादास की टीका का भावार्थ किया अतः मीरां के सम्बंध में वे घटनाएं जिनका उल्लेख प्रियादास

की कृति में मिलता है, एक बार पुनः वैष्णवदास की कृति में मिल जाता है। सम्वत् 1717 में राघौदास ने भक्तमाल की रचना की जो मूलतः नाभादासजी की भक्तमाल पर आधारित है। तत्पश्चात् राघौदास की भक्तमाल पर छत्रदास ने टीका लिखी। इन दोनों ही ग्रंथों में मीरां का उल्लेख है।

वल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णव भक्तों का वार्ता साहित्य : वार्ता साहित्य में 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' एवं 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में मीरां का उल्लेख मिलता है। वार्ता साहित्य मूलतः गद्य ग्रंथ है एवं इनके रचनाकार भक्तमालों के रचनाकारों के समान भक्त थे। वार्ताकारों की चिन्ता का विषय भक्त के रूप में मीरां की भक्ति एवं उसका स्वरूप था। इन वार्ता ग्रंथों का सम्बंध वल्लभ सम्प्रदाय से है। ऐसा अनुमान होता है कि वल्लभ सम्प्रदाय मीरां एवं उसकी भक्ति के स्वरूप को नापसंद करता था। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में मीरां से सम्बंधित तीन प्रसंग पाये जाते हैं। गोविन्द दुबे साचोरा ब्राह्मण तिनकी वार्ता, पुरोहित रामदास तिनकी वार्ता एवं कृष्णदास अधिकारी तिनकी वार्ता।[81] दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता में मीरां का उल्लेख 'बाल विधवा अजब कुंवरि तिनकी वार्ता' के प्रसंग में है। यह वार्ता ग्रंथ अपने पूर्ववर्ती वार्ताग्रंथों की अपेक्षा मीरां के प्रति कम कटु हैं।[82] ऐसा अनुमान होता है कि इस समय तक मीरां को पर्याप्त लोक स्वीकृति मिल चुकी थी अतः वल्लभ सम्प्रदाय ने लोकमत का सम्मान करना ही उचित समझा।

मध्यकालीन मेवाड़ एवं मारवाड़ में लिखे गये ख्यात ग्रंथ : मध्यकालीन राजपूताने में ख्यात ग्रंथ लिखने की परम्परा थी। ख्यात ग्रंथ राजा अथवा राज परिवार की प्रशंसा में लिखे जाने वाले ग्रंथ थे। ख्यात ग्रंथों में मीरां के जीवन से सम्बंधित सीधे सीधे जानकारी नहीं मिलती है तथापि मीरांकालीन समाज, राजनीति एवं संस्कृति को समझने में ये ग्रंथ अत्यंत सहायक सिद्ध हुए हैं। इन ग्रंथों से मेवाड़ एवं मेड़ता के राज परिवारों के सम्बंध में विस्तृत जानकारियां प्राप्त होती हैं जिनका निकट सम्बंध मीरां से था। 'मुंहता नैणसीरी ख्यात' में चित्तौड़ राजघराने का उल्लेख 'सीसोदियांरी ख्यात' के अंतर्गत मिलता है।[83] 'बांकीदासरी ख्यात' में दो प्रकीर्णन 'राठौड़ारी वातां' एवं 'गहलोतारी वातां' दिये गये हैं। 'राठौड़ारी वातां' का सम्बंध मारवाड़ [84] एवं 'गहलोतांरी वातां' का सम्बंध मेवाड़ के इतिहास [85] से है जिसका देश व काल मीरां का युग है।

नागरीदास का नागर समुच्चय एवं सुखराण द्वारा रचित मीरांबाई री परची : नागरीदास के नागर समुच्चय एवं सुखसागर द्वारा रचित मीरांबाई री परची में मीरां का विस्तृत विवरण दिया गया है। नागरीदास का वास्तविक नाम सावंत सिंह था जो किशनगढ़ नरेश राजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र एवं राजस्थानी व ब्रज भाषा का अच्छा ज्ञाता था। सुखसारण का सम्बंध रामस्नेही सम्प्रदाय से था। इसने 215 पदों में मीरां का जीवन चरित्र इंगित किया है। इन दोनों ही कृतिकारों के ग्रंथों में मीरां से सम्बंधित उन अनेक घटनाओं का वर्णन मिलता है जो वर्तमान में किंवदंतियां बन चुकी हैं। 18वीं शदी के उत्तरार्द्ध की रचनाएं होकर भी मीरां के अध्ययन में ये कृतियां विशेष भूमिका अदा करती है।

किंवदंतियां, प्रचलित परम्पराएं एवं रीति रिवाज : भक्त कवियों के साथ किंवदंतियां अनेक रूपों में जुड़ी होती हैं। मीरां का जीवन भी इसका अपवाद नहीं है। मीरां के जीवन के अध्ययन में किंवदंतियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। यद्यपि किंवदंतियों, प्रचलित परम्पराओं और रीति रिवाजों के आधार पर इतिहास का उद्घाटन कठिन कर्म है तथापि इतिहास निर्माण में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।[86] किंवदंतियों के आधार

पर किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व का चरित्र निर्माण करते समय इतिहास बुद्धि का होना आवश्यक है। मीरां के जीवन के सम्बंध में प्रचलित किंवदंतियां हमें मीरां के संदर्भ में महत्वपूर्ण जानकारियां उपलब्ध कराती हैं। अतः मीरां एवं तत्कालीन समाज के अध्ययन में किंवदंतियों का महत्व स्वतःसिद्ध है।

पुरातात्विक स्रोत सामग्री : लिखित स्रोत सामग्री एवं किंवदंतियां व्यक्तिनिष्ठता के कारण प्रायः संदेह के घेरे में रहती हैं, वहीं पुरातात्विक स्रोत सामग्री अधिक विश्वसनीय एवं प्रामाणिक होती है। मीरां के आलोचकों ने पुरातात्विक स्रोत सामग्री का बेहद सीमित उपयोग किया है, परंतु प्रस्तुत शोध प्रबंध के निष्कर्ष पुरातात्विक स्रोत सामग्री के गहन अध्ययन का समन्वित नतीजा हैं। मीरांयुगीन एवं मीरां के जीवन से जुड़े हुए मंदिर, महल, दुर्ग, मूर्तियां सभी मीरां एवं उसके युग के सम्बंध में महत्वपूर्ण जानकारियां प्रदान करते हैं।[87] चित्तौड़गढ़ के अनेक मंदिर एवं महल मीरांयुग के साक्षी रहे हैं। दुर्ग स्थित ये मंदिर, महल, तालाब मीरांयुगीन समाज एवं आस्थाओं की कहानी कहते प्रतीत होते हैं। पुरातात्विक स्रोत सामग्री के रूप में चित्तौड़ दुर्ग स्थित मीरांमहल एवं महाराणा महल जिसे वर्तमान में कुम्भामहल कहा जाता है की मीरां के अध्ययन में विशिष्ट भूमिका है। वृंदावन एवं द्वारका स्थित मीरांयुगीन मंदिर खंडित एवं जर्जर हो चुके हैं तथापि ये मंदिर युगीन साक्ष्य तो है ही! द्वारका स्थित रुक्मणी मंदिर एवं चित्तौड़गढ़ स्थित मंदिरों की स्थापत्य कला में आश्चर्यजनक सभ्यता नजर आती है। मीरां एवं मीरांयुग के अध्ययन में मीरां से जुड़े हुए इन समस्त स्मारकों का विशिष्ट महत्व है।

मीरां के नाम पर प्रचलित पद एवं पांडुलिपियां : उत्तर से लेकर दक्षिण एवं पूर्व से लेकर पश्चिम तक पूरे देश में मीरां के नाम पर प्रचलित पदों की लगभग तीन हजार पांडुलिपियां बिखरी पड़ी हैं। ये समस्त हस्तलिखित पांडुलिपियां एवं गुटके मीरां से सम्बंधित महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री है परंतु इनका संग्रहण एवं प्रकाशन चुनौतीपूर्ण है।

फुटकल उल्लेख एवं जीवन चरित्र : युगीन भक्त कवियों के काव्य में मीरां का अनेक स्थान पर उल्लेख पाया जाता है जिसमें से ज्यादातर अप्रामाणिक हैं। जिन जिन भक्त कवियों के काव्य में मीरां का उल्लेख पाया जाता है उनमें प्रमुख हैं कबीर, सेना, सूरदास, नरसिंह मेहता, हरिराम व्यास, कवि विष्णुदास एवं संगीतकार तानसेन। तुकाराम, एकनाथ, निरावा महाराज, नेशीमाधवदास के काव्य में मीरां का उल्लेख है परंतु यहां इन समस्त मीरां सम्बंधी उल्लेखों का विस्तार से वर्णन करना सम्भव नहीं है। गुजराती एवं मराठी साहित्य में मीरां के अलग अलग जीवन चरित्र पाये गये हैं। गुजराती में लिखित मीरां चरित्र के लेखक दयाराम हैं जो मध्यकालीन गुजराती साहित्य के 'अंतिम रसमेघ' कहे जाते हैं।[88] सीपीनामा कृत चरित्र मीरांबाई मराठी भाषा में है।[89]

परवर्ती इतिहास ग्रंथ : कर्नल हॉड विरचित Annals and Antiquities of Rajasthan, फॉर्ब्स की रासमाला, श्यामादास के 'वीरविनोद' में मीरां का उल्लेख पाया जाता है परंतु ये सभी इतिहास ग्रंथ आधुनिक काल से सम्बंधित हैं। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहासकारों, गार्सा द तासी, शिवसिंह सेंगर एवं जॉर्ज गियर्सन ने मीरां के सम्बंध में लिखा है अतः इन इतिहासकारों का जिक्र करना प्रासंगिक है।

लोकगीत एवं भजन : मीरां सम्बंधी उपलब्ध पांडुलिपियों एवं लिखित स्रोत सामग्री से कहीं ज्यादा मीरां लोकगीतों एवं लोकभजनों के रग रग में समायी हुई है परंतु दुर्भाग्यवश मीरां के इन लोकगीतों

एवं लोकभजनों का एक भी व्यवस्थित संग्रह उपलब्ध नहीं है। मेवाड़ एवं मारवाड़ प्रदेश के मंदिरों एवं देवालयों में गाये जाने वाले भजनों में मीरां के भजनों का विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार मेवाड़ प्रदेश के आदिवासी भीलों ने मीरां के भजनों एवं गीतों को अनेक वर्षों से संजो कर रखा है एवं उन्हें अपने दिलों में बसाया है। भील लोकगीतों एवं भजनों में मीरां का जो चारित्रिक रूप मिलता है वह मंदिरों एवं देवालयों के भजनों व गीतों में मिलने वाले मीरां के चारित्रिक रूप से कहीं अधिक प्रगतिशील है। कभी कभी ऐसा महसूस होता है कि भील लोकगीतों एवं लोकभजनों में मिलने वाली मीरां ही वास्तविक मीरां है न कि ब्राह्मण भक्त कवियों द्वारा निर्मित की गयी मीरां। जिसे मीरां का आलोचक भ्रमवश वास्तविक समझता है।

अन्य स्फुट उल्लेख : राधाबाई नामक मराठी महिला के 'मीरामहात्म्य' के संत हरिदास के पद में मीरां का उल्लेख पाया गया है। रामदान लालस ने 'भीम' प्रकाश की रचना की थी। रामदान ने सांगा के अन्य पुत्रों के साथ इस ग्रंथ में मीरां का उल्लेख किया है। कुंवरी दासी नामक कवयित्री के दोहों में मीरां से सम्बंधित कुछ दोहे मिलते हैं। गरीबदास की बानी, जसवंत की प्रभाती, एक कविता मीरां जंभाजी संवाद, संस्कृत ग्रंथ 'भक्ति महात्म्य चरित्रा' एवं नंददास ने मीरां से सम्बंधित 'बारहमासा' की रचना की है। जिन अन्य कवियों ने यहां वहां मीरा का उल्लेख किया है उनमें चरणदास, दयादास, जनलिछमन, सुंदरदास कायस्थ, छोटमदास, प्रीणधन, हरिदास दर्जी, एवं बख्तावर का नाम लिया जा सकता है। जेतराम ने मीरां सम्बंधी भजन लिखे हैं।[90]

संदर्भ

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 80
2. 'मेरतो' जन्मभूमि, भूमि हित मैन लगे पगे गिरिधारीलाल पिता ही के धाम में। राना कै सगाई भई, करी ब्याह सामा नयी गयी मति बूड़ि, वा रंगीले घनश्याम मैं। (प्रियादास, श्री भक्तमाल, पृ. 714)
3. मात पिता जनमीं पुर मेड़त, प्रीति लगी हरि पीहर मांही।
   रांनहि जाइ सगाइ करावत, ब्याहन आवत भावत नाहीं
   फेर फिरावत वा न सुहावत, यौं मन मैं पति साथि न जांहीं।
   देन लगे पित मात अभूषन, नैंन भरे जल, मोहि नचांही।। (चतुरदास, भक्तमाल, पृ. 99)
4. मेड़त्यां कुल मुरधरा मझ, अधपत्यां आधार। मगन मूरत मांहि निरतन, लई मीरां लार। तौ रिझावर जी रिझवार, भगवत गावतां रिझवार। (बह्मदास, भगतमाल, पृ. 45)
5. मीरां जनमी मेड़तै, भक्ति कारण कलू काल। विनां बजायां वाजिया, म्हैलां सोवन थाल। रतन राव दूदा को जायो, जिण एक कुड़की नगर बसायो। जिण घर जनमी मीरां बाई, बैन अनौपां ओर न भाई। (सुखसारण, मीरांबाई री परची, पृ. 16)
6. श्यामलदास, वीर विनोद (भाग 2), पृ. 1
7. मेवाड़ के महकमे तवारीख में भी जो महामहोपाध्याय कविराजा सावलदासजी के अधिकार में था मीरांबाई का पूरा हाल मोजूद नहीं है 1 दफै कविराजा सहिब से भी बहुत सी पूछताछ की थी। जिसका जवाब उन्होंने सिर्फ इतना दिया कि ''मीरांबाई का कोई सही हाल सिवाय इसके हमको मालूम न हुआ कि वे रावदूदाजी के पोते मेड़तिया राठोड़ रतनसिंघ की बेटी थीं।''(मुंशी देवी प्रसाद, मीरांबाई का जीवन चरित्र, पृ. 2)
8. ''रतनसिंह जी की 1 इकलौती लड़की यही मीरांबाई थीं जो गांव कुड़की में पैदा हुआ थीं मगर यह अभी बच्ची ही थीं किमां मर गयी दूदाजी ने यह हाल सुन कर मीरांबाई को अपने पास बुला लिया और परवरिश की।''
9. वही, पृ. 5
10. हरविलास सारडा, महाराणा सांगा, पृ.66

11. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 359
12. पुरोहित हरिनारायण, मीरां वृहत्पदावली, पृ. 3
13. चांदावत, मेड़तिया राठौड़ों की एक शाखा है।
14. पुरोहित हरिनारायण, मीरां वृहत्पदावली, पृ.02
15. (अ) मीरां बाई की माता का नाम 'वीरकुं वरि' था। नाना का नाम 'सुलतान सिंहजी' था। ये जाति गोत के झाला राजपूत 'गोगूंदा' गांव में ब्याहे थे। (पुरोहित हरिनारायण, मीरां वृहत्पदावली, पृ. 3)
    (ब) रत्नसिंह विशेष कर कुड़की में रहा करते थे। लोगों की इन पर बड़ी श्रद्धा थी। इनका विवाह झाला राजपूत सुरतानसिंह की कन्या वुरकुंवरी में हुआ था। रत्नसिंह की यह धर्मपत्नी बड़ी सुशीला, साध्वी तथा भक्ति परायण थी। (स्वामी आनंद स्वरूप, मीरां सुधा सिन्धु, पृ.08)
16. मीरां महोत्सव 96 मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़ पृ. 12
17. मीरा महोत्सव 96, मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़, पृ. 12
18. डॉ. पिताम्बरदत्त बड़थ्वाल (भाग 4 अंक 3 वर्ष 1939 पृ. 211-13
19. पुरोहित हरिनारायण, 'संतवाणी' (वर्ष 1, अंक 11) पृ. 24-42
20. मीरा स्मृति ग्रंथ, बंगीय हिन्दी परिषद्, पृ. 39-45
21. स्वामी आनंद स्वरूप, मीरां सुधा सिन्धु, पृ. 8
22. केशवराम काशीराम शास्त्री, मीरांनां पदों (गुजराती), पृ. 7
23. डॉ. गोपीनाथ शर्मा, भक्त मीरांबाई, पृ. 10
24. मीरा महोत्सव 96, मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़, पृ. 11
25. असल में हुआ यह कि बाबर की विजय और महाराणा सांगा के निधन के साथ एक ओर नये मुसलमान शासकों की तलवार का आतंक फैला तो दूसरी ओर सूफी संतों के इश्क हकीकी और प्रेम की पीर का आकर्षण बढ़ा। इन दोनों के साथ अनेक अरबी फारसी शब्द राजस्थानी जीवन में प्रयोग में प्रवेश कर गये। 'मीरां' इन्हीं में से एक है। सूफियों में 'मीरां' शब्द काफी लोकप्रिय था। अनेक सूफी संत 'मीरां शाह' या 'मीरां शम्शुलहक' जैसे नामों से जाने जाते थे। मीरां का मूल अर्थ तो 'मीर, अमीर या सरदार' है, पर मीरां 'खुदा' का पर्याय भी है, इसलिए यह सूफियों और संतों का प्रिय शब्द बना रहा। संतों ने भी इसी अर्थ में इसे प्रचारित किया।
26. बड़वा देवीदान कृत ख्यात डॉ. देवीलाल पालीवाल (सं.), पृ. 6
27. बड़वा देवीदान कृत ख्यात डॉ. देवीलाल पालीवाल (सं.), पृ. 8
28. बड़वा देवीदान कृत ख्यात डॉ. देवीलाल पालीवाल (सं.), पृ. 10
29. वरसांणा की ब्राह्मणी, तज्यो प्रीत सुं प्रांन। सो मीरां भई दूसरी, अग्या किसन की मांन। (सुखसारण, मीरांबाई री परची, पृ. 23
30. मीरांबाई के लिए कहते हैं कि वह या तो राधा, ललिता, चम्पकलता अथवा किसी गोपी का अवतार थी।... किसी बरसाने की गोपी का विवाह नंदगां व से कृष्ण सखा किसी गोप से हुआ था। वह गोप जब गौना लेने बरसाने गया तब उस गोपी की माता ने उपदेश दिया कि सावधान रहना बेटी, नंदगां व में कृष्ण कन्हैया बड़ा ही नटखट चंचल है।... इसलिये उससे बचे रहना।... कृष्ण ने उसे प्रथमवार मुखावलोकन की प्रथानुसार कुछ भेंट देने के लिये कह कर मुख देखने की इच्छा प्रकट की; परंतु वह टस से मस न हुई। इस पर यह कहते हुए कि ''तू कहा बतावेगी तू ही मेरो मूंडो देखेगी'' रथ से कूद पड़े। कुछ दिनों बाद इंद्र ने कोप कर बंज को बहाने के हेतु प्रलय ढहायात ब श्रीकृष्ण चंद्र ने गिरिराज को अपनी अंगुली पर उठाया और अत्यंत व्याकुल होकर गोप, गोपी, गौवें आदि सबों ने दोड़ दौड़ कर गिरिराज की छाया में आश्रय लिया तब... अन्यान्य गोप बंधुओं की भांति उस बरसाने वाली गोपी की भी लज्जा न रह सकी और वह माता की शिक्षा भूल गयी और... उसकी आंखे इधर उधर देखती हुई कृष्ण पर जा लगी और सहज ही उसके मन में विचार परम्परा होने लगी... क्या उसी का मुंह देखने के लिये मां ने निषेध किया था। आहो! कैसी आत्मघातिनी शिक्षा! ...उसे पश्चात्ताप हुआ। ...गोपी का हदय उमड़ आया, हाथ जोड़ कर रोते रोते उसने क्षमा मांगते हुए कहा, हे प्रभो! ठस अबोधिनी के अपराध को भूल जाओ और इसे अपना कर अपने चरणों में स्थान दो। उस गोपी की ओर निहारते हुए श्री कृष्ण भगवान के नेत्रों में चमक आयी और होठों

पर मुसकान छा गयी, तब उसे री मुख द्वारा शब्दोच्चारण सुनायी दिया इस शरीर द्वारा तूने मेरा अपमान किया है इसलिये इस देह से तू मुझको प्राप्त नहीं हो सकती, दूसरे किसी जन्म में अवश्य ही तेरी साधना सफल होगी और तू मुझे प्राप्त होगी। ...कहते हैं वही गोपी मेड़ते में जनम लेकर मीरां बनी। (स्वामी आनंद स्वरूप, मीरां सुधा सिंधु, पृ. 8)

31. पूरब भगत उदै होय आयी, जनमत ही हर सुं लिवलाई। गुडीया गोटा सयां रमावै, मीरां संग सेवा पधरावै।।28।।

32. एक बरात आ रही थी। मीरां ने देखा, बाजे बज रहे थे, कई लोगों के बीच में घोड़े पर एक मनुष्य बैठा था जिसने सुंदर नये नये वस्त्राभूषण पहन रखे थे। मीरां का कौतूहल बढ़ा। उसने माता से पूछा मां यह घोड़े पर बैठा हुआ कौन है? माता ने बड़े लाड़ से बेटी को उत्तर दिया-यह वर है बेटी, यहां के नगर सेठ की कन्या से अभी इसका विवाह होगा। मीरां ने कुछ सोच कर फिर पूछा मेरा बर कौन है मां! माता ने गिरधर गोपाल की ओर अंगुली निर्देश कर सहज कौतुक से विनोद पूर्ण उत्तर दिया तेरे वर ये ही गिरधर गोपाल हैं, क्या ये तुझे पसंद हैं बेटी? ...अब मीरां के चित्त में पूर्ण रूप से जम गया कि गिरधर गोपाल ही उसके पति, प्रियतम और सर्वस्व हैं। उसकी यह भावना दृढ़ होती गयी। श्रीराधा और गोपी की प्रेम भरी लीला कथाओं को सुनते उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि वह भी कोई गोपी अथवा राधा है। वह इसी कल्पना और भावना की सृष्टि में विचरा करती। (सौभाग्य कुंवरी राणावत, मीरा चरित्र पृ. 47)

33. मीरां ने अपने पति भोजराज के निधन को यों माना ऐसे वर को क्या बरूं जो जनमै और मर जाय। वर बरिये एक सांवरौ जासो चुडलो अमर हो जाये।।

34. मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई जा के सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई छांड़ि दयी कुल की कानि, कहा करिहै कोई? संतन संग बैठि बैठि, लोक लाज खोयी अंसुवन जल सींचि सींचि, प्रेम बेलि बोयी अब तो बेलि फैलि गयी, आणंद फल होई दूध की मथनियां बड़े प्रेम से विलोई दधि मथि घृत काढ़ि लियो, डारि दयी छोयी भगत देखि राजी हुयी, जगत देखि रोयी दासि मीरां लाल गिरधर! तरो अब मोही।

35. भांवर परत, मन सांवरे सरूप मांझ
तांवरे सी आवें चलिबे कौ पति ग्राम मैं।
पूछैं पिता माता ''पट आभरन लीजियै जू,''
लोचन भरत नीर कहा काम दाम मैं।।1।।
''देवौ गिरिधारीलाल, जौ निहाल कियौ चाहौ,
और धन माल सब राखियै उठाय कै''।
बेटी अति प्यारी, प्रीति रंग चढ्यो भारी,
रोय मिली महतारी, कही ''लीजियै लढ़ाय कै'' (प्रियादास, श्री भक्तमाल, पृ. 715)

36. 'किण रो पीहर' सासरो, किण री माय मुसाह। एक रांमईया बाहिरो, झूठो माया जाळ।
माता उवाच- बडा घरां रा ओळबा आया मीरां मोय। राम भक्ति भूलावजयौ, जब समझाउं तोय।
मीरां उवाच- ज्यूं अमली के अमल आधारा,
यूं रामइयो प्राण हमारा।।
काई नंदै वंदै दुख पावै,
मोकूं तो रामईयो भावै।
माता उवाच- माय केहै तूं सुण हे बाई,
बडै घरांणौ जुड़ी सगाई।
आ राम भगत किसके मन भावै,
सीसोद्यो सुण बौहौ दुख पावै।
आ भक्ति तूं केम निभासी,'
बेटी घरां पराया जासी।
राजा रांणा धेष चलावै,
जब तेरी केसी बस आवै।
मीरां उवाच- कुण माजी सीसोद्यां सारे,

सबळो धणी सीस है मारै।
कुण है राजा कुण है रांणौ
मारै सिर त्रिभणपत जाणो।
किणी जनम को हूतो दावो,
जब मोकूं' सीसोद्यो ब्यावो।
माता उवाच- हि बाई उतर किम दीजे,
सगां सरीसां वैर वसीजै।
मांगै मांग कहां ते लावां,
तिण कारण मैं तोकूं ब्यावां।
ब्याव न वयां राणो चढ़ आवै,
मिनख भरै अपजस होय जावै।
साचै मन जो सिमरण कीजै,
तो ग्रैहै मै साध किसा नहीं सीजै।
जे अपणो मन साच न होई,
तो ग्रैहै त्याग भावै सो कोई।
बकता उवाच- जब मीरां करणकर गाई,
गद गद रोम नैण जळ छाई।
हू अनाथ अबळा तुज तांई,
तुम बिन ओर हमारे नांही।
जे मोकूं कोई नांव छुड़ासी,
मेरो मरण तुमारी'' हासी।
जन्म जन्म की दासी तुमारी
मत कीज्यौ चरणां सूं न्यारी।
सीसोद्यौ वर माज्यूं कार सन भावै
मात पिता जारी कर ब्यावै।
ओ विभचार वणौलो स्वांमी,
तम जांणौ स्रब अंत्रजामी। (सुखसारण, मीराबाई री परची, पृ. 31)

37. मीरां के प्रभु दरसण दीजौ,
वेग पधारो बिलम न कीज्यौ।
पतव्रता कै एक पति होईं,
विभचारण जुग सुंणी न कोई। (सुखसारण, मीरांबाई री परची, पृ. 40)

38. दूहा- करण कर मीरां रही, मैलां भया उजाल।
सग नारद ले आवीया, परण्या गिरधर लाल।
हाथां कांकन डोरड़ा, सूंधै भीनौ गाथ।
राज लोक ईचरज भयो, केसर राच्या हाथ।

व्याव कियो कछु मनां न भायो,
रांणो परण घरां ले आयो।
कुळदेवी सासू पूजावे,
मीरां तिण कूं सिर नहीं न्वावे। (सुखसारण, मीरांबाई री परची, पृ. 38)

39. माई हूं सपना में परणी गोपाल। (टेक)
मति करो म्हारी ब्याव-सगाई क्यूं बांधो जंजाल।
झूठा मात पिता सुत बंधू बंध्यो अबध्या ख्याल।
मीरां के प्रभु गिरधरनागर सांचो पति नंदलाल। (हरिनारायण पुरोहित, मीरां बृहतपदावली, पृ.184)

40. ''विवाह की बात चलते ही मीरां ने कहा, ऐसा न कहो मां, मेरा विवाह तो गिरधर गोपाल के साथ कभी का हो चुका है। वे ही अब मेरे तन, मन और प्राणों में रम रहे हैं, मेरे हृदय मंदिर में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। अब दूसरी बात (विवाह की बात) सुन कर ही कलेजा कांप उठता है ऐसे वर को के बरूं, जो जनमें मर जाय।/ वर वरिए गोपालजी, म्हारो चुड़लो अमर हो जाय। (स्वामी आनंदस्वरूप, मीरां सुधा सिंधु, प .-24)
41. ''अरुचि के भाव से कुछ झुंझला कर उसने (मीरां ने) कहा घूंघट की बाधा क्यों पटकती हो, देख लेने दो न, मां! जी भर कर मेरे सुंदर वर को! वे तो मेरे ही हैं फिर परदा कैसा?... अंतर्पट हटते ही मीरां ने श्री गिरधर गोपाल के गले में वरमाला धारण करा दी। सखियों ने पुष्ट वृष्टि की। राजकुमार यह देख कर स्तब्ध से ही रह गये। इसी समय पुरोहितानी ने मीरां के खाली हाथों में दूसरी माला देकर उसे वर राजा के गले में डालने को कहा। तब उसने वर राज के गले में माला पहनायी तत्पश्चात वर वधू का मिलन हुआ। ...वर वधू के वस्त्रों के दोर में गांठ लगने के बाद भांवर लेते समय जब राजकुमार आगे बढ़े तो उनका वस्त्र तनिक खिंच सा गया। उन्होंने उस ओर झांक कर देखा तो एक सखी सिंहासन से ठाकुरजी लेकर मीरां को दे रही है। इस प्रकार यह सप्तपदी का संस्कार पूरा हुआ।
42. ''(कुंवर भोजराज ने मीरां से कहा) इस उलझन का मुझे तो एक ही हल समझ में आया है। माता पिता और परिवार के लोग जो करें, सो करने दीजिये और आप अपना विवाह ठाकुरजी के साथ कर लीजिये। यदि ईश्वर ने मुझे निमित्त बनाया तो मैं वचन देता हूं कि केवल दुनिया की दृष्टि में बींद बनूंगा, आपके लिए नहीं। जीवन में कभी भी आपकी इच्छा के विपरीत आपकी देह को हाथ नहीं लगाऊंगा। आराध्य मूर्ति की भांति भोजराज का गला भर आया। एक क्षण रुक कर वे बोले ''अराध्य मूर्ति की भांति आपकी सेवा ही मेरा कर्तव्य रहेगा। आपके पति गिरधर गोपाल मेरे स्वामी और आप...आ मेरी स्वामिनी (सौभाग्य कुंवरी राणावत, मीरां चरित्र पृ. 106)
43. पलक झपकते ही उछल कर भोजराज झरोखे में चढ़े और सबल भुजाओं में भर कर उन्हें भीतर खींच लिया। एक क्षण, केवल एक क्षण का विलम्ब हो जाता तो मीरा की देह नीचे चट्टानों पर गिर कर बिखर जाती। ...वचन अटने के पछावे से उनका मन तड़फ उठा। प्रातः सबने सुना कि महाराज कुमार को पुनः ज्वर चढ़ आया है। बांह का सिया हुआ घाव भी उघड़ गया। फिर से दवा दारू होने लगी, किन्तु रोग दिन दिन बढ़ता ही गया। ...मीरा की बात सुन कर भोजराज हंस पड़े... अब तो स्वास्थ्य लाभ करेंगे गम्भीरी के तट श्मशान भूमि पर। आपने मुझे क्षमा कर दिया, बहुत बड़ी बात की। (सौभाग्य सौभाग्य कुंवरी राणावत, मीरं चरित्र, पृ. 192)
44. जनश्रुति है कि फेरों के समय मीरां ने गिरधारी (कृष्ण) की मूर्ति की ओट ले ली थी, जिसके प्रति वह बचपन से ही समर्पित थी, न कि अपने पति के प्रति, उसने कृष्ण से विवाह की घोषणा की तथा इस भौतिक विवाह के पूरे होने से इनकार किया। उसने कुलदेवी दुर्गा की पूजा करने से इनकार किया। कुछ अन्य जनश्रुतियों में मीरां के पति उसके ब्रह्मचर्य को नापसंद करते थे, पतिव्रत पर संदेह करते थे, उसे प्रताड़ित करते थे एवं दूसरी पत्नी ले आये। एक श्रुति अनुसार उसने अपने व्यवहार पर पुनर्विचार किया जब उसने मान लिया कि मीरां पागल है... अन्य जनश्रुति के अनुसार वह अपने पति की मृत्यु के पश्चात् कृष्णभक्त बनी एवं तब ही प्रताड़ित की गयी जब उसके पति की मृत्यु हो गयी थी एवं वह विधवा हो गयी थी। (कुमकुम संगारी, उद्धृत जेण्डर एंड नेशन, पृ. 25)
45. कुमकुम संगारी, उद्धृत जेंडर एड नेशन, (पृ. 33)
46. बड़वा देवीदान कृत ख्यात, डॉ. देवीलाल पालीवाल (सं.) (पृ. 06)
47. वही, (पृ. 7)
48. वही, (पृ. 10)
49. तब तौ खिसानी भई, अति जरि बरि गयी,
गयी पति पास ''यह बधू नहीं काम की।
अब ही जवाब दियौ, कियौ अपमान मेरौ,
आगे क्यों प्रमान करै? भरै स्वास चाम की।।
राना सुनि कोप करयौ, धरयौ हिये मारिबोई,
दई छौर न्यारी, देखि रीझी मति बाम की।

लालनि लड़ावै गुन गाय कै मल्हावै साधु,
संग ही सुहावै, जिन्हें लागी चाह ष्याम की। (प्रियादास, श्री भक्तमाल, पृ. 715)

50. गरल पठाय दियोः
राना तौ बड़ो भक्त है और तो भक्त छुछि सो।।
चरनामृत देहै यह कटोरा भर देहै।।
आखै दरसाईयैः
श्राना ने रसाईनी को बांधा। रसाइन सीषा चाहै सो वह बतावै नहीं नित्य मारने को उद्योग करै। रात्री को सखा का रूप करिकै सेवा करै। जीस रोज मारन की ठीक पड़ी आजू नै बतावै तो कल्हि मारौ। जिस रोजै सखा को बताया सो सेवा सो पाया। बिन सेवा चाहै तो नहीं।।

51. होइ उदास भरै उर सास गयी पति पास बहू नहिं आछी।
मानत नें अब फेरि गिनै कब केति कहौ फिरि आत न पाछी।।
रोस करयौ नृप ठौर जुदी दइ रीझि लई वर नाचन काछी।
नृतय करै उर लाल धरै सतसंग बरै सब है जन साछी।

52. श्यामलदास, वीर विनोद (भाग 2), पृ. 2

53. मीरां रंग लाग्यौ राम हरी। (टेक)
कंठी तिलक दोवड़ो माला, सीलबरत सिणगारो।
और सिंगार सोहै नहिं राणांणी, यो गुर ग्यान हमारो।
भलि कोइ निदो भलि कोइ बिनदो गुण गोबिंदजी का गास्यां।
जिण मारग मेरा संत पधर्‌या, जीं (उण) मारग म्हे जास्यां।
भजन करस्यां सती न होस्या, मन मोह्यो घण नामी।
जेठ बहू को नांतो नहीं हो, थे सेवक म्हे स्वामी।
राज न करस्यां जीव न सतास्यां, कांई करैलो म्हारो कोई।
हस्ती चढ़ म्हे खर नहिं चढ़स्यां, ऐ तो बात न होई।
ना कोई मेरै मात पिता है, नां कोई बन्धू भाई।
थे थांकै म्हे म्हांकै राणांजी, यूं गावै छै मीरां बाई। (हरिनारायण पुरोहित, मीरां बृहतपदावली, पृ.316)

54. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रंथांक-12585 पृ. 342

55. **पद प्रसंगमाला के उल्लेख** अथ अन्य पद प्रसंग।। बचनिका।। मेड़तें मीरांबाई तिनकों राना के छोटे भाई सों ब्याही, यह प्रसिद्ध है ही। सो कितनेक दिन उपरांत काहू समै राना के वा भाई को देहांत भयो, अरु राना हुते सो मीरांबाई सों दुष पाय रहे ही हैं। ये वैष्णवनि को सतसंग कराति। यातैं, वा समै राना ने कहाई, जो यह औसर है तुम भरता के संग सती होहु। तब मीरांबाई भगवत रंग आगै लगे हें, त्योंही लगे रहे। या समै कछू षेद मानी नाही, अरु या बात के उत्तर कों एक विष्णुपद नयो बनाय राना कों लिषि पठयो। पद बहुत प्रसिद्ध भयो।। सो वह यह पद।।

56. *मीरां के रंग लग्यो हरी को और रंग सब अटक परी।।*
गिरधर गास्यां सती न होस्यां मन मोह्यो धननामी।।
जेठ बहू को नातो नहीं राणाजी म्हे सेवग थे स्वामी।।
चूड़ो देवड़ो तिलक जु माला सीलवर्त सिंगार।।
और सिंगार भावै नहिं राणाजी यों गुरु ग्यान हमार।।
कोई निंदो कोई बिंदोगुण गोविंद रा गास्यां।।
जिण मारग वै संत पहूंता तिण मारग म्हे जास्यां।।
चोरी करां न जीव संतांवां कांई करसी म्हांरो कोई।।
हसती चढ़ि गधै नहीं चढ़ां यातो बात न होई।।
राज करंता नरक पड़ेसी भोगीड़ा जम कै लीया।।
गिरधर धणी कडूंबो गिरधर मात पिता सुत भाई।।

थे थहारें म्हे ह्या हारें हो राणा जी यौं कहै मीरांबाई। (नागरीदास नागर समुच्चय, पृ.193)

इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत (भाग-6) पृ. 33

57. मेहता नैणसी री ख्यात, बदरीप्रसाद साकरिया (सं.) प .-20

58 ''एक दिन महाराणी हाड़ी ने महाराणा से प्रार्थना की कि मेरे दोनों बेटों के लिए आपके हाथ से जागीर न मिलेगी तो पीछे रत्नसिंह इनको दुख देंगे। तब महाराणा सांगा ने कहा कि जो जागीर तुम मांगो वही तुम्हारे बेटों के लिए दी जावे। इस पर राणी ने रणथम्भौर के वास्ते अर्ज की और वह महाराणा को मंजूर हुई। फिर दुबारा महाराणी हाड़ी ने कहा कि यदि आपने मेरी विनती स्वीकार की, तो विक्रमादित्य, मेरे भाई सूर्यमल्ल को सौंपा जाये कि वह इनकी सम्हाल रक्खे, महाराणा ने राणी की प्रार्थना के अनुसार आज्ञा दी; परंतु सूर्यमल्ल ने कहा कि मुझे इस आज्ञा के पूरा करने में कदाचित् आपके अनंतर रत्नसिंह से सामाना करना न पड़े, इसलिये रत्नसिंह की भी इसमें सलाह लेनी जरूर है। तब महाराणा सांगा ने महाराज कुमार रत्नसिंह को बुला कर इस विषय में पूछा; रत्नसिंह ने ऊपरी दिल से सूर्यमल्ल को अनुमति दी। इस तरह पक्का बंदोबस्त होने पर सूर्यमल्ल ने भी महाराणा की आज्ञा का पालन करना स्वीकार किया। (श्यामलदास वीर विनोद पृ. 2)

59. श्यामलदास वीर विनोद, पृ. 4-7

60. महाराणा रत्नसिंह के पीछे राज्य के हकदार विक्रमादित्य थे, इसलिए सब सर्दार व उमरावों ने माजी हाड़ी कर्मवती को दोनों (1) बेटों समेत रणथम्भौर से बुलवार विक्रमादित्य को वि. 1588 (हि. 938 त्र ई. 1531) में गादीपर बिठाया (2) यह महाराणा बिलकुल नादान होनेके सिवाय राज काज में किसी का भरोसा भी नहीं करते थे। ...महाराणा की आदतें बहुत बुरी थीं कभी तो सभा में चुपके से किसी के जामे की कोर जाजम में सिलवा देना और वह उठे तब खूब हंसना. इसी तरह कभी कभी सर्दार उमरावों की हंसी करा कर कहते कि बेचारे राजपूत क्या करेंगे? कोई बाहर का दुश्मन आवेगा तो हमारे पहलवान ही बहुत हैं। ...माजी हाड़ी ने भी जो बुद्धिमान थीं, बहुत समझाया, परंतु चिकने घड़े पर बूंद के समान कुछ असर न हुआ; ऐसी हालत में रियासत की बरबादी हो तो क्या आश्चर्य है। (श्यामलदास वीर विनोद, पृ. 25)

61. पग बांध घूंघरयां णाच्यां री टेक।।
लोग कहां मीरा बावरी, सासु कहां कुलनासी री।
विख रो प्यालो राणा भेज्यां, पीवां मीरां हांसा री।
तण मण वारयां परि चरिणामां दरसण अमरित प्यासां री।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, थारी सरणां आस्यां री।
जाके मथुरा कहानाने गागरियं फोरी।
गागरियां फोरी दुलरि मोरी तोरी।। (टेर)
ऐसी रीत मुझे कौन सिखावै, किसन करत बाराजोरी।।
सास हटेली ननद चुगेली, दिवर देवत मुझे गारी।।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित्त हारि।।

62. नाभादास, भक्तमाल, पृ. 22

63. प्रियादास, श्री भक्तमाल, पृ. 714

64. नागरीदास, नागर समुच्चय, प .-195

65. वि. सं. 1591 (ई. सं. 1535) में वीरमदेव ने गुजरात के बादशाह बहादुरशाह की तरफ के हाकिम शमशेरुल मुल्क को हरा कर अजमेर पर अधिकार कर लिया। जब इस बात की सूचना मालदेवजी को मिली, तब इन्होंने वीरमदेव से कहलाया कि तुम इस नगर को हमें सौंप दो। वरना यदि गुजरात के बादशाह की सेना ने इस पर दुबारा चढ़ाई की, तो तुम्हारे लिए इसकी रक्षा करना कठिन हो जायेगा। परंतु उसने इस बात को न माना। इससे रावजी अप्रसन्न हो गये और इन्होंने अपने सेनापति जैसा और कूंपा की अध्यक्षता में मेड़ते पर सेना भेज दी। यह देख वीरमदेव भी युद्ध के लिये तैयार हो गया। परंतु अंत में लोगों के समझाने से वह मेड़ता छोड़ कर अजमेर चला गया और मेड़ते पर मालदेवजी का अधिकार हो गया। उपर्युक्त घटना के अवसर पर रावजी ने राठोड़ वरसिंह के पौत्र सहसा को रीयां की जागीर दी थी। इससे वीरम उससे असंतुष्ट था एक रोज जिस समय वीरम बीटली (अजमेर) के किले पर खड़ा था, उस समय उसकी दृष्टि दूर से रीयां

की पहाड़ी पर जा पड़ी और साथ ही पहले की घटना के याद आ जाने से उसके हृदय में प्रतीकार की आग धधक उठी। इसी से उसने लोगों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न देकर रीया पर चढ़ाई कर दी परंतु जैसे ही यह समाचार नागोर में मालदेवजी को मिला, वैसे ही इन्होंने अपनी सेना को सहसा की सहायता के लिए भेज दिया। यद्यपिवीरम ने रीयां के पास पहुंच बड़ी वीरता से युद्ध किया, तथापित मालदेवजी की विशाल सेना के आ जाने से वह सफल न हो सका। सहसा सम्मुख राणा में मारा गया और वीरम लौट कर अजमेर चला गया। इस घटना के बाद मालदेवजी ने अपने सेनापति जैता और कूंपा को सेना लेकर अजमेर पर चढ़ जाने और वीरम को हटा कर वहां पर अधिकार कर लेने की आज्ञा दी। यद्यपि इन दोनों के वहां पहुंचने पर वीरम ने भी बड़ी वीरता से इनका सामना किया, तथापि अंत में उसे अजमेर छोड़ना पड़ा और वहां पर राव मालदेवजी का अधिकार हो गया। ये सारी घटनाएं भी वि. सं. 1591 (ई. सं. 1535) में ही हुई थी।

66. पदावली, मीरां स्मृति ग्रंथ पृ. 7

67. द्वारका को बास हो मोहि द्वारका को बास।
स्ंख चक्रहुं गदा पद्‌महु तें मिटै जमत्रास।।
सकल तीरथ गोमती में आय करत निवास।
संख, झालरि, झांझ बाजे सदा सुख की रास।।
तज्यो देसौ बास पति गृह तज्यो सम्पति राज।
दासि 'मीरां' सरन आयी तुम्है अब सब लाज।।।। (बृज रत्नदास मीरां माधुरी पृ. 30)

68. लागि चटपटी भूप भक्ति कौ सरूप जानि,
अति दुख मानि, बिप्र श्रेणी लै पठाइयै।।
बेगि लैकै आवौ मोकों प्रान दै जिवावौ अहो,
गये द्वार धरनौ दै बिनती तौ सुनाइयै।
सुनि बिदा होन गई राय रणछोर जू पै,
छांडौं राखौ ही न लीन भई नहीं पाइयै। (प्रियादासः भक्तिरस बोधिनी टीका)

69. राय श्री रनछोर दीजै द्वारका को वास।।
संष चक्र गदा पदु म दरसे मिटै जम की त्रास।।
सकल तीरथ गोमती के रहत नित्य निववास।।
संष माल रिमांमी बाजै सदा सुख की रास।।
तजयो देस रू बेस हु तजि तज्यो राना राज।।
दास मीरा सरन गिरिधर तुम्है अब सभ लाज। (वैष्णवदासः भक्तमाल का दृष्टांत)

70. भूपति बुद्धि असुद्ध लषी अति द्वारवती बसि लाल लड़ाये।
पेटि जलंध्र होत भयौ नृप जानि महादुष बिप्र षिनाये।।
लैकरि आबहु मोहि जिवावहु बेगि गये समचार सुनाये।
होन बिदा चलि ठाकुर पैं मुष मांहि लई तुछ चीर रहाये। (छत्रदास की टीका)

71. राना को छोटो भाई मीरां को देह सम्बंध को भर्ता हो, सो ताको परलोक भयो, ता पीछै मीरांबाई गंगादिक तीरथ करिकै अरू श्री वृंदावन हू आये, तहां जीऊ गुसांईजी को प्रण स्त्री के न देषिबे को दुटाय सब सों गुरु गोविंदवत सनमान सतयसंग करि द्वारका को चले, ऊहां बास करिबै कैं लियें, तहीं एक मारग में एक नयो पद बनायो, बहुत प्रसिद्ध भयो, वो वह यह पद
श्राय श्रीरनछोड़ दीज्यो द्वारक को बास।।
स्ंख चक्र गदा पद्‌म दरसें मृिटृै जम की त्रास।।
स्कल तीरथ गोमती के रहत नित निवास।।
संष झालर झांझ बाजै सदा सुष की रास।।
तज्यो देसरू बेसहू तजि तज्यो राना राज।।
दास मीरा सरन आवत तुम्हें अब सब लाज। (नागरीदासः पद प्रसंग माला)

72. मीरां के जाने से मानों भगवान ही रूठ गये हों त्यों मेवाड़ में अशांति बढ़ती ही चली, लोगों को चैन नहीं था।...

तब राणा उदयसिंह और प्रजाजनों ने मिल कर मीराबाई को वापिस लौटा लाने का संकल्प किया। ...उन्होंने कुछ जागरीदार तथा पुरोहितादि ब्राह्मणों को मीरांबाई को वापस लौटालाने के लिये भेज दिये। (वि. सं. 1600) में राव वीरमदेव का देहांत हो गया तब राव जयमल मेड़ते की गद्दी पर आसीन हुए। गद्दी पर आते ही उन्होंने अपनी बहन मीरां बाई को द्वारका से लिवा लाने के लिए अपने विश्वासपात्र राजकर्मचारी और प्रजाजनों को भेज दिया। ...इस प्रकार पीहर और ससुराल दोनों राज्यों की ओर से मीरांबाई को पुनः सत्कार पूर्वक वापस बुलाने का प्रबंध किया गया। ...मीरांबाई के लिए यह धर्म संकट हा गया। ...मीरांबाई ने जब उन लोगों का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया तब जागीरदार, राजकर्मचारी, ब्राह्मणादि प्रजाजनों ने सत्याग्रह आरम्भ किया। और वहीं धरना देकर बैठ गये। मीरांबाई ने सबको बहुत समझाया परंतु सब व्यर्थ हुआ। अंत में मीरांबाई ने सब को कहा कि इस परिस्थिति में मेरे कर्तव्य के लिये मैं निज मंदिर में जाकर श्री द्वारकाधीष की आज्ञा ले आती हूं, तब तक आप लेग यहीं भजन करते रहें। ...यह कह कर मीरांबाई निजद्वार के भीतर चली गयी और द्वार बंद कर दिया। दूसरे क्षण दौड़ कर वह प्रभु के निकट पहुंच गयी और श्यामसुंदर ने उसे अपने हृदय से लगा लिया अपने दृढ़ बाहुपाश में बांध लिया। ज्यों जल में गिर जाने पर लवण धीरे धीरे जल के साथ एक रूप हो जाता है त्यों मीरांबाई शनैः शनैः प्रभु में विलीन हो गयी। प्रभु ने उसे अपने सारे अंगों में समा लिया। भगवती मीरांदेवी की अवतार लीला समाप्त हो चुकी, उसने सारूप्य मुक्ति पा ली अर्थात अपने आनंद स्वरूप) (स्वामी आनंद स्वरूप, मीरां सुधा सिंधु पृ. 66-70)

73. कुछ इतिहासकार कहते है कि वह चित्तौड़ दुर्ग की लाखोटा बारी से भाग गया था।
74. परिता मुक्ता, अपहोल्डिंग द कॉमन लाइफ, पृ. 230
75. रूप की निकाई भूप 'अकबर' भाई हिये, लिए संग तानसेन देखिबे कों आयो है।
    निरखि निहाल भयो, छबि गिरिधारीलाल,
    पद सुखजाल एक तब ही चढ़ायो है।
76. रूप की निकाई भूप अकबर भाई बिलायत के पात्साह ने हिन्द के पातसाह को लिख्यो कि अपने देश का मेवा सुंदर सरूप होय सो लिखियो। तब लिखा वृजवासी नंद ग्वाल को फरजंद एक कन्हैया नाम है जाकै रूप के ऊपर अनेक ईस्त्री बावली भई हैं। ओर टेडी एक फल बड़ा मेवा होय है सो पथिकन को बरबस अटकावै है। कहै कि शाय कें जावो। सो उन्ह के मत में भी कन्हैया सुंदर है। सो देखन अकबर पात्साह तानसेन समेत गीरधारी जी छवि को मगन होय गया।
77. भूप अकबर रूप सुन्यौ अति तानहिसेन लिये चलि आयौ।
    देषि कुस्याल भयो दबि लालहि एक सबद्द बनाइ सुनायौ।
78. निरंजन भगत, मीरां, प. 27-30
79. नाभादास, भक्तमाल सटीक (श्री वेंकटेश्वर प्रेस), पृ. 227
80. प्रियादास, श्रीभक्तमाल, पृ. 714
81. चौरासी वैष्णवन की वार्ता (वेंकटेश्वर प्रेस), पृ. 163
82. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, भाग 2, पृ. 61
83. मुहता नैणसीरी ख्यात, बदरीप्रसाद साकरिया (सं.), पृ. 1-97
84. बांकीदासरी ख्यात, पं. नरोत्तमदास स्वामी (सं.), पृ. 1-86
85. वही, पृ. 87-108
86. मीरां के जीवन से सम्बंधित शोध सामग्री का अध्ययन (लघु शोध प्रबंध) पृ. 87-144
87. मीरां के जीवन से सम्बंधित शोध सामग्री का अध्ययन (लघु शोध प्रबंध) पृ. 1-154
88. सी.एल. प्रभात, मीरा : जीवन और काव्य, पृ. 67
89. वही, पृ. 62
90. सी.एल. प्रभात, मीरा : जीवन और काव्य, पृ. 69-81

जनकवि परसन : हिन्दी नवजागरण का लोकपक्ष

समीर कुमार पाठक

समीर कुमार पाठक युवा हैं। नवजागरण के अध्ययन लेखन में विशेष रूप से सक्रिय। मुस्लिम नवजागरण को लेकर भी कुछ गम्भीर काम कर रहे हैं।

19वीं शताब्दी के हिन्दी नवजागरण की पूरी बहस भारतेन्दु मंडल से शुरू होती है और उसी के आसपास चक्कर काटती है। दरअसल पूरी बहस भारतेन्दु मंडल को अखंड विचार चेतना का समूह मान कर होती है जबकि भारतेन्दु मंडल के भीतर और उसके समानांतर विभिन्न विचार समूहों की संगठित सक्रियता बनी हुई थी। ध्यान रखने वाली बात यह है कि भारतेन्दु युग और हिन्दी नवजागरण पर विचार करने वाले अधिसंख्य आलोचकों ने भारतेन्दु युग को अखंड विचार चेतना का समूह मान कर ही विचार किया है जबकि भारतेन्दु युग के राजनीतिक सांस्कृतिक स्वर में विविधता है क्योंकि हिन्दी नवजागरण में सक्रिय सभी लेखक, संगठन और लेखन के स्तर पर विभिन्न विचार सरणियों के प्रतिनिधि थे। जहां भारतेन्दु हरिश्चंद्र काशी के सांस्कृतिक प्रतीक थे, वहीं बालकृष्ण भट्ट इलाहाबाद में वैचारिक राजनीति की धुरी थे, साथ ही *''राधाचरण गोस्वामी का अलग संगठन था। वे कांग्रेस के बजाप्ता कार्यकर्ता थे और अपनी सक्रियता के कारण स्वयं में आंदोलन थे... प्रतापनारायण मिश्र का संगठन कानपुर में था तो चौधरी बद्रीनारायण प्रेमघन का मिर्जापुर में। प्रेमघन के ही संगठन के एक सदस्य थे आचार्य रामचंद्र शुक्ल। मुरादाबाद का अलग संगठन मंडल था तो पटना के गायघाट में राधाकांतगोस्वामी का अलग, पटना में एक और केन्द्र था गायघाट में स्थित चैतन्य पुस्तकालय। पटना में खड्ग विलास प्रेस था। वह नवजागरण का क्रांति केन्द्र ही था। उसके स्वामी बाबू रामदीन सिंह भारतेन्दु के मित्र थे।''* [1] हिन्दी नवजागरण की व्यवस्थित संकल्पना प्रस्तुत करने वाले डॉ. रामविलास शर्मा ने एक तरफ यह स्वीकार किया है कि *''भारतेन्दु युग की बहुत सी बहुमूल्य सामग्री*

पुरानी पत्रिकाओं में बंद पड़ी हैं... उस समय के साहित्य का प्रकाशन रिसर्च की दृष्टि से ही नहीं, शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से किया जाना चाहिए।'' [2] लेकिन दूसरी तरफ उन्होंने *'भारतेन्दु में सम्मिलित राष्ट्र की कल्पना'* पर बल देते हुए भारतेन्दुयुगीन विभिन्न विचार सरणियों के महत्वपूर्ण संदर्भ स्रोतों पर अपेक्षित विस्तार से विचार नहीं किया है। इसका कारण संदर्भ साहित्य की अनुपलब्धता थी या नवजागरण सम्बंधी विचार में भारतेन्दु हरिश्चंद्र के प्रति रामविलास जी का अतिरिक्त लगाव या अत्यधिक निर्भरता थी यह प्रश्न अलग से विचार करने योग्य है। यह विचारणीय इसलिए है कि भारतेन्दु मंडल में सबका स्वर एक सा नहीं है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, चौधरी बद्रीनारायण प्रेमघन, काशी प्रसाद जयसवाल, राधाचरण गोस्वामी, कार्तिक प्रसाद खत्री इन सबका अपना विशिष्ट महत्व है, विशिष्ट स्वर है। एक के विचार क्षेत्र से निकल कर दूसरे के विचार क्षेत्र में प्रवेश करना लगभग चिन्तन की दूसरी दुनिया में दाखिल होना है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र में देशहितैषिता के साथ भाव सौन्दर्य की कलात्मकता है, प्रतापनारायण मिश्र में खिलंदड़ापन के साथ सांस्कृतिक विजय की महत्वाकांक्षा का स्वर है, बालकृष्ण भट्ट में सामाजिक परिवर्तनशीलता और राजनीतिक जागरण का स्वर प्रधान है, चौधरी बद्रीनारायण प्रेमघन में लोकसम्पृक्ति और नवरचनाशीलता के तत्व प्रबल हैं और राधाचरण गोस्वामी में उग्र वैचारिक चेतना की प्रखरता है। बावजूद इसके डॉ. रामविलास शर्मा के बाद डॉ. शम्भुनाथ और डॉ. वीरभारत तलवार जैसे नवजागरण के महत्वपूर्ण बौद्धिक विमर्शकार भी अपनी अपनी सहमति असहमति के साथ पूरी बहस को भारतेन्दु हरिश्चंद्र के आसपास ही रखते हैं, मसलन एक तरफ इस बात पर सहमति है कि *''भारतेन्दु के जीवन कर्म से हम औपनिवेशिक भारत के कुछ विराट अंतर्द्वंद्वों को समझ सकते हैं, उस समय के बौद्धिक असंतोष, उलझन और पल रही विद्रोह भावना को... भारतेन्दु के जीवन कर्म को देख कर समझ में आ सकता है कि औपनिवेशिक प्रभाव के बावजूद नव शिक्षित मध्यवर्ग के कुछ गुणीजनों में स्वतंत्रता के लिए कैसी छटपटाहट थी।''* [3] तो दूसरी तरफ असहमति इसलिए कि *''हिन्दुओं के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के बीच समझौता कर एक राष्ट्रीय आर्यधर्म की योजना बनाने वाले भारतेन्दु... शुरू से काफी रूढ़िवादी थे, हर तरह के धर्माडम्बरों और विधि विधानों में विश्वास करने वाले। अपने धार्मिक विकास के दौरान उनके परम्परागत विश्वास कुछ कमजोर जरूर हुए, फिर भी वे इनका पालन करते रहे। धार्मिक विषयों पर भारतेन्दु के लेखन का अच्छा खासा हिस्सा धर्म के स्थूल रूप से प्रचार प्रसार को समर्पित है।''* [4] कहना न होगा कि दोनों स्थितियों में केन्द्रीय महत्व भारतेन्दु को है, जोर भारतेन्दु पर ही है बल्कि *'भारतेन्दु और रामविलास शर्मा के भारतेन्दु'* पर। लेकिन ऐसा करके क्या भारतेन्दु युग को समग्रता में समझना समझाना सम्भव है ? क्या यह अनुसंधान मूल्यांकन की वैध पद्धति है ? यह सही है कि हिन्दी प्रदेश में व्यापक जनजागरण के उद्देश्य से मई 1871 के कविवचन सुधा में भारतेन्दु हरिश्चंद्र 'जातीय संगीत' के तहत जनशिक्षण व लोकजागरण के विषय निर्धारित कर रहे थे। वे साधारण जनता की विचार चेतना में सुधार के लिए बाल विवाह, बालकों की शिक्षा, स्वधर्म चिन्ता, भ्रूण हत्या व शिशु हत्या, मैत्री व ऐक्य, व्यापार की उन्नति तथा भारतवर्ष के दुर्भाग्य का वर्णन जैसे देशदशा से सम्बद्ध जनसुधार के विषयों की वकालत कर रहे थे। उनके अनुसार *''इन विषयों के छोटे छोटे सरल देशभाषा के गीत और छंदों की आवश्यकता है... जो साधारण जनों में फैलाये जायेंगे।''* भारतेन्दु यह भी आह्वान कर रहे थे कि *''जिन लोगों का ग्रामीणों से सम्बंध है, वे गांव में ऐसी पुस्तकें भेज दें... जहां कहीं ऐसे गीत सुनें उसका अभिनंदन करें... जिस भाषा का साधारण प्रचार हो उसी में गीत बने।''* भारतेन्दु के इस आह्वान में उनकी लोकसम्पृक्ति और जनप्रसार की आकांक्षा निहित है। वे अपने समकालीन सम्पादकों से भी सहायता की अपील कर रहे थे और इस प्रकार भारतेन्दु युग अपने

समय की सांस्कृतिक अकुलाहट का जीवंत दस्तावेज बनता गया। लेकिन यह भी सच है कि *''भारतेन्दु युग की कविता बहुत पीछे पड़ जाती है। यह कविता हिन्दी कविता की परम्परागत भावधारा से भी, जो कि भक्ति और श्रृंगार की भावधारा थी, दृढ़ता से जुड़ी हुई है। इस युग के कवि, वे स्वयं भारतेन्दु हों या प्रेमघन, या प्रताप नारायण मिश्र, या जगमोहन सिंह, या अम्बिकादत्त व्यास सभी भक्तिकाल और रीतिकाल के रंग में कविताएं लिखते थे। इन कवियों ने स्वभावतः पदों में भी रचना की और कवित्त, सवैयों तथा दोहों में भी। और तो और, इन्हें समस्यापूर्ति का भी शौक था।''*[5] इन कवियों ने राजप्रशस्तियां भी गायीं, हिन्दी समाज का यह बौद्धिक वर्ग खड़ीबोली और ब्रजभाषा के बीच एक विचित्र भाषिक द्वैध की स्थिति में विभक्त था, नयी राजनीतिक सामाजिक चेतना के साथ समस्यापूर्ति, नायिका भेद जैसे परिपाटीबद्ध प्रवृत्तियों के अंतर्विरोध से भी ग्रस्त था, पर आश्चर्यजनक यह है कि 1871 में 'जातीय संगीत' में जिन मुद्दों को सिलसिलेवार उठा कर भारतेन्दु नये जनजागरण के भावी स्वरूप को निर्धारित कर रहे थे, उस स्वरूप के तहत उनकी मृत्यु के आसपास हिन्दी का एक जनकवि अपने काव्य संस्कार निर्मित कर रहा था। यह जनकवि परसन थे, जिनके भीतर अंतर्वस्तु और रूप के स्तर पर 'जातीय संगीत' की संकल्प साधना को अक्षरशः देखा सुना जा सकता है। परसन भारतेन्दु युग के महत्वपूर्ण, पर गुमनाम रचनाकार हैं... साहित्य के इतिहास से उपेक्षित और नवजागरण विमर्श से बेदखल। परसन के यहां भारतेन्दु हरिश्चंद्र सी रचनात्मक कलात्मकता और बालकृष्ण भट्ट की सी विचार तेजस्विता का दुर्लभ मेल है। वे भारतेन्दु युग की लोकचेतना के श्रेष्ठ प्रतीक हैं।

हिन्दी प्रदेश के नवजागरण के व्यापक संदर्भ में भारतेन्दु मंडल के महत्वपूर्ण सदस्य बालकृष्ण भट्ट, भारतेन्दु हरिश्चंद्र से भिन्न विचार चेतना और उग्र राष्ट्रीयता के सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतीक हैं। 'हिन्दी प्रदीप' का प्रकाशन कर उन्होंने नवजागरण की परम्परा को व्यापक आधारभूमि देने का प्रयत्न किया। वे सीमित अर्थों में लेखक पत्रकार न थे बल्कि हिन्दी प्रदेश में पिछड़ेपन के सवाल, परिवर्तन विमुखता और औपनिवेशिक व्यथा कथा के खिलाफ आंदोलनधर्मी सकर्मक रचनाकार थे। हिन्दी प्रदेश में बलिपंथी पत्रकारिता के जनक बालकृष्ण भट्ट ही थे। 1857 के विद्रोह की असफलता के बाद भी हिन्दी प्रदेश की नवजागरणकालीन सांस्कृतिक परिवर्तनकामी मेधा कितनी जीवट वाली थी इसे देखना हो तो बालकृष्ण भट्ट और हिन्दी प्रदीप की पत्रकारिता को देखना चाहिए। उनके जीवन का एक ही ध्येय था *'गुलामी से मुक्ति और सांस्कृतिक जागरण का प्रयास'*। कविवचन सुधा से सरस्वती तक जातीय जागरण का प्रयास दिखलाई पड़ता है लेकिन राजनीतिक जागरूकता का जोखिम भरा कार्य किया 'हिन्दी प्रदीप' के मार्फत बालकृष्ण भट्ट ने। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि *''बालकृष्ण भट्ट अपने समय के सबसे क्रांतिकारी विचारक और लेखक थे। वह भारतेन्दु हरिश्चंद्र और महावीर प्रसाद द्विवेदी दोनों के समकालीन थे, वह दो युगों को जोड़ने वाली कड़ी थे। मतवाला के संस्थापक महादेव प्रसाद सेठ ने उनकी परम्परा से नाता जोड़ते हुए अपने छापेखाने का नाम 'बालकृष्ण प्रेस' रखा था। मतवाला ने भारतेन्दु युग के व्यंग्य विनोद, उसकी शानदार गद्यशैली को ही नहीं अपनाया, उसने बालकृष्ण भट्ट की राजनीतिक चेतना का विकास और प्रसार किया।''*[6] हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र में पत्रकारिता के माध्यम से बालकृष्ण भट्ट ने नौजवानों की पूरी पीढ़ी तैयार की। उनकी प्रेरणा से न केवल प्रयाग से बल्कि प्रयाग के बाहर मथुरा, जयपुर, बनारस, कलकत्ता, पटना, आरा जैसे विभिन्न शहरों के लेखक हिन्दी लेखन से जुड़े। ध्यान से देखने पर भारतेन्दु मंडल के भीतर सामाजिक राजनीतिक सवालों को बेबाकी से उठाने वाला 'भट्ट स्कूल' स्वतंत्र, मौलिक, बुद्धिवादी जागरूकता के साथ सक्रिय होता दिखायी पड़ेगा। बालकृष्ण भट्ट इसके सूत्रधार थे। उन्होंने एक तरफ भारतेन्दुयुगीन साहित्य में विचारधारात्मक लेखन को प्रश्रय दिया तो दूसरी तरफ नये लेखकों को प्रोत्साहित कर उन्हें साहित्य

में स्थापित किया। 19वीं शताब्दी के हिन्दी नवजागरण से संदर्भित दर्जनों नाम पं. अम्बिकादत्त व्यास, डॉ. जयकृष्ण व्यास, श्रीधर पाठक, कवि परसन, मदनमोहन मालवीय, मधुमंगल मिश्र, माधव शुक्ल, हरिमंगल मिश्र, रासबिहारी शुक्ल, मुहम्मद अब्दुल रऊफ, राधामोहन गोकुल, काशी प्रसाद जयसवाल, हरदेव प्रसाद, पुरुषोत्तम दास टंडन, स्वर्णकुमारी देवी, पं. सुंदरलाल, रामचंद्र शुक्ल, आचार्य नरेन्द्र देव और गणेश शंकर विद्यार्थी कहीं न कहीं 'भट्ट स्कूल' की राजनीतिक चेतना से गहरे जुड़े रहे हैं। भारतेन्दु मंडल की चेतना के समानांतर 'बालकृष्ण भट्ट स्कूल' की चेतना को देखने के लिए 'बम क्या है' कविता के कवि माधव शुक्ल (हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1908), साम्प्रदायिकता विरोधी लेख 'मेल मिलाप' के लेखक मुहम्मद अब्दुल रऊफ (हिन्दी प्रदीप, मई 1909), झंडा सत्याग्रह के विप्लवी पत्रकार राधामोहन गोकुल के लेख 'सुसभ्य सम्मिलन' (हिन्दी प्रदीप, मार्च 1882) के साथ 'कश्मीर पर सरकार की वक्र दृष्टि' (हिन्दी प्रदीप, मई 1886), 'कांग्रेस और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी' (हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1890), 'भूमि सम्बंधी ऋण' (हिन्दी प्रदीप, जनवरी फरवरी मार्च 1892) जैसे महत्वपूर्ण राजनीतिक लेखों के लेखक हरदेव प्रसाद तथा अंग्रेजीराज विरोधी चेतना को अपनी जनकविताओं में ढालने वाले जनकवि परसन की रचनाओं पर ध्यान देना चाहिए।

कवि परसन (1864-1892) पेशेवर लेखक पत्रकार न थे, वह बहुत मामूली आदमी, जाति के कलवार, तत्कालीन समाज में वर्णव्यवस्था का दंश झेलने को अभिशप्त थे। वे प्रयाग के कटरा मुहल्ले में रहते थे और फेरी लगा कर रेवड़ी तिलकुट बेचते थे। वे फेरी लगा कर लाई रेवड़ी बेचते और बेचते हुए स्वरचित कविताओं का सस्वर पाठ करते। लाई रेवड़ी का फेरी लगाना उनके जीविकोपार्जन का आधार था और स्वरचित कविताओं को गाते रहना साहित्य संस्कार का प्रमाण था। गा गाकर सामान बेचने की शैली ने परसन को लोकप्रिय बना दिया था और इस रास्ते परसन, बालकृष्ण भट्ट के साहचर्य सानिध्य में आये। भट्ट जी की सघन सोहबत में वे साहित्य में रमे। परसन की कविताओं में अंग्रेजीराज विरोधी चेतना को पहचान कर ही बालकृष्ण भट्ट ने उन्हें अपना सानिध्य प्रदान किया, प्रोत्साहित किया और महत्वपूर्ण यह कि उनकी कविताएं संशोधित कर हिन्दी प्रदीप में प्रकाशित करने लगे। जो लोग मानते हैं कि हिन्दी नवजागरण सिर्फ आधुनिक शिक्षा प्राप्त छोटे से शहरी भद्रवर्ग के बीच वर्चस्व का आंदोलन है, उन्हें ध्यान देना चाहिए कि सन् 1887-88 के आसपास बालकृष्ण भट्ट जैसे *'बिगड़े दिल पत्रकार'*[7] के सानिध्य में जाति से कलवार अस्पृश्य कवि परसन नये ढंग का भजन गुनगुना रहा था और 'हिन्दी प्रदीप' मंडल में महत्वपूर्ण लेखक के रूप में स्थापित हो रहा था। परसन को पहली बार भट्ट जी ने नवम्बर 1888 के अंक में छापा, रचना थी 'भजन'। इस प्रकार परसन की साहित्य यात्रा का प्रारम्भ हिन्दी प्रदीप के नवम्बर 1888 के अंक से हुआ, जाहिर है कि पहली रचना होने के कारण उसमें अनगढ़पन भी था इसलिए बालकृष्ण भट्ट ने न सिर्फ उसे संशोधित कर प्रकाशित किया बल्कि यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि परसन की उस अनगढ़ पहली रचना को बालकृष्ण भट्ट ने नवम्बर 1888 के अंक में पहले पृष्ठ पर प्रकाशित किया और उस रचना पर फुटनोट सम्पादकीय लिखा। इससे पता चलता है कि बालकृष्ण भट्ट मंडल के लेखकों में कवि परसन की भागीदारी कितनी महत्वपूर्ण है? परसन की पहली रचना पर फुटनोट सम्पादकीय टिप्पणी में बालकृष्ण भट्ट का मकसद परसन को रचनात्मक प्रोत्साहन देना था और बहुत खूबसूरती के साथ बालकृष्ण भट्ट ने तटस्थ सम्पादकीय दायित्व को साधे हुए लिखा कि *''संसार में बहुत सी खोटी वस्तु और दुःखदायी पदार्थ हैं बेचने वाले, जिनके गाहंक कहीं अवस और लाचार होकर कहीं लालच और धोखे में आये खोटी वस्तु और हानिकारक पदार्थ के गाहंक बनते हैं धन भी खोते हैं और अनिष्ट फल भोगते हैं, इसी बात की पुष्टता के लिए एक भजन हमारे पास आया है जिसे हम अपने परमहितु*

पत्र पाठकों की प्रसन्नता के लिए छापते हैं।'' यहां बालकृष्ण भट्ट ने रचना के प्रति कौतुहल का भाव बनाया है क्योंकि इस 'भजन' के द्वारा वे एक मामूली व्यक्ति को नवजागरण के लेखन में आगे ला रहे हैं। यह भजन धार्मिक आध्यात्मिक भाव भजन न था बल्कि देश दशा के सवाल को व्यंग्य के माध्यम से उठाते हुए प्रतिगामी शक्तियों की पोल खोलने वाला भजन था : *''खेती करो हरिनाम की, कौड़ी न लगे छदाम की/न्याव कुन्याव अदालत बेंचे, जाल बिछावे दाम की/जुलूम जोर नित चुंगी बेंचे, ड्यूटी आठो याम की/गलत संकल्प तीरथ पंडे सुधनाहीं परिनाम की/पत्रा पायनियर चुगली बेंचे रोटी खाय हराम की/मुल्ला सैयद इरखा बेंचे रहै अंधेरी शाम की/एंटी कांग्रेस वाले बेंचे, फूट मुलुक बदनाम की/खेती करो हरिनाम की कौड़ी न लगे छदाम की।''* [8] इसलिए वीरभारत तलवार जो यह मानते हैं कि *''19वीं सदी के ज्यादातर हिन्दी लेखक जिनके साहित्य में मिलने वाली चेतना को 'हिन्दी नवजागरण' कहा जाता है वास्तव में... सनातनी संस्थाओं से जुड़े हुए लेखक थे।''*[9] या *''हिन्दी नवजागरण का सामाजिक आधार हिन्दी भाषी भद्रवर्ग था जो ब्रह्मो, आर्यसमाज या कायस्थ महासभा के पश्चिमी शिक्षा प्राप्त भद्रवर्ग से अलग था।''*[10] और इस तरह हिन्दी नवजागरण *''विभिन्न हिन्दू बिरादरियों को जातीय समुदाय में बदलने का राजनीतिक सांस्कृतिक आंदोलन।''*[11] भर था उन्हें 'भट्ट स्कूल' के महत्वपूर्ण रचनाकार परसन पर विचार करना चाहिए। गद्य पद्य दोनों तरह की रचनाओं में परसन ने देशदशा के सवाल पर विचार किया है और देशी राजभक्तों सहित ब्रिटिश शासकों की कुटिल नीति पर तीखा व्यंग्य किया है। हिन्दी नवजागरण के भीतर परसन जैसे लेखक की उपस्थिति इस बात की गवाह है कि भद्रवर्गीय चेतना के बाहर औपनिवेशिक तंत्र का हिस्सा बने बिना भी बिल्कुल उपेक्षित निम्न मध्यवर्ग के भीतर स्वतंत्रता की कैसी अकुलाहट थी, अंग्रेजीराज विरोधी चेतना कितनी गहरी थी और देश के प्रति कितनी संवेदना थी। दुर्भाग्य यह है नवजागरण विचार के महत्वपूर्ण संदर्भ स्रोत परसन या परसन जैसे अन्य रचनाकार जिनके माध्यम से नवजागरण के वैचारिक जातीय अभावों को रचनात्मक रूप से दूर किया जा सकता है, वह अपनी लोकप्रिय शैली, जनसरोकार और तीव्र अंग्रेजीराज विरोधी चेतना के बाद भी आज तक उपेक्षित हैं। हिन्दी मनीषा के नामवर लोगों को न इसकी खोज खबर है और न कोई अफसोस। उनके अपने दंगल नियत हैं और जारी हैं। हंटर कमीशन को दिया भारतेन्दु का बयान खोज कर अंधे के हाथ बटेर लगी जैसी खुशी महसूस करने वाले वीरभारत तलवार हिन्दी प्रदेश के नवजागरण पर द्विज जातीय भद्रवर्गीय वर्चस्व का आरोप लगाते हैं लेकिन गैर द्विज जातीय परसन जैसे जनधर्मी रचनाकार की खोज खबर नहीं रखते। महत्वपूर्ण यह कि नवजागरण के अध्ययन में सक्रिय आलोचकों से नाराजगी भी जाहिर करते हैं *''हिन्दी आलोचकों ने हिन्दी नवजागरण के लेखकों की साहित्यिक रचनाओं पर तो ध्यान दिया है, पर वे जिन संगठनों से जुड़े हुए थे, उन संगठनों के उद्देश्यों और क्रियाकलापों का अध्ययन नहीं किया है। बहुतों को इसकी खबर तक नहीं।''* [12] दरअसल दिक्कत यह है कि बहुतों को न सिर्फ 'इसकी' बल्कि नवजागरण विचार के बीहड़ अरण्य में काफी कुछ की खबर नहीं है! पूरा विमर्श डॉ. रामविलास शर्मा के नवजागरण चिन्तन के पक्ष प्रतिपक्ष में फंसा हुआ है। अपवाद सिर्फ कर्मेन्दु शिशिर हैं जिन्होंने मूल स्रोत सामग्री के साथ बहस को रचनात्मक रूप दिया है। हिन्दी नवजागरण के विरोध में खड्गहस्त नवबौद्धिक आधुनिक सूरमाओं से बहस करते हुए उन्होंने जोर देकर कहा कि *''जो सामाजिक संघर्ष छोटे मोटे स्तरों पर चल रहे थे, उसे भी व्यापक स्वर नहीं मिल रहा था लेकिन राधामोहन गोकुल और संतराम बी.ए. जैसे कई लेखक सामने आते हैं, जिन्होंने इस अभाव की काफी हद तक क्षतिपूर्ति की।''*[13] लेकिन ऐसे रचनाकारों पर टीका टिप्पणी करने या उनकी खोज खबर रखने की जहमत नवजागरण के बौद्धिक सूरमाओं ने नहीं की। अन्यथा परसन और हरदेव प्रसाद जैसे लेखक वंचित उपेक्षित क्यों रहते? जबकि

परसन का रचनाकर्म भारतेन्दु युग के भीतर भट्ट स्कूल की राजनीतिक समझदारी और सामाजिक भागीदारी के नये अर्थ संकेत, हिन्दी नवजागरण के नये सरोकार और नये मुकाम की बानगी प्रस्तुत करता है। सवाल यह है कि हंटर कमीशन के सामने भारतेन्दु की गवाही क्या इतनी महत्वपूर्ण सामग्री है जिसे वीरभारत तलवार अपनी किताब रस्साकशी (2002) में प्रस्तुत करते हैं, उसे 'अंधे के हाथ बटेर लगी' मान कर अपनी शाबाशी भी देते हैं और हिन्दी नवजागरण को शिवप्रसाद सितारेहिन्द, भारतेन्दु हरिश्चंद्र और सर सैयद अहमद खां के बीच भद्रवर्गीय वर्चस्व विरोध के महाआख्यान में बदल डालते हैं। पहली बात तो यह कि हंटर कमीशन के सामने भारतेन्दु की गवाही को जिस रूप में वीरभारत तलवार जी ने प्रस्तुत किया है और इस नयी खोज प्रस्तुति का जो श्रेय लिया है, वह देखने योग्य है, इससे तलवार जी की 'बहुचर्चित' किताब 'रस्साकशी' की पूरी शक्ल ही बदल गयी, जैसा कि उनका दावा है *''हंटर कमीशन को दिया भारतेन्दु का बयान मुझे क्या मिला, अंधे के हाथ बटेर लग गयी। अंत होते होते किताब की जो शक्ल बनी, वह पहले बनायी रूपरेखा से काफी अलग निकली।''* [14] भारतेन्दु का वह बयान वीरभारत तलवार को मिला 2001-2002 में जो 'रस्साकशी' जैसी बदली शक्ल की किताब का निमित्त बना लेकिन वह बयान श्रीनारायण पाण्डेय की किताब 'भारतेन्दु हरिश्चंद्र : नये संदर्भ की तलाश'[15] के परिशिष्ट के अंतर्गत विस्तार से प्रकाशित हो चुका था और एक से अधिक जगह संदर्भवार उद्धृत भी हो चुका था, फिर मौलिक खोज का दावा क्यों ? दूसरी बात यह कि भारतेन्दु और भारतेन्दु सम्पादित पत्रिकाओं को छोड़ कर, उस युग के महत्वपूर्ण लेखकों, अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित सभी लेखकों की पूरी सामग्री क्यों नहीं तलाशी जाती! क्यों नहीं सम्पादित प्रकाशित होती है? क्यों डॉ. रामविलास शर्मा की विवेचित विश्लेषित सामग्री के इस या उस ओर का पक्ष ग्रहण किया जाता है? जबकि नवजागरण की अथाह सामग्री अभी भी पुरानी पत्रिकाओं में बंद है, उसे सामने रखते हुए यदि विश्लेषण किया जाता, अपने समय में रचनाकारों के अंतःसम्बंधों पर विचार किया जाता तो सम्भव है निष्कर्ष सरलीकृत न होते, समस्यामूलक होते पर यह सचमुच वैध और प्रामाणिक विधि होती।

भारतेन्दु युग और उनके सहयोगियों के बीच 'बालकृष्ण भट्ट मंडल' के लेखकों का नया परिवर्तनकामी स्वर और परसन जैसे लेखक पर जो भी विचार करेगा, उससे उनका महत्व छिपा न रहेगा। 19वीं सदी के हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र के नवजागरण में परसन का दो अलग अलग कारणों से ऐतिहासिक महत्व है पहला यह कि नवजागरण का विचार प्रवाह द्विजवर्गीय या भद्रवर्गीय आधार तक सीमित न था बल्कि उसका जनसंगठनात्मक आधार लगातार बढ़ रहा था और लोकपक्ष से जुड़ाव गहरा था। दूसरा महत्व यह है कि आधुनिक शिक्षा प्राप्त भद्रवर्ग का विकास न होने के बाद भी नवजागरण विचार प्रवाह की परसन की रचनाओं में अभिव्यक्ति हिन्दी नवजागरण के लोकपक्ष का प्रमाण है और परिणाम भी। ब्रिटिश शासन सुशासन के सब्जबाग के भीतर परसन देख रहे थे कि *''घर घर में चोर लाग, पुलिसौ की घात लाग/महंगी अति लाहि लाग, तेरह सेर नाज लाग/तावा तक बिकन लाग, रैयत चिल्लान लाग/चौदिश अंधेर लाग, त्राहि त्राहि होन लाग।''*[16] साथ ही *'गवर्नमेण्ट की गेंहू पर विकट दृष्टि'*[17] का भी मूल्यांकन कर रहे थे। लेकिन यह अत्यंत दुःखद है कि हिन्दी नवजागरण की विचार यात्रा में शामिल परसन जैसे रचनाकार हिन्दी अनुसंधान आलोचना की लापरवाही के कारण आज नवजागरण विमर्श से बेदखल होने के करीब हैं और उपेक्षित हैं। हिन्दी में पहली बार परसन का नामोल्लेख किया काशी प्रसाद जयसवाल ने बालकृष्ण भट्ट की मृत्यु पर 'पाटलिपुत्र' पत्रिका में प्रकाशित अपने श्रद्धांजलि लेख में। काशी प्रसाद जयसवाल ने लिखा था कि *''परसन नामक युवक हिन्दी प्रदीप में पहले लिखा करता था। बाद में वह न रहा। भट्ट जी उसको याद कर ऐसे दुःखी होते जैसे उनका कोई अपना प्राणी उठ गया हो।''*[18] परसन के साथ बालकृष्ण भट्ट के आत्मीय

रिश्ते का उल्लेख रासबिहारी शुक्ल ने भी अपने श्रद्धांजलि लेख में किया है।[19] इस नामोल्लेख के अतिरिक्त परसन पर पहली बार संक्षिप्त लेकिन सारगर्भित टिप्पणी डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा ने की। उन्होंने *'बालकृष्ण भट्ट : जीवन और साहित्य'*[20] नामक अपनी किताब में 'हिन्दी प्रदीप' के लेखकों की रचना विवरणी भी प्रकाशित की और परसन की 32 रचनाओं का उल्लेख किया। उल्लेखनीय है कि इस किताब की भूमिका डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखी है और जैसा कि डॉ. रामविलास शर्मा के बारे में ख्यात है, वे भूमिका आलोचना लिखने में शुभाशंसा प्रशंसा का कारोबार नहीं करते थे बल्कि अपने विधिवत अनुशासन के कारण उन्होंने पूरी किताब जरूर पढ़ी होगी और 'हिन्दी प्रदीप' के लेखकों की रचना विवरणी भी देखी होगी! फिर डॉ. रामविलास शर्मा ने भी 'बालकृष्ण भट्ट मंडल' के लेखकों पर अलग से टीका टिप्पणी क्यों नहीं की, यह आश्चर्यजनक है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा ने अपनी किताब में प्रकाशित रचना विवरणी में परसन की जिन 32 रचनाओं का उल्लेख किया, उनका शीर्षक और प्रकाशन विवरण इस प्रकार है ''(1) *लाग* हिन्दी प्रदीप, नवम्बर 1888 (2) *जानते हैं* हिन्दी प्रदीप, नवम्बर 1888 (3) *प्रेरित लेख* हिन्दी प्रदीप, नवम्बर 1888 (4) *गवर्नमेण्ट की गेहूं पर विकट दृष्टि* हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1889 (5) *बार* हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1889 (6) *परस्पर ठग उपन्यास* हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1889 (7) *लोकोक्ति और उसके प्रत्युदाहरण* हिन्दी प्रदीप, मई 1889 (8) *जानबूझ अजगुत करै तासों कंहा बसाय* हिन्दी प्रदीप, मई 1889 (9) *परम स्वतंत्र न सिर पै कोई...* हिन्दी प्रदीप, मई 1889 (10) *बारहखड़ी* हिन्दी प्रदीप, मई 1889 (11) *नहीं सूझत* हिन्दी प्रदीप, जून 1889 (12) *बहुत है* हिन्दी प्रदीप, जून 1889 (13) *समस्यापूर्ति का शेष* हिन्दी प्रदीप, जून 1889 (14) *दूसरी बारहखड़ी* हिन्दी प्रदीप, जून 1889 (15) *टेक* हिन्दी प्रदीप, जून 1889 (16) *भ्रम या भरम* हिन्दी प्रदीप, जून 1889 (17) *लाला* हिन्दी प्रदीप, जून 1889, (18) *अच्छा* हिन्दी प्रदीप, जून 1889 (19) *पानी पानी पानी* हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त 1889, (20) *कलयुग क्षण कलपांत सम* हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त 1889 (21) *न्याय संग्रह* हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त 1889 (22) *जोड़* हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त 1889 (23) *सबकुछ है एक नहीं है* हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त 1889 (24) *व्यर्थ है* हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त 1889 (25) *बरवा* हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त 1889 (26) *गबड्डी* हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर नवम्बर दिसम्बर 1889 (27) *प्रश्नोत्तर पच्चीसी* हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर नवम्बरी दिसम्बर 1889... (28) *कुछ कुछ नये ढंग की कहानी* हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर नवम्बर दिसम्बर 1890 (29) *पंच महाराज का अजपा जाप* हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1890 (30) *पद्यबद्ध सामयिक राज की महिमा* हिन्दी प्रदीप, मई 1890 (31) *रेल महातम* हिन्दी प्रदीप, मई 1890 तथा (32) *दीवाली है* हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त 1890।''[21] परसन पर अपनी टिप्पणी में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा ने लिखा है कि *''यह उदीयमान युवक अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहा। इसकी रचनाएं 'प्रदीप' के जुलाई अगस्त 1890 के अंक के पश्चात एकदम बंद हो गयीं ऐसा प्रतीत होता है कि अगस्त के बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी।''*[22] बालकृष्ण भट्ट के साहित्य अनुशीलन के दूसरे महत्वपूर्ण अध्येता और बालकृष्ण भट्ट के परिवारीजन डॉ. मधुकर भट्ट ने हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रस्तुत 'बालकृष्ण भट्टः व्यक्तित्व और कृतित्व' शीर्षक शोध प्रबंध में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा के ढांचे का ही विकास किया है लेकिन बालकृष्ण भट्ट और हिन्दी प्रदीप के साहित्य स्रोत का अधिक इस्तेमाल किया है। यह शोध प्रबंध प्रकाशित भी हो चुका है। हिन्दी प्रदीप के लेखकों की रचना विवरणी मधुकर भट्ट ने भी दी है और मधुकर भट्ट द्वारा प्रस्तुत रचना विवरणी डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा के मुकाबले अधिक सुसंगत है। परसन के संदर्भ में डॉ. मधुकर भट्ट ने राजेन्द्र प्रसाद शर्मा द्वारा प्रस्तुत रचनाओं को अपर्याप्त मानते हुए लिखा है कि *''डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा ने कवि परसन की केवल 32 रचनाओं का ही उल्लेख*

किया है जबकि हिन्दी प्रदीप में उनकी 53 कविताएं और लेख मिलते हैं। विचार भाषा और शैली परसन की लगभग भट्ट जी की तरह ही हैं।'' [23] मधुकर भट्ट ने अतिरिक्त रचनाओं को जोड़ कर 53 रचनाओं की शीर्षक सहित पूरी सूची भी दी है।[24] डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा द्वारा 1890 के आसपास परसन की मृत्यु की सम्भावना को खारिज करते हुए मधुकर भट्ट ने लिखा कि *''हिन्दी प्रदीप में प्रकाशित रचनाओं के आधार पर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा ने अगस्त 1890 के बाद 'परसन' को मृत घोषित कर दिया है। स्मरण रहे जनवरी 1892 के हिन्दी प्रदीप के अंक के पृष्ठ 8-9 पर परसन की एक कविता प्रकाशित हुई थी, इसलिए डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा का यह विचार कि परसन की मृत्यु अगस्त 1890 के बाद ही हो गयी, युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। परसन कवि का जन्म 1864 में प्रयाग में हुआ था और मृत्यु 1892 में निश्चित है।''* [25] डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा और मधुकर भट्ट के अतिरिक्त परसन सम्बंधी जानकारी का कोई अन्य स्रोत उपलब्ध नहीं है इसलिए उनकी जन्मतिथि या मृत्युतिथि का निश्चित अनुमान मुश्किल है। मधुकर भट्ट ने 'होली' नामक रचना को जनवरी 1892 में प्रकाशित मान कर परसन की मृत्यु 1892 में मानी है। बालकृष्ण भट्ट और हिन्दी प्रदीप से सम्बंधित दस्तावेजों के संकलन सम्पादन पर काम करते हुए मुझे 'होली' नामक रचना परसन के नाम से नहीं मिली बल्कि 'नये ढंग का स्वांग होली के रसिकों के लिए' जैसी रचना हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर नवम्बर दिसम्बर 1889 के अंक में प्रकाशित मिली। इसलिए किसी रचना के प्रकाशन सम्बंधी विवरण के आधार पर उसकी मृत्यु सम्बंधी सूचना को निश्चित मानना मुश्किल है। सम्भव है किसी लेखक की रचना पहले प्रकाशित होने से रह गयी हो और जब प्रकाशित हुई तब तक लेखक की मृत्यु हो चुकी हो। यह सच है कि परसन किसी असाध्य रोग से पीड़ित थे और (1864-1892) कुल जमा 28 वर्ष की अल्पायु में मरे। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि उनकी जन्मतिथि और पुण्यतिथि का निर्धारण करने में क्या माना जाये व क्या न माना जाये, को लेकर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा और मधुकर भट्ट की बातों का पिष्टपेषण किया जाये। महत्वपूर्ण यह है 'हिन्दी प्रदीप' की फाइलों को देखने पर, मिलान करने पर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा और डॉ. मधुकर भट्ट द्वारा प्रस्तुत रचना विवरणी भी आधी अधूरी साबित होती है। हिन्दी प्रदीप की फाइलों से नवम्बर 1888 से जुलाई अगस्त 1890 के बीच मुझे परसन से सम्बंधित लगभग 62 गद्य पद्य रचनाएं मिलीं और इस प्रकार यह बिल्कुल सच है कि *''परसन ही अकेला ऐसा व्यक्ति है जिसकी रचनाएं हिन्दी प्रदीप की सांचिकाओं में सबसे अधिक हैं।''* [26]

भारतेन्दु मंडल और हिन्दी नवजागरण पर विचार करते हुए प्रायः मुख्यधारा की साहित्य विधाओं कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, कविता और आलोचना पर ही विचार किया जाता है और भारी मात्रा में लोकगीतों, मुकरियों, मुहावरों तथा विभिन्न लोकशैलियों में लिखी गयी विविध सामग्री की उपेक्षा कर दी जाती है जबकि वह सामग्री निर्णायक महत्व की है। भारतेन्दुयुगीन साहित्य में मुख्यधारा से अलग निर्णायक महत्व की सामग्री का प्रतिनिधित्व परसन के यहां है। वे हिन्दी नवजागरण के लोकस्वर के महत्वपूर्ण प्रतीक हैं। हिन्दी नवजागरण के लोकचिन्तक इस प्रश्न पर बेहद चौकन्ने थे कि भूमिकर कहां माफ हुआ, टैक्स कहां कम हुआ, राजनीतिक स्वायत्तता की क्या सम्भावना है, शिक्षा के विकास की क्या योजना है, स्वदेशी और आर्थिक विकास की क्या स्थिति है यह प्रश्न नवजागरण के महत्वपूर्ण प्रश्न हैं और इनका सम्बंध न सिर्फ हिन्दी प्रदेश के भद्रवर्गीय जातीय आधार से है बल्कि इन प्रश्नों की आहट परसन जैसे जनधर्मी रचनाकार की रचनाओं में भी है। परसन असमंजस में हैं कि *'हे सरकार प्रजापति करिये नेक विचार/रक्षक जो भक्षण करै केहि सन करि पुकार।*[27] अंग्रेजीराज के भीतर समस्याओं का निवेदन भी कैसे हो और कहां हो यह प्रश्न उनके यहां मुश्किल है लेकिन भारतीय जनता के लिए अंग्रेजीराज की स्थिति का सटीक मूल्यांकन है *''जबरा*

मारत रोय न देय काश्मीर निज हाथन लेय/रूस चढ़त ताको नहि डांटत निज अधीन कहं नाहक तांसत।'[28] परसन के यहां यह स्पष्ट है कि अंग्रेजीराज भारत के पिछड़ेपन का एकमात्र कारण है लेकिन भारतीय विरोध के सम्मुख साम्राज्यवादी दमन अवरोध की पूरी शक्ति हर वक्त खड़ी रहती है। हिन्दी नवजागरण की जन आकांक्षा को साहित्य रचनाओं में ढाल कर परसन ने उसे जैसे अभिव्यक्त किया है, वह देखने योग्य है। सम्भव है उनका नाम प्रसन्न रहा हो पर सवर्ण जाति की हिकारती पुकार में प्रसन्न का भ्रष्ट रूप परसन हो गया हो। परसन यद्यपि पढ़े लिखे न थे लेकिन समय समाज से जुड़े थे और प्रतिभाशाली थे। उन्हें साधारण स्कूली शिक्षा शायद ही प्राप्त हुई थी किन्तु अपने जीवट और संकल्पशक्ति के कारण उन्होंने काव्यसाधना की अद्‌भुत क्षमता अर्जित कर ली थी। परसन बालकृष्ण भट्‌ट की निर्मिति थे। भट्‌ट जी के व्यक्तिव कृतित्व की पूरी छाप परसन पर दिखलाई पड़ती है। बालकृष्ण भट्‌ट के विचार चिन्तन में अंग्रेजीराज विरोधी चेतना, दुर्भिक्ष और अकाल से पीड़ित भारतीय जनता की अस्त व्यस्तता को मानो परसन के रूप में लोकस्वर का सही माध्यम मिल गया। वे लोकोक्ति और उसके उदाहरण के ढंग पर जनता की मजबूरी और ब्रिटिश सत्ता की शोषक छवि को रेखांकित कर रहे थे : *'जो आपन चाहहु कल्याना भारत प्रजहि करहु बलवाना'* भारतीय प्रजा की मजबूती की कामना करते हैं क्योंकि *'भारत की सब प्रजा रोवै गोरों का मुख भरा'* जनता भूख और दरिद्रता में बेहाल है और अंग्रेजीराज धनधान्य से भरा है। महत्वपूर्ण यह है कि भारत की व्यापक दरिद्रता, भूख और बेकारी की माार्मिक अभिव्यंजना को बालकृष्ण भट्‌ट भी लोकशैलियों में प्रस्तुत किया करते थे। भट्‌ट जी ने जनवरी 1887 के अंक में एक कजली लिखी : *''घर में अनाज नाहीं/भूखन को साज नाहीं/कोऊ सिरताज नाहीं/कपड़ा पुरान/कैसे खेलों कजली/ब्राह्मन कपूत भैले मूढ़ राजपूत भैले भूप यमदूत भैले/रोवत किसान/कैसे खेलों कजली।''* [29] इस परम्परा का विकास परसन की कजली में भी दिखायी पड़ता है। परसन अपनी कजली में बढ़ती महंगाई, मालगुजारी का बढ़ना, किसानों की दुर्दशा और हताशा का चित्रण करते हैं : *महंगी गजब जोर की घहरै केहि विधि बचिहै पापी प्रान/केहि विधि देइहैं मालगुजारी रौवे छातीफाड़ किसान/घर दुवार कैसे के रखिहैं चिन्ता चिता लगान/इच्छा काल रोय रहि परजा सुनि दुःख द्रवत पखान* [30] की बात करते हैं साथ ही इस बात पर दुःख व्यक्त करते हैं कि *''महंगी चमकी भारत भीतर को यह विपत सहै अतिघोर/पेट काट के टिक्कस लाओ तिहि पर महंगी जोर/बीस लाख काबुलपति मांगत यह भा निपट कठोर/कासमीर कसकत जियि छिन छिन लेवयहू बरजोर/गेहूं ढोवत जात भारत को सब यूरोप की ओर/भूखन मरत प्रजा भारत की लेत उसास करोर।''* [31] यहां यह देखना महत्वपूर्ण है कि महंगाई की विपत्ति की मार सहते हुए, पेट काट कर टैक्स की भरपाई करने वाली आम जनता पर काबुल विद्रोह का भार डाला जा रहा है, कश्मीर की लड़ाई का खर्च लिया जा रहा है और गेहूं का खाद्यान्न यूरोप ढोया जा रहा है जिसके कारण भारतीय प्रजा भूखों मरने को अभिशप्त है।

हिन्दी नवजागरण के व्यापक संदर्भ में नवजागरण के विवेचनात्मक गद्य और जातीय गद्य परम्परा के समांतर लोकपरम्परा और लोकशैलियों पर आधारित परसन की रचनाओं का मूल्यांकन नवजागरण विचार यात्रा के लोकपक्ष से परिचित होना है। भारतेन्दु युग के साहित्य में उद्योग धंधे के विनाश, बेरोजगारी बढ़ने, विदेशी वस्तुओं की भरमार तथा देश के धन का विदेश ढोये जाने पर चिन्ता व्यक्त की गयी है। हिन्दी नवजागरण का लेखन भारत की सामाजिक आर्थिक दुर्दशा के लिए अंग्रेजीराज को जिम्मेदार ठहराता है। भारतेन्दु का मानना था कि *''भारत का व्यापार अंग्रेजों के हाथ में है, कपड़ा झाड़ फानूस खिलौने, कागज और पुस्तक इत्यादि सब वस्तु विलायत से आवेंगी उसके बदले यहां से द्रव्य जायेगा।''* [32] बालकृष्ण भट्‌ट सन् 1857 के घोषणापत्र को याद करके अपना हक मांग रहे थे

और *'महारानी के चमकीले साम्राज्य'* पर व्यंग्य करते हुए यह कहना न भूले कि *''यद्यपि दरिद्रता और दैन्य यहां अब तक पांव जमाए हुए हैं बल्कि बढ़ रहे हैं।''*[33] भारत की लूट के बारे में जो बातें 1857 के इश्तहार लेखक जानते थे, उन्हें 1880-90 में हिन्दी भाषी क्षेत्र के लेखक पत्रकार भूले न थे बल्कि 25-30 वर्षों के भीतर वह चेतना आम जन तक पहुंच चुकी थी जिसकी अभिव्यक्ति परसन के यहां मिलती है *''सोना चांदी रूई नाज सब लदा विलायत जाता है/बदले जिसके अस्थि आदि का घृणित पदारथ आता है/परजा भूखौ मरै अन्न बिन कुछ नहि इनसे नाता है/नया नया नित टिक्कस टटका गढ़ लंदन से आता है/गोरी काली प्रजा एक सम कहने की यह बाता है/काली न्यौछावर गोरी पर साफ साफ दिखलाता है।''* [34] इतना ही नहीं परसन के यहां यह भी स्पष्ट है कि *''पार्लियामेण्ट के मेम्बरों ने बहुत से वाद विवाद के उपरांत गुप्त रीति पर यह तै कर लिया कि नाम करने को इन्हें हुकूमत के दो एक इख्तियार दै दिवाय फुसला रक्खो पर तिजारत यहां की बिल्कुल रोक अपने हाथ में कर लो।''* [35] यह स्वर ध्यान देने योग्य है क्योंकि यह हिन्दी भाषी समाज की आम राय है भद्रवर्गीय बौद्धिक असर से मुक्त। अब सामान्य जन भी 'गवर्नमेण्ट की गेहूं पर बिकट दृष्टि' का मूल्यांकन कर रहा था और यह मानने लगा था कि अंग्रेजीराज के लिए *''मैनचेस्टर के थोड़े से बनिये और जुलाहों को प्रसन्न रखना अधिक पुण्य और न्याय है... 87 करोड़ मन गेहूं यहां से प्रतिवर्ष लद जाने पर और गेहूं यहां से लादने की चेष्टा और फिकिर हो रही है, अब आपको रुपये का पांच सेर गेहूं मिलना भी दुर्घट हो जायेगा खाना और पहिनना यही दो बातें मनुष्य के लिए अति आवश्यक है सो कपड़ा ये हमसे लिया करैं और अपनी आगे की परसी थाली ये हमें दै दें।''* [36] परसन की कविताओं में अंग्रेजीराज के शोषण, शिक्षा और बेकारी, पुलिस और सरकारी विभागों का निकम्मापन, कानून कचहरी जैसे विषय सामान्य जन की जागृति को दर्शाते हैं।

परसन की साहित्य यात्रा का विकास बालकृष्ण भट्ट की छत्रछाया में हुआ। विचार चिन्तन, भाषा शैली में परसन लगभग बालकृष्ण भट्ट के अनुकर्ता हैं। पारम्परिक जड़ता का विरोध, सामाजिक कुरीतियों पर तीखा व्यंग्य, देशी राजभक्तों और ब्रिटिश सरकार की कुटिल नीति का विरोध और देश दशा में सुधार के सवाल यह सब परसन की रचनाओं की अंतर्वस्तु हैं साथ ही अंग्रेजीराज समर्थक समाचारपत्रों का विरोध, गोरक्षा का समर्थन, बाल विवाह की निन्दा, राजनीतिक जागरण का आह्वान, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार पर जोर, हिन्दी भाषा का समर्थन, समाज दुर्दशा, बेरोजगारी, सरकारी तंत्र, कचहरी आदि पर तीखे व्यंग्य जैसे 19वीं सदी के नवजागरण के विभिन्न विषय परसन की रचनाओं में भरे हैं। यह सही है कि *'परसन की प्रारम्भिक रचनाएं विशुद्ध तुकबंदी मात्र हैं'* [37] लेकिन मधुकर भट्ट ने भारती भवन पुस्तकालय, प्रयाग के पं. मूलचंद मालवीय के हवाले से लिखा है कि *''उनकी कविताएं संशोधित कर भट्ट जी हिन्दी प्रदीप में छापने लगे। भट्ट जी परसन से बड़ा प्रेम करते थे। परसन जब भी आते देहरी पर ही बैठते। भट्ट जी बड़े प्रेम से अपने तख्त पर बैठने को कहते पर वह भट्ट जी का इतना आदर करते कि कभी तख्त पर न बैठते।''* [38] इस प्रकार नवम्बर 1888 से जुलाई अगस्त 1890 के बीच हिन्दी प्रदीप के प्रत्येक अंक में परसन की रचनाएं प्रकाशित हैं। हिन्दी प्रदीप में प्रकाशित परसन की 62 रचनाएं हिन्दी नवजागरण में उनकी सक्रियता की प्रमाण हैं, उनमें 'भजन' नवम्बर 1888, 'लाग' नवम्बर 1888, 'गोपुकार' जनवरी 1889, 'बार' अप्रैल 1889, 'लोकोक्ति और उसके प्रत्युदाहरण' मई 1889, 'कजली' मई 1889, 'पढ़ो परबत्ते सीताराम' जुलाई अगस्त 1889, 'कांग्रेस पुकार' सितम्बर 1889, 'गबड्डी' अक्टूबर नवम्बर दिसम्बर 1889, 'प्रश्नोत्तर पचीसी' अक्टूबर नवम्बर दिसम्बर 1889 तथा 'पद्यबद्ध समयिक राज की महिमा' मई जून 1890 जैसी लोकशिल्प में जनधर्मी राजनीतिक कविताएं हैं तथा 'जानते हैं' नवम्बर 1888, 'अटल कुचाल'

जनवरी 1889, 'गरज' मार्च 1889, 'भार' अप्रैल 1889, 'भ्रम या भरम' जून 1889, 'कुछ कुछ नये ढंग की कहानी' अक्टूबर नवम्बर दिसम्बर 1889, 'अचम्भा' जनवरी फरवरी मार्च 1890 तथा 'पंच महाराज का अजपाजाप' अप्रैल 1890 जैसी सामयिक संदर्भ से जुड़ी ललित गद्य रचनाएं भी हैं। लिखने को परसन ने 'बार' अप्रैल 1889, 'लोट' मई 1889, 'नहीं सूझत' जून 1889, 'अच्छा है' जून 1889, 'व्यर्थ है' जुलाई अगस्त 1889 तथा 'घटत है' सितम्बर 1889 जैसी विशुद्ध तुकबंदी मात्र की सपाट रचनाएं भी लिखीं जो अपने सपाट ढंग के बाद भी कथ्य की विभिन्न अर्थध्वनियों को समाहित किये हुई थीं मसलन *''कामांध को महतारी बहिन नहीं सूझत। मूर्ख ब्राह्मणों को अपनी हानि और अपमान नहीं सूझत। सामयिक प्रभु को प्रजा की पीर नहीं सूझत।''* [39] यहां सामयिक प्रभु का प्रजा पीर के प्रति लापरवाही में अंग्रेजीराज पर व्यंग्य स्पष्ट है। अपने समय समाज में देश दुर्दशा की बहुतायतता को 'बहुत है' के माध्यम से परसन नाम परिगणन शैली में कहते हैं *''भले घोड़े को एक लगाम बहुत है। आजकल कानून बहुत है। झूठी गवाही बहुत है। अन्याय बहुत है। बरजोरी बहुत है। महंगी बहुत है। पलटन बहुत है। खर्च बहुत है। कर्जा बहुत है।... स्टेशन पर धक्का बहुत है। हुक्का बहुत है। व्यभिचार बहुत है। नौजवानों के बदन में सुस्ती बहुत है। विलायती कपड़ा फटता बहुत है। स्कूलों में फीस बहुत है।''* [40] क्या यह सच नहीं है कि 'बहुत है' की पूरी फेहरिश्त भारत में अंग्रेजीराज के शोषण की मशीनरी के कलपुर्जों की फेहरिश्त है? हिन्दी नवजागरण के आसंग में बालकृष्ण भट्ट मंडली के लेखकों में परसन का महत्व यह है कि वे हल्की फुल्की रचनाओं में भी देश दशा के प्रश्न और सामाजिक दुर्दशा के सवाल से जनता को रूबरू कराते हैं। एक तरफ अंग्रेजीराज के भीतर *'भविष्य के लिए भारत के कल्याण की आशा करना व्यर्थ है, प्रजा के लिए पुलिस का महकमा व्यर्थ है'* [41] की बात करते हैं तो दूसरी तरफ यह भी याद दिलाते हैं कि *''चार बात गम खाना अच्छा है... मैनचेस्टर वालों को कपड़े में मुनाफा अच्छा है। अमेरिका वालों में शिल्प चातुरी का हुनर अच्छा है। हमारी सरकार का नसीब अच्छा है। रूसियों से अंग्रेजों का भिड़ जाना अच्छा है। विधवा विवाह से बाल्य विवाह का बंद हो जाना अच्छा है। अदालत न जाना अच्छा है। सब खो जाने से आधा छोड़ देना अच्छा है। मासिक पत्रों में ब्राह्मण अच्छा है।''* [42] यहां जो अच्छा है उसके प्रति समर्थन सहमति का भाव है लेकिन मैनचेस्टर अमेरिका सरकार अदालत और रूसियों अंग्रेजों के संदर्भ में व्यंग्योक्ति भी है। पूरनचंद्र जोशी ने भारतेन्दु युग के साहित्यकारों की सांस्कृतिक चेतना पर विचार करते हुए लिखा है कि *''ब्रिटिशराज के देशहित और जनहित विरोधी भयानक चेहरे को बेनकाब सर्वप्रथम संस्कृतिकर्मियों ने ही किया और ब्रिटिश राज की वंदना में लगे हुए देशवासियों की मिथ्याचेतना को सर्वप्रथम झकझोरा भी संस्कृतिकर्मियों ने ही। उन्होंने ही सर्वप्रथम स्वहित पहचानने वाली चेतना के बीज सांस्कृतिक भूमि पर बोये और इस प्रकार एक स्वस्थ राष्ट्रीय राजनीति के लिए आधार पैदा किया।''* [43] परसन की रचनाओं का महत्व यह है कि उनमें भारतेन्दु के 'जातीय संगीत' की ध्वनि है और राजनीतिक प्रचार की कविता का प्रारम्भिक स्वर भी सुनायी पड़ता है। भारतेन्दु युग के भीतर जनचेतना में व्यापक बदलाव की, रद्दोबदल की कोशिश करने वाला जनकवि परसन लोक कविता के विभिन्न रूपों में लावनी, बरवा, कजली, होली इत्यादि में अपने को अभिव्यक्त कर रहा था, बल्कि प्रगतिशील आंदोलन के जनकवि नागार्जुन की यह बात *'हिन्दी की है असली रीढ़ गंवारू बोली/यह उत्तम भावना तुम्हीं ने हममें घोली'* परसन पर सटीक बैठती है, जो उन्होंने भारतेन्दु के लिए कही है।

परसन की रचनाओं की समयावधि बहुत अल्प है, नवम्बर 1888 से जुलाई अगस्त 1890 तक, लगभग दो वर्ष लेकिन महत्व यह है कि पहली ही रचना का प्रकाशन हिन्दी प्रदीप, नवम्बर 1888 अंक के पहले ही पृष्ठ पर और फिर अगस्त 1890 तक प्रत्येक अंक में परसन की रचनात्मक उपस्थिति

मिलती है। किसी किसी अंक में तो आधे से अधिक रचनाएं केवल परसन की हैं, जैसे हिन्दी प्रदीप, मई 1889 में आठ रचनाएं, जून 1889 में नौ रचनाएं, जुलाई अगस्त 1889 में आठ रचनाएं, नवम्बर दिसम्बर 1889 के संयुक्तांक में दस रचनाएं तथा जनवरी फरवरी मार्च 1890 के संयुक्तांक में चार रचनाएं मिलती हैं। पत्रकारिता के इतिहास पर विचार करते हुए यह देखना दिलचस्प है कि किसी पत्र पत्रिका में एक लेखक की एक ही अंक में एक से अधिक रचनाओं का होना तभी सम्भव है जब या तो वह लेखक सम्पादकीय टीम का भरोसेमंद हो या उसके लेखन का लक्ष्य पत्र प्रकाशन के लक्ष्य से मेल खाता हो। परसन के संदर्भ में यह विशेष उल्लेखनीय बात है कि अपनी लोक सम्पृक्ति, प्रतिबद्धता और रचनात्मक महत्व के कारण परसन न सिर्फ नवजागरण के लेखन से जुड़े बल्कि प्रारम्भ से ही 'भट्ट स्कूल' के महत्वपूर्ण सदस्य बन गये। हिन्दी नवजागरण की वर्गीय चेतना में अंतर्विरोध ही अंतर्विरोध देखने तथा पिछड़ेपन का आरोप लगाने वाले को परसन जैसे निम्न मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि वाले लेखक के लेखन पर विचार करना चाहिए। परसन के रचनात्मक स्वर में जोर इस बात पर है कि देश पराधीन है, गुलामी के सारे दुर्गुण उसमें आ गये हैं। शासन सत्ता धूर्त्त है। राजनीतिक मुक्ति की सम्भावना मंद है। अंग्रेजी शिक्षा के साथ गुलामी का दीर्घकालीन पट्टा लिखा जा रहा है। आर्थिक दोहन लूट की अंतिम सीमा तक पहुंच गयी है। ब्रिटिश शासन के अमले इस लूट के साझीदार हैं और इनके देशी दलाल भागीदार हैं। विदेशी वस्तुओं से बाजार पटा पड़ा है। हिन्दुस्तानी व्यापार नष्ट हो चुका है। परसन के पास अंग्रेजीराज के शोषण की महीन व्यवस्था की समझ है और अंग्रेजीराज विरोधी चेतना का विचार बोध है, साथ ही जुझारू मजदूर किसान का भावबोध भी है। हिन्दी नवजागरण के आसंग में परसन का यह स्वर उन्हें आज भी महत्वपूर्ण बनाता है बल्कि अधिक महत्वपूर्ण क्योंकि विश्व बैंक, बहुराष्ट्रीय बाजारतंत्र तथा भूमंडलीकरण के देशी दलालों ने मिल कर आम जन के भीतर वैसी ही हताशा निराशा की स्थितियां पैदा कर दी हैं जैसी परसन के यहां हैं। सन् 1885 से 1905 तक कांग्रेस के भीतर साम्राज्यवाद परायणता और देश हितैषिता की मिलीजुली चेतना थी लेकिन हिन्दी प्रदेश के लोकमानस में अंग्रेजीराज के प्रति यह स्पष्ट धारणा अपना स्वरूप ग्रहण कर रही थी कि *"गोरों लिए सुभीता किया खर्चा भारत के सिर दिया/देन एक के दस दस किया भूखों से भी टिक्कस लिया/बिना भूमि के राजा किया सी.एस.आई. खिताबी दिया/करज करा कर दावत लिया तिहुपर देन इजाफा किया/दस्तखत करा कमिश्नर किया रुपया चार खानगी लिया/न्याय भी खूब अदालत किया रूपया चार खानगी लिया।"* [44] परसन की यह साफ समझ थी कि सामाजिक विकास की अवरोधक स्थितियां कैसी हैं *"पूजा पाठ मनौती किया तबकतहूं छुटकारा किया/कलियुग में आ डंका दिया मेहर मानुस में झगड़ा किया/शिक्षा देव द्विजन तज दिया घर में राज डफालिन किया/इंगलिश पेपर को दस दिया रीडिंग पढ़ कर जी भर दिया/हिन्दी पत्र डाकिया दिया देखत ही मुंह नीचा किया।"* [45]

ज्ञान के नये आलोक के साथ हिन्दी प्रदेश में पूजा पाठ कर्मकांड का दखल, शिक्षा सुधार की अपर्याप्तता, घर परिवार की कलह, फैशनपरस्ती की बाढ़ और जातीय सांस्कृतिक हीनताग्रंथि जैसे सवाल परसन एक साथ उठाते हैं। परसन अपनी कविताओं में होली कजली ठुमरी और लावनी जैसे लोकगीतों के संस्कार को डालते हैं, वे काव्य संस्कार और भाषा संस्कार के प्रति सजग नहीं हैं केवल सार्थक सम्प्रेषणीयता के प्रति सजग हैं और कहना न होगा कि परसन अपने समय में अनगढ़ भाषा के सुघड़ कवि हैं। उनकी भाषा शिष्ट और साहित्यिक भाषा न होकर साधारण जन की भाषा है। उनकी रचनाओं में सामान्य जनता के दुःख दर्द, भाव प्रकाश, घात प्रतिघात हैं इसलिए इन रचनाओं में 'व्यक्ति' का स्वर जैसी बात नहीं है, बल्कि समूचे सामान्य जन का समवेत स्वर गूंजता है। इस साहित्य पर व्यक्ति की छाप न होकर उस समग्र 'लोकवृत्त' की छाप है, जिस लोकवृत्त में वह रचा गया है।

उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण वे राजनीतिक कविताएं हैं जिनमें वे न सिर्फ अंग्रेजीराज के विरोध पर बल देते हैं, सामाजिक परिवर्तन पर भी जोर देते हैं, कांग्रेस का समर्थन करते हैं और जातीय एकता पर बल देते हैं बल्कि बहुत तीखी शब्दावली में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और सर सैयद अहमद खां की राजनीतिक लाइन का विरोध भी करते हैं। वैसी राजनीतिक कविताओं में 'प्रश्नोत्तर पचीसी', 'कांग्रेस पुकार', 'गबड्डी' तथा 'नये तानसेन का राग' जैसी कविताएं अतिशय महत्वपूर्ण हैं। होली के अवसर पर 'नये ढंग का स्वांग' लिखते हुए परसन का राजनीतिक दृष्टिकोण देखने योग्य है *''जितने उत्सव रहे हिन्द में लूटो महा अमाया/दुःख दलिद्दर आदि घटायें चहूं ओर से छाया/कौर कौर रोटी के लागे परजा जन चिल्लाया/कोऊ न पूछै अपन पराया कठिन काल चलि आया।''*[46] ऐसे में कांग्रेस का गठन एक उम्मीद की सुबह सी थी नवबौद्धिक भारतीय मध्यवर्ग में भी और आम जन में भी। परसन ने आगे लिखा *'भया कांग्रेस जब से भैया जलते हाकिम सारे/परजा को लूटन को धातैं औरौ अधिक विचारे/इनकम टेक्स दीजिये सब दिन जारी नेग हमारे/बड़े लाट सिमले के उपर पड़े पड़े ललकारे।'*[47] अर्थात कांग्रेस के गठन से 'जलते हाकिम सारे' वाली बात में कांग्रेस का साम्राज्यवाद विरोधी चरित्र स्पष्ट है। आज 21वीं शताब्दी में राष्ट्रीय नवजागरण का मूल्यांकन करते हुए आधुनिक विमर्शकार 1885 में कांग्रेस के गठन में सुधारवादी साम्राज्यवाद परायणता भर देखते हैं उन्हें विचार करना चाहिए कि भारतेन्दु मंडल के भीतर कांग्रेस के महत्व का सटीक पक्ष प्रतिपक्ष अपना आकार ग्रहण कर रहा था और भारतेन्दु मंडल के समानांतर नयी राजनीतिक संघर्ष चेतना की आधारभूमि रचने वाले *बालकृष्ण भट्ट मंडल* के लेखक *कांग्रेस बधाई, कांग्रेस निदान* और *कांग्रेस पुकार* जैसी राजनीतिक कविताएं लिख कर भारतीय राजनीति में परिवर्तन और प्रगति के तौर पर कांग्रेस के महत्व पर विचार कर रहे थे। श्रीधर पाठक हिन्दी प्रदीप जनवरी फरवरी मार्च 1888 में 'कांग्रेस बधाई' शीर्षक कविता में उसे *'श्री भारत भारती प्रनय पूरन परिचायक'*[48] मान रहे थे। जून 1888 के अंक में स्वयं बालकृष्ण भट्ट ने *'कांग्रेस निदान'* नाम से 151 छंदों की कविता लिखी, यह कविता कड़खा छंद में है। कांग्रेस निदान कविता में कविता का प्रारम्भ इस मंगलाचरण से होता है *'श्रीगणेश को पहिले सुमिरौ, फिर बिसमिल्ला और रहिमान/अग्नि देव अरु बुद्ध गॉड को सब मिलि करै देश कल्याण।'*[49] यहां श्रीगणेश के साथ बिसमिल्ला रहमान का उल्लेख नयी विचार चेतना का प्रारम्भ है और इस धारणा का खंडन करता है कि हिन्दी नवजागरण शिवप्रसाद सितारेहिन्द, सर सैयद अहमद खां और भारतेन्दु के व्यक्तिगत झगड़े का मामला भर था[50] और हिन्दू मुस्लिम वर्चस्व विरोध का संघर्ष था। बल्कि उसका स्वर अखिल भारतीय था। बालकृष्ण भट्ट के अनुसार *''नेशनल कांग्रेस को कुछ मतलब, अब सुन लो सब कृपानिधान। सब मजहब के मानुष मिलिकै, जो कुछ जोड़ै सभा महान।''* महत्वपूर्ण यह है कि कांग्रेस को मजबूती देने की बात पर भट्ट स्कूल के सभी लेखकों का जोर है। ब्रिटिश सरकार के विकल्प के रूप में कांग्रेस की मजबूती पर जोर इसलिए है कि *''जुलुम जोर नहिं होय प्रजा पर उनके मन यह रह्यो विचार/ पार्लिमेण्ट कहा न मानै जो चाहे सो करै प्रचार/मनमानै का मेम्बर हैरै मनमाने का रचै कानून/टिक्कस भांत भांत का लावै नहि सोचै कछु जून कुजून।''*[51] अंग्रेजीराज में टैक्स पर टैक्स बढ़ाने में समय कुसमय का ध्यान नहीं रखा जाता साथ ही जोर जुल्म की ज्यादती है, चाटुकरिता है और रिश्वतखोरी का जो बोलबाला है, बंदोबस्ती में धांधली है और महंगाई की मार से रैयत किसान परेशान है। बालकृष्ण भट्ट को 'कांग्रेस निदान' का एकमात्र विश्वास इसलिए है कि *'बिगड़ी रैयत निज टंटामे, जग दारिद का बजा निशान/उद्यम हर्‌यो विलायतवासी, फाकौ घूर रहे बिलखान'*।

श्रीधर पाठक और बालकृष्ण भट्ट की परम्परा की अगली कड़ी परसन के यहां 'कांग्रेस पुकार' के रूप में दिखती है। सितम्बर 1889 के अंक में परसन की कविता *'कांग्रेस पुकार'* का महत्व

इसलिए भी है कि बालकृष्ण भट्ट जैसे हिन्दी प्रदेश के स्वाधीनचेता लेखक पत्रकार बुद्धिजीवी 'कांग्रेस' का मूल्यांकन देश और देशवासियों के लाभहानि के संदर्भ में कर रहे थे इसलिए कविता का शीर्षक है *'कांग्रेस बधाई'* और *'कांग्रेस निदान'*। लेकिन परसन जैसे हताश निराश, दुखी वंचित आम मनुष्य अपने दुःख दर्द से मुक्ति के लिए 'कांग्रेस पुकार' में ही भविष्य की आशा तलाश रहे थे। इन दोनों कविताओं के शीर्षक क्या जातीय वर्गीय कामना संघर्ष और विश्वास की अलग अलग जमीन से नहीं जुड़े हैं? शीर्षक की भिन्नता में क्या अलग अलग जातीय वर्गीय भिन्नता को खोजना देखना गलत है? यह विचार का विषय है कि कांग्रेस सम्बंधी श्रीधर पाठक और बालकृष्ण भट्ट की कविता में राजनीतिक मुक्ति और कांग्रेस महत्व की बातें हैं लेकिन स्वर तटस्थता का है जबकि परसन के यहां कांग्रेस के विस्तार, गतिशीलता और महत्व में रचनाकार की निजी आकांक्षा भी ध्वनित है *''देश की उन्नति देश भलाई 20 लाख बिन माटी होय/बूंद का चूका गगरी ठरकै तबहूं कारज कबहूं न होय/पैसा पैसा घर पीछे दै 20 लाख धन अबहिन होय/शिथिल कांग्रेस जो कहु होहगा सिर धुनि तब तुम रहिहौ रोय।''*[52] परसन देश की उन्नति और भलाई के निमित्त एक एक पैसे की मदद मांगते हैं कांग्रेस के लिए, क्योंकि कांग्रेस की गतिविधियों का शिथिल होना भारतवासियों के सिर धुनने का कारण बनेगा यह विश्वास उन्हें है। वे सेठ साहुकारों! राजा भूस्वामियों, वैरिस्टर वकीलों से अपील करते हैं कि जैसे भी बने कांग्रेस की मदद करो क्योंकि *'निर्धन भारत जब होई जैहे तब तुम कह पुछी ना कोय'* इसलिए वे जोर देते हैं कि गहना गुरिया बेच कर भी कांग्रेस की मदद करो यह अपील विचारशील बुद्धिजीवियों से हैं और श्रमजीवी कामगारों से भी *''गहना बेचो गुरिया बेचौ पर देवै मा चूक न होय/सुनहु किसानो माख न मानो दीजे भाई जेहि विधि होय/सुनियो बतधर, सुनियो श्रमकर या कहं भूलि न जायों सोय/कांग्रेस नइया जो डग मग मा कतहूं बात न पूछी कोय।'*[53] यह कविता इस बात की गवाह है कि कांग्रेस के गठन के समय तक हिन्दी प्रदेश में राजनीतिक मुक्ति की आकांक्षा उग्र राजनीति के रूप में आगे बढ़ी हुई थी। परसन की अधिसंख्य राजनीतिक कविताओं में न सिर्फ शिल्प विधान, न सिर्फ भाषा विधान बल्कि कहने का ढंग भी लोक से गहरा जुड़ा है। अंग्रेजीराज विरोधी चेतना को वे कबड्डी गबड्डी के बोल के माध्यम से जन जन में, खासकर नौजवानों में उतारना चाहते हैं *''चल गबड्डी आइत है तबला बजाइत है/चल गबड्डी जाइत है मिसिल देख आइत है/अंट संट झट पट डिगरी कर आइत है/चल गबड्डी जाइत है कमिश्नर कहलाइत है/हां हुजूर कर कर चुंगिया लगाइत है/चल गबड्डी जाइत है मुल्ला बन आइत है/कांग्रेस से एंटीकर अब शरमाइत है/चल गबड्डी जाइत है सितारेहिन्द कहाइत है/रवि कांग्रेस देख चक चौंधियाइत है/चल गबड्डी जाइत है टिकस लगाइत है/दुखिया का मार मार रुपया ले आइत है।''*[54] यहां अंग्रेजी शासन की दमनकारी नीतियों में 'मिसिल', 'डिगरी', 'कमिश्नर', 'चुंगी' की भूमिका के साथ अंग्रेजीराज समर्थक देशी राजभक्तों की प्रतिगामी भूमिका का भी संकेत है। वीरभारत तलवार ने बालकृष्ण भट्ट और हिन्दी नवजागरण पर विचार करते हुए यह माना है कि *'शिवप्रसाद का विरोध करने में हिन्दी प्रदीप सबसे आगे था... वह शिवप्रसाद के खिलाफ अपमानजनक भाषा लिखने पर उतर आया था... कम से कम शिवप्रसाद का विरोध करने के लिए'*[55] जबकि राजा शिवप्रसाद की सरकार की हां में हां मिलाने की नीति का बालकृष्ण भट्ट ने विरोध किया, उनकी स्पष्ट राय थी कि *'वह हमारे, प्रजा के प्रतिनिधि नहीं हैं, सरकार के हैं'* और राजा शिवप्रसाद सम्बंधी यह आपत्तियां एकदम गलत भी नहीं थीं बल्कि *'चल गबड्डी जाइत है सितारेहिन्द कहाइत है/ रवि कांग्रेस देख चक चौंधियाइत है'* परसन की यह मान्यता शिवप्रसाद सितारेहिन्द सम्बंधी लोक प्रचलित धारणा का प्रकटीकरण भर है और इस बात का प्रमाण है कि राजा शिवप्रसाद जैसे अंग्रेजीराज समर्थक व्यक्तियों की लोक स्वीकृति संदिग्ध थी। अंग्रेजीराज का समर्थन

करने वाली शक्तियों के खिलाफ परसन का राजनीतिक स्वर प्रारम्भ से ही सख्त था। अपनी पहली रचना 'भजन' में उन्होंने अंग्रेजीराज समर्थक पत्र *'पायनियर'* तथा अंग्रेजी शासन के प्रति वफादारी का संदेश देने वाले *'सर सैयद अहमद'* को भी नहीं छोड़ा था *''पत्र पायनियर चुगली बेंचे रोटी खाय हराम की/ऐंटी कांग्रेस वाले बेंचे फूट मुलुक बदनाम की/मुल्ला सैयद इरखा बेचैं रहे अंधेरी शाम की/न्याय सूर्य का न चाहिं रहे लायलटी नाम की।''*[56] परसन का मुख्य स्वर राजनीतिक व्यंग्य का है। उनकी रचनाओं में कलात्मक वैशिष्ट्य की प्रखरता नहीं है और गम्भीरता और स्तरीयता का भी अभाव हो सकता है लेकिन अगम्भीरता के आवरण में उथली रचनाओं में भी देशभक्ति और अंग्रेजीराज विरोधी जनधर्मी संवाद का स्वर उन्हें अपने समय में महत्वपूर्ण बनाता है। भारत का दुःख दर्द, उपेक्षा, कंगाली के इतने चित्र उनके पास हैं कि प्रत्येक रचना में देश दशा और ब्रिटिश शोषण का प्रश्न उन्हें आकर्षित करता है। इस संदर्भ में उनकी रचना 'बरवा' को देखना दिलचस्प है। 'बरवै' छंद परम्परा से शृंगारिक मनोदशा के चित्रण के अनुकूल रहा है और परम्परा से इसका इस्तेमाल भी होता रहा है लेकिन परसन 'बरवा' के भीतर देश दुर्दशा की अंतर्वस्तु डालते हैं *'नित नित बढ़त टिकसवा देसवा माहिं/दिन दिन बनत कनुनवा फैलत जाल/बिनही श्रम के लूटत धन औ माल/केवल डाक अफिसवा कछु भलकीन्ह/मितवा केर संदेसवा नित उठ दीन्ह'*[57] यहां टैक्स का बढ़ना, कानून का मकड़जाल विस्तार, जानमाल की अपार क्षति के बीच डाक आफिस की सकारात्मक भूमिका की स्वीकार्यता और 'मितवा केर संदेसवा' की बात मानवीय सरोकार से जुड़ने की गवाह है। परसन के यहां सियासी समाजी चिन्ताएं परस्पर घुलीमिली हैं अंग्रेजीराज विरोधी रचनाओं में सामाजिक पिछड़ेपन, परिवर्तन विमुखता, लोक प्रचलित कुरीतियों तथा धार्मिक अंधविश्वास पर व्यंग्य भी खूब हैं। हास्य और व्यंग्य की सृष्टि उनकी अन्यतम विशेषता है। इसका लक्ष्य विदेशी शासन सत्ता के कर्ताधर्ता भी होते थे और धर्म समाज के पोंगापंथी भी। 19वीं शताब्दी की हिन्दी मनीषा साम्राज्यवाद विरोधी स्वर के साथ सामंतवाद विरोधी स्वर की भी वाहक थी और उनकी सामूहिक लड़ाई 'मुल्की तरक्की' की थी। यह तरक्की राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक थी। टैक्स की बढ़ोतरी, धनधान्य की लूट के साथ परसन यह कहना नहीं भूलते कि : *''नित नित नयी कुरितिया बाढ़त जाये/अस कोउ नाहिं देखाय जो देत मिटाय/देखवा परल महंगिया चहुंदिस आय/दस सेरवा के आगे नाहिं बिकाय।''* [58] असल समस्या यही है कि नयी नयी कुरीतियां सामाजिक जीवन को जर्जर कर रही हैं लेकिन ऐसी कोई उम्मीद नहीं है जिससे मुक्ति की सम्भावना दिखे, इसलिए परसन की चिन्ता स्वाभाविक है। वह जिस जातीय वर्गीय आधार पर खड़े हैं उसमें पिछड़ेपन और कुरीतियों का गहरा दंश अनुभवजन्य था लेकिन इसके कारणों की तलाश में वे व्यापक सरोकार पर बल देते हैं, उनके यहां समस्या की पहचान है *''चल गबड्डी जाइत है हिन्दू कहलाइत है/ताजिया में जाये जाये शीरनी चढ़ाइत है/चल गबड्डी जाइत है जटा जूट रखाइत है/चाब चाब मालपुआ तोंदिया फुलाइत है/चल गबड्डी जाइत है कथा बांच आइत है/लपसी सा चाट चाट सीधा बांध लाइत है।''*[59] एक तरफ हिन्दू कहलाना और दूसरी तरफ लोकविश्वास की मन्नतों में ताजिया में शीरनी चढ़ाना, जटा जूट रखा कर मालपुआ खाकर तोंद फुलाना, कथा वाचना और जोड़ जोड़ कर सीधा (दक्षिणा) बांधना इन सबमें विरुद्ध स्थितियों का विषम युग्म है, जिसके माध्यम से परसन पूरी व्यवस्था पर व्यंग्य करते हैं और उस व्यवस्था के पायेदारों की खिल्ली उड़ाते हैं। इस सामाजिक व्यवस्था के कारण हिन्दुस्तान इतना दुर्बल हो गया है कि *'चल गबड्डी आइत है आधे पेट खाइत है/तावा तसला बेंच खोंच टिक्कस दे आइत है'*। इस व्यवस्था से मुक्ति के लिए परसन 'तोता पढ़ाने के ढंग' पर लोगों से आह्वान करते हैं कि सामाजिक कुरीतियों को छोड़ो और 'देशसुधार' में साधक बनो

''तरुणाई में ब्याह कराते कुल को चलते नाम असमय गुच्चू पाला खेलत लड़के भये निकाम बहुत चले सुरधाम, पढ़ो परबत्ते सीताराम।

सैयद जो मुल्ला नहीं होते करते बहुकल्यान तअस्सुब के झगड़े ने उनको किया बहुत बदनाम गहीं पोंछलोवान पढ़ो, परबत्ते सीताराम।

''देश सुधार में बाधा करते हैं कृतघ्न अज्ञान दै विश्वास घाट जो करते भोगै नर्क महान यह वचन शास्त्र परमान पढ़ो परबत्ते सीताराम।''[60]

परसन के माध्यम से नवजागरण की बहस को सांस्कृतिक महानता के आत्ममोह से इतर आलोचनात्मक खीझ और आत्ममोह की प्रतिक्रिया के रूप में देखना आवश्यक है क्योंकि तब *'हिन्दी प्रदेश का वैचारिक संकट, बंदर की बला तबेले के सिर'*[61] न लग कर समतामूलक मुक्तिकामी सोच का व्यापक लोक परिप्रेक्ष्य बनता दिखेगा और अंग्रेजीराज के खिलाफ लोक असहमति का स्वर भी सुनायी पड़ेगा *''दूध पै चुंगी किन लगवायो, जिन बिन मेहनत बहुत कमायो/कांग्रेस देख कौन घबराते, जो बिन अकिल नौकरी पाते/भारतवासी क्यों बिललाहिं, कटि पट नहिं पेट अघाहीं/किन पर है संकट बहुभारी, जो जोते कर खेती बारी/देन खेत का कितना लागत, बहुधा खेत में जितना जामत/ब्रिटिश राज की परजा कैसी, भूखी बिन उद्यम अबला सी/दुखिया कासौं करै पुकार, ईश्वर केवल एक अधार''*[62] यहां अंग्रेजीराज की नीतियां प्रश्नांकित हैं और उत्तर में देश की जर्जरित दशा का समूचा संदर्भ एक एक कर रख दिया गया है। परसन को पूरा विश्वास है कि यह अंधाधुंध तब तक जारी रहेगा जब तक ब्रिटिश महारानी तक हमारी सही स्थिति नहीं पहुंचेगी *'अंधाधुंध यह कबलो रहिगैं/महारानी जबलौ ना सुनिहैं'*। महारानी तक बात पहुंचाने का एकमात्र माध्यम कांग्रेस है इसलिए कांग्रेस के इलाहाबाद में अधिवेशन होने पर उन्हें काफी उम्मीद है और 1888 के आगामी कांग्रेस अधिवेशन की प्रत्याशा में वे सोचने लगे कि *'कांग्रेस नियरान लाग सज्जन को सुक्ख लाग/दुर्जन को दुक्ख लाग अब तो नहिं चली लाग/भारत सुराह लाग चरचा बड़ होन लाग।'*[63] भारत मे स्वराज की चर्चा को लोकमानस में सन् 1888-89 में सुनना स्वाधीनता आंदोलन की शानदार ताकतवर परम्परा का द्योतक है। हिन्दी क्षेत्र 1857 के विद्रोह का गवाह है इसलिए दमन का अभिकेन्द्र भी रहा है, यहां अंग्रेजीराज के जोर जुल्म की दास्तानें लोकमानस में लोकगीतों के रूप में बहुत सशक्तता के साथ दर्ज हैं। परसन उसे 'विरहा' में ढाल देते हैं *''भूखों उपर टिक्कस लागे दुखिया बेगारी/काम करावे डांट डांट के दै दै मार गारी अंग्रेजी सरकार बिरहिया अंग्रेजी सरकार/चोर को तो धरती नाहीं भलमनयी पकड़ती/थाना कोतवलिया मा बैठ बैठ अकड़ती/पुलिस है जालिम जोर बिरहिया, पुलिस है जालिम जोर/गोरे लोगन गोली मारैं बन के शिकारी/केहिको सरन जाये परजा बिचारी/सुनती नहिं सरकार बिरहिया, सुनती नहिं सरकार।''*[64] राज व्यवस्था का समर्थन करने या उसकी महिमा बखान करने वालों की परसन ने अपनी रचनाओं में खूब खिल्ली उड़ायी है क्योंकि उनके अनुसार अंग्रेजीराज की भूमिका बहुत खतरनाक है जिसे वे 'पद्यबद्ध सामयिक राज की महिमा' में ब्याज स्तुति के रूप में बखान करते हैं कि 'समय राज की महिमा गावत शारद की मति थाकी है' लेकिन 'आटा चक्की' सब खत्म होने को है और *''बिलख बिलख सब परजा रोवैं का अब खायी माटी रे/बेच बेंच के कै दिन खाबै तावा तसला टाठी रे/खड्ग कटारी कौन चलावै रहन न दीन्हीं लाठी रे/सेन्ध फोर के चोखा लूटै परजा चिपकै पाटी रे।''*[65] हिन्दी प्रदेश में प्रजा निःशस्त्र बलहीन और लोटा बरतन तक बेचने के कगार पर है, कपड़ा लत्ता गहना गुरिया सब टैक्स और कचहरी की चेरी बन गयी है।

परसन का स्वर उन लोगों से भिन्न है जो मानते हैं कि अंग्रेजों ने भारत में उद्योग धंधों का विकास किया, रेल डाक तार के साधनों का विकास किया, शिक्षा सुशासन का नारा दिया, न्याय प्रणाली

लागू की और फिर हिन्दुस्तान की तरक्की में मददगार बने। जबकि परसन का मानना है कि रेल के विस्तार से अंग्रेजीराज का फायदा अधिक हुआ है और भारतीय प्रजा का हाल दिन दिन बेहाल हो रहा है, यह सही है कि रेल से देश के भीतर सब चीजें यथाशीघ्र सब जगह पहुंच जाती हैं और इसका परिणाम यह है कि *'चीज विलाइत की सस्ती भै देस बनिज सब गयो पराय'*[66]। मतलब साफ है आम जन तक ब्रिटिश आश्वासन खोखले साबित हो रहे थे। लोगों ने देखा कि रेल अकाल पीड़ितों को अन्न पहुंचाने के लिए नहीं, बल्कि बंदरगाहों तक कच्चा माल ढोने के लिए चली है। परसन के यहां साफ है कि *'सुख तो भैया जी इतना भा अब दुःख कर कछु सुनो हवाल/रोजी मारी गै बहुतन की परजा ह्वैगै हाल बेहाल'*[67]। रेल का विकास अंग्रेजीराज के लिए कितना लाभदायक है यह परसन जानते हैं और भारतीय जनता की सुविधाओं में रेलवे की स्थिति क्या है इस पर भी विचार करते हैं। औपनिवेशिक भारत में सामान्य यात्रियों को रेलयात्रा में कितना कष्ट होता था इसका वे ब्यौरेवार वर्णन करते हैं। यह वर्णन सहज यथार्थवादी है और 200 साल के रेलवे की विकास यात्रा के बाद भी आज सटीक लगता है, परसन की कविता 'रेल महातम' के यात्रियों और आज रेलवे के सफर में भोले भाले भूमिपुत्रों की कारुणिक स्थिति में कोई बदलाव नहीं दिखता है परसन के यहां स्थिति यह है कि *'बैठने के जाघा ना पावैं ठढ़ै मरैं वृद्ध अरु बाल/रेल के ऊपर प्यास के मारे पथिकन केर चुचुक गा गाल/आपन दै दै दुर्गति भोगै सपनेहूं ना कुछ करैं उपाय।'*[68]

हिन्दी नवजागरण के आसंग में परसन का दूसरा महत्वपूर्ण रचनात्मक स्वर *'बतकही'* का है। वह जो कहना चाहते हैं उसे हर हाल में कहते हैं बिल्कुल लट्ठमार ढंग से। यह अनायास नहीं है कि वे स्वयं को 'उजड्ड परसन' कहते हैं। अधिसंख्य रचनाओं के नीचे 'आपका वही उजड्ड परसन' प्रकाशित भी हुआ है। अपने को बालकृष्ण भट्ट से जोड़ने में उन्हें गर्व का अनुभव होता है, उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया कि *'भट्ट का चेला बड़ अलबेला जहं गावत तंह लागत मेला/राखत आपन ढंग निराला भर सक जो निज बच प्रतिपाला'*[69]। 'भट्ट का चेला बड़ अलबेला' कहने वाले परसन का अंदाज जिन्दादिली के साथ लोकजागरण के प्रयास को विस्तार देने में है। हिन्दी समाज में भारतेन्दु हरिश्चंद्र की मुकरियां बहुत प्रसिद्ध हैं, पर परसन की मुकरियां 'कहन की बेधकता' के कारण भारतेन्दु की मुकरियों से होड़ लेती हैं। परसन अपनी मुकरियों में भारतेन्दु की परम्परा का अनुकरण करते हैं लेकिन अंतर्वस्तु में भारतेन्दु की वैचारिकता का विस्तार करते हैं

है तो चार वर्ष को बालक पर दुष्टन के उर में सालक
हू डज डेली मेनी प्रोग्रेस क्यों सखि सज्जन ना सखि कांग्रेस।[70]

डॉ. शम्भुनाथ ने लिखा है कि *''भारतेन्दु मंडल के अनेक सदस्यों ने भारतेन्दु हरिश्चंद्र की चेतना को आगे नहीं बढ़ा कर 1885 के बाद वस्तुतः सुधारवाद की छत्राछाया में उसका गला घोंट दिया और संशोधनवाद का मार्ग अपना लिया, इस परिप्रेक्ष्य में 'भारतेन्दु मंडल' एक भ्रामक शब्दावली है। इसे 'एक चेतना' नहीं माना जा सकता, क्योंकि भारतेन्दु मंडल के अनेक साहित्यकारों ने राजा राममोहन राय के जमाने के एकांगी नवजागरण का ही पुनर्न्मेष किया है।''*[71] यह बात शम्भुनाथ जी ने प्रेमघन के संदर्भ में कही है लेकिन ऐसा लिखते हुए उन्होंने प्रेमघन के यहां एकांगी नवजागरण के संदर्भ स्रोत का उल्लेख नहीं किया है बल्कि 'स्वदेशी वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार', 'भारतवर्ष की दरिद्रता', 'आय शुल्क व इन्कमटैक्स', 'काबुल और कमीशन' तथा 'भारत जातीय महासभा की सफलता' जैसे आर्थिक राजनीतिक लेखों की उपेक्षा की है। साथ ही बालकृष्ण भट्ट मंडल के लेखकों के विपुल लेखन की भी उपेक्षा की है जबकि भारतेन्दु युग के लेखकों में सुधारवाद और संशोधनवाद दोनों का विरोध मिलता है। क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि परसन जैसे सामान्य जन भी अंग्रेजों

की शोषण नीति, विलासिता, दमनकारी प्रवृति, अमानवीय व्यवहार पर व्यंग्य करने में कभी पीछे नहीं रहता है। देश दशा को आधार बना कर राजनीतिक और आर्थिक संतुलन को नष्ट करने वाले अंग्रेजों का चरित्र परसन जानते हैं *''रोजी बहु लोगन की मारै दिन में दो सौ कोस सिधारै/नाज को भाव कीन्ह एक मेल क्यों सखि सज्जन ना सखि रेल। भूखहू प्यासे रहन न देवै लोटाधारी तक लै लेवै रूप अनेक धरे कर लुट्टस क्यों सखि सज्जन ना सखि टिक्कस।''* [72] यहां परसन में मानो *'जाहिर बातन में अति तेज/क्यों सखि सज्जन नहीं अंगरेज'* वाली भारतेन्दु की व्यंग्य चेतना बोल रही है बल्कि परसन के यहां 'मुकरी' भी ऐसी है कि *'आप सनु कर कहियेगा मुकरी का दादा है'* बकायदा यह एक मुकरी का शीर्षक है। 'नये जमाने की मुकरी' पर विचार करते हुए भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अगस्त 1884 की हरिश्चंद्र चंद्रिका में लिखा है कि *''जब सभा विलास संग्रहीत हुई थी, तब वैसा ही काल था कि (क्यों सखि सज्जन, ना सखि पंखा) इस चाल की मुकरी लोग पढ़ते थे किन्तु अब काल बदल गया तो उसके साथ मुकरियां भी बदल गयीं, बानगी देखिये सीटी देकर पास बुलावै/रुपया ले तो निकट बिठावै/ले भागै मोहिं खेलहिं खेल/क्यों सखि सज्जन ना सखि रेल।''* [73] भारतेन्दु जिसे नये जमाने की मुकरी कह रहे थे, वैसी मुकरियां परसन ने खूब लिखी हैं, जो कथ्य और शिल्प की दृष्टि से शानदार हैं। अंग्रेजीराज और उसकी अलमदारी पर जैसी कटु व्यंग्योक्तियां परसन ने की हैं, वह उनके शानदार लेखन का उदाहरण है *''भूपालन से लेय जगीर इनका कही कि अहीं फकीर/मन माने का करैं कुन्याव बोलन को नहिं देवैं दांव/करते नीकी बातों को रद्द इनका कही कि अहिं सभासद/धूर्रानिकरत देत बियाजन इनका कही कि अहिं महाजन।''* [74]

परसन की रचनाओं में संस्कृत के श्लोक, हिन्दी के काव्यांश, लोक मुहावरे, कहावतें, धार्मिक रूपक, चुटकुले, लतीफे तथा तत्कालीन समय समाज से संदर्भित व्यंग्योक्तियां और इन्हीं के बीच बिखरे हुए विभिन्न विचार स्फुलिंग उन्हें नवजागरण के महारथियों के बीच महत्वपूर्ण बनाते हैं। परसन का महत्वपूर्ण स्थान इसलिए भी है कि 19वीं शताब्दी की हिन्दी मनीषा के वे अकेले लोकप्रतीक हैं साथ ही उनके भीतर बीसवीं शताब्दी के राजनीतिक सांस्कृतिक संघर्ष की भविष्यवाणी भी सुनी जा सकती है। संदर्भ सिर्फ राजनीतिक आंदोलन का नहीं है बल्कि सामाजिक सुधार का भी है। पश्चिमोत्तर प्रांत के नवजागरण को पिछड़ा मानने वाले वीरभारत तलवार ने लिखा है कि *''19वीं सदी का नवजागरण हर दृष्टि से बड़े शहरों के आधुनिक शिक्षा प्राप्त भद्रवर्ग का सांस्कृतिक आंदोलन था जिसका सम्बंध व्यापक अशिक्षित जनता से और गैर द्विज जातियों से बहुत कम था। राजनीतिक साम्प्रदायिक कारणों से बाद में उसका सम्बंध शुद्धि आंदोलन के जरिये कुछ हद तक दलितों शूद्रों से बना, पर यह सम्बंध बहुत सीमित और सतही था।''* [75] लेकिन यदि यह बात सच होती तो नवजागरण की तथाकथित 'भद्रता' के बीच परसन इतना सहज कैसे होते ? दरअसल डॉ. वीरभारत तलवार के नवजागरण सम्बंधी अध्ययन की बुनियादी विशेषता यह है कि यहां निष्कर्ष मूल स्रोत के सहारे नहीं निकलते या निकाले जाते। अंततः कहां पहुंचना है यह पहले से तय होता है और फिर तलवार जी आलोचक कम वकील अधिक हो जाते हैं। उनकी सारी नैतिकता अपने मुवक्किल शिवप्रसाद सितारेहिन्द को या किसी और को न्यायसंगत सिद्ध करने तक सीमित हो जाती है।

परसन अपने को उजड्ड मानते हैं, बहुत जगह तो रचना के अंत में उजड्ड परसन कलवार या आपका वही परसन भी लिखते हैं, कहीं कहीं पी.आर.एस.एन. भी लिखते हैं। यह बात ध्यान रखने की है और बहुत महत्वपूर्ण है कि बहुत पढ़े लिखे न होने के बाद भी उनकी रचनाओं में 'अंग्रेजी' के शब्द और संस्कृत के श्लोक प्रयुक्त हुए हैं। वे स्वयं के शब्दों में 'ऐसे ही उजड्ड से हैं' और लेखन के क्षेत्र में स्थापित प्रकाशित होने भर नहीं आये हैं बल्कि इस ध्येय के साथ आये हैं कि *'यदि हमारे*

तथा हमारे देशी भाइयों की खुशनसीबी से कहते कहते हमारी एक बात पर भी सरकार का ध्यान जम गया तो हमारा प्रयोजन सिद्ध हो गया' फिर अपने उजड्डपन पर व्यंग्य करते हैं *''बड़ी भारी बेहूदगी यह भी हमारा दामन पकड़े हुए है कि हिन्दी के लिखाड़ों के बीच टांग अड़ाने वाला एक उजड्ड हिन्दुस्तानी इलाहाबाद में भी है।''*[76] परसन को हिन्दी नवजागरण के लिखाड़ों का पता है, एक के साथ उनका सहज साहचर्य भी है दूसरे महत्वपूर्ण लेखक प्रतापनारायण मिश्र के 'ब्राह्मण' की वे खुली प्रशंसा करते हैं 'मासिक पत्रों' में ब्राह्मण अच्छा है' लेकिन उन्हें भाषाई पत्रकारिता की दोहरी चुनौती का आभास भी है। पहली तो राजभक्त समाचारपत्रों से जिसका महत्वपूर्ण प्रतीक 'पायनियर' पत्र है। परसन ने पायनियर की खूब खिल्ली उड़ायी है और उसे चुगलखोर तक कहा है। वहीं दूसरी चुनौती थी भाषायी पत्रकारिता के प्रसार की और जनसमर्थन की। आज जो लोग हिन्दी प्रदेश के नवजागरणकर्मियों के वर्गीय जातीय आधार की आलोचना करते हैं उन्हें परसन का व्यंग्य समझना चाहिए *'पत्र लेंय न दाम चुकावैं वैल्यूपेविल को लौटावैं/कहते आपने भेजा नाहक इनका कहीं कि आहिं ग्राहक'*[77]। कोयल की बोल थूआ थूआ थूआ की पैरोडी (कोयल किसको बोल रही है!) पर परसन ने राजनीतिक विचार और समाजदशा की जो सूची दी है, उसमें हिन्दी पत्र प्रकाशन सम्बंधी मुश्किलों का संकेत करना नहीं भूले *'हिन्दी पत्रहि जो लैलीन्हा रुपिया तीन निछावर कीन्हा पढ़ शिक्षा भल चेत न हुआ ताहि पुकारत कोकिल थूआ'*। बालकृष्ण भट्ट के साथ रहते हुए और हिन्दी प्रदीप से जुड़े होने के कारण उन्हें देशी अखबारों के एडिटरों की टर्र टर्र और उस टर्र टर्र की उपेक्षा करने वाली निरक्षर जनता की मूढ़ता का भी पूरा पता था। उन्हें अंग्रेजी हिन्दी के बीच की आत्ममुग्धता और आत्महीनता का भी पता था इसलिए परसन इस मानसिकता पर व्यंग्य करते हैं *''इंगलिश पेपर को दस दिया रीडिंग पढ़ कर जी भर लिया/मीनिंग लाइन एक न किया पढ़तै पढ़त आंख बंद किया/हिन्दी पत्र डाकिया दिया देखत ही मुंह नीचा किया/रुपिया तीन बमुश्किल दिया तीसपर कहा कि ज्यादा लिया।''* [78] यह संघर्ष था भाषायी पत्रकारिता का, जिसके विकास में नवजागरण के सभी लेखक सक्रिय थे और परसन उनके संघर्ष में भागीदार साझीदार थे।

परसन की रचनाओं की मुख्य अंतर्वस्तु औपनिवेशिक दमन और सामाजिक जड़ता का विरोध है। कविताओं में यह विरोध हास्य और व्यंग्य के शिल्प में है। जिसके माध्यम से परसन राष्ट्रीय चेतना, उदार धार्मिकता और प्रगतिशील सामाजिक चेतना को बढ़ावा देते हैं। अपनी गद्य रचनाओं में भी वे हास्य व्यंग्य को लाते हैं लेकिन यह उनका मुख्य स्वर नहीं है। गद्य रचनाओं में परसन का मुख्य स्वर 'बतकही' का है। उनका गद्य 'बतकही' का गद्य है जिसकी सहजता आकर्षित करती है। नवजागरण के भीतर राजभक्ति और देशभक्ति की परम्परा साथ साथ चलती है। हिन्दी प्रदेश के लगभग सभी समाचारपत्रों ने वैभव विलास में डूबी अंग्रेजी सरकार और उसके महंगे प्रशासन की निंदा की है। 'हिन्दोस्थान' हिन्दी प्रदेश की पत्रकारिता का पहला पत्र था जिसके पत्रकार को 'ब्रिटिश सरकार के खिलाफ लेख' लिखने के कारण नौकरी से निकाला गया था। 2 फरवरी 1891 को *'गवर्नमेण्ट के खिलाफ कड़ा लेख'* लिखने के जुर्म में बालमुकुंद गुप्त को 'हिन्दोस्थान' के मालिक सम्पादक राजा रामपाल सिंह ने निकाला था। राजा रामपाल सिंह अंग्रेजीराज के समर्थक थे, वे कांग्रेस के भी समर्थक थे। जुलाई 1887 से सितम्बर 1889 तक 'हिन्दोस्थान' के सम्पादक मदनमोहन मालवीय थे। उनके विचारों के अनुरूप हिन्दोस्थान हिन्दी भाषा और उदार राजनीतिक विचारों का समर्थक पत्र था लेकिन समय समय पर भारतीय जनता की उपेक्षा और जनता को महत्वहीन निकम्मा साबित करने वाले आलेख भी उसमें प्रकाशित होते थे। ऐसा ही कोई आलेख 'हिन्दोस्थान भाग 4, अंक 904' में प्रकाशित हुआ था जिसमें साधारण प्रजा को किसी काम का नहीं माना गया था क्योंकि वह कुछ जानती ही

नहीं। परसन की पहली गद्य रचना का सम्बंध 'हिन्दोस्थान' के उस आलेख से है। परसन उस लेख में 'हिन्दोस्थान' और उस जैसे विचार रखने वालों को जवाब देना चाहते हैं कि तथाकथित सभ्यता और तरक्की का दम्भ रखने वालों के मुकाबले साधारण भारतीय क्या क्या जानते हैं। परसन की गद्य शक्ति का शानदार उदाहरण है हिन्दुस्तान का जवाब। साधारण जन के लोकज्ञान का परसन ऊंचा मूल्यांकन करते हैं यहां वे बालकृष्ण भट्ट के पूरे शिष्य हैं। जिस जमाने में बड़े बड़े बैरिस्टर ही शिक्षित माने जाते हों, उस जमाने में अपना खेतिहर किसान भी ज्ञानी है, वे भी कुछ जानते हैं, यह मानना बहुत बड़ी बात है। ''साधारण प्रजा में भी लोग हल जोतना जानते हैं, बोना जानते हैं... खेती सम्बंधी सब बात जानते हैं और आधे पेट अकेला चना चबाय निबाहना जानते हैं... अपनी खेती की उपज में देन का अधिक लग जाना जानते हैं, बेदाम रसद पहुंचाना जानते हैं... थानेदार साहब को साक्षात् गवर्नर जनरल जानते हैं... खुशामदी टट्टुओं को नमकहराम जानते हैं।''[79] कहना न होगा कि यहां लक्ष्य साधारण प्रजा को जानकारी की खान बताना नहीं है, बल्कि औपनिवेशिक सोच के समानांतर औपनिवेशिक शोषण की समझ, पहचान और जन हताशा का महत्व स्पष्ट करना है क्योंकि उन्हें जनता की वास्तविक स्थिति का ज्ञान है *''जो किसी राज में न हुआ सो पशुवत् मेम साहब की गाड़ी में जोता जाना जानते हैं। सरासर देखते हैं रैय्यत दिन ब दिन तबाह होती जाती है पर टिक्कस पर टिक्कस, लाइसेंस पर लाइसेंस लगता ही जाता है चूं करते ही नहीं वरन् चुप रहो गुल मत मचाओ इत्यादि झिड़कियां सह गमखाना जानते हैं।''*[80] यहां टैक्स पर टैक्स लगाना और झिड़कियां देने वाली ब्रिटिश सरकार की नौकरशाही के सामने भारतीय जन की हताशा और लाचारी देखने योग्य है। परसन को यह भी मालूम है कि ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के भीतर 'होमरूल' पर वाद विवाद करना बहाना मात्र है उनका असली मकसद फ्री ट्रेड को बढ़ावा देना है ताकि श्रम और कारीगरी में हिन्दुस्तान सदा उनके अधीन रहे। वे जानते हैं कि *'गवर्नमेण्ट की गेहूं पर बिकट दृष्टि'* है। उन्होंने कहा कि प्रतिवर्ष 87 करोड़ मन गेहूं यहां से विदेश ढोया जा रहा है। परसन बातचीत के ढंग पर आमजन को आगाह करना चाहते हैं अब आपको रुपये का पांच सेर गेहूं मिलना भी दुर्घट हो जायेगा। ऐसे में गेहूं के विलायत ढोये जाने को ब्रिटिश स्वार्थपरता मानते हुए परसन ने लिखा कि *''गेहूं तो हमारा जीवन है, प्राण है, बल और पुष्टि का परम उत्तम साधन है, उस पर विलायत वालों की कुदृष्टि कैसा भयंकर अत्याचार है और गवर्नमेण्ट उसको रोकने को क्यों कहे उल्टा प्रोत्साहन कर रही है।''*[81] परसन की गद्य रचनाओं में *'भार'*, *'परस्पर ठग उपन्यास'*, *'गरज'*, *'भ्रम या भरम'* और *'जानबूझ अजगुत करै तासों कहां बसाय'* जैसे ललित गद्य लेख हैं जिनमें राजनीतिक सामाजिक प्रश्नों की पड़ताल है और *'पंचमहाराज का अजपाजाप'*, *'पानी पानी पानी'*, *'समय खिलाड़ी का खेलवाड़'* तथा *'न्याय संग्रह'* जैसे समसामयिक संदर्भों के गद्य लेख भी हैं। परसन की टिप्पणियां उनके 'बतरस' के सरोकार की गवाह हैं *''अपनी मेहरिया से तो मेल नहीं करते थे पर भरी कमेटी मेल ही मेल चिल्लाते थे... सर्वस्व हड़प कर जाने वाली हमारी सरकार की एक गरज यह भी है कि सहाय सहाय दुहैंगे तो बदनामी न होगी, अत्याचार का कलंक न लगेगा।'*[82] परसन अपने देशवासियों को 'जागत ही सोवत रहै' कह रहे हैं, नये जागरण का अह्वान कर रहे हैं और व्यंग्य भी कि *'हमारी निद्रा कुम्भकरण की निद्रा से बहुत चढ़ी बढ़ी है आप हमें कितना ही बार बार गुदगुदाइये हम कभी न जागेंगे।'*[83] *'परम स्वतंत्र न सिरपै कोई'* जैसी रचना में परसन ब्रिटिश राज्याधिकारियों से बात शुरू करके नेपाल कश्मीर की स्वतंत्रता का प्रश्न उठाते हैं और श्रीमान् वायसराय से भारतीय हितों की अभ्यर्थना का निवेदन भी करते हैं तो 'प्रेरित लेख' जैसी रचना में धर्म उपदेशक महाशयों तथा मनुवादी कर्मकांडियों को आत्मज्ञान, श्राद्ध कर्म की अपेक्षा, विद्याधन तथा कलाकौशल पर बल देने की अपील करते हैं।

परसन हिन्दी नवजागरण के विचार चिन्तन में बालकृष्ण भट्ट के महत्वपूर्ण सहयोगी हैं। भट्ट जी के वैचारिक चिन्तन के विभिन्न संदर्भ परसन के यहां हैं। बाल विवाह, विधवा विवाह, अंधविश्वास, सामाजिक जड़ता तथा अशिक्षा जैसे सामाजिक प्रश्नों पर परसन के यहां ढेरों टिप्पणियां हैं। उनकी जनधर्मी राजनीतिक टिप्पणियां प्रसिद्ध हैं। लेकिन समसामयिक संदर्भ में लिखी गयी टिप्पणियों में भी व्यंग्यधर्मिता के साथ वे सामाजिक राजनीतिक प्रश्नों पर विचार करते हैं। 'सम्पादक के नाम पत्र' के ढंग पर परसन इलाहाबाद में पानी की किल्लत पर विचार करते हैं लेकिन इसके माध्यम से म्युनिसिपैलिटी की फिजूलखर्ची, बदइंतजामी, चुंगी सिस्टम को *कलंक कलंक कलंक* कहते हैं। इस व्यवस्था में एक एक क्षण किसको कल्पांत सा लगने लगता है इसकी पूरी सूची परसन बनाते हैं और परिहास विनोद के साथ पाठकों का जनशिक्षण करते हैं। नवजागरण का साहित्य, फैशन का साहित्य नहीं है, मिशन का साहित्य है। उस मिशन का महावाक्य हैः हिन्दुस्तान की खुशहाली और अंग्रेजीराज का अंत। 19वीं सदी में यह लक्ष्य अधूरा है लेकिन इसकी चाह पूरी है। परसन व्यंग्य करते हैं *''भारतवर्ष में मनुष्यों की संख्या अधिक है, आलस अधिक है, निद्रा अधिक है, अमीरी अधिक है, फकीरी अधिक है... सब कुछ है एका नहीं है, कुछ नहीं है।''* आज तथाकथित विकास और चकाचौंध की हड़बोंग में परसन की बात सटीक लगती है कि *'बड़े बड़े सौदागरों की दुकानें हैं, जिनमें टटके से टटके फैशन की चमक दमक से आंख में चकाचौंधी पैदा करती है एक दिन में दो सौ कोस ले जाने वाली रेलगाड़ियां हैं घर बैठे विलायत वालों तक से बातचीत करने को टेलीग्राम है, टेलीफोन है पहनते ही फटते हुए रंग बिरंगे मेनचेस्टरी कपड़ों से बजाजों की दुकान खचाखच भरी हुई है, सब कुछ है, एक पैसा नहीं है, कुछ नहीं है'*।[84] आज भी सब कुछ की भरमार के बीच आमजन को पैसे का अभाव और अधिक बढ़ा है इसलिए उसके लिए 'कुछ नहीं है' का भाव भी बढ़ा है। राजपाट, थाना मुकदमा, कैदखाना दवाखाना, खजाना ताखाना वाले अंग्रेजीराज में परसन *'एक अपना हुकुम हासिल'* करना चाहते हैं ताकि अंग्रेजीराज के कैदखाने को बदला जा सके। वे जानते हैं कि इस सबके होने से अंग्रेज हम भारतवासियों को 'फूल' बनाते हैं क्योंकि उन्हें मालूम है कि *'ये बड़े राजभक्त हैं। इन्हें कितना ही राजा की ओर से दुख मिले कभी शिकायत नहीं करते, प्रत्युत अपने राजा के आदर सम्मान और भावभक्ति में चूरंचूर रहते हैं'*।[85] सामाजिक राजनीतिक प्रश्नों पर परसन की बेबाक राय हिन्दी नवजागरण के लोकव्यापी प्रसार की फलश्रुति है। वे ललित गद्य लेख में हास्य व्यंग्य से मनोरंजन नहीं करते बल्कि बहुत मजबूती से एक तरफ बात को स्पष्ट करते हैं कि *'अब हिन्दुस्तान में लाभकारी कोई उद्यम नहीं दिखता'* तो दूसरी तरफ यह भी साफ करते हैं कि 'जब तक हम खाने पीने की इस चकरशौच में पड़े रहेंगे कभी देश उद्धार न कर सकेंगे'। परसन का यह स्वर उन्हें 19वीं सदी के नवजागरण में महत्वपूर्ण स्थान दिलाता है। वे भारतेन्दु युग की विचार चेतना के लोक विस्तार का प्रतीक हैं और बालकृष्ण भट्ट मंडल की अंग्रेजीराज विरोधी जनचेतना के लोक संवाहक भी। परसन मुकम्मिल कवि हैं, सामान्यजन के जीवन की समग्रता के कवि और गहरे राजनीतिक कवि भी। वे सच्चे अर्थों में जनकवि हैं जनधर्मिता की मिसाल है उनकी कविता।

संदर्भ

1. कर्मेन्दु शिशिर, हिन्दी नवजागरण, शब्द, कर्म, विमर्श, अंक 6, अक्टूबर 2004, कलकत्ता, पृ. 78 **2.** भारतेन्दु युग, डॉ. रामविलास शर्मा, प्रथम संस्करण की भूमिका, युग मंदिर, उन्नाव 1943 **3.** डॉ. शम्भुनाथ, हिन्दी नवजागरण और संस्कृति, आनंद प्रकाशन, कलकत्ता 2004, पृ. 58 **4.** वीरभारत

तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, नयी दिल्ली 2002, पृ. 171-72 **5.** नंदकिशोर नवल, आधुनिक हिन्दी कविता, अनुपम प्रकाशन पटना, 1993, पृ. 8 **6.** डॉ. रामविलास शर्मा, भूमिका नवजागरणकालीन पत्रकारिता और मतवाला, भाग-II, सम्पादकः कर्मेन्दु शिशिर, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली 2012 **7.** डॉ. रामविलास शर्मा, स्वाधीनता संग्राम : बदलते परिप्रेक्ष्य, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 2003, पृ. 54 **8.** हिन्दी प्रदीप, नवम्बर 1888, पृ. 2 **9.** वीरभारत तलवार, रस्साकशी, पृ. 155 **10.** वीरभारत तलवार, रस्साकशी, पृ. 157 **11.** वीरभारत तलवार, रस्साकशी, पृ. 157 **12.** वीरभारत तलवार, रस्साकशी, पृ. 157 **13.** हिन्दी नवजागरण : राधाचरण गोस्वामी कर्मेन्दु शिशिर, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली 2013, पृ.13 **14.** इस किताब के बारे में, रस्साकशी (भूमिका) **15.** श्रीनारायण पाण्डेय, भारतेन्दु हरिश्चंद्र : नये संदर्भ की तलाश, शब्द भारती, इलाहाबाद 1988 **16.** परसन, लाग, हिन्दी प्रदीप, नवम्बर 1888, पृ. 4-5 **17.** परसन, गवर्नमेण्ट की गेहूं पर विकट दृष्टि, हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1889, पृ. 17-19 **18.** पाटलिपुत्र, जुलाई 1914, पृ. 13 **19.** सरस्वती, जुलाई 1914, पृ. 33 **20.** डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, बालकृष्ण भट्टः जीवन और साहित्य, विनोद पुस्तक भंडार, आगरा 1958 **21.** डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, बालकृष्ण भट्ट : जीवन और साहित्य, पृ. 194 196 **22.** वही, पृ. 194 **23.** मधुकर भट्ट, बालकृष्ण भट्ट : व्यक्तित्व और कृत्तिव, बालकृष्ण प्रकाशन, वाराणसी 1972, पृ. 412 **24.** वही, पृ. 412 414 **25.** वही, पृ. 411 **26.** डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, बालकृष्ण भट्ट : जीवन और साहित्य, पृ. 196 **27.** परसन, लोकोक्ति और उसके प्रत्युदाहरण, हिन्दी प्रदीप, मई 1889, पृ. 05 **28.** वही, पृ. 5 **29.** बालकृष्ण भट्ट, कजली, हिन्दी प्रदीप, जनवरी 1887, पृ. 11 **30.** परसन, कजली, हिन्दी प्रदीप, मई 1889, पृ. 4 **31.** वही, पृ. 4 **32.** कविवचन सुधा, 22 दिसम्बर 1872, पृ. 6 **33.** बालकृष्ण भट्ट , हिन्दी प्रदीप, अप्रैल मई जून 1897, पृ. 17 **34.** परसन, नये तानसेन की राग, हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर नवम्बर दिसम्बर 1889, पृ. 16 17 **35.** परसन, गवर्नमेण्ट की गेहूं पर विकट दृष्टि, अप्रैल 1889, पृ. 17-19 **36.** वही, पृ. 17 **37.** डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, बालकृष्ण भट्ट : जीवन और साहित्य, पृ. 196 **38.** डॉ. मधुकर भट्ट, बालकृष्ण भट्ट : व्यक्त्विव और कृतित्व, पृ. 411 **39.** परसन, नही सूझत, हिन्दी प्रदीप, जून 1889, पृ. 5-6 **40.** परसन, बहुत है, हिन्दी प्रदीप, जून 1889, पृ. 6-7 **41.** परसन, व्यर्थ है, हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त 1889, पृ. 13 **42.** परसन, अच्छा है, हिन्दी प्रदीप, जून 1889, पृ. 13-14 **43.** पूरनचंद्र जोशी, अवधारणाओं का संकट, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1995, पृ. 34 **44.** परसन, क्या क्या छोड़ा क्या क्या लिया, हिन्दी प्रदीप, फरवरी 1889, पृ. 5 **45.** वही, पृ. 6 **46.** परसन, नये ढंग का स्वांग होली के रसिकों के लिए, हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर नवम्बर दिसम्बर 1889, पृ. 36 **47.** वही, पृ. 37 **48.** श्रीधर पाठक, श्री कांग्रेस बधाई, जनवरी फरवरी मार्च 1888, पृ. 5 **49.** बालकृष्ण भट्ट, कांग्रेस निदान, जून 1888, पृ. 13 **50.** वीरभारत तलवार, रस्साकशी, पृ. 122 **51.** कांग्रेस निदान, जून 1888, पृ. 13 **52.** परसन, कांग्रेस पुकार, हिन्दी प्रदीप, सितम्बर 1889, पृ. 10 **53.** वही, पृ. 10 **54.** परसन, गबड्डी, अक्टूबर नवम्बर दिसम्बर 1889, पृ. 7-9 **55.** वीरभारत तलवार, रस्साकशी, पृ. 112 113 **56.** परसन, भजन, हिन्दी प्रदीप, नवम्बर 1888, पृ. 02 **57.** परसन, वरवा, हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त 1989, पृ. 37 **58.** वही, पृ. 37 **59.** परसन, गबड्डी, हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर नवम्बर दिसम्बर 1889, पृ. 10 **60.** परसन, पढ़ो परबत्ते सीताराम, हिन्दी प्रदीप, जनवरी फरवरी मार्च 1890, पृ. 50-52 **61.** पुरुषोत्तम अग्रवाल, तीसरा रुख, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली 1986, पृ. 91 **62.** परसन, प्रश्नोत्तर पचीसी, हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर नवम्बर दिसम्बर 1889, पृ. 15 **63.** परसन, लाग, हिन्दी प्रदीप, नवम्बर

1888, पृ. 4 **64.** परसन, विरहा, हिन्दी प्रदीप, जनवरी फरवरी मार्च 1890, पृ. 52-53 **65.** परसन, पद्यबद्ध सामयिक राज की महिमा, हिन्दी प्रदीप, मई जून 1890, पृ. 7-8 **66.** परसन, रेल महातम, हिन्दी प्रदीप, मई जून 1890, पृ. 9-10 **67.** वही, पृ. 9 **68.** वही, पृ. 10 **69.** परसन, विरहा, हिन्दी प्रदीप, जनवरी फरवरी मार्च 1890, पृ. 53 **70.** परसन, मुकरी, हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त 1890, पृ. 25 **71.** डा. शम्भुनाथ, भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण, आने वाला कल प्रकाशन, कलकत्ता 1986, पृ. 23 **72.** परसन, मुकरी, हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त 1889, पृ. 25 **73.** भारतेन्दु समग्र, हेमंत शर्मा, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1987, पृ. 256 **74.** परसन, मुकरी का दादा है, हिन्दी प्रदीप, सितम्बर 1889, पृ. 2-4 **75.** वीरभारत तलवार, रस्साकशी, पृ. 140 **76.** परसन, गरज, हिन्दी प्रदीप, मार्च 1889, पृ. 9 **77.** परसन, मुकरी का दादा है, हिन्दी प्रदीप, सितम्बर 1889, पृ. 2-4 **78.** परसन, क्या क्या छोड़ा, क्या क्या लिया, हिन्दी प्रदीप, फरवरी 1889, पृ. 5 **79.** परसन, जानते हैं, हिन्दी प्रदीप, नवम्बर 1889, पृ. 6 **80.** वही, पृ. 06 **81.** परसन, गवर्नमेण्ट की गेंहू पर विकट दृष्टि, हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1889, पृ. 17-19 **82.** परसन, परस्पर ठग उपन्यास, हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1889, पृ. 21 22 **83.** परसन, जानबूझ अजगुत हिन्दी प्रदीप, मई 1889, पृ. 7 **84.** परसन, सब कुछ है, हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त सितम्बर 1889, पृ. 9-10 **85.** परसन, फूल, हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर नवम्बर दिसम्बर 1889, पृ. 38-40

लघु उपन्यास

पहले प्यार की आखिरी दास्तान

रवीन्द्र वर्मा

एक टुकड़ा, चाहता है दूजे टुकड़े को जभी
पूरे में है लौट जाता माशूक फिर जल्दी कभी
-रूमी

घंटाघर बाग के मुख्यद्वार के सामने अंदर था। मुख्यद्वार की दायें सीढ़ियां बाग के अंदर जाती थीं। सीढ़ियों के बायीं ओर घंटाघर खड़ा था। यह इतना ऊंचा था कि इसमें सैकड़ों झंडे एक पर एक खड़े समा जाते और पता भी न चलता। घंटाघर की मीनार के ऊपर घड़ी थी जो आकाश में एक ठिठके चेहरे की तरह लगती थी। घड़ी की दोनों सुइयां एक दूसरे के विरुद्ध तीन और नौ पर खड़ी थीं। शुरू से। जैसे घंटाघर बाग में अंधा ही पैदा हुआ हो।

अंधे घंटाघर के साये में पीछे रंगमंच था, जो अभी पौ फटते वक्त खाली पड़ा था जैसे अंधेरे की कोख से बाहर आ रहा हो। धरती पर गोल मंच के तीन ओर ऊपर उठती गोल सीढ़ियां थीं जो प्राचीन रोमन रंगमंच की तर्ज पर बनी थीं। समर सहाय की नजर खाली मंच से ऊपर बंद घड़ी की तरफ उठी जैसे समय के वृथा दिखावे पर हंसी हो। उन्हें लगा इस क्षण समय और दिशाएं, दोनों खाली हैं।

पहली नजर में बाग में कोई नहीं दिखा। समर सहाय ने चश्मा पोंछा। फिर देखा। कहीं कोई नहीं था। सामने और बायीं ओर पेड़ों के नीचे बाग में जाती पथरीली पगडंडियां खाली थीं। बायीं तरफ यूकिलिप्टस के पेड़ अकेले सुन्न खड़े थे। उन पर छाया आसमान सुनसान था जैसे रंगमंच और घंटाघर को ढंके आसमान। यह सच है कि यूकिलिप्टस, रंगमंच और घंटाघर को समर सहाय भी सुनसान लग रहे थे : सफेद बालों और दाढ़ी मूंछ से ढका एक बूढ़ा, जो उम्र की गिनती के पार लगता था! सिर्फ चश्मे के भीतर उसकी विस्तृत आंखें चमकती थीं जैसे दसों दिशाओं को पी जायेंगी।

समर सहाय सामने की ओर पगडंडी पर आगे बढ़े। यह दोहरी पगडंडी थी। बायीं पगडंडी बाग में अंदर जाती थी, दायीं बाहर आती थी बीच में फूलों की क्यारी थी। एकाएक बाग के बीहड़ में संगीतमय स्वर गूंजे

राम नाम लड्डू, गोपाल नाम खीर
हरी नाम मिस्री, तू घोल घोल पी

समर सहाय की नजर संगीत के स्रोत की ओर दायीं ओर घूमी, जहां से स्वर का फव्वारा छूटा था। स्पीकर फूलों की क्यारी में छिपा था। थोड़ा आगे जैसे ही स्वर थोड़ा धीमा पड़ा उसे दूसरे स्पीकर ने पकड़ लिया। इस केन्द्रीय रास्ते पर लड्डू और मिस्री बिखर गये। लूट के लाभार्थी समर सहाय फिलहाल अकेले थे। यह सोच कर वे मुस्कराये। तभी सामने से एक युवती तंग स्लैक्स में इसी ओर तेज तेज चलती नजर आयी। समर सहाय को कुछ तसल्ली सी महसूस हुई। यह उनकी पुरानी आदत थी। वे हर तरफ हर चीज को आंख भर देख लेने के पक्षधर थे जहां तक मुमकिन हो। दूर से पास आती युवती पर उनकी नजर शायद कुछ ज्यादा देर टिकी रही। जब वह बिल्कुल सामने आ गयी, तो किन्चित मुस्करायी और मुस्कान को साथ लिए आगे बढ़ गयी। वह गलत पगडंडी पर थी। उसकी मुस्कान में सब कुछ था। अब इतना उजाला हो गया था कि उसका सोने सा दमकता रंग साफ साफ दिखे। नाक नक्श दिलकश थे। देहयष्टि भरपूर थी। आंखों में स्वयंभू दर्प की मदहोशी थी। समर सहाय की एकटक नजर से टूट कर वह आगे बढ़ गयी थी जब उनके कानों में ये शब्द पड़े घोल घोल पी... घोल घोल पी। उन्होंने नीचे क्यारी में रंगबिरंगे फूलों को देखा, जिनके चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी फूलों में युवती की तरह कोई चक्रवर्ती अहंकार नहीं था गोया उन्होंने खुद अपने को रचा हो!

समर सहाय को याद आया कि जवानी में कई बार उनकी इस आंख भर देखने की चेष्टा ने उन्हें अटपटी स्थिति में डाला था। लोग समझ बैठते कि उन्हें घूरा जा रहा है जबकि वे उन्हें सिर्फ देख रहे होते थे जैसे कि हम फूलों या फव्वारों को देखते हैं। अब यह बात दीगर है कि उनकी नजर में कोई भी चेहरा फूल या फव्वारा हो सकता था!

पीछे देखना मुमकिन नहीं था। आगे पगडंडी सुनसान थी। समर सहाय की आंखें बायीं ओर घूमीं जहां यूकिलिप्टस अपनी स्वाभाविक भव्य मुद्रा में खड़े थे। सहसा उन्हें लगा कि वे अकेले नहीं हैं। वे पगडंडी छोड़ कर बायें पेड़ों की तरफ भागे जैसे कोई दोस्तों के झुंड की ओर भागता है। वे झुंड के बीच में खड़े हो गये और उन्होंने अपने दोनों हाथ फैला दिये। फिर वे आंखें खोले अपनी जगह घूमने लगे जैसे झुंड के सारे पेड़ों को गले लगा रहे हों और पेड़ों के गगनचुम्बी होने से इस भेंट में कोई फर्क न पड़ता हो। चक्र पूरा हुआ। वे रुक गये और उन्होंने हाथ ऊपर उठा दिये। ऊपर सूर्य की पहली किरणें पेड़ों के सिरों को छू रही थीं। पत्तियों पर बिखरती किरणों से कोई जादुई आलोक फट रहा था। जैसे आकाश में दीये जल गये हों। समर सहाय ऊपर जलते दीयों को देख रहे थे और मुस्करा रहे थे गोया दीये उनके भीतर जल उठे हों! ऊंचे पेड़ों के घने पत्ते आकाश में इस तरह जुड़ गये थे जैसे धरती के एक ही पेड़ से जन्मे हों जिसके तले वे खड़े थे।

समर सहाय को खुद पता नहीं चला कि वे कब पेड़ों से विदा लेकर फिर पथरीली पगडंडी पर आ गये। पगडंडी के पत्थरों से बचने के लिए कुछ लोग पगडंडी से नीचे उतर जाते थे और जूते उतार कर मिट्टी पर दौड़ने लगते थे। समर सहाय भी कभी कभी जूते उतार कर टीले पर छोड़ देते और नीचे बाग की घास में उतर जाते। कभी कभी उन्हें लगता कि जूतों के साथ पैण्ट कमीज भी उतार दें। फिर उन्हें खुद इस बात पर हंसी आ जाती। एकाएक तीन लोग पीछे से आये और कल के एकदिनी में तेन्दुलकर के शतक पर खुश होते हुए आगे निकल गये। समर सहाय अपनी चाल से

चल रहे थे जिसमें कोई जल्दी नहीं थी। दाहिनी ओर शेड के नीचे भीतरी बेंच पर एक लड़का और लड़की शहर की ओर मुंह किये बैठे थे। शेड के नीचे चारों बेंचों पर उजाला कुछ कम था। लगता था लड़का लड़की एक दूसरे की कमर में हाथ डाले बाग से बेखबर बाहर की ओर देख रहे थे। या क्या पता, वे कहीं न देख रहे हों और उनकी आंखें बंद हों! समर सहाय एक नजर जोड़े पर डाल कर आगे बढ़ते रहे। वे पगडंडी के बीच में थे। उन्हें अचानक बायीं ओर मुड़ना पड़ा। सामने से एक मोटा तगड़ा व्यक्ति निकर टी शर्ट पहने हाथी की तरह झूमता आ रहा था। हाथी की सूंड़ सामने होती है, मगर उस व्यक्ति की तोंद सामने थी चलती तोंद के पीछे बाकी शरीर का यथोचित कारोबार था। शरीर के इस जुलूस के पीछे एक दुबला पतला सिपाही था, जिसकी कमर पर हिलती पिस्तौल लटक रही थी। समर सहाय के अचानक रास्ता छोड़ने का सबब सिपाही सुरक्षित नेता या आला अफसर का निश्चेष्ट चेहरा और मदमाती चाल थी जो सनातन थी। तभी सामने से कोई छरछरे सरदारजी आते नजर आये। लेकिन वे कमीज और पैण्ट पहने थे और कुछ धीमे चल रहे थे। जिन छरछरे सरदारजी को बाग में सुबह सुबह देखने की समर सहाय को आदत थी, वे निकर टी शर्ट पहनते थे और तेज चलते थे। अलबत्ता इनके बाल भी सफेद थे। जब वे बिल्कुल सामने आ गये तो समर सहाय ने उन्हें पहचान लिया। ये कोई और थे। वे कुछ दिनों से नजर नहीं आ रहे थे। क्या वे शहर से बाहर चले गये थे या दुनिया से?

दायीं ओर शेड के नीचे तीन बेंचें भरी थीं, एक खाली थी। समर सहाय लपक कर खाली बेंच की ओर बढ़े। यह उनका रोज का नियम था। वे इसी शेड के नीचे रुकते थे और बेंच पर बैठे हुए पूरब की ओर निहारते थे जहां हरी घास पर नवजात सूर्य की किरणें बिछलती थीं और सरोवर के दोनों फव्वारे हवा में उछल उछल कर उजाले में खो जाते थे। बगल की दोनों बेंचों पर चार दोस्त आमने सामने बैठे थे और दिल्ली में चल रहे भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन पर बहस कर रहे थे। बहस इसलिए कि चारों उत्तेजित थे, वर्ना उनमें कोई मतांतर नहीं था। चारों सहमत थे कि उन्हें ड्राइविंग लाइसेंस से लेकर पासपोर्ट तक शहर भर के सरकारी दफ्तरों में अपना काम कराने के लिए घूस देनी पड़ती थी। इस तरह नहीं चलेगा, एक ने कहा हमें अब अन्ना हजारे का साथ देना होगा, दूसरा बोला और रामदेव के हाथ मजबूत करने होंगे, तीसरे ने कहा आज झूलेलाल पार्क में भ्रष्टाचार विरोधी सभा होगी, चौथा बोला हम लोग शाम को कृषि भवन से सीधे वहीं चलेंगे। ठीक है, बाकी तीनों बोले। प्रस्ताव पारित कर चारों उठ कर पगडंडी की तरफ बढ़े जहां हरी नाम की मिस्री की धारा बह रही थी। वे चारों अधेड़ अब हंस रहे थे।

समर सहाय हैरान थे। यह साफ था कि चारों भ्रष्टाचार पीड़ित अधेड़ कृषि भवन में छोटे बड़े बाबू थे। यह सरकारी महकमा सूबे में घूसखोरी के लिए मशहूर था, जिसके शिकार अंततः किसान होते थे। अब इस सूबे में भी किसानों की आत्महत्या की खबरें आम थीं। इस वर्ष बुंदेलखंड में ही प्रतिमाह सौ से ज्यादा किसानों ने अपनी जान ली थी। क्या इन चारों अधेड़ों को जो आज शाम झूलेलाल पार्क में भ्रष्टाचार विरोधी सभा में शिरकत करेंगे अपने हाथों पर किसानों का खून नजर नहीं आता?

समर सहाय की नजरें पूर्व की ओर बाग में फैली हरी घास पर टिकी थीं जो ताजा धूप में सोने की तरह चमक रही थी। घास पर दूर तक सोना बिखरा था! अभी शेड से उठे चारों अधेड़ों ने यह सोना देखा नहीं होगा, वर्ना वे जरूर अपनी जेबें भर लेते। वे पार्क में स्वस्थ ऑक्सीजन के लिए आते थे। समर सहाय की नजर दूर घास के अंतिम सिरे पर थी जहां सरोवर शुरू होता था और उजली हवा में छपे पानी के दोनों गतिमान फव्वारे थे। फव्वारों के कणों में सूर्य की किरणें चमक रही

थीं जिनके ऊपर आकाश तना था। आकाश में उजाला ही उजाला था। उसी उजाले में सुनहरी घास पर पेड़ों के झुंड थे। समर सहाय को अचानक लगा कि जैसे एक सम्पूर्ण कायनात अभी कोख से बाहर आयी हो। वे उस क्षण मृत्यु को भूल गये।

वे दो तालाबों को जोड़ते पुल से गुजरे ही थे कि उन्होंने सामने दोहरी पगडंडी पर आते लोगों के एक विशाल झुंड को देखा। उन्होंने बाग में कभी इतने सारे लोगों को एक साथ नहीं देखा था। तीस चालीस लोग थे। उनके आगे एक अधपके बालों वाला गोरा चिट्टा सौम्य पुरुष चल रहा था जो पैण्ट कमीज पहने था। समर सहाय ने झुंड के एक सदस्य से पूछा ''ये कौन हैं?'' ''हमारे गुरु हैं।'' वह फुसफुसाया ''मुम्बई से पधारे हैं।'' अंतिम वाक्य में यह ध्वनि थी कि गुरु यदि केलिफोर्निया से आये होते तो और बड़े गुरु होते। मानव यूथ चुप था जैसे कोई एक आदमी दोनों हाथ जोड़े अपने गुरु के पीछे चला जा रहा हो। झुंड में जितने पुरुष थे, उससे ज्यादा स्त्रियां।

समर सहाय को झुंड की चुप्पी कुछ मातमी सी लगी जैसे कोई मर गया हो।

वे कुछ आगे बढ़े जहां बहुत खुला था। पगडंडी के दोनों ओर पेड़ों की छाया नहीं थी। पेड़ दूर दूर थे जैसे अचानक छिटक गये हों और बीच में अकूत खालीपन छूट गया हो जिसके नीचे हरी घास का फर्श दूर दूर तक बिछा था जहां तीन टेकरियों की आड़ी कतार थी और अंगड़ाई लेता आकाश था जिसका ओरछोर नहीं था। दूर खड़े पेड़ बौने थे जो खालीपन की गहराई को और बढ़ा देते थे। खालीपन में सुबह के उजास का तिलस्म था। अलबत्ता दायीं ओर तालाब की नन्हीं सी दीवार थी जिसके परे फव्वारा लगातार उछल रहा था। दीवार के इस ओर दो बड़े वृक्ष थे। पहला कल्पवृक्ष भव्य था जिसके तने को दोनों हाथों से घेरे एक व्यक्ति खड़ा था उसका माथा तने पर टिका था। शायद कोई हताशा के अंतिम छोर पर था जहां उम्मीद खत्म हो गयी थी, केवल प्रार्थना थी।

दूसरा पेड़ रुद्राक्ष का था, जिसके सामने एक स्त्री हाथ जोड़े आंखें मूंदे खड़ी थी।

समर सहाय आगे बढ़ते गये। खालीपन का समुद्र जहां खत्म होता था, वहीं अर्जुन पेड़ों का तिकोना जंगल शुरू हो जाता था जो नजर के साथ दूर आसमान पर टिक जाता। अर्जुन के पेड़ छोटे नहीं थे। वे ऊंचे पूरे भरे भरे थे जैसे केन्द्रीय खालीपन की निगरानी कर रहे हों। पृथ्वी से आकाश तक उनका पहरा था।

खालीपन के दूसरी तरफ बबूल के पेड़ों का अनगढ़ झुंड था, जो बाग के पूर्वजन्म की स्मृति के अवशेष की तरह छोड़ दिया गया था जब यह पूरा इलाका जंगल था। जंगल की सफाई के बाद लोहिया पार्क विकसित होने की कहानी एक सभ्यता के निर्माण की गाथा थी। क्या जंगल से सभ्यता का सफर एक विराट खालीपन में खत्म हुआ था जो पार्क के बीचोंबीच गहरा होता जाता था?

एकाएक समर सहाय को कुछ थकान महसूस हुई। वे कुछ कदम लौट कर बायीं ओर शेड के नीचे बैठ गये जिसके पीछे सरोवर में फव्वारा चल रहा था। अक्तूबर शुरू हो गया था। गर्मी चली गयी थी। सर्दी नहीं आयी थी। हवा में खनक थी जो शरीर को ठंडी लगती थी। समर सहाय ने सदरी के ऊपर के दो बटन लगा लिए। तभी कोई श्वेतकेशी वृद्ध उनकी तरफ आये और यह कहते हुए उनकी बगल में बैठ गये ''लगता है आप अकेले और उदास हैं।''

''अकेला तो हूं।'' समर सहाय मुस्कराये ''मगर उदास नहीं हूं।''

समर सहाय ने कुछ तीखी नजरों से आगंतुक को टटोला। मौन ज्यादा नहीं चला। अजनबी ने कहा ''आप ठीक कह रहे हैं। असल में मैं उदास हूं।''

''क्यों?'' समर सहाय के मुंह से निकला। उनकी नजरें आगंतुक पर टिकी थीं।

''वो ये जो बुढ़ापा है न।'' आगंतुक ने नजरें सीधी कर ली थीं और वे सामने पार्क के खाली

विस्तार को देख रहे थे जिसके बीच में एक गोल चौकी की तरह शेड था ''इसमें शाम की उदासी का रंग घुल जाता है।''

समर सहाय भी सामने खाली चौकी को देख रहे थे जो गोल थी।

''अवध की शाम मशहूर है।'' समर सहाय किन्चित मुस्कराये।

''वह नवाबों की शाम थी जो बूढ़े नहीं होते थे।'' आगंतुक भी मुस्करा रहे थे।

तभी कोई एकदम सामने आकर खड़ा हो गया और आगंतुक उठ कर उनके साथ ऐसे चले गये जैसे आये थे। समर सहाय अपने भीतर उदासी के चिह्न ढूंढ़ने लगे जैसे कोई वैज्ञानिक किसी खोज में मुब्तिला हो। उन्हें अपने पीछे किसी के लगातार उछलने की धप धप सुनायी दी और उन्हें खोज में बाधा महसूस हुई। उन्होंने पीछे मुड़ कर देखा एक नौजवान कसरत कर रहा था। वे उठे और दूसरी ओर पीछे बैठ गये। वे सामने खाली गोल चौकी की ओर देखते हुए अपनी खोज में अपने भीतर उतरे ही थे कि नौजवान उनके बगल के खम्भे पर झूल गया और बोला ''अंकल आप लोग बैठ जाइये।''

समर सहाय ने ताज्जुब से नौजवान की तरफ देखा। वह चौकस हृष्ट पुष्ट था और उसके चेहरे पर ऐसा भोला आत्मविश्वास था कि वह सदा ऐसा ही बना रहेगा। उसका यह भरोसा उसके सनातन शरीर को दुनिया की जिम्मेदारी बना देता था!

''ठीक है बेटा।'' समर सहाय ने उठते हुए कहा ''मेरा आशीर्वाद है कि तुम अवध के नवाबों की तरह कभी बूढ़े नहीं होगे।''

नौजवान मुस्कराया।

समर सहाय फिर नहीं बैठे। वे उठ कर अर्जुन के पेड़ों की ओर बढ़े और बायीं ओर पगडंडी पर मुड़ गये जहां कुछ दूर उन्होंने योगेन्द्र योगी को जाते देखा। योगेन्द्र योगी एक सुबह इसी तरह उनके पास आकर बैठ गये थे जैसे आज कोई आया था। आज समर सहाय ने दूर से ही उन्हें उनकी निकर कमीज से पहचान लिया। वे पार्क में अकेले थे जो निकर के साथ टी शर्ट के बजाय कमीज और जूतों की जगह चप्पल पहनते थे। उनके हाथ में एक डंडा होता था जिसमें वे नैतिकता का अदृश्य परचम लगाये पार्क भर में घूमते थे। उन्होंने अपनी उम्र तिरासी वर्ष बतायी थी लगते वे तिरसठ के थे। उनके कमरे में बहू तो क्या बेटी को भी आने की इजाजत नहीं थी। उन्हें गर्व था कि उन्होंने अपनी बहू का चेहरा नहीं देखा था। उन्होंने बताया था कि उनकी पत्नी बीस बरस पहले स्वर्ग सिधार गयी थीं। वे पार्क को अपने कमरे की तरह पवित्र रखना चाहते थे। जहां वे किसी बेंच पर या झाड़ी के पीछे किसी लड़के लड़की को एक दूसरे से सटा देखते, उसी ओर दौड़ कर उनके बीच में डंडा फंसा देते। एक दो बार वे पिटते पिटते बचे थे।

''आप इतना डरते क्यों हैं?'' समर सहाय ने एक बार उनसे पूछा था।

''किससे?'' योगेन्द्र योगी की आंखें फैल गयी थीं।

''अपने आप से।''

''मैं...'' योगी हैरान थे, मैं किसी से नहीं डरता।

इसीलिए वे हाथ में डंडा लिए पगडंडी पर अकड़े पार्क को सीधा करने सीधे चले जा रहे थे।

समर सहाय ने चाल कुछ तेज की। मगर वे योगी को पकड़ नहीं सके जैसे वे फूलों की क्यारियों या टेकरियों के बीच कहीं गुम हो गये हों। तीनों हरी टेकरियां बाग के उच्छ्वास सी एक कतार में खड़ी थीं। उनके सामने पगडंडी के दूसरी ओर चम्बा और चांदनी के छोटे छोटे पेड़ थे। पेड़ हवा में धीरे धीरे हिल रहे थे। समर सहाय फिर सरोवर के सामने दायें मुड़ कर बायें रास्ते पर मुड़ गये

जहां दो लड़कियां सामने से हांफती हुई दौड़ती आ रही थीं। बायीं तरफ एक टेकरी की तश्तरी में बत्तखों का तालाब था जिसमें वे सैर कर रही थीं। कुछ बच्चे और स्त्रियां तालाब को घेरे थीं। वहां आसमान खुला था। पेड़ कुछ दूर टेकरी की ढलान पर थे।

समर सहाय दोनों ओर घने पेड़ों से घिरी पगडंडी पर थे जब उनके कानों में वह चालू धुन गूंजी *मुन्नी बदनाम हुई, डार्लिंग तेरे लिए।* वे चौंके। यह कोरस बाग में सरकारी स्पीकरों से नहीं आ सकता था। वे आगे बढ़ते रहे। कोरस की धुन आहिस्ता आहिस्ता तेज होती गयी... *मुन्नी बदनाम हुई ऽ ऽ।* जब वे पगडंडी के खुले सिरे पर पहुंचे तो उन्होंने देखा कि संगीत की धुन दायीं ओर रंगमंच से आ रही थी। वे दायीं ओर मुड़ गये। गोल रंगमंच अब खाली नहीं था। उसके बीचोंबीच स्त्री पुरुषों का एक रंगबिरंगा गोल घेरा था। वे और आगे बढ़े। अब संगीत के स्वर साफ साफ उनके कानों में पड़े

मैं तो गुलफाम हुई, गुरुजी तेरे लिए

वही मुम्बई से आये गुरुजी जिन्हें समर सहाय ने पहले बाग के विराट खालीपन में देखा था घेरे के बीच में कल्पवृक्ष की तरह खड़े थे और तीन चार अधेड़ महिलाएं गोपियों की तरह उनके चारों ओर नाचती हुई गा रही थीं... *मैं तो बादाम हुईऽऽ...।* चारों ओर घेरे में खड़े भक्त आत्मविभोर थे उन्हें अपनी खबर नहीं थी। वे आंखें मूंदे तालियां बजा रहे थे। मंदिर खाली रंगमंच पर आ गया था। ईश्वर आसन से उतर कर पैण्ट कमीज धारण किये बीच में संजीदा खड़े थे।

नया ईश्वर पैदा हो गया था।

दो

चौथेपन में अकेलापन तो ठीक है, मगर उदासी क्या जरूरी है? समर सहाय यही सोचते हुए बाग के मुख्यद्वार से बाहर आये। जब वे बाहर आ रहे थे तो एक युवा जोड़ा अंदर जा रहा था। समर सहाय युवा जोड़ा देख कर उसी तरह प्रसन्न हुए जैसे क्यारी में खिले गुलाब को देख कर हर्षित हो जाते थे। बाहर कुछ गाड़ियां खड़ी थीं और सड़कें चालू हो गयी थीं। बाहर खड़ी गाड़ियों के आजूबाजू उनके ड्राइवर खड़े थे और उनके पीछे पान की गुमटी खुल रही थी। जब समर सहाय गुमटी के पास पहुंचे तो उन्होंने देखा कि गुमटी का मालिक अपनी दुकान धो पोंछ रहा था। ये लोग बाग के बाहर थे। बाग इनके लिए नहीं था।

चौराहे पर इक्केदुक्के लोग और वाहन थे। जैसे ही दिन चढ़ेगा, सड़कें गुलजार हो जायेंगी। दुकानें खुलेंगी और दफ्तर भर जायेंगे। यह बागों का शहर मूर्तियां अनावृत कर देगा और अपना रोजनामचा खोल देगा। नवाबों की प्यारी नदी गोमती जिसके किनारे उन्होंने एक सभ्यता की तामीर की थी, कुछ गंदली सी उदास बहती रहेगी जैसे अभी सूर्य की प्रतीक्षा हो।

चौराहे पर कोई किसी तरफ भी मुड़ सकता था यदि उसे अपने गंतव्य का पता हो। समर सहाय सीधे चले गये जहां बायीं ओर चहारदीवारी के पार छोटा सा जंगल था और आगे जंगल के बगल में बस्ती थी जहां वे एक फ्लैट में खाते पीते, जागते और सोते थे। लोहिया पार्क बनने के पहले वे इसी जंगल में रोज सुबह घूमने जाते थे। सुबह के इसी जंगल से बिम्ब लेकर उन्होंने कई कविताएं लिखी थीं। सुबह के नीमअंधेरे में यह जंगल कभी कभी तिलस्मी और खूंखार लगता था। लगता था किसी कोने से शेर या सांप निकल आयेगा। उधर यूकिलिप्टस और बबूल के पेड़ थे, जो अभी चहारदीवारी के ऊपर झांक रहे थे। जंगल में सूरज धरती से उगता था और आसमान में रोशनी हो जाती थी।

शायद उदासी कोई अनुपस्थिति है भीतर कुछ खाली हो जाता। यदि पूरा भीतर खाली हो तो उदासी भी नहीं रहती क्योंकि अंदर कुछ बचता ही नहीं जिसे उदासी गले लगा सके। समर सहाय को ऐसे क्षण मिलते थे जो पूर्ण खालीपन लिए होते जैसे उन्होंने अभी पहली सांस ली हो या आखिरी। मगर अभी फ्लैट का दरवाजा खोलते ही उनके भीतर एक शब्द गूंजा ''थ्री इन वन।''

वे अक्सर इसी शब्द से दिन शुरू करते थे जब सुबह की सैर से लौटते। तब प्रिया गमलों में पानी डाल रही होती या रसोई में होती। पिछले कुछ बरसों से उन्होंने उसे थ्री इन वन पुकारना शुरू किया था। उसके आंखें सिकोड़ने पर कहा था ''इसका मतलब है प्रेमिका, पत्नी और मां।'' ''तीनों बारी बारी से या एक साथ?'' वह हंसी थी। 'दोनों', समर सहाय संजीदा थे।

असल में पिछले कुछ बरसों में प्रिया को अपनी देखभाल करते हुए देख कर उन्हें अपनी बेटी मुन्नी का बचपन याद आ जाता था जब प्रिया दिन रात उसकी चौकसी करती थी। मुन्नी, ले स्वेटर पहन ले, सर्दी शुरू हो गयी (यह इसलिए पहले पहल याद आया था कि उन्हें दायें कंधे में दर्द महसूस हो रहा था क्योंकि वे पार्क जाते हुए सदरी पहनना भूल गये थे और घर में टोकने वाला कोई न था)। तूने अभी तक दवा नहीं खायी, मुन्नी। दिन चढ़ आया और मुन्नी अभी तक नहीं उठी। समर देखो इसकी देह गर्म लग रही है। मुन्नी आज गर्म पानी से नहाना; लगता है तुम्हें जुकाम हो गया है। अच्छा, आज बाहर मत जाओ। घर में आराम करो। मुन्नी बहुत देर से दिख नहीं रही। क्या दूसरे कमरे में है? मुन्नी, मुन्नी... तुम कहां हो? नहीं, आज दही मत खाओ, दही ठंडा होता है। क्या सिर्फ चावल से पेट भरोगी? मुटल्ली हो जाओगी, मुन्नी। एक चपाती खाओ (समर सहाय को याद आ गया था कि तीन साल पहले जब उन्होंने रात को एक चपाती खाना शुरू किया था, तो प्रिया ने चौंक कर कहा था, एक चपाती से क्या होगा?)। मुन्नी, अब गर्मियां शुरू हो गयी हैं, दिन भर धमाचौकड़ी मत करो; थोड़ा सो लो। मुन्नी, अब क्या दिन भर सोती ही रहोगी? उठ जाओ, शाम हो गयी। मुन्नी, हमेशा रजाई फेक देती हो, ठंड लग जायेगी; रजाई हाथों से पकड़ कर सोया करो। हाथों से रजाई पकड़ कर कोई कैसे सो सकता है, प्रिया? समर सहाय ने हंसते हुए कहा था जब यही संवाद प्रिया ने उनसे बोला।

जैसे मुन्नी को बचपन में हिदायत थी कि वह बाथरूम अंदर से बंद न करे, उसी तरह समर सहाय को चौथेपन में आदेश था कि वे बाथरूम की अंदर से सटकनी न लगायें। प्रिया अलबत्ता सटकनी लगाने को आजाद थी, चाहे घर में समर सहाय के अलावा कोई न हो। कुछ मामले ऐसे थे जिनमें बहस की कोई गुंजाइश नहीं थी। यह उन्हीं में से एक था। मगर पिछले बरस एक सुबह बाथरूम में गिरने का धमाका हुआ। 'प्रिया, प्रिया', समर सहाय बाथरूम का दरवाजा भड़भड़ाते हुए चीखे। कोई जवाब नहीं आया। पड़ोसी को बुलाने और दरवाजा खोलने में पंद्रह बीस मिनट लग गये। अंदर प्रिया की नंगी लाश बरामद हुई। यह उसका पहला दिल का दौरा था। शरीर के भीतर अंधेरे से समर सहाय का यह पहला प्रत्यक्ष सामना था।

वे सीधे बाथरूम में घुस गये और उन्होंने पैण्ट के बटन खोल दिये। दाहिने हाथ से सिर खुजलाते वे नीचे कमोड के पानी में गिरते हुए शरीर के पानी की आवाज सुनने लगे। एकाएक धार रुकी। एक वक्फा। फिर धार चालू हुई। क्या वक्फा कुछ बड़ा था? उन्हें यह सोच कर हंसी आयी कि प्रिया होती तो कहती, फौरन डॉक्टर को दिखाओ, यह प्रोस्टेट बढ़ने का लक्षण है ऑपरेशन कराना होगा। समर सहाय की छींक की व्याख्या भी इसी तरह आत्यंतिक होती थी। लेकिन वह खुद कभी डॉक्टर के पास नहीं जाती थी। वह कहती, औरत की जड़ें धरती में पेड़ की तरह गहरी होती हैं; पुरुष पेड़ का पत्ता होता है।

समर सहाय आईने के सामने खड़े अपना चेहरा निहार रहे थे, चेहरा क्या, चारों ओर सफेद बाल

थे जिनके बीच में नाक के ऊपर आंखें थीं और आंखों पर नंगा माथा था माथे पर किसी अपठनीय शिलालेख की तरह कुछ आड़ी तिरछी लकीरें थीं। जवानी में हर तरफ अनिश्चय था। अपनी बुद्धिमत्ता के भ्रम के बावजूद नजर अखबार के राशिफल पर फिसल जाती थी। इधर अरसे से उन्होंने उस तरफ देखना छोड़ दिया था जैसे भविष्य अचानक मर गया हो। केवल वर्तमान था। क्या वर्तुल समय सचमुच इस तरह पलट कर एक पटल में बदल सकता था? उस पटल पर फिलहाल एक लम्बी कविता थी जो कल आरम्भ हुई थी और जिसमें अतीत की वर्तमान पर पड़ती छाया आगत की छायाओं में बदल रही थी। असल में यह एक प्रेम कविता थी, जो देह से शुरू होकर देह के परे निकलने को छटपटाती थी।

जब उन्होंने मुंह धोने को चश्मा हटाया तो आईने में चेहरा एक धब्बा सा हो गया जिसे हवा से या पानी से पोंछा जा सकता था। वे पल भर उस धब्बे को घूरते रहे जिसका नाम समर सहाय था। फिर उन्होंने समर सहाय के नकली दांत भी बाहर निकाल कर बेसिन पर रख दिये। अब धब्बे के बीच में कोई ब्लैक होल सा दीखता था जिसमें धरती डूब सकती थी।

यह सारा खेल उनका दिमाग खेल रहा था। बाकी देह एक रासायनिक परिघटना थी जो छीज रही थी।

वे बाथरूम से बाहर आये और उन्होंने बेडरूम में चारों ओर नजरें दौड़ायीं। कहीं कोई परिवर्तन नहीं था। कमरे में पलंग, कुर्सियां, मेज और तस्वीरों की तरतीब वही थी जो प्रिया छोड़ गयी थी जैसे किसी परिवर्तन की कोई जरूरत न हो। पलंग के सामने दीवार पर मुन्नी की जीवनी तस्वीरों से लिखी थी जिसके आखिरी सिरे पर उसका बेटा दीपू था जिसे समर सहाय दिलोजान से चाहते थे।

हॉल और डाइनिंग टेबल की व्यवस्था भी जस की तस थी। केवल स्टडी में कोई स्थायी व्यवस्था नहीं थी। न पहले, न अभी। किताबें कमरे में हर जगह घूमती रहतीं। कभी लिखने की मेज के एक ओर कोई ढेर बन जाता या कोई कतार। फिर किसी बुकशेल्फ पर कोई पिरामिड बन जाता या साइड टेबल पर जहां पत्रिकाएं पड़ी होतीं। किताबें शायद अपने आप कमरे में घूमती रहती थीं। कोई किताब कभी किसी अलमारी से निकल कर किसी भी मेज या बुकशेल्फ पर बैठ जाती, फिर कुछ दिन समर सहाय के हाथों में रह कर कहीं और चली जाती या खो जाती जैसे उसकी यही मर्जी हो। किताबों से समर सहाय का उभयभावी रिश्ता था। किताबों के बिना उनका काम नहीं चलता था, लेकिन वे कभी कभी उन पर खीझ भी जाते थे। उनकी खुद एक दर्जन किताबें प्रकाशित हो चुकी थीं। वे सारी किताबों का तसव्वुर मिट्टी की सीढ़ियों की तरह करते थे जो किसी खुली छत की तरफ जाती थी। खुली छत पर खड़ा हुआ कोई हैरान चारों तरफ देखता था।

एक दीवार से सटे लम्बे बुकशेल्फ पर म्यूजिक सिस्टम रखा था जिसमें आबिदा परवीन की सूफी सीडी लगी थी। समर सहाय ने रिमोट उठा कर सीडी चला दी और इधर उधर घूमने लगे। पहले वे हॉल में गये। फिर बालकनी में खड़े होकर बाहर हरेभरे पेड़ों और उन पर छाये आसमान को देखने लगे। कुछ पल बाद उजले आसमान में दूर चिड़ियां नजर आयीं जो कहीं और दूर जा रही थीं। अंदर से आबिदा परवीन की आवाज आ रही थी जैसे गहनतम तल से आती हुई दूर दिशाओं में गूंजती हो जहां चिड़ियां उड़ रही थीं

मैं फूल हूं, मैं जलवा ए जानाना

...

इक टूटा हुआ दिल हूं, मैं शहर में सीराना

एकाएक बिजली चली गयी। संगीत थम गया। चिड़ियां आकाश में खो गयीं। समर सहाय बालकनी से लौट पड़े गोया चिड़ियां आकाश से उतर कर उनके हॉल में सोफे पर आकर बैठ गयी

हों। सोफे खाली थे। वे एक सोफे पर बैठ गये और उसकी पीठ से अपनी पीठ रगड़ने लगे जैसे सड़क पर कुत्ते खम्भे से अपनी पीठ रगड़ते हैं यह उन्हें अपनी पीठ रगड़ते हुए याद आया। इस तसव्वुर पर हंसी आयी। हंसी के साथ प्रिया की याद आयी जो कभी कभी उनकी पीठ खुजलाती थी।

आप अपनी प्रेमिका से पीठ खुजलाने को नहीं कहते चाहे आपको सड़क के खम्भे से ही पीठ रगड़ना पड़े। जब एक घर में रहना शुरू होता है, तब देरसवेर यह भी शुरू हो जाता है। खास कर मध्यवर्गीय घर में। क्योंकि इस घर में अक्सर कोई और नहीं होता। सिवाय आर्थिक दिक्कतों के। असल में मध्यवर्गी घर न यहां का होता है, न वहां का। वह कहीं बीच में लटका होता है। बीच में कहां? यह उसे खुद पता नहीं होता। वह लगातार अपनी जगह ढूंढता रहता है। मुन्नी को शहर के सबसे अच्छे स्कूल में पढ़ना चाहिए! महंगा हो तो हो। दरअसल इस डगमगाहट की शुरुआत शादी के बाद ही शुरू हो गयी थी जब समर के जन्मदिन पर प्रिया ने एक घड़ी उसे भेंट की। पुरानी घड़ी की जगह नयी घड़ी पहन कर खुश होने के बजाय उसने कहा ''कितने की है? इसकी क्या जरूरत थी?'' प्रिया की आंखों में आंसू आ गये थे। समर सहाय को वे आंसू याद हैं। उन्हें अपने बचपन के आंगन की संकरी हवा भी याद है जो अभी तक उनके फेफड़ों में भरी थी। उन्होंने पैसे को उसके अभाव में जाना था। जैसे मन में कोई गांठ बंध गयी थी। मन की दुनिया स्वायत्त थी।

एक घर में रहने के पहले जो घर में रहने की तड़प थी, वह मध्यवर्गीय गुणा भाग के नीचे दबती गयी। प्रेमी प्रेमिका से वे एक पुरुष और एक स्त्री हो गये, जिनकी एक साझी संतान थी। शहर में रहना एक सभ्यता के जंगल में रहना हो गया। सभ्यता के जंगल में मुक्ति के लिए समर सहाय कभी कभी अपने को निराला या मुक्तिबोध की मुफलिसी का उत्तराधिकारी मान बैठते थे जबकि वे एक मध्यवर्गीय नौकरी करते थे और सेकेण्डहैण्ड ही सही कार में चलते थे। ऐसा तभी होता जब वे रात को ज्यादा पी लेते। सुबह आंखें खोल कर वे पिछली रात पर हंसते थे।

अब उन्हें खुद इस आंतरिक प्रहसन पर प्रहसन के पहले ही हंसी आ जाती थी।

इधर प्रिया के जाने के बाद समर सहाय का एकांत भीतर बाहर एक सा हो गया था गोया देह कोई बाधा हो। जो लम्बी कविता अभी शुरू हुई थी, वह इसी बाधा के पार जाना चाहती थी जहां भीतर बाहर कोई फर्क न हो। दिक्काल भीतर बोले जैसे वे कोई इकतारा हों। वे आश्वस्त थे कि इस निरंतर फैलती विराट कायनात में वे केवल एक जर्रा थे। यदि जर्रे में दिक्काल गूंजे तो यही उसकी सार्थकता थी। समर सहाय रास्ते पर चलते हुए कभी कभी धूल का एक कण धूल से उठा कर अपनी हथेली पर रख लेते। वे पाते कि जिसे वे एक कण समझ रहे हैं, वह दरअसल कई कणों का पुंज है। वे एक कण को अलगाने की कोशिश में हताश हो जाते और हथेली धूल में पलट देते।

हर जर्रे को धूल में मिल जाना था।

अभी सुबह अखबार में एक खबर पढ़ कर वे बेचैन हो गये थे। दक्षिण अफ्रीका में 1994 में मिली आजादी के बाद जो नवउदारवादी विकास हुआ था, उसका फल अश्वेत परिवार की औसत आय में 19 प्रतिशत गिरावट थी और श्वेत परिवार की आय में 15 प्रतिशत वृद्धि! नेल्सन मंडेला ने क्या इसीलिए जिन्दगी जेल में गुजारी थी? क्या उनके देश की आजादी का पुरस्कार अपने लोगों की भूख और बेरोजगारी थी? दक्षिण अफ्रीका में विकृति साफ थी। हमारे यहां विभाजन आवर्सी था इसीलिए उस तरह पता नहीं चलता था। अखबार में यह खबर भी थी कि बुंदेलखंड में किसानों की आत्महत्या की दर अब एक सैकड़ा प्रति माह से ज्यादा है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध के अकालों में भी इस इलाके में किसानों ने अपनी जान नहीं ली थी। जो मनोबल अंग्रेज अपने प्रतिशोध (उन्होंने इलाके में सिंचाई विभाग तक बंद कर दिया था ताकि झांसी की रानी की भूतपूर्व फौज को सबक

मिले) से नहीं तोड़ पाये थे, उसे सात समुद्र पार बैठे अमरीकियों की धूर्तता ने तोड़ दिया।

धरती को यह क्या हो गया था? यह क्यों आत्महत्या पर तुली थी?

अपनी आत्मा की पुकार में धरती की बेचैनी पकड़ने के लिए पूर्ण एकांत की दरकार थी। अकेलेपन के अगले मोड़ पर यह रास्ता शुरू होता था जहां उदासी का धुंधलका नहीं था; यहां रोशनी भी नहीं थी, न अंधेरा था। सिर्फ एक गहरी अकुलाहट थी जिसका ओरछोर गायब था।

अपने रचनात्मक क्षणों में समर सहाय अपनी देह से गायब हो जाते थे। सारा कारोबार दिमाग के कारखाने में चलता था जो दिल के अंदर धड़कता रहता था। वहां किसी और चीज के लिए जगह ही नहीं बचती थी मानो दिलोदिमाग स्वायत्त हों। यह अजीब विडम्बना थी। भौतिक दुनिया का मन में भेद लेते हुए वे इस दुनिया से इतने बेखबर हो जाते थे जैसे यह कोई दूसरी दुनिया हो। तब वह छायाओं की दुनिया ही असली दुनिया हो जाती थी।

मगर बाहर की दुनिया दहलीज पर थी जैसे देह कभी पीछा नहीं छोड़ती थी। जब वे पेशाब करके बाथरूम से बाहर आते तो कभी घर की घंटी सुनायी देती। दरवाजा खोलने पर अकसर कोई सेल्समैन नजर आता जो कुछ बेचना चाहता। अब बाजार घरों पर हमला बोल रहा था। सेल्समैन पर गुस्सा बेकार था। वह तो सिर्फ एक बुरी खबर का दूत था। बुरी खबर का उत्पादन राजधानियों में हो रहा था दिल्ली से वाशिंगटन तक। घंटी को समर सहाय के एकांत से कोई लेना देना नहीं था। या शायद वह इसी एकांत को तहसनहस करने को बजती थी। दूसरी तरफ से कोई कोमल नारी स्वर तैर आता ''मैं प्रत्याशा चौधरी बोल रही हूं। हमारे इंडिया बैंक ने आपके लिए एक खास निवेश योजना बनायी है...।''

'मुझे अपनी पूंजी अपने आप निवेश करने दें, मोहतरमां।'' एक बार उनका स्वर शायद कुछ रुआंसा हो गया था। दूसरी तरफ फोन एकदम कट गया।

हमेशा ऐसा नहीं होता था। तभी एक दो बार समर सहाय ने फिलहाल फोन कटवाने की सोची। लेकिन कभी भी मुन्नी का फोन आ जाता और दीपू बिना तुतलाये बोलता ''दादू, कैसे हो?''

यह मधुर स्वर उनके एकांत में संगीत की तरह गूंजता।

मुन्नी मुम्बई में थी। उसके पति वहां एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी में प्रेसीडेण्ट थे। वह अंधेरी पश्चिम में लोखंडवाला बाजार के पास एक भव्य इमारत के एक भव्य फ्लैट में रहती थी जिसमें चार बेडरूम थे, चार में से दो हमेशा खाली रहते थे और हॉल इतना बड़ा था कि उसमें बैटमिन्टन खेल सकते थे। प्रिया के अचानक चले जाने के बाद मुन्नी ने समर सहाय से जिद की थी कि वे उसके साथ मुम्बई चलें और दो खाली कमरों में से कोई एक चुन लें। समर सहाय इस उम्र में मुम्बई में बैटमिन्टन नहीं खेल सकते थे। मुम्बई उनकी नजर में फिल्मी सितारों, सेठों (मुम्बई में हर सफेदपोश 'सेठ' था) और झोपड़पट्टियों का शहर था और वे इनमें से किसी श्रेणी में नहीं आते थे। अलबत्ता वहां समुद्र जरूर था। लेकिन समुद्र की लहरों पर कोई तम्बू नहीं गाड़ सकता।

असली बात उस एकांत की थी जो प्रिया के साथ ही सम्भव था। वह घर में होती तब भी समर सहाय को अपनी मेज पर एकांत महसूस होता मानो वह उसमें शामिल हो। एक बात और थी जो उन्होंने मुन्नी से नहीं कही थी वे अपनी भाषा में मरना चाहते थे।

तीन

नींद क्यों रात भर नहीं आती? समर सहाय उस सुबह कुछ ज्यादा ही झुंझला गये जब आंख खोलते

ही उन्हें अपना सिर दस किलो का लगा। यों रात में तीन चार बार बाथरूम जाना उनकी पुरानी आदत थी, इसीलिए डबलबेड पर वे बाथरूम की तरफ वाले सिरे पर सोते थे जिससे आधी आंख खोले वे बाथरूम जा सकें। पर पिछली रात तो हद हो गयी। वे हर घंटे पेशाब करने गये जैसे कमोड पर हाजिरी बजा रहे हों। यह बढ़ी प्रोस्टेट का लक्षण था। उम्र की जुगलबंदी थी।

इतना भारी सिर काम में बाधा था। इतना भारी सिर उस लम्बी कविता में बाधा था जो शुरू हो गयी थी और जो शायद समर सहाय की अंतिम कविता भी हो सकती थी! उन्हें कभी कभी ऐसा ही लगता था।

उन्होंने लखनऊ के नामी यूरोलोजिस्ट डॉ. रामनाथन को फोन किया और शाम को उसके बंगलानुमा अस्पताल में जा पहुंचे। उनकी रामकहानी सुनने के बाद युवा डॉक्टर ने चश्मे से झांकते हुए पूछा

''दर्द तो नहीं होता?''

''नहीं।''

''फिर।'' डाक्टर मुस्कराया ''फिर तो कोई खास बात नहीं।''

''क्यों?'' समर सहाय ने त्यौरियां चढ़ायीं ''खास बात तो मेरे साथ है।''

''क्या?''

''पिछली रात बाथरूम की सैर करते करते गुजर गयी। सुबह बिस्तर से नहीं उठा जा रहा था।''

''तो सुबह सो लेते, अंकल।'' डॉक्टर ने सलाह की आजिजी से कहा।

''सुबह मैं बाग की सैर करता हूं और लिखता हूं।'' समर सहाय का स्वर संजीदा था।

''क्या?''

''कविता।''

''ओह।'' डॉक्टर मेज पर थोड़ा आगे झुक आया।

''तो असली अड़चन कविता की है।''

समर सहाय सामने बैठे युवक को घूर रहे थे।

''देखिये अंकल।'' सामने बैठा युवक बोला ''आपकी उम्र में यह दिक्कत आम है। एक छोटे से ऑपरेशन से यह परेशानी दूर हो जायेगी।''

समर सहाय की उम्र (75 वर्ष) उनकी झक्क सफेद दाढ़ी के अलावा उनके पर्चे में भी लिखी थी जो बाहर नर्स ने भरा था और जो अभी डॉक्टर रामनाथन के सामने रखा था।

''क्या सचमुच मैं बिल्कुल ठीक हो जाऊंगा?'' समर सहाय मेज पर झुक आये। उनकी आंखें फैल गयी थीं।

''मेरी गारंटी है।'' डॉक्टर भी आगे मेज पर झुक आया ''पचास हजार लगेंगे।''

समर सहाय एकदम पीछे कुर्सी पर पलट गये। उन्होंने अपनी तोता नाक से एक गहरी सांस ली। फिर बोले ''जमाना कितना बदल गया है!''

''क्या?'' डॉक्टर मेज पर झुका था। उसकी आंखों में सवालिया निशान था।

''जो गारंटी ईश्वर भी नहीं देता।'' समर सहाय ने कुर्सी से पीठ टिकाये कहा ''उसका ठेका आप ले रहे हैं।''

युवा डॉक्टर मुस्कराया। उसने कुर्सी की पीठ से पीठ टिकायी और बोला ''अंकल, आप फिक्र न करें, आपकी कविता से स्पीडब्रेकर हटा दूंगा।''

समर सहाय ऑपरेशन टेबल पर अधनंगे लेटे थे। अधबेहोश भी। कमर के नीचे। उनकी आंखें और दिमाग खुले थे। डॉ. रामनाथन के अलावा दो और डॉक्टरों के चेहरे आसपास नजर आ रहे थे। ऊपर छत पर रोशनी थी। कमरे में धुंधलका था। सारा कार्य व्यापार कमर के नीचे हो रहा था, जो नजर के परे था। केवल डॉ. रामनाथन का युवा स्वर कानों में लगातार पड़ रहा था।

''आप क्या काम करते थे, अंकल?''

''मैं अभी भी काम करता हूं।'' समर सहाय मुस्कराये।

''क्या?''

''कविता लिखता हूं।''

''हां।'' डॉक्टर शायद मुस्कराया ''कविता करना तो बड़ा काम है लेकिन...।''

''मैं खाद बेचता था। एक कम्पनी में अफसर था।''

''वाह...''

''इसमें वाह की क्या बात है?''

''अंकल, ये दोनों कितने अलग काम हैं!''

''सो तो है।''

समर सहाय को अचानक लगा कि उनके जिस्म के दोनों हिस्सों के बीच सम्बंध टूट गया है। निचले हिस्से में डॉक्टर की कार्रवाई चालू थी, जिसका उन्हें कुछ पता नहीं था, न वहां किसी हलचल का पता चलता था, न किसी दर्द का। लेकिन कुछ हो जरूर रहा था। अपनी देह को महसूस करने के लिए उन्होंने अपनी आंखें बंद कर लीं।

''मेरी अंग्रेज बीवी बड़ी जालिम है।'' डॉक्टर की आवाज थी।

''क्यों?'' समर सहाय चौंके।

उन्हें चौंकता देख कर डॉक्टर को तसल्ली हुई। वह बोला ''वह कहती है कि तुम अगर तीन दिन लगातार दस के बाद घर लौटे तो चौथे दिन मैं इंग्लैण्ड चली जाऊंगी।''

मौन। कोई आवाज नहीं। सिर्फ दीवारों पर साये हिल रहे थे।

''अब बताइये, अंकल।'' डॉक्टर की आवाज कमरे में गूंजी ''मेरा काम कोई दस से पांच तक क्लर्क का काम है?''

''मैं क्या बताऊं।'' समर सहाय बुदबुदाये ''मेरा काम भी दस से पांच तक का काम नहीं है।''

समर सहाय ने फिर आंखें मूंद लीं। असल में सहसा उन्हें अपना आधा शरीर बहुत हल्का लगा था जिसमें दिलोदिमाग भी शामिल थे। यह आधा शरीर पूरे का भ्रम लिए जैसे किसी संगीतमय झूले पर झूलने लगा था जहां कोई अनोखा उजाला था और पूर्ण शांति थी। यह मृत्यु की दहलीज थी (यह डॉ. रामनाथन बाद में बतायेगा) जिससे समर सहाय को लौटाने की डॉक्टर ने फिर चेष्टा की ''जो कविता आप लिख रहे हैं, कितनी लम्बी है?''

समर सहाय गोया किसी दहलीज पर ठमठमा रहे हों। मगर कविता के सवाल का जवाब देना जरूरी था। वे बोले ''जब पूरी हो जायेगी तो नाप कर बता दूंगा।'' इस कविता का जो शायद उनकी अंतिम कविता हो इसका पूरा होना जरूरी था। कायनात इसके पूरा होने का इंतजार कर रही थी।

समर सहाय की आंखें खुली थीं जब उन्हें स्ट्रेचर पर बाहर लाया गया। वे मुस्करा रहे थे जब उनकी आंखें मुन्नी की आंखों से मिलीं। मुन्नी ने उन्हें मुम्बई बुला कर ऑपरेशन कराने की बहुत

कोशिश की थी, लेकिन वे नहीं माने। उन्हें लगा था कि ऑपरेशन के बाद उन्हें अपनी अधूरी कविता के इर्दगिर्द ही रहना चाहिए जैसे वे ऑपरेशन के पहले थे।

जब वे ऑपरेशन थियेटर से बाहर आये उन्हें कैथेटर लगा था जो दो दिन लगा रहा। जब कैथेटर निकल गया, वे घर लौट आये। वे बेडरूम में नहीं लेटे, स्टडी में लेटे। बेडरूम में मुन्नी और दीपू रहे। समर सहाय को इस कमरे में लेटे हुए सुकून मिलता था, जहां संगीत था, किताबें थीं और उनकी कविता थी। लौटने के अगले दिन कविता में चार पंक्तियां और जुड़ीं जिनमें विभाजित देह का बिम्ब था। आधी अचेत आधी जीवित थी, आधी मृत। मृत देह को कोई भी ठोकर मार कर चला जाता, कोई भी रौंद देता। विभाजित देह देश का रूपक हो गयी।

समर सहाय के निचले हिस्से में हल्का सा दर्द था। उन्हें ज्यादा पता नहीं चलता था क्योंकि वे मुन्नी, दीपू, संगीत या अपनी कविता से घिरे रहते। यह सही है कि इन दिनों वे सबसे ज्यादा अपनी अधूरी कविता के बारे में सोचते। उन्हें खुद पता नहीं चलता था कि वे अपनी कविता को पार लगा रहे हैं या कविता उन्हें पार लगा रही है। कहने को वे दिन भर दीपू से बतियाते रहते। किन्तु उनका मन कविता में ही उलझा रहता।

अपने कमरे में लेटे हुए उन्हें कभी कभी ऑपरेशन टेबल पर अपनी गहरी नींद याद आ जाती जिसमें वे नर्म, हल्के पंखों पर क्षण भर पूर्ण शांति में लीन हो गये थे। यदि यही मृत्युद्वार था, तो लोग नाहक मृत्यु से इतना डरते थे! सेटी पर लेटे समर सहाय के चेहरे पर मुस्कान आ गयी। पास कुर्सी पर बैठा दीपू बोला ''दादू ऐसे मुस्करा रहे हैं जैसे चोरी चोरी चॉकलेट खा रहे हों।'' वह मुन्नी को बता रहा था जो अचानक कमरे में आ गयी थी।

''क्या हुआ पापा?'' मुन्नी ने पूछा।

''कुछ नहीं, झपकी आ गयी थी।''

''लीजिये, दवा खा लीजिये।''

वह दवा देकर किचन की तरफ चली गयी।

डॉक्टर रामनाथन ने बाद में बताया कि ऑपरेशन के दौरान अचानक उनका बी.पी. नीचे खतरनाक हद तक लुढ़क गया था। कुछ हृदयाघात की तरह। आपके ईसीजी से लगता है कि आपको एक बार पहले भी मौन हार्ट अटैक हो चुका है, डॉक्टर ने कहा था। समर सहाय आवाक थे। उन्हें कुछ पता नहीं था कि शरीर के अंधेरे में क्या क्या छिपा है।

यों मृत्यु की पदचापों की आहट उनकी कविताओं में काफी पुरानी थी जिसे उन्होंने खुद कम, दूसरों ने ज्यादा सुना था। जब उनके दोस्त या आलोचक इसका जिक्र करते, तो उन्हें स्वयं कुछ ताज्जुब होता। अपने भीतर के अंधेरे को कौन जानता है? शायद पहली बार ऑपरेशन टेबल पर उन्होंने उस अंधेरे का दरवाजा देखा था। कुछ अमूर्त सा। उन्हें यह सोच कर हंसी आयी कि जो ऑपरेशन मूलतः उन्होंने अपनी अंतिम (?) लम्बी कविता के विघ्न निवारण के लिए करवाया था, उसी में वे मौत का दरवाजा देख कर घर लौटे थे।

''दादू, क्यों हंसे?'' दीपू सामने खड़ा था।

''तुम्हें सामने खड़ा देख कर खुश हुआ।''

''आप झूठ बोलते हैं, दादू।'' दीपू झूठमूठ रूठा।

''क्यों?''

''आप जब हंसे तो आपकी आंखें छत पर थीं।''

समर सहाय के पास कोई जवाब नहीं था। उन्होंने बात बदलने की कोशिश की ''चलो,

सांप सीढ़ी खेलते हैं।'' दीपू ने सहयोग किया ''ठीक है।'' उसने किताबों पर रखे बोर्ड को उठा कर उनके सामने फैला दिया वे अब सेटी पर उठ कर बैठ गये थे।

खेल शुरू हो गया।

हाथ से पांसा फेकते हुए समर सहाय को याद आया कि एक बार उनसे पूछा गया था कि आप कैसी मृत्यु चाहते हैं? लिखते हुए, उनका जवाब था। उनका आशय उस प्रक्रिया में रहने से था जिसमें वे इन दिनों थे और जिसमें उनकी देह एक रूपक हो गयी थी। उनके जीवन का उद्देश्य अब एक ही था, अधूरी कविता अब पूरी हो जाये!

''दादू।'' दीपू एकाएक बोला ''सोचो मत।''

कितना खूबसूरत फरमान है, समर सहाय ने सोचा। यदि यह धरती पर लागू हो जाये तो लोग चिड़िया हो जायेंगे और धरती पर खून नहीं बहेगा।

''पापा।'' मुन्नी ने कमरे में आकर कहा ''खाना लाऊं।''

''जल्दी नहीं है?'' समर सहाय ने घड़ी की ओर देखा।

''नहीं, फिर मुझे आपकी बायोप्सी की रिपोर्ट लेने जाना है।''

''मैं भी चलूंगा।'' दीपू बीच में ठुमका।

''नहीं, मैं मॉल में घूमने नहीं जा रही। तुम कुछ देर सो जाना।''

''तुम बेकार परेशान होती हो मुन्नी।'' वे बोले।

''नहीं, यह जरूरी है।''

समर सहाय ने किन्चित मुस्कराते हुए मुन्नी को देखा जो अपनी मां की तरह मां बन गयी थी।

समर सहाय दोपहर की छोटी सी नींद ले चुके थे जब उनकी आंखों के बाहर कोई आहट हुई।

उनकी आंखें खुल गयीं। सामने मुन्नी खड़ी थी, लेकिन उसका मुंह लटका था।

''क्या हुआ मुन्नी?'' उन्होंने पूछा।

मुन्नी चुप।

''क्या रिपोर्ट मिल गयी?''

''हां।''

''तो!''

मुन्नी फिर चुप।

''तुम तो ऐसे चुप हो।'' वे हंसे ''जैसे मुझे कैंसर हो गया हो।''

मुन्नी की आंखों में आंसू थे।

गिरते आंसू देख कर समर सहाय खड़े हो गये। उन्होंने मुन्नी के आंसू पोंछे। फिर उसे सामने कुर्सी पर बिठा दिया और खुद सेटी पर बैठ गये। वे अभी भी मुस्करा रहे थे यद्यपि मुसकान में अब रोशनी नहीं थी।

''कौन सी स्टेज है?'' उन्होंने पूछा।

''दूसरी।''

''फिर क्या बात है।'' उन्होंने हंसने की कोशिश की ''अभी आधा रास्ता बाकी है।''

मुन्नी चुप।

''मुन्नी, तुमने खाना खा लिया?''

''जी।''

''थोड़ा आराम कर लो। दीपू उठ गया तो तुम्हें सोने नहीं देगा।''

''जी।''

वह इस तरह उठी जैसे वह खुद अकेला होना चाहती हो। कमरे से बाहर जाने से पहले उसने एक बार पलट कर समर सहाय का चेहरा देखा जो खाली था।

वे फिर लेट गये। ये भीतर ही भीतर चुपचाप क्या हो रहा था? उन्हें कोई खबर ही नहीं थी। पहले कभी मौन दिल का दौरा पड़ा था। अब कैंसर सुगबुगा रहा था। यह भी चुप था जैसे शरीर कोई षड्यंत्र रच रहा हो। प्रोस्टेट गुप्तचर हो गयी थी। उनकी आंखें आहिस्ता आहिस्ता बंद हो गयीं। अंधेरा छा गया। जब वे कुछ देर अपनी आंखों में अंधेरा थामे रहे तो उन्हें लगा कि यह अंधेरा ठोस है। यह पहले की तरह हवा या पानी का अंधेरा नहीं था। यह पत्थर का अंधेरा था। ऑपरेशन टेबल पर जो अंधेरे का दरवाजा उन्होंने देखा था वे उसके अंदर प्रवेश कर गये थे। यह उन्होंने अभी जाना कि जिस मृत्यु से वे दशकों खिलवाड़ करते रहे थे, वह एक ख्याल था। सहसा उसका मुलम्मा उतर गया था। मृत्यु अब निजी और नंगी थी।

अब कोई अमूर्तन नहीं बचा था।

उस रात समर सहाय ने अपनी मृत्यु का सपना देखा। सपने में कुछ उसी तरह का तिलिस्मी सा अंधेरा था जो उन्होंने ऑपरेशन टेबल पर बंद आंखों में देखा था। मगर अब इसमें कोई सुकून था जो चंदन जैसा शीतल था। वो देह नहीं थी देह की स्मृति थी। स्मृति की आंखों में एक मुस्कराता चेहरा था। यह कौन है? क्या यह प्रिया है? लेकिन प्रिया की नाक इतनी नुकीली नहीं थी, न रंग अंधेरे में चांदनी की तरह था। ओह... यह राधा है... राधा... जैसा मैंने उसे पहली बार देखा था!

राधा, तुम कहां हो?

चार

समर की रेख निकल रही थी। ऊपरी होंठ पर कुछ बाल आ गये थे। आईना उसे कुछ हैरत से देखता। आवाज पहले ही फट कर अपने में गुंथने लगी थी जैसे कोई रस्सी हो। पतला शरीर अक्सर अपने भीतर अकड़ अकड़ जाता। समर बेचैन शहर की गलियों में घूमता। एक दोस्त से दूसरे दोस्त के घर। जैसे दोस्तों से गपिया कर कोई हल निकल आयेगा। दोस्त आपस में लड़कियों के बारे में बातें करते जो शहर भर में फैली थीं। धरती पर लड़कियां ही लड़कियां थीं हर घर, हर मोहल्ले, हर शहर और हर देश में। मगर एक लड़की, एक अकेली लड़की दुनिया का सबसे बड़ा चमत्कार थी। उसकी देह की नवजात गोलाइयों में ब्रह्मांड का सबसे बड़ा रहस्य छिपा था। उसका महीन स्वर फटी आवाज का घोंसला था जिसकी शाश्वत खोज जारी थी। फटी आवाज की मौन पुकार हवाओं में गूंजती थी जहां कायनात आवाज की तरह बिखर कर दसों दिशाओं में फैल गयी थी।

वे अजीब दिन थे। वह किसी उपन्यास के पात्र के साथ रोता था जैसे वह सचमुच हो। वह जार जार रोता, कभी कभी उसकी हिचकी बंध जाती। वह किसी पात्र की काया में किसी सुंदर लड़की से प्रेम करता, प्रेम की पेंग भरता और फिर अचानक प्रेमिका को दैव या मृत्यु छीन कर ले जाती। यह एक पहाड़ का टूटना था जिसके नीचे आंसू ही आंसू थे।

तब उसे उपन्यासों की झूठी दुनिया का पता नहीं था।

राधा ने कॉलेज में पहली बार उससे किसी उपन्यास के बारे में ही बात की थी।

''सुनिये।''

''जी।'' उसका दिल उछलने लगा था जैसे कोई पक्षी पिंजरे में फड़फड़ाता है।

''क्या आपने लाइब्रेरी से अज्ञेय की 'नदी के द्वीप' इशू करायी है?'' राधा की आंखें उसके चेहरे में कुछ ढूंढ रही थीं। वह सामने खड़ी थी।

''हां।'' वह पलक झपकाना भूल गया था। उस क्षण गलियारे में कोई नहीं था। केवल एक अकेली, परी सी लड़की थी जो शायद मुस्करा रही थी।

''जब वापस करें, मुझे बता दीजिये। मुझे चाहिए।'' वह कह रही थी।

''ठीक है।'' समर के मुंह से निकला।

तभी एक और लड़की हंसती हुई उसके पास आ गयी। गलियारे का जादू टूट गया।

अगले दिन वह किताब ले आया। अंग्रेजी का पीरियड खत्म होने पर वह बाहर गलियारे में निकल आया और सीधा राधा के सामने जाकर खड़ा हो गया वह लड़कियों के झुंड में पीछे रह गयी थी। वह ठमठमायी और खड़ी रह गयी जैसे अचानक गिरफ्तार हो गयी हो। उसने आंखें उठा कर ऊपर देखा।

''लीजिए।'' समर ने किताब आगे बढ़ायी।

''यह क्या है?'' वही कल वाला स्वर था जो अभी तक समर के कानों में गूंज रहा था।

''नदी के द्वीप।''

''आपने पढ़ ली?''

''कल रात खत्म कर दी।'' वह मुश्किल से मुस्कराया।

''कैसी है?'' वह सचमुच मुस्करायी।

''त्रासदी है।'' समर की मुस्कान डूब गयी थी।

राधा ने अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ाया। उसके सुनहरे हाथ पर तीन बिल्लौरी चूड़ियां खिलखिला रही थीं। समर की नजर चूड़ियों पर थी और उसका हाथ आगे बढ़ रहा था। पल भर किताब को दोनों हाथ थामे थे और एक दूसरे को उंगलियों से थामे थे। जब समर का हाथ खाली हो गया तो उसने जाना कि राधा का हाथ उसे छूकर वापस लौट गया है।

यह आजादी के बाद का पहला दशक था और समर ने पहली बार एक अकेली लड़की को छुआ था जिसकी उंगलियों में जादू था। उसे इस छुअन को याद करने की जरूरत नहीं होगी।

जब समर ने अपनी छुअन दास्तान दोस्तों को सुनायी तो वे हंसने लगे। भौंचक समर ने उनके हंसते चेहरे देखे। वे बुजुर्गों की तरह हंस रहे थे। चिरगांव का रमेश जिसने ठहाका लगाया था, उसने बताया कि पिछले इतवार जब वह गांव गया था तो एक दोपहर उसने पड़ोस की एक लड़की को इशारे से अपने घर के पिछवाड़े झाड़झंखाड़ से घिरे पीपल के पेड़ के नीचे बुलाया और उसके जिस्म को ऊपर से नीचे तक कई कई बार चूमा।

''उसने तुम्हें मना नहीं किया?'' समर ने पूछा।

''वह लगातार हंसती रही, बुद्धू।'' रमेश फिर हंसा।

हालांकि समर अब उस बचपने से उबर चुका था जब बच्चे एक दूसरे से पूछते हैं कि क्या वे सचमुच अपने मां बाप की उसी जघन्य हरकत से पैदा हुए हैं जिसमें वे एक दूसरे पर लेट जाते हैं, लेकिन वह अभी भी नये विवाहित जोड़े को देख कर आशंकित होता था कि यह लड़का लड़की पर अत्याचार करेगा। उसे खुद अपने डर पर हंसी आयेगी जब वह पहली बार सम्भोग करेगा। वह वक्त अभी दूर था।

अभी समर के शहर का भूगोल अचानक बदल गया था। शहर के पत्थर कुछ ज्यादा चमकने लगे थे। घास कुछ ज्यादा हरी हो गयी थी। आंतिया ताल की सतह पर सूर्य की किरणें कुछ ज्यादा तेज ठुमकने लगी थीं। शहर के बीचोंबीच पहाड़ी पर खड़े किले की दीवारों की काई रातोंरात घुल गयी थी। धुर पूरब में कैमासन की टौरिया कुछ उजली हो गयी थी। आकाश राधा की साड़ी की तरह नीला था।

अपना ही शहर कभी इतना भरा भरा नहीं लगा था। समर हैरान चारों तरफ देखता।

यह बहुत हमवार मौसम था। वर्षा कबकी खत्म हो चुकी थी। सितम्बर की उमस भी जा चुकी थी। गर्मी नहीं थी। न जाड़े थे। हवा में खनक थी जैसे कोई उम्मीद तैर रही हो। एक इतवार की सुबह कॉलेज से बस चली। एक दर्जन लड़कियां बस में बायीं ओर आगे बैठी थीं। बाकी बस में लड़के भरे थे। बस का शोर पता चला जब बस कानपुर रोड पर दायीं तरफ ओरछा की सूनी सड़क पर मुड़ी। दोनों तरफ घने पेड़ थे जो आसमान तक फैले लगते थे। धूप की चादर सिर्फ सड़क पर नजर आती थी। दोनों ओर वह पेड़ों की पत्तियों में उलझ गयी थी। बस के अंदर एक लड़का पुराना फिल्मी गीत गा रहा था

गाये जा गीत मिलन के
तू अपनी लगन के
सजन घर जाना है

लड़के गीत पर तालियां बजाते हुए बार बार लड़कियों की ओर देख रहे थे जो या तो चुप थीं या आपस में कोई जरूरी बात करती हुई हंस रही थीं।

बस बीच में एकाएक रुकी। दाहिनी ओर चंद्रशेखर आजाद की कुटी थी, जहां काकोरी कांड के बाद आजाद कुछ दिन भूमिगत रहे थे। बीहड़ जंगल में वे अकेले इसी कुटी में रहते थे, वर्मा मास्साब बता रहे थे क्योंकि वे फरार थे। पुलिस उनके पीछे पड़ी थी। एक सुंदरी भी, वर्मा मास्साब ने मुस्कराते हुए कहा जो पास एक गांव में उनकी रामकथा सुनने आती थी। मगर आजाद आजाद थे, वर्मा मास्साब संजीदा हो गये, वे कहते कि उनका गठबंधन आजादी से है।

आजाद की कुटी के पीछे नन्हीं सी सतारा नदी बहती थी। लगता था, आजाद नहाने गये हैं। कुछ देर लड़के लड़कियां नदी किनारे पेड़ों के नीचे घूमे जैसे उन्हें ढूंढ़ रहे हों। पेड़ों के घने साये सुकुमार नदी पर गिर रहे थे गोया आजाद को छिपा रहे हों। नदी पर चलती हवा ठंडी थी। पानी चुपचाप बह रहा था। फिर एक बुलाहट हुई और सब वापस बस में लौट गये।

इस बीच कई बार समर और राधा की नजरें टकरायी थीं। हर बार लगता कि कुछ चिंगारियां फूटी हैं जिन्हें कोई देख नहीं सकता।

ओरछा में बस पहले विस्तृत राम मंदिर के सामने रुकी जहां बंदर दुकानों के आगे और पेड़ों के नीचे उछलकूद कर रहे थे। धूप मंदिर के बाहर और मंदिर के अंदर फैली थी। बंदर हर जगह नजर आते थे जैसे मंदिर में तैनात हों। क्या मंदिर और बंदर का कोई अंदरूनी रिश्ता था? समर ने वर्मा मास्साब से पूछा। वे मुस्कराने लगे। तब तक समर कविताएं लिखने लगा था। कॉलेज के समारोहों में उसे तालियां मिलने लगी थीं। वर्मा मास्साब को उसके सवाल पर कोई ताज्जुब नहीं हुआ। वह ऐसे रिश्ते ढूंढ़ने लगा था जो दूसरों को नजर नहीं आते थे। वर्मा मास्साब इसीलिए मुस्कराये थे। वे युवा थे। उन्होंने समर और राधा की नजरों का टकराना देख कर अनदेखा कर दिया था।

मंदिर के पट अभी खुले थे। गहनों से मढ़ी मूर्तियों के सामने लोग आंखें मूंदे तालियां बजाते कीर्तन कर रहे थे। लड़के और लड़कियां कीर्तनमंडली के दोनों ओर खड़े थे। उनकी आंखें खुली थीं। वे कभी मूर्तियों को ताकते, कभी कीर्तनमंडली को। समर ने एक बार फिर राधा की नजर को पकड़

लिया था जो उसी की ओर उठी थी।

बेतवा नदी पत्थरों से टकराती शांत बह रही थी। बारिश कब की बीत चुकी थी जब पत्थर की चट्टानें डूब गयी थीं और उफनता पानी किनारे के घने पेड़ों को अपने साथ लेने की नाकाम चेष्टा करता थक गया। ऊपर बादल बार बार कड़क कर चेतावनी देते रहे थे। अभी आकाश साफ था। नदी के दोनों किनारों पर घना जंगल चमक चमक जाता, जिसके अंदर अंधेरा था। धरती नजर नहीं आती थी। घास ने उसे ढक लिया था।

दो नंगी चट्टानों के आसपास अखबार के कुछ मुड़ेतुड़े टुकड़े फैले थे। खाने के बाद सब लोग इधर उधर बिखर गये थे। एक चट्टान पर समर अकेला बैठा कभी आसमान को देखता, कभी नदी को, जो चट्टानों का आलिंगन करती आहिस्ता आहिस्ता उनींदी सी एक तरफ बह रही थी। सहसा उसने कुछ दूर झाड़ियों के पीछे एक अकेली हरी साड़ी को हिलते हुए देखा। राधा ने हरी साड़ी पहनी थी जो जंगल के हरेपन में छिप छिप जाती थी। वहां घने पेड़ के नीचे कुछ अंधेरा सा था। वह फुर्ती से उठा और उसी ओर चला। राधा ही थी। पहले उसने समर को आंख भर देखा, फिर कहा ''मेरी साड़ी झाड़ी में फंस गयी है।'' वह पास पहुंच कर नीचे झुका। साड़ी को कांटों से अलग कर दिया। मगर ऊपर उठते हुए उसके होंठ राधा के होठों से उलझ गये। राधा की आंखें बंद थीं। समर को पता नहीं था कि उसकी आंखें खुली हैं या बंद। सहसा कानों में नदी की आवाज आयी जैसे कोई धीमे धीमे पुकार रहा हो... समर... समर...।

राधा... राधा... राधा के कानों में स्वर गूंजा जैसे हवा ने कुछ कहा हो।

यह पहले प्रेम का पहला चुम्बन था।

अब दुनिया बदल गयी थी।

घर वही था जहां समर शाम को लौटा। अम्मा चौके में थी। जब वह सुबह घर से निकला तब भी अम्मा चौके में थी। वह चूल्हे के पास बैठी रहती थी। उसने कहा ''भूख लगी होगी। हाथ पैर धोकर आ जाओ। खाना तैयार है।'' अम्मा ने कहा तो समर को भूख याद आयी। वह ऊपर अटारी में चढ़ गया। उमा छत पर तार से सूखे कपड़े उठा रही थी। वह समर के पीछे अटारी में घुसी। वह पल भर समर का चेहरा ताकती रही। फिर बड़ी बहन की तरह हंसी और बोली ''क्या बात है, मुन्ना?'' उसने भौंहें ऊपर उछाली थीं।

''कुछ नहीं।'' समर गम्भीर था।

''कुछ तो है।''

''क्या?''

''तुम्हारे चेहरे पर लिखा है।''

''तो पढ़ लो।'' समर को हंसी आ गयी।

''लिपि कुछ समझ में नहीं आ रही।'' उमा मुस्करायी।

''जब समझ लो, तो मुझे भी समझा देना, जिज्जी।''

रसोई में हल्का सा धुआं था। समर को लगा कि वह आलू की सब्जी और रोटी के साथ धुआं भी खा रहा है। मगर धुएं का स्वाद नहीं आ रहा था। वह हर चीज चखना चाहता था, आंगन की हवा, छत पर छायी चांदनी और आकाश में टंगा चांद।

उस रात उसे देर तक नींद नहीं आयी। अंधेरे में करवटें बदलता रहा। अंधेरे में करवट का भी पता नहीं चलता था। लगता था, अंधेरा ही बार बार अपनी जगह बेचैन हिल रहा है। केवल राधा के चेहरे पर उजाला था। सूर्य की किरणें पेड़ के घने पत्तों से छन कर उसके उजले चेहरे पर गिर

रही थीं। आंखें पहले नदी में खुलती नावों की तरह खुली थीं, फिर आहिस्ता आहिस्ता स्वतः बंद हो गयीं। उसके होंठ खुले थे जैसे समर के पूरे जिस्म में उतर गये हों। सूरज के नीचे धरती पर अंधेरा कैसे हो सकता था?

अगले दिन जब दोस्तों ने समर से पिकनिक के बारे में पूछा तो उसने सतारा नदी के किनारे बनी कुटी की दास्तान सुनायी जहां उसने चंद्रशेखर आजाद को ढूंढने की चेष्टा की थी। दोस्त पहले दत्तचित्त सुनते रहे, फिर हंसने लगे। रमेश ने गुरुगम्भीर सूरत बना कर पूछा "प्रेम कहानी कितनी चली?"

"आजाद ने मुंह मोड़ लिया था।" समर ने कहा "प्रेमिका पगला गयी।"

"तुमने नदी किनारे क्या किया?" रमेश ने बेसब्री से पूछा।

"पिकनिक।"

"अकेले कोई मौका नहीं मिला?"

"मिला था।"

"फिर?"

"उसकी साड़ी को कांटों से छुड़ाया।"

"फिर?"

"एक चुम्बन।"

सारे दोस्त हो हो करके हंसे। एक बोला "अबे, क्या माथा चूमा?"

"नहीं।"

"तो फिर चुम्मा बोल। संस्कृत क्यों बोल रहा है?"

रमेश एकाएक संजीदा हो गया। उसने अपने गांव का किस्सा आगे बढ़ाते हुए बताया कि अगले दिन वह लड़की को पेड़ के नीचे बुला कर भूसे की कोठरी में ले गया था और वहां उन्होंने वही किया जिसकी आदमी और औरत के बीच प्राचीन रस्म है।

"अब तुम्हें एक कमरे की दरकार है।" रमेश ने उसे हिदायत दी।

समर हैरान उसकी ओर देख रहा था।

"हां हां, एक कमरा।" वह मुस्कराया "जो तुम्हें पूरा आदमी बना देगा।"

समर की आंखें उसकी आवाज पर टिकी थीं।

उसे तब मालूम नहीं था कि उसकी किस्मत में एक कमरा नहीं, एक खाली घर था। हालांकि उसने कभी ऐसा सोचा नहीं था। मगर वह किस्सा बाद में। उसके पहले दो मौसमों को गुजरना था। जाड़ा आहिस्ता आहिस्ता परवान चढ़ा। राधा की नंगी बांहें पहले ब्लाउज की पूरी बांहों से ढंकी, फिर जर्सी से। एक दोपहर समर ने उससे कहा "तुम्हारी बांहें देखे जमाना हो गया। कहां हैं तुम्हारी बांहें?" वह हंसी। अगले दिन बादल छा गये। फिर पानी गिरा। राधा हरा चेस्टर पहन कर आयी। दो पीरियडों के बीच में गलियारे का सूना कोना पाकर समर बोला "कितना अच्छा है कि तुम कभी अपनी आंखें नहीं छिपाओगी और मैं उन्हें हमेशा एक गौरैया की तरह देखता रहूंगा।"

"हमेशा?" राधा तिरछी नजर से मुस्करायी।

यह मुस्कान आंखों में थी। होठों पर नहीं उतरी थी।

"हां।" समर का स्वर अपने आप कांप गया।

दो नये प्रेमियों की बातें ऐसी ही कंपकंपाहट से भरी होती हैं। वे ऐसे देश में होते हैं जो उन्होंने पहले नहीं देखा। उसकी धरती, आकाश, पेड़ पौधे और नदियां सब उन्हें अनोखी लगती हैं। यह नया देश चारों तरफ समुद्र से घिरा होता है, जो किनारों पर बार बार पछाड़ खाकर गिरता है। नारियल

के पेड़ दूर खड़े हवाओं में हां हां करते हुए अपना सिर हिलाते हैं।

समर कभी कभी सुबह अटारी से नीचे उतरते हुए स्वेटर पहनना भूल जाता। उसे अपनी देह की कंपकंपी सहज लगती जब तक उमा हंसते हुए उसे टोक न दे। वह तुरंत ऊपर भागता जैसे उसका कुछ गोपन उमा ने देख लिया हो। वह राधा को बताता कि सुबह आंख खुलते ही तुम सपने से निकल कर मेरे मन में आ जाती हो, मैं क्या करूं, मुझे कुछ याद नहीं रहता! राधा कैसे बताये कि वह कई बार बाथरूम में निर्वस्त्र आईने के सामने खड़ी रहती है जब तक मां किवाड़ न भड़भड़ाये, क्या बाहर नहीं आयेगी, राधा? राधा कैसे बाहर आये? वह अपने भीतर डूबती चली जाती थी।

जाड़ा धीरे धीरे पेड़ की पत्तियों की तरह झरने लगा। राधा जैसे पहले स्वेटर फिर पूरी बांह के ब्लाउज से मुक्त हुई, उसी तरह पेड़ हवा में अपनी पत्तियां छोड़ने लगे। ऊंचे पूरे पेड़ आसमान में अपनी नंगी शाखें और टहनियां टांग देते। उन पर बैठी चिड़ियां अजनबी लगतीं और उनका आकाश में उड़ जाना सही लगता। धरती की नंगी देह कसमसाने लगी। फिर क्यारियों में फूल खिले और पेड़ों की शाखाओं पर हरी पत्तियां झूमने लगीं। आकाश सूर्य की किरणों में मुस्कराता हुआ लगता।

अप्रैल का महीना जालिम होता है जब धरती पर गुलाब खिलते हैं और लड़के लड़कियां इम्तहान देते हैं। उनकी आंखें रतजगे से कुछ और बड़ी हो जाती हैं और चाल में संजीदगी आ जाती है। आखिरी दिन वे अपना शरीर झिंझोड़ते हैं जैसे कोई केंचुल उतार रहे हों। यह वादा पुराना था। जिस सुबह इम्तहान खत्म हो, उसी दोपहर समर को राधा के घर जाना था जो सिविल लाइंस में एक सरकारी फ्लैट था।

''ठीक चार बजे आना।'' राधा ने कहा।

''क्यों?''

''उस वक्त घर में कोई नहीं होगा।''

''जब कोई नहीं होगा, तो मैं क्या करूंगा?'' समर की आंखें राधा के चेहरे पर थीं।

''सिवा मेरे।'' वह कहीं और देख रही थी।

समर का दिल धड़का। उसने घंटी बजायी। अंदर से आवाज आयी ''चले आओ अंदर।''

वह सीधा हॉल को पार करता हुआ अंदर कमरे में चला गया। कमरे में कोई नहीं था। उसने चारों ओर नजर घुमायी। दायीं ओर परले कोने पर एक दरवाजा खुला था। समर का मुंह राधा को पुकारने के लिए खुला ही था कि राधा का हाथ दरवाजे के बाहर आया, फिर हाथ के पीछे पूरी देह हाथ की तरह नंगी। वह दरवाजे में एक पैर आगे बढ़ाये खड़ी थी। उसकी टेढ़ी नजर समर की नजर से टकरायी।

समर का मुंह खुला का खुला रह गया। कोई आवाज नहीं थी। कायनात से सारी आवाजें कहीं दूर चली गयी थीं गोया उनकी कोई जरूरत न हो। सिर्फ आंखें थीं जो पलक झपकाना भूल गयी थीं। समर को लगा जैसे उसकी समूची देह पिघल कर आंखों में समा गयी हो। उसे कुछ पता ही नहीं चला। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

वह रो रहा था।

उसे लगा, वह अभी अभी पैदा हुआ है।

पांच

''पापा।'' मुन्नी ने कमरे में घुसते हुए पुकारा।

''हां।'' समर सहाय ने आरामकुर्सी से नजरें ऊपर उठायीं।

''अब आप हमारे साथ मुम्बई चलिये। यहां अकेले कैसे रहेंगे?''

''जैसे अभी तक रहे, बेटा।'' समर सहाय मुस्कराये।

''अब आप बीमार हैं।'' मुन्नी के सांवले माथे पर चिन्ता की रेखाएं उभर आयीं। वह सामने खड़ी थी।

रेखाएं इतनी गहरी थीं कि समर सहाय की नजरों से नहीं छिपीं। अगले क्षण उन्होंने नजर नीची कर ली और जैसे मुन्नी के पार देख रहे हों, कहा ''कोई फर्क नहीं है।''

''क्यों?'' मुन्नी की आंखें फैल गयीं। उसकी आंखों में फिर गहरी आशंका उतर आयी।

''देखो, बेटा।'' समर सहाय ने फिर उसके चेहरे की ओर आंखें उठायीं ''न मुझे पहले कोई दर्द था, न अब है। उल्टे रात में पेशाब की दर कम हो गयी है।''

''पेशाब की दर क्या होती है, दादू?'' दीपू मां के बगल में आकर खड़ा हो गया था। वह नहा धोकर, कपड़े बदल कर आया था। सुबह सुबह स्वस्थ सुंदर लग रहा था। फूल की तरह।

क्षण भर समर सहाय ने उसके उत्फुल्ल चेहरे को देखा, फिर कहा ''दीपू, तुम्हारी सू सू की दर शून्य है क्योंकि तुम रात में एक बार भी बाथरूम नहीं जाते। मेरी दर पहले पांच थी, अब तीन हो गयी है।''

''लेकिन नया खतरा सामने आ गया है, पापा।''

''मेरी उम्र में ऐसा खतरा तो हमेशा रहा है।'' समर सहाय ने बेटी को ढाढस बंधाने की कोशिश की ''डॉ. रामनाथन बता रहे थे कि मेरी उम्र में मेरी बीमारी से कम, उसके साथ ज्यादा लोग मरते हैं, हा हा।'' वे हंसे। मुन्नी उनकी ऊपर नीचे हिलती सफेद दाढ़ी देखती रही।

''लेकिन मुम्बई चलने में क्या हर्ज है, पापा?''

''कविता...।'' समर सहाय कुछ हकलाये ''मेरी कविता अभी अधूरी है।''

''क्या कविता मुम्बई में पूरी नहीं हो सकती?''

''वह यहां शुरू हुई, बेटा, यहीं खत्म होगी।''

मुन्नी दीपू को नाश्ता देने चली गयी। समर सहाय ने आंखें बंद कर लीं। वे यह सोच कर मुस्कराये कि जो ऑपरेशन उन्होंने अपनी लम्बी कविता का रास्ता हमवार करने के लिए कराया था, वही शरीर के अंधेरे से कोई खतरा भी ढूंढ़ कर ले आया। खतरा अब उजाले में आ गया था। मुन्नी उजाले से डर गयी थी। जब वह छोटी थी तो अंधेरे से बहुत डरती थी।

समर सहाय ने आंखें खोल लीं। कमरे में सुबह की रोशनी भर गयी थी। बाहर धड़ल्ले से सूर्य निकल आया था। रात का तिलस्म गायब था। उसकी स्मृति जरूरी थी। राधा के तिलस्म की तरह। ऐसा नहीं है कि पिछले पचास वर्षों में वे उसे भूल गये थे। किन्तु वह इस तरह अनिवार्य पहले कभी नहीं हुई थी। एक कसम की तरह। एक वादे की तरह। जिसका साक्ष्य खुद उनके सिवा कोई और नहीं था।

जब उन्होंने फिर आंखें बंद कीं तो उन्हें लगा कि किसी ने उनके गले में बांह डाल दी है। यह मृत्यु की बांह थी जो इतनी नर्म थी कि दीपू की बांह भी हो सकती थी। दीपू पास खड़ा खिलखिला रहा था जब उन्होंने फिर आंखें खोलीं।

''बेटा।'' उन्होंने मुंह मोड़ कर दीपू से कहा ''मैं तुम्हें अभी गोदी में नहीं ले सकता। सामने आकर बैठो।''

दीपू सामने आकर बैठ गया। उसने बीच की टेबल पर सांप सीढ़ी का बोर्ड खोल दिया और

बोला ''हो जाये, दादू।''

पांसा फेकते हुए समर सहाय ने सोचा कि बोर्ड पर सीढ़ियां जीवन हैं और सांप मृत्यु। शायद सांप कुछ ज्यादा हैं। इसीलिए खेल में जोखिम खूब है। हमेशा डंसे जाने का खतरा बना रहता है।

''पापा, आपका फोन।'' मुन्नी की आवाज आयी।

समर सहाय उठ कर हॉल में पहुंचे।

''हलो।''

''मैं प्रकाश।'' दूसरी तरफ से आवाज आयी ''आगरा से बोल रहा हूं।''

''अरे वाह।'' समर सहाय खिल गये ''बहुत दिनों बाद मेरी याद आयी।''

''मैं कुछ बीमार था।'' प्रकाशचंद्र ने कहा ''तुम कैसे हो?''

''मेरा भी अभी प्रोस्टेट का ऑपरेशन हुआ।''

''अब तो ठीक हो न?''

''हां। यहां कब आ रहे हो?''

''अगले हफ्ते।'' प्रकाश का स्वर प्रसन्न था ''लखनऊ में जो मेरे बड़े भाई थे, उनका स्वर्गवास हो गया।''

''ठीक है।'' समर सहाय ने कहा ''फोन करना।''

फोन रखते हुए समर सहाय ने सोचा कि सारे हिन्दू मर कर स्वर्गवासी होते हैं, स्वर्ग में बड़ी भीड़ होगी जैसे लखनऊ का अमीनाबाद या झांसी का हार्डीगंज। हार्डीगंज की उपमा ज्यादा सही थी क्योंकि वहां गायें भी अपने परिवार सहित डोलती थीं और कोई भी स्वर्ग गाय के बिना कैसे सम्भव होगा?

जिस दिन सुबह दीपू और मुन्नी गये, उसी शाम प्रकाशचंद्र का पहले फोन आया, फिर वे खुद आ गये। जब समर सहाय ने दरवाजा खोला, तो दोनों एक दूसरे को देख कर हैरान थे। समर सहाय की नजर प्रकाशचंद्र के सफाचट चेहरे और काले बालों पर थी जबकि प्रकाशचंद्र सामने सफेद बालों से घिरे चेहरे को पहचानने की कोशिश कर रहे थे।

''आओ।'' समर सहाय ने पहल की ''यार, तुम्हारी मूंछें कहां गयीं? मैं उन्हीं को ढूंढ़ रहा था।''

''बुढ़ापे के साथ मूंछें नहीं चलीं।'' प्रकाशचंद्र ने अंदर आते हुए कहा ''वे काली ही नहीं होती थीं।''

''सफेदी में क्या हर्ज था?'' समर सहाय ने सामने सोफे की तरफ इशारा करते हुए कहा।

''कोई मेल नहीं था।'' प्रकाशचंद्र सोफे पर बैठ गये ''काले बाल और सफेद मूंछें।'' फिर वे मुस्कराये ''तुमने तो सारे शहर की उम्र खुद ओढ़ ली है!''

समर सहाय हंसे।

''अच्छा।'' उन्होंने कहा ''मूंछें तुम्हारी तोंद कैसे ले गयी?''

''तोंद और मूंछों में जिन्दगी थी, यार। अब तो स्यापा है। पीना बंद हो गया।'' प्रकाशचंद्र ने एक उच्छ्वास ली ''खाने की जगह प्रसाद खाता हूं।''

''क्यों?''

''अरे क्यों क्या?'' प्रकाशचंद्र झुंझला गये ''डॉक्टर ने कहा, पी लो या जी लो।''

समर सहाय की नजरें प्रकाशचंद के चेहरे पर थीं।

''डॉक्टर बोला।'' प्रकाशचंद्र कह रहे थे ''तुम एक जनम का पी चुके और खा चुके। अब प्रसाद खाओ। भला बताओ, दाल रोटी भी कोई खाना है?''

समर सहाय को अचानक तीन दशक पहले का आगरे का जमाना याद आया जब प्रकाश रोज आधी बोतल ह्विस्की पीता था और एक मुर्गा खाता था। पीते हुए कुछ पता नहीं चलता था, मगर खाते हुए उसकी आंखें सिर्फ मांस पर होती थीं और चेहरे पर पसीने की बूंदें छलक आती थीं, कोई भी मौसम हो। समर तब उसे हैरत से देखता रह जाता था जैसे अभी देख रहा था! अभी उसके माथे पर पसीना नहीं था। उसका चेहरा देखते हुए समर सहाय को एकाएक आगरे की एक शाम याद आयी जब डाइनिंग टेबल पर वे आमने सामने बैठे थे और प्रकाश के मुंह और आंखों में हड्डी थी। वह हड्डी को झपटता सा चूस रहा था जैसे हड्डी भाग रही हो। समर को अचानक लगा था कि सामने प्रकाश नहीं, प्रकाश का कुत्ता बैठा है! वह हांफ रहा था। समर ने आंखें बंद करके अपना सिर झटका था। तभी बरामदे से कुत्ते के भौंकने की आवाज आयी थी।

समर सहाय मुस्कराये।

''क्यों मुस्करा रहे हो, बिरादर?'' प्रकाशचंद्र हंसे।

''तुम्हें देख कर आगरा के दिन याद आ गये।''

''हां, जिन्दगी तो तभी थी। अब तो छाया बची है।''

''छाया!'' समर सहाय चौंके ''कैसी छाया?''

प्रकाशचंद्र ठहाका मार कर हंसे। फिर बोले ''अब मैं और सुधा भी रात में छायाओं की तरह मिलते हैं।''

समर सहाय चुप थे गोया कहीं और चले गये हों। फिर उनके मुंह से यह शब्द फूटे ''सुधा भाभी कैसी हैं?''

''ठीक हैं।'' प्रकाशचंद्र मुस्करा रहे थे ''तुम्हारा ऑपरेशन ठीक हुआ?''

''हां।''

''क्या पेशाब ज्यादा रुकने लगी थी?''

''नहीं।''

''क्या दर्द होता था?''

''नहीं।''

''तो।'' प्रकाशचंद्र हंसे ''ऑपरेशन क्या सैर के लिए करवाया?''

''हां।'' समर सहाय बुदबुदाये ''शरीर की सैर के लिए।''

''क्या मिला?''

''कैंसर।''

''क्याऽऽ?'' प्रकाशचंद्र सोफे पर आगे झुक आये।

''कोई घबराने की बात नहीं। अभी दूसरी स्टेज है। मुझे अभी कोई तकलीफ नहीं।'' समर सहाय क्षण भर रुक कर फिर बोले ''असल में मुझे रात में बाथरूम बहुत जाना पड़ता था। मैं परेशान हो गया था।''

''कमाल है।'' प्रकाशचंद्र ने हाथ हवा में उछाल दिये ''लोग पेशाब बंद होने पर प्रोस्टेट कराते हैं। तुमने उल्टा किया।''

''दरअसल।'' समर सहाय थोड़ा सकुचाये ''असली वजह कुछ और थी।''

''क्या?'' प्रकाशचंद फिर आगे झुक आये जैसे किसी रहस्य से पर्दा हटने वाला हो।

''मैं ठीक से लिख नहीं पा रहा था।''

''क्या?''

''अपनी आखिरी कविता।''

प्रकाशचंद्र गहरी उसांस लेकर सोफे की पीठ से टिक गये। उनके मुख से आप्तवाक्य निकले ''भइया, जान है तो जहान है। क्यों कविता के पीछे पड़े हो?''

''यार।'' समर सहाय मुस्करा रहे थे ''कविता मेरे पीछे पड़ी है।''

उन्हें याद आया कि उनका पहला काव्य संग्रह तभी आया था जब वे आगरा में थे और उनकी प्रकाशचंद्र से नयी नयी दोस्ती हुई थी। उन्होंने उसकी प्रति प्रकाशचंद्र को भेंट की थी। अगले दिन जब वे प्रकाशचंद्र के घर गये तो उनका कुत्ता कविता संग्रह मुंह में दबाये बरामदे में आया था।

उनकी दोस्ती का आधार उनका पेशा था। दोनों खाद की कम्पनियों में अधिकारी थे। समर एक निजी कम्पनी 'सूरज फर्टिलाइजर्स' में था। प्रकाश सरकारी 'भारत खाद' में था। वे देश में खाद की कमी के दिन थे। दोनों में कोई प्रतिस्पर्धा नहीं थी। वे दोनों दूर दूर तक कस्बों और गांवों में एक साथ एक ही गाड़ी में जाते थे और शाम को साथ साथ लौटते थे जब सड़क पर अंधेरा गिरने लगता और गाड़ी के अंदर मेहदी हसन या गुलाम अली की आवाज गूंजने लगती हंगामा है क्यों बरपा, थोड़ी सी जो पी ली है। उनके हाथों में शराब के ग्लास होते। अंधेरी सड़क पर कभी कभी नीलगाय की आंखें नन्हें बल्बों की तरह चमकतीं और दोनों ओर खड़े पेड़ हिलते रहते जैसे अंधेरे के पेड़ हों। आकाश का पता नहीं चलता था।

खाद की भयंकर कमी के दिनों में प्रकाश को घूस से परहेज नहीं थी, चाहे नगद हो या स्कॉच ह्विस्की की बोतलें। जाड़ों में न वह शराब खरीदता था (ये रबी की फसल के दिन होते), न स्कॉच से कम पीता था। समर खुद घूस नहीं लेता था। प्रकाश के साथ स्कॉच खूब पीता था, वह तब इसके आगे सोचता नहीं था।

''अपना पीछा छुड़ाओ।'' प्रकाशचंद्र बोले।

''हां, अब हमारे छोड़ने के दिन हैं।'' समर सहाय ने कहा ''पर सवाल यह है कि क्या छोड़ें और क्या न छोड़ें!''

दोनों हंसने लगे।

खिड़की से कोई हवा का झोंका आया। बाहर अंधेरा था।

''तुम्हारी क्या खातिर करूं?'' समर सहाय ने पूछा।

''एक ग्लास पानी।'' प्रकाशचंद्र संजीदा थे।

समर सहाय ने किचन की ओर मुंह करके आवाज दी। नौकरानी पानी रख गयी।

जब प्रकाशचंद्र ने पानी का ग्लास उठा कर मुंह से लगा कर वापस रख दिया, तो समर सहाय ने कहा ''मेरे दामाद ने स्कॉच की बोतल भेजी है। एक पेग का शगुन कर लें!''

''ठीक है।'' प्रकाशचंद्र का चेहरा खिल गया।

समर सहाय ने अंदर से बोतल लाकर खोली। नौकरानी दो ग्लास बर्फ और कुछ नमकीन रख गयी।

पहला घूंट लेकर प्रकाशचंद्र बोले ''डॉक्टर कहता है कि जीओ या पीओ। पर अगर पीना ही जीना हो, तो?''

''तो, टु ड्रिंक ऑर नॉट टु ड्रिंक!'' समर सहाय हंसे ''दैट इज दि क्वेशचन।''

प्रकाशचंद्र खिड़की के बाहर अंधेरे में देख रहे थे। उन्होंने मुंह मोड़ा, एक घूंट लिया और बोले ''यार रिटायर होकर कुछ बरस तो बढ़िया गुजरे। सुबह कुत्ते के साथ घूमना। फिर दोपहर में जिन या बीयर। और रोज रात ह्विस्की। जब चाहो तब संगीत या टीवी पर क्रिकेट। फिर अचानक लीवर

जवाब देने लगा और किडनी भी गड़बड़ायी, डॉक्टर ने बताया और कहा पी लो या जी लो। तभी खालीपन मुझे घेरने लगा... अपार खालीपन गोया मैं किसी विराट रेगिस्तान में पहुंच गया हूं और चारों तरफ रेत ही रेत है...।''

''समय की रेत।'' समर सहाय के मुंह से निकला।

''हां, इतना बड़ा रेगिस्तान मैंने पहले कभी नहीं देखा था। मैं डर गया।''

कुछ पल सन्नाटा रहा।

''मैं जिन्दगी में किसी से नहीं हारा।'' प्रकाशचंद बोल रहे थे ''रेगिस्तान से हार गया।''

''रेगिस्तान से कौन जीत सकता है!'' समर सहाय ने आंखें उठा कर कहा ''हम बस कोशिश करते हैं।''

प्रकाशचंद्र के डॉक्टर ने कहा था कि दूसरा पेग उनके लिए जहर होगा। समर सहाय अब पहले को ही दसवां मान लेने की मनःस्थिति में थे। इसलिए दूसरे का सवाल ही नहीं था। दोनों पहले को ही चुस्कियां लेकर ऐसे पी रहे थे जैसे वह शाश्वत हो।

''यार, मैं तुम्हें एक बात बताना भूल गया।'' प्रकाशचंद्र अचानक ग्लास से नजरें उठा कर बोले।

''क्या?''

''मुझे तुम्हारी माशूका मिली थी।''

''कौन?'

''राधा''

''कहां?'' समर सहाय चौंके।

''ताज पर।''

''ताज पर!''

''अरे, एक शाम मैं अपनी पोती को ताज दिखाने गया था। उसी ने मुझे पहचान लिया और पास आकर तुम्हारे बारे में पूछा।''

''क्या पूछा?''

''यही कि तुम कहां हो?''

एक पल सन्नाटा छा गया।

फिर समर सहाय कसमसाये और बोले ''उसने तुम्हें मूंछ के बिना भी पहचान लिया?''

''हां। लेकिन मैं उसे नहीं पहचान सका।''

''तुम उसे क्यों नहीं पहचान सके?'' स्वर व्यग्र था।

''यार, उसके सारे बाल सफेद थे। तुम्हारी तरह।''

''और चेहरा?''

''जब बाल हटा कर मैंने चेहरा देखा तो मैं दंग रह गया। चेहरा वही था... तीस साल पुराना!''

''कोई कोई चेहरा कभी बदलता नहीं।'' समर सहाय खिड़की के बाहर अंधेरे में देखने लगे जैसे उधर चेहरा छपा हो।'' फिर उन्होंने पूछा ''उसके साथ कौन था?''

''शायद उसकी बहू और पोता।''

''कोई बूढ़ा नहीं था।''

''नहीं।''

एक छोटी सी चुप्पी के बाद प्रकाशचंद्र ने पूछा ''भइया, एक बात बताओ।''

''क्या?''

'क्या भीतर कोई तार जुड़ा है?'' प्रकाशचंद्र मुस्कराये।

''कैसा तार?''

''जैसे भइया के निचाट सफेद बाल वैसे राधा के!''

''पता नहीं।'' समर सहाय हंसे ''अच्छा, तुम एक बात बताओ।''

''पूछो।''

''तुम ताज कैसे पहुंच गये। तुम्हें तो ताज से चिढ़ है।''

''क्या करूं, बचपन से दूसरों को ताज दिखाते दिखाते ऊब गया।'' प्रकाशचंद्र हंसे ''मगर पोती पर जान छिड़कता हूं।''

शायद मुन्नी तब तीसरे दर्जे में थी जब समर और प्रिया उसे पहली बार ताज दिखाने ले गये थे। वे तीनों मुख्य द्वार के भीतर ऊंचे चबूतरे पर बैठ गये थे, जिसके सामने फव्वारों के पीछे कुछ दूर ताजमहल था। गोधूलि का वक्त था। आसमान धुंधला हो रहा था। मुन्नी एकाएक ताज पर आंखें टिकाये बोली ''पापा, क्या ताजमहल कागज का बना है?''

समर सन्न रह गया। पत्थर में रचा प्रेम का चमत्कार कागज हो गया था जो दो बूंद पानी से गल जाता।

तब दिन ढल रहा था।

छः

उसी शाम प्रिया ताजमहल में खो गयी थी। समर मुन्नी का हाथ पकड़े था। प्रिया नीचे की असली मजारों से ऊपर जीने पर आते हुए आगे थी। ऊपर भीड़ और ज्यादा थी। प्रिया भीड़ में बिछड़ गयी। शायद कुछ लोग ऊपर बनी दोनों नकली मजारों को देख कर ही संतुष्ट हो जाते थे। नकली मजारें सुघड़ थीं। ऊपर रोशनी भी भरपूर थी। गोल गुम्बद के नीचे खुला उजाला था जहां असली मजारों की ठोस परछाइयां थीं जिनके चारों ओर लोग एक दूसरे से टकराते मंडरा रहे थे। जीने के नीचे मुमताज महल और शाहजहां की असली कब्रें थीं जहां वे दफ्न थे। यहां कुछ अंधेरा सा था। लोबान की गंध गहरी थी। जुड़वा कब्रों के चक्कर लगाते हुए किसी दूसरी दुनिया का भ्रम होता था। धुंधलके में प्रिया ने समर का हाथ थाम लिया था। समर ने प्रिया का हाथ अपने हाथ में ले लिया। प्रिया को लगा कि कब्रों के चारों ओर धुंधलका कुछ कम हो गया है। तभी मुन्नी की हल्के से शोर में दबी आवाज पीछे से आयी ''पापा।'' समर प्रिया का हाथ छोड़ कर पीछे मुड़ा था। प्रिया भीड़ के रेले के साथ आगे निकल गयी थी।

ऊपर भीड़ कुछ कौतूहल से मजारों की जानिब निहार रही थी। रोशनी पर्याप्त थी। चीजें और चेहरे साफ साफ नजर आ रहे थे। समर मुन्नी का हाथ थामे अपने चारों ओर चेहरों को देख रहा था जो कब्रों की ओर मुखातिब थे। प्रिया उन चेहरों में नहीं थी। कहां गयी? फिर से नीचे तो नहीं जा सकती जहां असली कब्रें थीं और झीना अंधेरा था। समर मकबरे से बाहर चौड़ी छत पर आ गया जहां उजाला और लोग कम हो गये थे। मुन्नी का हाथ पकड़े पकड़े वह दायीं ओर मुड़ गया। उसके आगे और पीछे और दायें और बायें लोग थे। लेकिन प्रिया नहीं थी। क्या उसे ताजमहल खा गया?

बाहर आसमान विराट गुम्बद की तरह ही ऊपर तना था। उसकी गोद कोरें दसों दिशाओं में धरती के नीचे दबी थीं। समर एक पल मुन्नी का हाथ पकड़े ऊपर निहारता रहा था, फिर उसने

चारों ओर देखा। आसमान में बादल नहीं थे। दसों दिशाएं खाली थीं। शाम का झुटपुटा धरती पर उतर रहा था। समर ताज के साये में दायीं ओर मुड़ गया। छत पर लोग पतझर के पत्तों से छितराये थे जैसे नीमअंधेरे में कुछ ढूंढ़ रहे हों। छत कुछ दूर खत्म हो जाती थी। फिर नीचे कुछ दूरी पर मस्जिद थी जो सुनसान नजर आती थी। बिल्कुल ऐसा ही दृश्य ताज के दूसरी ओर था जैसे दोनों दिशाओं में कोई फर्क न हो और नाम सिर्फ भ्रम हों।

ताज की ऊंची इमारत के गर्भगृह में आधा अंधेरा था और दायें बायें मस्जिदों में बीहड़ सन्नाटा पसरा था। लोग ताज की परिक्रमा करते गुमसुम थे। वे कभी ताजमहल की तरफ देखते, कभी मस्जिद की तरफ और कभी आकाश की तरफ ताकने लगते जहां कुछ नहीं था।

जब समर पीछे छत की तरफ पहुंचा तो उसकी नजर नीचे नदी पर पड़ी। मुन्नी रेलिंग की ओर बढ़ी और उसका हाथ थामे समर भी। जमना काफी नीचे थी। ऐसा लगता था जैसे उसने बहना बंद कर दिया है और नीचे खड़ी ऊपर ताज को एकटक देख रही है। समर नदी को ऐसे देख रहा था जैसे प्रिया वहीं से लौटेगी। नदी में पानी कम था। शायद उस पार कोई नाव थी। समर कभी उस पार नहीं गया था। प्रिया को हवा में ढूंढ़ते हुए उसने सोचा कि एक दिन उस पार जरूर जाऊंगा जहां सुनते हैं, कोई काला ताजमहल है काला ताजमहल... जैसे नदी के पार सफेद ताजमहल की कोई परछाईं हो!

एकाएक लगा कि नदी बह रही है और कानों में कोई पुकार गूंजी, 'समर'। समर पीछे मुड़ा, सामने राधा खड़ी थी जैसे पिछले बीस बरस के धुंधलके को चीर कर अचानक अपनी कोरी देह को नीली साड़ी में लपेटे आ गयी हो!

''राधा।'' उसका स्वर कांपा।

''हां।'' वह मुस्करा रही थी जैसे बीस साल से मुस्करा रही हो।

उसकी आंखों में वही चमक थी और बालों की एक घुंघराली लट उसी तरह माथे पर झूल रही थी। यह मरीचिका है! समर को लगा। लेकिन रेत का धोखा नदी कैसे देगी?

''कैसे हो?'' राधा ने उसका हाथ छुआ। शायद वह भी समर को टटोल रही थी गोया अपने होने की ताईद कर रही हो।

''हां।'' समर चौंका जैसे अचानक जागा हो।

ऐसा संयोग उपन्यास में ही सम्भव था। दोनों ने इसकी कल्पना नहीं की थी।

दोनों भूल गये थे कि वे ताज के पिछवाड़े खड़े हैं। दोनों आमने सामने खड़े थे। उनकी आंखें उलझ गयी थीं। समर के पीछे बहती जमना का भी उन्हें पता नहीं था। न छत पर हल्के शोर का भान था जो लोगों की बातों से उठ रहा था। उस क्षण उन्हें धरती और आकाश की भी जरूरत नहीं थी।

मुन्नी झुटपुटे में उन्हें कौतूहल से देख रही थी जैसे उसने ताज के गुम्बद के नीचे जुड़वा कब्रों को देखा था।

एकाएक राधा ने मुन्नी को गोद में उठा कर चूमा।

समर ने राधा को नहीं बताया कि बीस साल पहले पिछली मुलाकात के बाद अगले हफ्ते वह फिर झांसी में उसके फ्लैट पर गया था जहां उसे बताया गया था कि प्रिया के पिता का अचानक तबादला हो गया है और वे लोग चले गये हैं। कहां? कुछ पता नहीं।

इस बीच नदी में बीस साल पानी बहा था। लेकिन समर को लगा कि नदी हैरान खड़ी है।

''तुम नहीं बदलीं।'' समर के मुंह से निकला।

''तुम्हारे भी दो चार बाल सफेद हुए हैं, बस।''

''चलो, हम पुराने वक्त में लौट चलें।'' वह हंसा।

''मुन्नी को साथ लेकर।'' वह मुन्नी के बालों में उंगलियां फिराते हुए मुस्करायी।

दोनों को लग रहा था जैसे कुछ अनमोल अधूरा उनके बीच ठहर गया है, जो अभी तक साथ चल रहा था। वह उनके भीतर राख के नीचे दबी चिंगारी की तरह था जो एक दूसरे को सामने पाकर फिर लपलपा उठी थी। दिल की बुनावट में बसी कोई पहेली थी, जिसका कोई हल नहीं था।

''मुन्नी को साथ लेकर कहां जा रहे हो?'' प्रिया हंसती हुई उनके सांवले घेरे में आ गयी।

''तुम्हें ढूंढ़ने।'' समर ने कहा।

उनका आपस में परिचय कराया गया। प्रिया ने बताया कि वह राधा के नाम से अनजान नहीं है और दूर से उसे देख कर उसे सही शक हुआ था।

''समर मुझे ढूंढ़ने निकले।'' प्रिया ने कहा ''और जो मिल जाये, वह राधा ही होगी।''

मुन्नी को छोड़ कर, तीनों हंसे। मगर वे एक दूसरे की तरफ नहीं देख रहे थे। जब हंसी थमी तो प्रिया ने राधा को घूरा, जो उसी की तरफ देख रही थी। उन्हें एक दूसरे को देख कर अच्छा लग रहा था और अच्छा नहीं भी लग रहा था।

एकाएक प्रकाश नमूदार हुआ। उसने राधा को नजर भर देखा। वह पहली नजर को इसी तरह बांधती थी।

यह तय हुआ कि राधा अगले दिन फोन करेगी और समर के घर आयेगी जहां प्रकाश भी रहेगा, उसने समर का फोन नम्बर ले लिया था, अपना नहीं दिया। जब समर ने उससे पूछा कि तुम्हारी ससुराल कहां है तो उसने कहा न्यू आगरा। फिर वह मुड़ कर चल दी।

समर को तब मालूम नहीं था कि वह आखिरी बार राधा को देख रहा है। उसे यह भी मालूम नहीं था कि एक युग बाद जब जिन्दगी की रात शुरू होगी, तब वह उसका इस तरह जाना याद करेगा।

न राधा का फोन आया, न राधा आयी। एक दिन, दो दिन, तीन दिन... चौथे दिन समर बेचैन सा प्रकाश की कोठी पर पहुंच गया। प्रकाश अकेला बरामदे में बैठा एक हाथ में केला लिए दूसरे हाथ से उसे छील रहा था। उसका काला कुत्ता उसके पैरों के पास बैठा था। उसने समर को देखने के लिए गर्दन उठायी, फिर नीचे डाल दी। वह भौंका नहीं।

''आओ समर।'' प्रकाश ने कहा।

समर सामने कुर्सी पर बैठ गया।

''केला खाओगे?'' प्रकाश ने केला उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा।

''नहीं।''

''कुछ संजीदा लग रहे हो।'' प्रकाश ने केले का सिर अपने मुंह में लेते हुए कहा।

''नहीं, कुछ नहीं।'' समर ने नजरें घुमायीं ''घर में बड़ी शांति है!''

''सुधा बच्चों को लेकर मायके गयी है।''

प्रकाश ने सिर्फ तहमद पहनी थी। ऊपर नंगी तोंद झांक रही थी। समर की नजर उसी पर थी। तोंद पर पसीना नहीं था। ऊपर पंखा चल रहा था।

''यार।'' समर ने नजर उठा कर कहा ''एक समस्या है।''

''क्या?'' प्रकाश ने मुंह चलाते हुए केले का छिलका एक ओर फेंक कर कहा।

''राधा नहीं आयी।''

''तो फोन कर लो।''

''फोन नम्बर नहीं है।''

''तो घर चले जाओ।''

''पता अधूरा है।''

''क्या?''

''न्यू आगरा।''

''बस!''

''हां।''

प्रकाश ठहाका मार कर हंसा।

''न्यू आगरा तो आगरा की तरह है।'' प्रकाश ने कहा ''उसे शहर भर में कैसे ढूंढ़ोगे?''

समर का मुंह लटका था। तभी अंदर का बंद दरवाजा किसी ने खटखटाया।

प्रकाश मुस्कराया।

''कौन है?'' समर ने पूछा।

''कमला कामवाली।'' वह मुस्करा रहा था ''उसने नहा लिया होगा। मैं भी नहा कर आया।'' प्रकाश ने आंख मारी ''तब तक तुम अमर उजाला पढ़ो।''

बीच में मेज पर अखबार पड़ा था।

जब प्रकाश अंदर की ओर मुड़ा तो कुत्ता भी उठा। दोनों अंदर चले गये। दरवाजा पूर्ववत बंद हो गया।

प्रकाश अपनी आचारसंहिता उसे बता चुका था। जब सुधा मायके जाती थी तो कामवाली कमला सुबह आकर पहले साबुन से रगड़ रगड़ नहाती थी, फिर... प्रकाश कहता था कि जैसे केला छील कर खाते हैं, जामुन धोकर खाते हैं उसी तरह कमला को भी धोकर... सहसा बंद किवाड़ों के पार से दबी दबी महीन खिलखिलाहट बाहर आयी। कमला को प्रकाश की नंगी तोंद से गुदगुदी होती थी। प्रकाश ने बताया था।

जब वह तैयार होकर बाहर आया तो समर को इत्मीनान हुआ। प्रकाश की किसी बात का पूरा एतबार नहीं होता था। हो सकता है, समर शाम तक बरामदे में इसी तरह बैठा रहता। एक बार तंग आकर समर ने प्रकाश से पूछा ''यार, तुम बेकार झूठ क्यों बोलते हो?''

''मैं सच और झूठ को एक नजर से देखता हूं।'' उसने कहा।

गाड़ी स्टार्ट करते हुए प्रकाश ने पूछा ''राधा का पूरा नाम क्या है?''

''राधा गोस्वामी।''

''शादी के बाद का न?''

''पहले का।''

''बाद का?''

''नहीं मालूम।''

न्यू आगरा का कोई पानवाला या चायवाला किसी ऐसी राधा को नहीं जानता था जिसके ससुर यहां रिटायर होकर बसे थे, जैसा राधा ने बताया था। गोस्वामी की दो तख्तियां नजर आयीं। मगर राधा वहां नहीं थी। राधा कहीं नहीं थी। न्यू आगरा उजाड़ था। उसकी हर सड़क से गाड़ी दो तीन बार गुजर चुकी थी जैसे गश्त लगा रही हो।

घंटा भर न्यू आगरा की सड़कों पर गाड़ी दौड़ाते दौड़ाते प्रकाश थक गया और उसने एक पानवाले की गुमटी के सामने ब्रेक लगा दिया। गुमटी से थोड़ा आगे सड़क शहर की मुख्य सड़क एमजी

रोड से मिलती थी जिस पर अधाधुंध वाहन दोनों ओर दौड़ रहे थे। वह गाड़ी से उतरा। उसने विल्स फिल्टर की एक डिब्बी ली और उसे खोल कर समर को पेश की। सिगरेट सुलगा कर धुआं उड़ाते हुए उसने पानवाले से पूछा ''किसी राधा को जानते हो?''

''हां।'' पानवाला पान चबाता हुआ मुस्कराया।

''कितनी बड़ी है?''

''करीब बीस साल।''

प्रकाश ने समर की ओर देखा। समर भी गाड़ी से उतर कर उसके पास आकर खड़ा हो गया था और सिगरेट पी रहा था। समर के चेहरे पर फीकी मुस्कान थी। अब बीस साल पीछे जाना मुमकिन नहीं था!

''एक बात मेरी समझ में नहीं आती।'' प्रकाश ने गाड़ी एमजी रोड पर बायीं ओर मोड़ते हुए कहा।

''क्या?''

''बीस साल पहले का लफड़ा अभी तक ढो रहे हो। भला क्यों?''

''मेरी समझ में भी नहीं आता।'' समर ने कहा। उसने मुंह प्रकाश की ओर मोड़ लिया था जहां प्रकाश की चाकू सी मूंछ थी।

एक साइकिलवाला गाड़ी से टकराते टकराते बचा। प्रकाश ने उसे मां की गाली दी। फिर उसने एक आह भरी ''कहीं गाड़ी पर खरोंच न आ गयी हो?''

''क्या तुम्हारे साथ ऐसा कभी नहीं हुआ?'' समर ने पूछा।

''नहीं। मैं साइकिल बहुत अच्छी चलाता था।''

''मैं साइकिल की बात नहीं कर रहा।''

''फिर?''

''लफड़े की।''

''लड़की के लफड़े की?'' प्रकाश ने एक बार मुड़ कर उसकी ओर देखा।

''हां।''

''यार।'' वह हंसा ''मेरी जिन्दगी में इतनी औरतें आयीं कि मैं उनके बीच का फर्क भूल गया।'' वह फिर हंसा जैसे कोई विजयी योद्धा हंसता है।

धूप कुछ तेज थी। सामने आंखों पर गिर रही थी। दोनों ने झंडी से शेड नीचे गिरा लिये। सड़क पर खूब भीड़ थी। शहर व्यस्त था। उसे किसी चीज की फुर्सत नहीं थी।

प्रकाश ने एकाएक बायीं ओर समर को देख कर ठहाका लगाया ''इतने उदास न हो देवदास।''

समर मुस्कराने लगा।

जब वे सिविल लाइंस के बजार पहुंच कर 'सुर संगीत' में घुसे तो मालिक मल्होत्रा ने तपाक से उठ कर उन्हें बिठाया और कहा ''मैं आपको फोन करने वाला ही था, प्रकाश जी।''

''क्यों?''

''आपका चेक लौट आया।''

''तो क्या हुआ?'' प्रकाश हंसा ''अरे, मैंने चेक दिया था। यह तो नहीं कहा था कि वह पास भी होगा।''

मल्होत्रा भी झेंपा सा हंसने लगा। फिर बोला ''अरे, मेहदी हसन का नया कैसेट आया है।

इसे सुनिये।''

रंजिश ही सही... मेंहदी हसन की गहरी आवाज दुकान में गूंजने लगी।

दिल को दुखाने के लिए आऽऽ... प्रकाश ने मेहदी हसन का साथ देने की कोशिश की। समर सुन रहा था।

उस रात वह आंखें मूंदे प्रिया से लिपट कर सोया।

प्रिया उसे दस बरस पहले एक काव्यगोष्ठी में मिली थी जिसमें समर ने कविताएं सुनायी थीं। वह लखनऊ के एक स्कूल में पढ़ाती थी। उसने समर को फिर अपने स्कूल में कविताएं पढ़ने को बुलाया था। दोनों की दोस्ती हो गयी थी। प्रिया सांवली थी। उसकी आंखें कुछ ज्यादा बड़ी थीं, जिन्हें समर ने तीसरी मुलाकात में आईना कहा था। समर के मन में उसके सांवले रंग को उंगली से चखने की बात भी आयी थी, जिसे उसने तब बताया जब पहली बार चूमा। वह खिलखिलायी थी जैसे नदी अचानक तेज बहने लगी हो। देह दोनों के लिए अचम्भा थी चाहे अपनी हो या दूसरे की। ऐसा भी एकाध बार हुआ कि वे भूल गये कि कौन सी देह किसकी है जैसे वे एक दूसरे की देह में अनजाने चले गये हों।

काश, देह नाव की तरह उन्हें नदी के अंतिम सिरे तक ले जा सकती जहां समुद्र था!

सात

रेगिस्तान असीम था। रेत चारों तरफ क्षितिज तक फैली थी। जहां नजर जाती वहां रेत थी। रेत के सिवा कुछ नहीं था। कहीं कहीं रेत के टीले थे जिन पर हवाएं उड़ रही थीं। हवाओं के साथ रेत भी बह रही थी। चक्कर लगाती हुई। जैसे खुद अपनी परिक्रमा कर रही हो। गर्म रेत के कण आंखों की तरफ आते थे जो सूर्य की तलवार सी किरणों से अपने को बचा रही थीं। लगता जैसे रेत पर तलवारें चल रही हैं। रेत सुनसान थी। रेत पर तलवारों के बीच कभी समर सहाय नजर आते थे, कभी नजर नहीं आते थे।

अलस्सुबह समर सहाय आईने के सामने खड़े सुबह का सपना याद करने की कोशिश कर रहे थे। इन दिनों यह अक्सर होता था। अक्सर समर सहाय को रेत के सपने आते थे। रेत में उनका चेहरा छिप जाता था। जिसे वे सुबह आईने में ढूंढ़ते थे। यह खोज पिछले हफ्ते लम्बी कविता खत्म होने के बाद तेज हो गयी थी। इस खोज में राधा का चेहरा भी चमकता था जिसकी एक मुद्दत उन्हें याद भी न आयी थी, मगर ऐसा भी नहीं था कि वे उसे भूल गये हों।

अब वह जागते हुए जब तब उन्हें घेर लेती गोया उनकी सांस में गुंथ गयी हो। वह रेत के सपने में भी जब चाहे आ जाती। किसी रेत के टीले पर मुस्कराती हुई। या हवाओं के रथ पर विराजी। जिन हवाओं में वह होती उनसे रेत गायब हो जाती और रोशनी चमकने लगती। सुबह रेत के सपने के साथ वह रोशनी भी याद आती थी।

आईने में कुछ हैरान सी समर सहाय की सूरत झांक रही थी। चेहरा सफेद बालों से घिरा था। आंखें अपनी परछाईं को ताक रही थीं। आंखों के इर्दगिर्द चेहरा इतना उजला नहीं था जितना हर सुबह होता था। क्या यह सुबह कुछ अलग थी? यह जाड़े का मौसम था। कल उन्होंने दो दिन बाद गर्म पानी से नहाया था। नहाते हुए उनका बायां हाथ छाती और पेट से नीचे फिसलते हुए जांघ के ऊपर रुक गया था। उन्हें लगा था, संधि पर कोई गोली अटक गयी है। उन्होंने नीचे झांका। वह जांघ के ऊपर लटकी थी जैसे नीम की निबौड़ी हो। क्या जिस्म पेड़ हो गया था? शाम को डॉक्टर

ने बताया कि यह कैंसर का लक्षण था। हो सकता है, डॉक्टर ने कहा, जिस्म में और भी निबौड़ियां आयें। डॉक्टर ने दवा लिखी और एक सप्ताह बाद दिखाने को कहा। और कहा कि घबराने की कोई जरूरत नहीं है।

आईने के सामने खड़े समर सहाय घबरा नहीं रहे थे। अलबत्ता उन्हें अपनी जांघ की गिल्टी जरूर याद आ गयी थी। शायद इसी वजह से चेहरा कुछ फीका लग रहा था जैसे कोई झांईं डोल रही हो। यह झांईं चेहरे पर थी या आंखों में? कहना मुश्किल था। क्या मौत का भी आभासी यथार्थ होता था? समर सहाय मुस्कराये। यह आभासी यथार्थ का युग था। चीजें और लोग जैसे बताये जाते थे, वैसे ही लगते थे चाहे वे ठोस वास्तविकता से कोसों दूर हों। अगली सुबह आत्महत्या करता किसान बाजार का उपभोक्ता था और करोड़ों डकारता राजनेता जनता का आदमी था जब तक घोटाला न खुले। कल मरने वाला आदमी ऐसे जीता था जैसे वह कभी नहीं मरेगा।

समर सहाय की आंखों के सामने मौत का परदा झिलमिलाने लगा। नीम के पेड़ की निबौड़ी अकेली नहीं होती चाहे अकेली नजर आये। त्वचा झुरने लगती है। रोशनी खोने लगती है। बाल झर जाते हैं। समर सहाय खड़े खड़े आईने में अपना चेहरा बदलता हुआ देखते रहे गोया बाइस्कोप देख रहे हों, गोया यह किसी और का चेहरा हो जो आईने में घुल रहा था... धीरे धीरे कंकाल होता हुआ!

तभी फोन की घंटी बजी।

''पापा।'' दूसरी ओर मुन्नी की आवाज थी।

''हां, बेटा।''

''आप कैसे हैं?''

''ठीक हूं।'' समर सहाय क्षण भर रुके ''क्यों?''

''पिछली रात मुझे बहुत खराब सपना आया।'' मुन्नी का स्वर भीग गया।

''क्या?''

''कुछ नहीं आप बिल्कुल ठीक हैं न?''

''हां।''

''मैं सोच रही हूं, कल दोपहर की फ्लाइट से आ जाऊं।''

''अभी मत आओ।''

''क्यों?''

''कल मैं आगरा जाऊंगा। लौट कर फोन करूंगा। तब आना।''

''ठीक है। अपना ख्याल रखिये।''

फोन रखते हुए समर सहाय ने सोचा कि मुन्नी ने कल सपने में जो मृत चेहरा देखा होगा, वह वही कंकाल नहीं होगा जिसका वे अभी तसव्वुर कर रहे थे। मुन्नी ने उनका वर्तमान चेहरा ही देखा होगा जिसका मौत कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी! यों एक ही चेहरे से जीना मरना चाहिए जैसे चेहरा मौत से न डरता हो।

फोन रख कर उनकी नजर सामने दीवार पर टंगी प्रिया की तस्वीर पर पड़ी। वह तस्वीर में मुस्करा रही थी। प्रिया का यही आखिरी चेहरा था। समर सहाय क्षण भर उस चेहरे को अपलक निहारते रहे जैसे अभी उसके होंठ खुलेंगे ''समर, तुमने दवा ली?'' एक जिन्दगी इस चेहरे के साथ गुजरी थी, थ्री इन वन, प्रेमिका, पत्नी मां। एक मध्यवर्गीय प्रेम, फिर एक अदद मध्यवर्गीय जिन्दगी। पहले समर सहाय के मन में कोई अफसोस सिर उठाता तो अफसोस की कतार शुरू हो जाती थी। अब ऐसा नहीं होता था। अब कोई अफसोस नहीं था। मध्यवर्गीय जीवन ऐसा ही होता है, वे सोचते, जीवन

ऐसा ही होता है!

उनकी आंखें भीग गयीं।

वे आंखें पोंछ कर हॉल में आये। फिर कानों में फोन की घंटी गूंजी थी।

''नमस्कार।'' दूसरी तरफ विनोद वर्मा का स्वर था ''कैसे हैं समर जी?''

''ठीक हूं।''

''आपकी लम्बी कविता पूरी हो गयी?''

''हां।''

''परसों आपका जन्मदिन है। हम लोग एक गोष्ठी रख रहे हैं। आप नयी कविता सुनायें।''

''शुक्रिया, विनोद।'' समर सहाय कुछ रुक कर बोले ''मगर कल मैं आगरा जा रहा हूं।''

''आगरा... आगरा क्यों?''

''नहीं।'' समर सहाय हंसें ''पागलखाने नहीं जा रहा। कुछ और काम है।''

''एक दिन टाल दीजिये।''

''वह काम टल नहीं सकता।''

उनका स्वर इतना दृढ़ था कि दूसरी ओर फोन रखे जाने की खट् हुई।

समर सहाय को यह अचरज होता कि पचास वर्ष पूर्व उनकी जो पहली कविता प्रकाशित हुई थी, वह प्रेम कविता थी और अभी जो लम्बी कविता पूरी हुई, वह भी मूलतः प्रेम कविता ही थी। पहले विशुद्ध प्रेम था। अब उसमें दुनिया जहान की शिरकत थी जिसमें प्रेम रेत पर पानी की तरह फैलता था।

उन्हें शक होता कि शायद यह सचमुच उनकी अंतिम कविता हो! मगर इसका अफसोस नहीं था।

समर सहाय की उम्र में अक्सर लोग बुदबुदाते हुए पाये जाते हैं। दरअसल यह बुदबुदाहट नहीं होती। यह आत्मालाप होता है। समर सहाय बुदबुदाते नहीं थे। गाली देते थे। मां की गाली। कोई सुनता तो उसे विश्वास नहीं होता कि समर सहाय जैसा सौम्य धीर कवि ऐसी गाली दे सकता है। उन्हें खुद जब कभी यह अहसास होता, वे मादर... पर रुक जाते। इस गाली का लक्ष्य क्या था? अक्सर अतीत में बैठा कोई अपमान या गलती या बेहूदा स्थिति जिसके लिए वे खुद और दूसरे जिम्मेदार थे। तो क्या यह गाली सबको समर्पित थी? वे फिर बुदबुदाये। उनके सामने शराब का ग्लास रखा था और कमरे के आधे अंधेरे में आबिदा परवीन का भारी, स्निग्ध स्वर लय में बंधा गूंज रहा था

तूने दीवाना बनाया तो मैं दीवाना बना

रात हो गयी थी। एक तरफ तिपायी पर रखा टेबल लैम्प जल रहा था। कमरे में धुंधलका सा छाया था जिसमें आबिदा की बुलंद आवाज थी। कल आगरा जाना था। समर सहाय ने एक पेग बनाया था और आबिदा का सीडी लगा दिया था। फिर जब वे अचानक बुदबुदाये तो उन्होंने जानने की कोशिश की कि इस परदे के पीछे क्या है? वहां अतीत अकेला नहीं था, वर्तमान भी उसके गले में बांह डाले था और एक सम्बंधों का बियाबान था जिसमें हर हथेली पर खून था। यह किसका खून था? एकाएक उन्हें लगा कि खिड़की के बाहर पेड़ पर कोई बंदर चीखा। या कोई बंदर अंदर चीखा था?

अंदर अक्सर कुछ दर्द सा महसूस होता था। यह प्रोस्टेट का दर्द नहीं था। इसकी दवा थी। उसकी दवा नहीं थी। वह देह के भीतर महसूस होता था, लेकिन देह के परे था। जैसे कहीं कुछ खो गया हो और उसका कोई पता न हो। जैसे उसके मिलने से सब कुछ मिल जायेगा। मगर न उसका

कोई पता था, न उसकी कोई तस्वीर थी।

तूने दीवाना बनाया...
अब मुझे होश की दुनिया में तमाशा न बना

समर सहाय को ताज्जुब हुआ कि उनके पास राधा की कोई तस्वीर नहीं थी। न्यू आगरा में किसी से पूछना हो तो कैसे पूछेंगे? फिर उन्हें खुद हंसी आ गयी। तस्वीर होती भी तो पुरानी होती जैसी उनके दिल पर छपी थी। प्रकाश ने बताया था कि उसके बाल सफेद हो गये हैं। मगर समर सहाय ने बाल देखे नहीं थे जो सफेद थे। उनके मन में जो तस्वीर थी उसमें राधा अल्हड़ थी जब वह अपने सूने घर में अपने हाथ की तरह नग्न खड़ी थी! यह तस्वीर समय के परे थी। इस पर गुरुत्वाकर्षण का कोई नियम लागू नहीं होता था।

आबिदा परवीन की आवाज में जादू था। कमरे के आधे अंधेरे का रंग बदल गया। कोई तिलस्म तैर रहा था। समर सहाय के भीतर कुछ घुमड़ना शुरू हो गया। जैसे देह में कोई झोंका दिल से आंखों की तरफ उठता हो। कोई झरना नीचे से ऊपर की ओर बहने के लिए कसमसा रहा था। उन्हें लगा कि देह का दर्द आहिस्ता आहिस्ता पिघल रहा है। एक अनजान हताशा थी जो पानी पानी हो रही थी। समर सहाय की आंखों से आंसू झरने लगे।

तू मिला भी है, तू जुदा भी है, तेरा क्या कहना
तू सनम भी है, तू खुदा भी है, तेरा क्या कहना

संगीत अंधेरे को बजा रहा था।

वे फूट फूट कर रो रहे थे।

समर सहाय को यह देख कर खुशी हुई कि उनकी तेरह नम्बर की सीट खिड़की से लगी थी और उसके बगल की सीट खाली थी। वे बीच के गलियारे से मुड़ कर अपनी सीट पर बैठ गये। शताब्दी से जाने का निर्णय उन्होंने इसलिए किया था कि रात तक आगरा पहुंच जायेंगे और रात ट्रेन में नहीं गुजारनी पड़ेगी जो उनके लिए तकलीफदेह होता। जैसे ही गाड़ी खुली कोई उनके बगल में आकर बैठ गया। उन्होंने एक बार उस तरफ देख कर फिर खिड़की में देखा, ट्रेन प्लेटफार्म छोड़ चुकी थी और खिड़की में पेड़ और मकान छिटक कर पीछे भागने लगे थे जैसे गुरुत्वाकर्षण से मुक्त हो रहे हों। आसमान भी पीछे जाता था, लेकिन वह जितना पीछे जाता था उतना ही द्रौपदी के चीर की तरह आगे फैलता जाता था। सहसा उन्हें वह चेहरा याद आया जो उन्होंने अभी अपने बगल में देखा था, वह उन्हीं की तरह चौतरफा सफेद बालों से घिरा था। उन्होंने अपना चेहरा मोड़ा, अरे उसकी भी तोता नाक थी, रंग भी उन्हीं जैसा था और कदकाठी भी वही! उन्हें अपनी जवानी से पकी उम्र तक कई बार अपने दोस्तों के 'डबल' मिले थे, एक बार तो एक मृत मित्र का जीवंत चेहरा बाजार में नजर आया था। लेकिन खुद अपना चेहरा आईने के बाहर वे पहली बार देख रहे थे। तभी वह चेहरा मुस्कराया

''कहां जा रहे हैं?''

''आगरा।''

''खैरियत तो है?''

''मैं कुछ और जरूरी काम से जा रहा हूं।'' वे भी मुस्कराये।

''जो वहां जाता है, जरूरी काम से ही जाता है।'' वह बोला ''फिर वहीं रह जाता है। आगरा भी अजीब शहर है, इसमें एक ओर ताजमहल है, दूसरी ओर पागलखाना है।''

''तो क्या दोनों को आसपास होना चाहिए?''

''नहीं, ऊपर नीचे।'' उसने ठहाका मारा।

वे भी हंसे।

गाड़ी की खटखट कुछ देर गूंजती रही।

''आगरा में क्या जरूरी काम है?'' एकाएक उसने पूछा।

''किसी से कुछ कहना है।'' समर सहाय के मुंह से निकला।

उन्हें खुद ताज्जुब हुआ। इतनी निजी बात कैसे होठों पर आ गयी? लेकिन सफर में ऐसा हो जाता था। लोग अजनबी को अपने दिल का राज बता देते थे। उन्हें मालूम होता था कि ट्रेन से उतर कर वे फिर अजनबी हो जायेंगे। बाहर कोई ऐसा नहीं था जिसके सामने अपने दिल की पोटली खोल दें!

''इस संचार युग में किसी से एक बात कहने आप आगरा जा रहे हैं?'' उसने भवें सिकोड़ीं।

''मुझे उसका फोन नं. नहीं मालूम।'' वे बोले।

''तो कबूतर की चोंच में चिट्ठी रख देते!'' उसकी भवें फैल गयीं।

''मुझे उसका पता नहीं मालूम।''

''माशाअल्लाह।'' वह हंसा ''उसका नाम तो मालूम है?''

''हां।''

''क्या?''

''राधा।''

उसने अपनी दायीं टांग बायीं पर रखी और समर सहाय की ओर झुक आया ''क्या कहना है?''

''जैसे मैंने तुम्हें चाहा।'' समर सहाय ने नजरें सीधी कर ली थीं जैसे शून्य में देख रहे हों ''वैसे किसी और को नहीं।''

दूसरे ने भी आंखें सीधी करके बंद कर लीं। लम्बी चुप्पी के बाद वह बोला ''तुम्हें कैसे मालूम कि वह जिन्दा है?''

कुछ देर वे मूर्तिवत रहे। फिर उन्होंने आंखें खोलीं और कहा ''इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।''

''ऐसे तो ईश्वर की खोज होती है!'' वह मुस्कराया।

दोनों की आंखें एक साथ बंद हो गयीं। खिड़की के बाहर गंगा नदी और जंगल बियाबान निकलते रहे। किसी को पता ही नहीं चला। टूंडला स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही समर सहाय को लगा कि किसी ने उनकी बांह झकझोरी। आंखें खुलते ही उन्होंने दायीं ओर देखा। सीट खाली थी। अजनबी इस तरह गायब हुआ था जैसे वह कभी था ही नहीं। फिर समर सहाय किससे बातें कर रहे थे?

वे बैग लेकर उतर गये और स्टेशन से बाहर आये जहां आगरा के लिए टैक्सी मिलेगी।

बाहर हवा ठंडी थी। एकाएक समर सहाय को लगा कि उनकी हड्डियां अलगोजा हो गयी हैं। उन्होंने टोपी अपने कानों पर खींच ली। टैक्सी में वे आगे ड्राइवर के साथ बैठे थे। पीछे तीन सवारियां थीं। सड़क पर कुछ आगे जाकर अंधेरा बढ़ गया। अंधेरे के साथ ठंड भी बढ़ गयी। टैक्सी के शीशे बंद थे। मगर जैसे ही एक बार उनकी आंखें बंद हुईं, उन्हें लगा कि वे खुली हवा में बैठे भागे जा रहे हैं। उन्होंने घबरा कर आंखें खोल लीं और बिटर बिटर सामने कांच के परे अंधेरे में देखने लगे। अंधेरे में अंधेरा था। यह जरूर लगता था कि सड़क के दोनों ओर सड़क के अंधेरे से ज्यादा

घना पेड़ों का अंधेरा है। कोई आवाज नहीं थी जैसे सृष्टि के ऐन पहले का मौन हो। सड़क के दोनों ओर पेड़ों के अंधेरे के बीच में आकाश खुला था जिसमें तारे जमा हो गये थे जैसे आकाशगंगा निखर आयी हो! समर सहाय की आंखें आकाशगंगा पर ठहर गयीं। सड़क पर जिस तरह गाड़ी चुपचाप दौड़ रही थी, उसी तरह ऊपर आकाशगंगा बहती जाती थी मानो उसका कोई ओरछोर न हो। वे पलक झपकना भूल गये।

एकाएक समर सहाय ने देखा कि सड़क पर सामने दो आंखें अंधेरे में चमक रही थीं जैसे हवा में टंगी हों। यह कौन था जो सड़क पर पहरा दे रहा था? नीलगाय, ड्राइवर ने कहा और जोर जोर से हॉर्न बजाना शुरू कर दिया। सन्नाटा गूंजा। आंखों की जोड़ी सड़क के एक ओर अंधेरे में खो गयी। समर सहाय ने आंखें मूंदीं। उन्हें लगा कि सड़क का अंधेरा आंखों में समा गया है। उन्होंने फिर आंखें खोलीं। सड़क पर छिटपुट तारे थे। वे हड़बड़ाये।

''आकाशगंगा कहां गयी?'' उनके खुले मुंह से निकला।

''गंगा तो कानपुर में छूट गयी, दादा।'' ड्राइवर अंधेरे में मुस्कराया।

कुछ देर बाद जब गाड़ी चढ़ाई पर दौड़ी तो समर सहाय को याद आया कि यह जमना का पुल था जो आगरा को घेर कर बहती थी। पुल के दूसरी तरफ ढलान पर लुढ़कते हुए उन्होंने शहर की रोशनियां देखीं जिनके पीछे आसमान के तारे छिप गये थे। उनका अक्स कहीं कहीं नदी पर पड़ रहा होगा। बाइपास के एमजी रोड से जुड़ने के पहले बायीं ओर न्यू आगरा की बस्ती थी। समर सहाय का एक मन हुआ कि वे यहीं उतर जायें और घर घर में राधा को ढूंढ़ें। फिर उन्हें लगा कि वह शायद सो गयी हो। उसे बेवक्त जगाना ठीक नहीं होगा।

सुबह जब वे गोवर्धन होटल से बाहर आये तो चारों ओर धूप खिली थी। उन्हें यह याद आया कि पिछली रात शहर में प्रवेश करने के पहले उन्होंने गंगा और जमना को पार किया था जैसे किसी तीर्थयात्रा पर निकले हों। चौराहे पर खड़े एक रिक्शे पर बैठते हुए उन्होंने कहा ''न्यू आगरा।'' रिक्शा एमजी रोड पर बढ़ा। दिल्ली गेट पीछे था। सड़क पर शहर के लोग उतर आये थे। एमजी रोड पर भीड़ थी जिसमें हर किस्म के वाहन और लोग थे। उन्हीं के बीच एक गाय भी फंसी थी। उसे निकालने के लिए ट्रैफिक रुका, फिर सड़क चालू हो गयी।

यह हैरत की बात थी कि न्यू आगरा के मुहाने पर जो पान सिगरेट की गुमटी थी, वह तीन दशक बाद भी उसी तरह खड़ी थी जैसे गुमटी से राधा का पता पूछ कर प्रकाश और समर अभी आगे गये हों और फिर समर सहाय अचानक बूढ़े की शक्ल में लौट आये हों। इस बार उन्होंने गुमटी से कुछ नहीं पूछा। वे रिक्शे से उतरे और उन्होंने पहले मकान की घंटी बजा दी। एक नौजवान बाहर आया।

''क्या राधा है?'' उन्होंने पूछा।

''यहां कोई राधा नहीं है।'' नौजवान ने उन्हें घूरते हुए कहा और अंदर लौट गया।

वे आगे बढ़े। उन्होंने फिर घंटी बजायी। इस बार एक अधेड़ महिला बाहर आयी। आगंतुक का सवाल सुन कर उसने पूछा ''कौन राधा?''

''राधा गोस्वामी।'' उन्होंने कहा।

''क्या आपकी बेटी खो गयी है?''

''नहीं।''

अधेड़ महिला ने फिर एक बार उन्हें गौर से देखा और कहा ''क्या आपकी पत्नी गुम हो गयी है?''

''नहीं।''

''फिर वह कौन है?''

''राधा।'' वे बुदबुदाये और आगे बढ़ गये।

तीसरे मकान की घंटी बजाने से पहले रिक्शेवाला उनके सामने आ गया और उसने कहा कि जब आपको पैदल ही सैर करना है तो मुझे क्यों रोका? वह पैसे लेकर चला गया।

चूंकि वे गेरुए रंग का शाल ओढ़े थे, इसलिए किसी ने उन्हें साधू समझा, किसी ने भिक्खु। मगर उनके हाथ में कमंडल नहीं था। न वे भिक्षा मांग रहे थे। वे सिर्फ एक नाम मांग रहे थे। लोग उन्हें ताज्जुब से देखते और पीठ मोड़ कर वापस चले जाते। कुछ झुंझलाते भी। कुछ गुस्सा भी हो जाते। लेकिन समर सहाय अगले मकान की घंटी या किवाड़ बजा कर फिर पूछते ''राधा है?''

कोई उन्हें देखता तो पागल समझता। गाउन पहने एक मुच्छड़ ने तो भवें चढ़ा कर कहा भी ''क्या सीधे पागलखाने से यहीं आ गये हो?''

वे मुस्कराये और आगे बढ़ गये जैसे रास्ते का कोई पत्थर हटा रहे हों।

सूरज आसमान में ऊपर आ गया। उन्होंने कितनी बार कितने घरों में राधा का पता पूछा इसकी कोई गिनती रखता तो पांच सौ होती। इसमें वे ग्यारह घर शामिल नहीं थे जिनसे घंटी के जवाब में आदमी के बजाये कुत्ता बाहर आकर भौंका था। जब कुत्ता भौंकता तो वे हंसने लगते और आगे बढ़ जाते जैसे उन्हें अपने सवाल का जवाब मिल गया हो।

वह पांच सौ एकवां मकान था जिसके गेट पर तख्ती लगी थी, राधा गोस्वामी। पहले वे चौंके। फिर न जाने कितनी देर वे उस नाम को ऐसे निहारते रहे जैसे वह कोई पर फड़फड़ाता हुआ परिन्दा हो। शायद उनकी पगलायी नजरें इसी तरह उस नाम पर जमी रहतीं यदि एक युवक ने गेट खोल कर न पूछा होता ''क्या चाहिए?''

''राधा...।'' वे हकलाये ''राधा गोस्वामी यहीं रहती हैं?''

''रहती थीं।'' युवक का स्वर उदास था।

''क्यों?'' समर सहाय उखड़ गये ''क्या हुआ?''

''वे चल बसीं।''

''कब?''

''कल।''

उन्होंने नजरें नीची कर लीं।

''अंदर आइये।'' युवक बोला।

वे चुपचाप पीछे मुड़ गये। उस घर के सामने एक पार्क था जिसमें घास और रंगबिरंगे फूल धूप में चमक रहे थे। वे पार्क में घुसे और एक बेंच पर बैठ गये जो गुलाब और डेहलिया के फूलों से घिरी थी। उनकी नजरें सामने धूप में चमकती घास पर थीं जो सोने सी लग रही थी। उन्हें लगा कि राधा जरूर घर से निकल कर इसी सोने की घास पर चलती होगी। उन्हें खुद पता नहीं चला कि वे कितनी देर सोने की घास को देखते रहे। तब पता चला जब सूर्य सिर पर आ गया।

वे सहसा उठे और सामने फैली उजली घास पर औंधे मुंह लेट गये। वे उसी धरती के टुकड़े को चूम रहे थे जो एक समूची पृथ्वी था!

अनामिका की कविताएं

हवामहल

कैलेण्डर में मैंने देखा था हवामहल
सौ खिड़कियों वाला, उत्तुंग सा, जोगिया
लघिमा वाशिमा महिमा वगैरह वगैरह
आठ सिद्धियां साधे योगी सात आसमानों में उड़ने को बिल्कुल तैयार!
जितने भी सुंदर कैलेण्डर होते थे,
बिस्तर के नीचे तहा कर रख देती मां,
जब घर में आतीं किताबें नयी
जिल्द चढ़ायी जाती उनकी ही !
जिल्द चढ़ाने के उस अभियान में शामिल होते हम
नये योद्धाओं के जोशोखरोश से
गोंद की शीशी, स्केल और कैंची
गदा की तरह धारे
पापा को घेर बैठते !
खासे मजाकिया थे पापा।
स्केचपेन से उन किताबों पर नाम हमारा लिखते

और कैलेण्डर की तस्वीरों के बारे में कुछ कुछ लगातार कहते
रवि वर्मा की प्रतीक्षारत रूपगर्विताएं,
दुनिया के सुंदर वन उपवन
या फिर उत्तुंग वे इमारतें हवामहल सी
कैलेण्डर के दिल पर राज था इन्हीं का तब।
हवामहल के बारे में
बोलते बोलते पापा बोल पड़े
"देखो भाई, होना तो होना हवामहल !
सब खिड़कियां खोल कर रखना जीवन भर
जो आये, बह जाये !
एक कान से सुन कर ज्यों दूसरे कान से बाहर
कर देते हो मशविरे तुम सब
वैसे ही इस खिड़की आये, उस खिड़की निकल जाये,
द्वेष राग, दुख सुख कुछ जबदे नहीं भीतर !"
तबसे अब तक कितने कैलेण्डर बदल गये,
पर जिल्द की तरह मेरे वजूद पर
चढ़ा हुआ है अब तक
पापा का हवामहल !
कभी कभी लेकिन कुछ दरवाजे
लगते हैं जरा ढनमनाने
कब्जे ढीले पड़ गये होंगे
मुंदने लगे हैं कपाट कई
कुछ है जो पार नहीं बह पाता
और बुड़बुड़ाता रह जाता है
जैसे कि हुक्के के पानी में बंद हवा!
हवामहल के बाहर से देखती हूं जब हवामहल
दिखता है हवामहल एक बड़ा हुक्का अब
चांद आसमां का
किसी चौधरी सा जिसे गुड़गुड़ाता हुआ
रोज चौपाल सजा लेता है संझा तक!
सांझ हुई मेरी भी,
कयामत के दिन आ गये अब तो,
सोचती हूं ये ही घबरा कर कभी कभी
पापा पूछेंगे कि कैसा है हवामहल,
क्या दूंगी उनको मैं उत्तर!

कीमोथेरेपी के बाद

"कभी कभी अपने वजूद से
बाहर टहलने निकल जाओ,
जाओ, वहां जाओ,
दूर वहां कोने में खड़े रहो
यों ही कुछ देर,
फिर गौर से जांचो खुद को
कि कैसे हो!"
कहते थे उस्ताद फत्तन खां, डांस मास्साहब अक्सर ही,
लखनऊ घराने का ठाठ है यही
वहां कथक कहता है कथा
मगर बंधता नहीं किसी किस्से में,
रहता है गत पार
आगत विगत पार!
मैं खास डांसर नहीं निकली,
गुरुमंत्र आत्मसाक्ष्य का मुझसे कितना सधा,
मुझको नहीं पता,
लेकिन हां, लम्बी वेणी में बंधने वाले
मेरे ये बाल
कीमोथेरेपी के बाद से
इस बात का मर्म समझने लगे हैं !
फुहियों से धीरे धीरे झड़ कर,
इधर उधर उड़ कर,
कमरे के हर कोने से
पीछे मुड़मुड़ कर
मुझे जांचते दीखते हैं ये !
अभी छोह थोड़ा सा बाकी है,
धीरे धीरे तटस्थ हो लेंगे !
उस्ताद फत्तन खां जहां कहीं भी होंगे
क्या सोचते होंगे देख कर
झड़े हुए बालों का विस्तृत संजाल
सुबुक और थोड़ा बेहाल
कांप रहा है धीरे धीरे

कमरे की हर शय पर
हवा में उड़ायी गयी
एक अधूरी चिट्ठी जैसी अनंत, अकथ
स्वरलहरियां रचता
कपड़ों पर, कंधों पर, तकिये पर, तौलिए पर,
क्या जाने कितने
विरामचिह्न...
कभी हाइफन, कभी कोष्ठक की शक्ल में
मुड़ता तुड़ता
एक केश एकदम अकेला
खुले हुए ओठों पर लो, आ गिरा
चुप की उंगली की तरह!
सांसों से भी झीने
इन केशों का
वारा न्यारा करने आती है
खिड़की से ठंडी हवा!
तोशक के नीचे सिहरती हैं
स्मृतियां
एक्सरे प्लेटों से सटी हुईं!
दो अकेले लोग
मुस्करा कर देखते हैं
एक दूसरे को!
एक पीला फूल
प्रज्ञादीपित सा
खिला हुआ सिरहाने
खोल रहा जीवन के मायने
आगे न पीछे
जीवन तो बस इस पल के
नन्हे वर्तुल में समाया है
जैसे कि आंखों में एक बूंद
अब गिरी, तब गिरी जैसी !

बोलियां

नागरी प्रचारणी सभाभवन के

पीछे की गलियों में
खेसारी के दाल की कचरियां बेचतीं
हिन्दी की बोलियां
मातृसुलभ रोब में एक दिन बोलीं
राजभाषा हिन्दी से
"कहो भला, कैसी हो?
जीती रहो, दूधो नहाओ और पूतो फलो!
मिलती रहो कभी कभार
नाता बनाये रहो
मेरी यह गोद है तुम्हारा घर!
मेरा घर?
मेरे हैं कई कई घर, कई सहचर
मैं कहीं अंटती नहीं,
सांसें हैं मेरी असवारी,
जाती हूं भीतरी शिराओं तक तुम्हारी!
और लौट आती हूं वापस
अपनी खुदी तक!
जो देखता है, मुझे देखता है
जो सुनता है, सुनता है मुझको!
मैं स्वाद हूं, मैं ही जिह्वा
मैं गंध, मैं ही हूं पृथ्वी
फूलों फलों औषधियों का मत्त विलास!
जो जानता है, मुझे जानता है
वाणी मैं, ब्रह्मांड है कोख में मेरे!
सातों समुंदर मेरा आंचल
सन सन सन बहती हुई सब दिशाएं मैं
इस सृष्टि का पहला आंसू
उदीप्त मुस्कान पहली
हरीतिमा घास की मैं ही, आकाश की नीलिमा
हिमाच्छन्न हो मेरा मन तो मैं
साधू निरंकुश सी सकदम
रस रंग गंध और ध्वनियां
इस सृष्टि से बहिष्कृत करूं
और मना कर दूं फूलों को
'खबरदार, यदि खिले!'

सारा यह रूप तुम्हारा, तुम्हारी यह चेतना
मेरा उपहार है तुम्हें, बच्ची!
मेरा उपहार है तुम्हें!"

आधारकार्ड

वह एक खाली सड़क थी
किसी अजाने देश की!
वह देश सुमालिया भी हो सकता था, ईरान भी,
तिब्बत, क्यूबा या गाजापट्टी!
होने न होने के बीच एक जंगल था,
जंगल में रात ढल रही थी!
खरहे तीतर और बटेर नींद में चौकस
और ताल की मछलियां कछमछ!
सीने में मुंह गाड़े एक गिलहरी सो रही थी!
सपनों की सातवीं परत पर सन्नाटा था,
सन्नाटे में लेकिन एक बूंद अटकी थी!
पता नहीं, किस हिरणी की आंख से यह झड़ी होगी,
परिरम्भण की कोई आखिरी घड़ी होगी!
घास की आंख झिलमिलाती थी
उस लड़के की आंख में
लॉरी की छत पर जो चादर लपेटे खड़ा था!
उड़ रहे थे केश कंधों पर
बर्फीली हवा के खिलाफ!
स्वाभिमान में सर उठाये हुए जो खड़ा था,
उस लड़के का गम कुछ भी हो सकता था
प्रोमिथियस, सिद्धार्थ गौतम, ये चेगोवेरा!
तोड़ी गयी थीं उसकी हड्डियां
तोड़ी गई हड्डियों पर लिपटी हुई पट्टी
धीरे धीरे खुल रही थी!
दर्द का समंदर हहाता हुआ बढ़ रहा था नसों में!
दूरस्थ नक्षत्र से फोन आया, मोबाइल बजा,
पट्टी का एक सिरा दांत में दबा कर वह बोला
"हलो, हलो, चिन्ता की बात नहीं, मां,
मैं तो अच्छा हूं।"

कुछ देर घनघोर चुप्पी सी छायी रही,
फिर गवाही में खड़ी हो गयी कायनात,
"हलो हलो दुनिया के लोगो, यह अच्छा है!"
सुनसान जंगल का हृदय भेद कर
शून्य से शून्य की तरफ जाती हुई सड़क
सोचने लगी
"अच्छे ही लोग भला क्योंकर
रहते हैं हरदम खटाई में पड़े!
क्या दर्द आधारकार्ड है अच्छाई का
जैसे कि क्रांति का सांसत,
और शोर का चुप्पी
चकचक उजाले का आधारकार्ड यह अंधेरा?
क्यों इतने चितकबरे होते हैं दुनिया के सारे आधार?
क्या चितपट का खेल ही है यह सारा संसार?"

थर्मामीटर

अमराई के चौकीदार की तरह
एकदम से पकड़ लेता बुखार हमें
और बंद कर देता कालकोठरी में!
जिसकी गवाही पर गिरफ्तार होते हम
फूटी आंखों नहीं सुहाता हमें वो थर्मामीटर!
सन् नब्बे में फूटा
दुनिया का सबसे बड़ा थर्मामीटर,
पारे के तारों सी छिटक गयी
जब सोवियत संघ की सब इकाइयां
तब जाकर ये जाना हमने होता है दुनिया में काफी कुछ
तर्क और प्रमाण के परे!
आज जब धरती का माथा गरम है,
जलस्रोतों की पट्टी पूरी नहीं पड़ती,
निष्पत्र पेड़ हो गये हैं
थर्मामीटर
याद आ रही है वो छोटी सी लड़की
ओ. हेनरी की कहानी
'द लास्ट लीफ' की!

प्लास्टिक की एक पत्ती
डोल रही है हवा में
अंतिम सांसें गिन रही
आस को
देती दिलासा
झूठी सच्ची!

जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताएं

पत्नी पूछती है कुछ वैसा ही प्रश्न
जो कभी पूछा था मां ने पिता से

ए जी, ये लोकतंत्र क्या होता है?

पूछा था मां ने पिता जी से
कई वर्ष पहले जब मैं किशोर था

मां के सवाल पर
थोड़ा अकबकाये फिर मुस्कुराये थे पिताजी

मां समझ गयी थी
वे टाल रहे हैं उसका सवाल
उसने फिर पूछा था
बताइये न, ये लोकतंत्र क्या होता है?

अब पिता सतर्क थे

'सतर्क' के हर अर्थ में
उन्होंने कहा था
तुम जानती हो लोकतंत्र की परिभाषा उसके निहितार्थ
पढ़ाती हो बच्चों को
फिर मुझसे क्यों पूछती हो, क्या दुविधा है?

मां ने कहा था
दुविधा ही दुविधा है
उत्तर की सुविधा भी एक दुविधा है
जो शब्दों में है
अभिव्यक्ति में पहुंच नहीं पाता
जो अभिव्यक्ति में पहुंचता है
जीवन में उतर नहीं पाता

ऐसा क्यों है
प्रेम की तरह लोकतंत्र दिखता खुला खुला सा है
पर रहस्य है!

जब जो चाहे
कभी भाषा से
कभी शक्ति से
कभी भक्ति से
कभी छल कभी प्रेम से
अपनी सुविधा की व्याख्या रच लेता है
और काठ के घोड़े सा लोकतंत्र टुकुर टुकुर ताकता रह जाता है

यह सब कहते हुए
स्वर शांत था मां का

कोई उद्विग्नता, क्षणिक आवेश, आवेग, आक्रोश न था उसमें
जैसे कही गयी बातें महज प्रतिक्रिया न हों
निष्पत्तियां हों सघन अनुभव की
लोकतंत्र की आकांक्षा से भरे एक जीवन की

और यह सब सुनते हुए

जादुई वाणी वाले सिद्ध वक्ता मेरे पिता
चुप थे बिलकुल चुप
जैसे मैं हूं इस समय
उस संवाद के ढाई दशक बाद
अपनी पत्नी के इस सवाल पर
ए जी, ये बराबरी क्या होती है?

खेतों का अस्वीकार

आज ज्योंही मैं पहुंचा
गांव के गोंइड़े वाले खेत में
उसने नजर उठा कर देखा पल भर
फिर पूछा
कहो बाबू, कहां से आये हो
कुछ कुछ शहरी जान पड़ते हो?

लगता है
कोई जान पहचान है इस गांव में
इधर निकल आये हो शायद निवृत होने!

मैं अचरज में पड़ा हुआ
किंकर्तव्यविमूढ़ सा खड़ा हुआ
ताकने लगा निर्निमेष उसको
जिसकी मिट्टी में लोट लोट लहलोट हुआ
मैं बचपन में खेला करता था

मैं भागा तेज वहां से
पहुंचा नदी किनारे वाले चक में
चक ने देखा मुझको
कुछ चकमक चकमक सा लगा उसे
थोड़ी देर रहा चुप वह
फिर पूछा उसने
किसे ढूंढ़ रहे हो बाबू
इतनी बेसब्री से
यहां तो आंसू हैं

हत सपने हैं
अकथ हुई लाचारी है
लेकिन तुम कुछ अलग अलग दिखते हो
कहां रहते हो?

इधर कहां निकल आये हो
यहां धूल है मिट्टी है
सड़क के नाम पर गिट्टी है
चारों ओर पसरा हुआ
योजनाओं का कीचड़ है

खैर छोड़ो, कहां से आये हो
क्या करते हो
आखिर इतना चुप क्यों हो
क्या कभी नहीं कुछ कहते हो?

मैं ठकुआया खड़ा रहा
बहता रहा आंखों का द्रव
मैं भूला
भूला रहा बरस बरस बरसों बरस जिन खेतों को
यही सोच सोच कि मालिक हूं उनका
उन खेतों ने सचमुच मुझको भुला दिया था

कुछ देर
मैं अवसन्न खड़ा रहा सच के सिरहाने

देवियो सज्जनो
मालिक बनने को उत्सुक लोगो
आज उन खेतों ने
मुझे पहचानने से इंकार कर दिया है
जिनके मालिक थे मेरे दादा
उनके बाद मेरे पिता
और उनके बाद मैं हूं
बिना किसी शक सुबहे के

आप सब अचरज में पड़ गये हैं सुनते सुनते
यकीन नहीं कर पा रहे मेरी बातों का
पर सच यही है सोलह आना
कि मैं मालिक हूं जिनका खसरा खतौनी में
उन खेतों ने
मुझे पहचानने से इंकार कर दिया है।

एक पूरा स्वप्न

हर सुबह एक नयी उम्मीद की तरह हो
हर शाम खुश हो
किसी उम्मीद के पूरा होने पर
कहीं से कोई खबर न आये
ईमान डूबने की
एक मनुष्य के लिए
यह सबसे बड़ा स्वप्न है
उसके इंसान होने के
सबसे ठोस सबूत की तरह

इस विज्ञान समय में
जब सब कुछ सम्भव है तब भी
मनुष्य होना मात्र एक सा ढांचा होना नहीं है
सृष्टि में चाहे जितने विकास सम्भव हो जायें
रोबोट इनसान नहीं हो सकेगा
हालांकि मनुष्य के रोबोट में बदलने के खतरे
हर रोज बढ़ रहे हैं
हर रोज बढ़ रही है खाईं
मनुष्य मनुष्य के बीच
अमीरी गरीबी के बीच
राष्ट्र राष्ट्र के दरम्यान

आजकल ऐसे लोग बढ़ते जा रहे हैं
जिनके होने से शर्मिन्दा हैं पशु

प्रतिदिन कम हो रहा है आदर

मनुष्य का मनुष्य के लिए
घट रही है संवदेनशीलता
हर क्षण बढ़ रही है आकांक्षा
बढ़ रहा है शक्ति विमर्श
हर क्षण के हजारवें अंश तक तीव्रतर है लालसा
शक्ति की महफिलों में कोरस का अंग बनने के लिए

निरंतर छीज रहा है आत्मा का रसायन
सूख रहा है मनुष्यता का जीवद्रव्य

एक कम मनुष्यता वाले समय में
चुनौती का शिखर है बचाना
एक साबूत मनुष्य का एक पूरा स्वप्न।

गांव का दक्खिन हो गया है 'आखिरी आदमी'

मौसम बदल रहा है
गांव में सुगबुगाहट है चुनाव की
अब प्रधानी में बहुत पैसा है

खड़ंजा हो बांध हो बिजली हो बाढ़ हो अकाल हो
प्रधान की पौ बारह रहती है

अब भी दफ्तरों में टंगती हैं
महात्मा गांधी और डॉक्टर आम्बेदकर की तस्वीरें
पर कोई ताकना भी नहीं चाहता
महात्मा गांधी के 'आखिरी आदमी' की तरफ
डॉक्टर आम्बेदकर के सपनों की तरफ

इन दिनों लोकतंत्र में
गांव का दक्खिन हो गया है 'आखिरी आदमी'

पिछली बार पांच लोग मारे गये थे मेरे गांव में
प्रधानी के चुनाव में
निकलने नहीं दिया था जबरों ने

दलितों को उनकी बस्ती से
उनके वोट खा गये थे वे
सरकारी योजनाओं की तरह

किसान बदहाल हैं
मर रहे हैं भरी जवानी में
जो बचे हैं उनकी जेबें इस कदर खाली हैं
कि वे भर नहीं सकते बच्चों की फीस
उनके घर में नहीं हैं
किसी के बदन पर साबुत कपड़े

लड़कियां भी महफूज नहीं हैं
गांवों में

अब फिर चुनाव सिर पर है
धीरे धीरे गर्म हो रही है हवा
लोग अकन रहे हैं एक दूसरे की कानाफूसी
मैदान में उम्मीदवार भी कई हैं
पर 'आखिरी आदमी' को
'कोई उम्मीद बर नहीं आती
कोई सूरत नजर नहीं आती
आगे आती थी हाल ए दिल पे हंसी
अब किसी बात पर नहीं आती।'

पीयूष दईया की कविताएं

कान लपेटे कवि(ता)

सुवास और फूल

कोई दिल में ज्यों
धड़क रहा

कम होते गये
क्यारी में फूल

और सुवास भी
बहती हुई

फूल में
रही

न(ा)मक-सा

संभला रह सका न संभाल सका

पाया पर खोया

पानी फिर गया
जब पैठा

अपना लगा, जब निकला
तब सूखा पाया

फिर घुला
न(।)मक-सा

आंसू
भेसविहीन

पात्रों में एक

प्याऊ पर लगा
प्यासहीन पानी
पात्रों में है

स्वयं एक में
झांका

पूरमपूर लगा
पानी

पीने से प्यास
बुझी

प्यासबुझी

प्यास बुझने पर
प्यासा नहीं रहता

पानीहीन प्यास

कभी बुझती नहीं

गायब रहती
प्यासे में ही

फिर मिलता नहीं
सपना भी

खुद ही कभी
बुझा जाता

--प्यासबुझी पर
पुनर्नवा खिल आती
प्यासे में ही--

प्यासोपलब्ध केवल
प्यासहीन प्यास

प्यासस्थ

प्याऊ को पाया पर
सेवाकार का मालूम न चला

पानी पीना है
यह किससे कहता

प्यासस्थ
वहीं ठहरा रहा

पीना मना है

प्याऊ को छोड़ कर जाने का
मन बुझ गया है

उतार कर यहीं सूखी मशक

टांग दी है खूंटी पर
उसमें छेद था

पानी सारा
टप टप

गिर पड़ा कब
पता न चला

प्यास के मारे तभी
दिखी थी प्याऊ भी

जिस पर लिखा
पढ़ा : पानी
पीना मना है

(अ)दूर धुन

प्याऊ पर भी

पात्र भरा
न देख सका

अपना गायब
बीता कल भी
पा न सका

और अगला कल
विकल अभी

(अ)दूर है
स्वयं धुन ही शायद

अलभ्य
कालकथा : अक्षर कौन लेखा

जन्मा कहां ओझल रहा

बिना किसी की भांति
हो रहा होना

अव्यक्त
चित्रोक्ति कभी चोला

कवि(ता)

मरीचिका में
जाने से पहले
पानी मुझे
मरीचिका लगता रहा

मैं प्यासा
वह पानी
ऐसे

मरीचिका में
पता चला

मरीचिका कहीं नहीं
पानी है असली

भ्रम मेरा
वह मरीचिका
ऐसे

कवि(ता) भी
स्वयं जानो

हर घर

हर दिन नये दरवाजे पर

दस्तक देता है
भिक्षु कोई

मुझ में देख लेता
हर घर

कवि(ता) है जहां
खप्पर उसका

दिखायी देने के लिए
अपने से वहां

ऐसी भिक्षा मांगता

मुझसे
जिसका प्रतिबिम्ब नहीं बनता

हृदय

तजे बिना त्वचा
तजा है
हृदय

सूख रहा मशक सा
सुख से

आपके हाथों में
शिशु कोई

है कवि(ता)

देवनागरी

कभी बोलती नहीं
नागरी हमेशा मौन है

कभी बोलता नहीं
देव हमेशा मौन है

बोलने से गायब हो जाती है
बोलने से कूच कर जाता है

बोलना यों मूक
कवि(ता)

चुप

दीवारों के भी कान होते हैं
यह सुना मैंने कान लगा कर

और कान खड़े
सुन रहे

सुनना मेरा
कंठहीन

बाहर कान

दीवारों ने ही सुना, मैंने नहीं
मैं बाहर कान हूं

सुन न सकने के कारण
देशनिकाला मिला है

भीतर से
कान भी

सुनना

स्वभाव से अपने

हैं ऐसे ही कान

जैसे कि कान
कान होते हैं

कुछ और नहीं

वे अकेले हैं
दो कान

(प्र)काश! अपने में
अपना कान अपना

जान ले यह
तो सुन लें
कान यों

सुनना

कान लपेटे

बजाय पकने के कहीं कान चले गये हैं
शायद गये न हों भीतर धरे हों

छिपाव में
खुलने के लिए

कान लपेटना
कान खड़े करना
कान में रहना न कान बाहर

चलना निश्चल
पूरा कान

मिथिलेश शरण चौबे की तीन कविताएं

जन्म : 13 दिसम्बर 1976। मिथिलेश की कविताएं अनेक प्रतिष्ठित पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। एक आलोचना पुस्तक भी कुंवर नारायण का रचना संसार।

एक दिन हमें बहुत सुबह उठना होगा

एक दिन हमें बहुत सुबह उठना होगा

हरेपन से च्युत पृथ्वी का होना सोचने
भाप की तरह ऊपर उठती भाषा से
अपने कुछ शब्द रोकने
अकारण प्रिय के न मिलने पर
विलाप करने

पृथ्वी नहीं रुकेगी अपना उजाड़ दिखाने
भाषा लगभग विलुप्त हो चुके शब्द से
व्यक्त नहीं होगी

प्रिय नहीं मिलेगा
हमारी सांत्वना के लिए

पृथ्वी, भाषा और प्रिय
जब जा रहे होंगे
हमारी पहुंच से एकदम बाहर
उस दिन हमें इतनी सुबह उठना होगा
जब हम सोये ही न हों।

आयेगा

एक रोज भविष्य के लम्हों में
अतीत आयेगा
सुख आयेगा
बीते हुए दुखों को याद कर
निराशा आयेगी
खो चुके आशा भरे क्षणों पर

कुछ नहीं आयेगा जैसा भी
कभी समय आयेगा
समय के आने की उम्मीद की तरह
बेपरवाह होती उम्मीद आयेगी
किन्तु परंतु यद्यपि जैसे
शब्दों से शुरू होकर
पछतावा आयेगा

नहीं आयेगा
के नाजुक वृंत पर टिका
एक कठोर और
दुर्निवार होना
कभी तो आयेगा।

प्रश्न नहीं समय

कितना आकाश चाहिए

एक पक्षी को
स्वच्छ विचरने के लिए
क्या सोचती है शहरों की
सड़कों पर फंसी गाय
कब लगती है आंख
लावारिस कुत्ते की

नींद में बड़बड़ाता सा
क्या कहना चाहता है मेंढक
जुगनू किसको राह दिखाने के
यत्न में है
नीले से लुभाता बुध
किस हरेपन के न होने का
दुख प्रकाशित करता है

पलाश का फूल
किसी और नाम से क्यों
सम्बोधित है
बीरबहूटी एक तनिक सा
कठिन शब्द है
या एक बड़ा सा सुर्ख जीवन
ओस के ठिकाने को
क्या कहेंगे अलस्सुबह हम
क्या कहेंगे गुलाबों के किनारे खड़े
अकेले बेल के पीले पड़ते फल की
नियति को

सूखे बेरों को उबाल कर
कुछ नमक मिला बेचती स्त्री की
क्षीण होती जीवनाभा को
कौन से शब्द से पुकारेंगे
सन्नाटे में टपकते
सूखे पत्तों के ऊपर
ढेर सारे फलों का
आशय कब समझेंगे

एक सुंदर और आकर्षक युवती
और अधपके अमरूद में
किसे बार बार देखना चाहेंगे

हमें क्या पता है
क्या जानते हैं हम
न जानने का संसार
कितना व्यापक है
जानने की दुनिया कितनी नगण्य

एक जीवन में
कितनी बार हम
अनुत्तरित रहते हैं
दो एक बार के
अधूरे उत्तरों के बीच।

प्रत्यूष चंद्र मिश्रा की तीन कविताएं

प्रत्यूष की रचनाएं कथादेश, समयांतर, वागर्थ, बया जैसी अनेक महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। तद्भव में पहली बार। कविताओं के साथ समीक्षा और सिनेमा में भी गहरी रुचि रखते हैं।

घर

वह बचपन का कोई दिन था
जब पिता के सपने ने मुझे दूर कर दिया था घर से
रही होगी अपनी भी कोई इच्छा अचेतन में कहीं
घर को इसकी जरूरत भी थी

मुझे भी जरूरत हो सकती है घर की
यह बात किसी के जेहन में नहीं थी
विस्थापितों सा भटकता रहा अपना तम्बू लिए
धरती के इस कोने से उस कोने तक

सीमाएं कभी मेरी दृष्टि में नहीं रहीं

न शासकों की भाषाएं
कोई चमकता ख्वाब भी नहीं
मैं अपने दरकते सीने के साथ
हर बार घर जाने की इच्छा लिए
घर से दूर होता रहा

खून और आंसुओं से सना रहा मेरा स्वप्न संसार
जिसमें दीमकों की लगातार आवाजाही थी
बाद, बहुत बाद में समझ में आया
किसी एक ख्वाब के सच होने में
किसी दूसरे ख्वाब का टूट जाना भी छिपा रहता है

शहरों की भटकन में नहीं था मेरा घर
मैं जिस घर में रहता था वहां से बहुत साफ साफ दीखता था
क्षितिज और आकाश
आज शरणार्थी शिविरों से भरे इस शहर में
जब हर तरफ उड़ रही है निराशा की धूल
और उम्मीद पर भारी पड़ रही है ऊब
अनंत आकाश के अंतहीन सपने को छोड़
मैं वापस जाना चाहता हूं अपने घर

पुनपुन

बिल्कुल पास तो नहीं बहती थी तुम
पर तुम्हारे ख्याल से कभी जुदा नहीं पाया खुद को
खेतों मैदानों से गुजरती स्मृतियों में भी बहती रही तुम लगातार

बहुत बचपन की यादें हैं जब तुम्हारा पानी किनारों को तोड़ कर आता था
हमारे गांव की सरहद पर
पानी लाता था ढेर सारा उल्लास,
छोटी छोटी मछलियां, सीप और घोंघे
बहुत मुलायम और नरम मिट्टी का कोई छोटा सा हिस्सा,
धान के अधडूबे खेत,
पानी की धार पर जाता कोई 'डोडवा'
अपने बैलों को लेकर बाजार से लौटते 'पैकार'

सोन का 'लाल पानी' भी आता था कभी कभी
'पुनपुन' के इस हिस्से में
और रह जाता था महीनों, कभी कभी तो वर्षों तक

तुम्हारे बाढ़ को लेकर कोई गुस्सा नहीं था हमारे भीतर
और न ही किसी नदी की कोख से पैदा होने का कोई गुरूर
बहुत छोटे थे हम और शायद हमारे पूर्वज भी

मिथक हमें सिर्फ इतना बताते हैं कि
कभी पांडवों ने अपने पितरों को जल दिया था तुम्हारे घाट पर
और कवि 'बाण' जब ऊबते थे सोन से
तुम्हारे ही पानी से बुझाते थे अपनी काव्य प्यास

बहुत छोटी नदी हो तुम
नदियों के इतिहास में दर्ज नहीं है तुम्हारा नाम
स्वर्ण और चांदी के अक्षरों में
नक्शे में भी शायद ही दिखे तुम्हारी पतली सी लकीर
लेकिन जो लकीर तुमने खींच रखी है हमारे दिलों में
वह इन अकादमिक रेकार्डों से कहीं ज्यादा गहरी है
और यह कविता इसकी एकमात्र गवाही नहीं है

पुनपुन, बहती रहो तुम इसी तरह हमेशा
धरती के इस हिस्से में प्रवेश करती रहो मनुष्यों और फसलों के भीतर
ज्ञान और सूचना के इस अराजक समय में
सींचती रहो हमारी संवेदना

समंदर

कितनी नदियां आती हैं
कितना सारा जल लेकर मैदानों से
सब कुछ समा जाता है समंदर में
समंदर की अगाध जलराशि में
पूरी धरती की अनबुझी प्यास है
मैं देख रहा हूं समंदर को
नदियों और मैदानों का
सारा जल सोखते हुए

अमृत सागर की कविताएं

युवा कवि। प्रखर आलोचनात्मक विवेक से सम्पन्न अमृत सागर पत्रकारिता के इलाके में भी सक्रिय।

पृथ्वी

ऐ मेरी पृथ्वी !
मैं महसूस करना चाहता हूं
तेरे घने जंगलों को
और तेरे समुद्रों में सदियों तक पैठना चाहता हूं

तेरे पहाड़ों को अपनी पीठ पर लाद
चाहता हूं जाना अंतरिक्ष के एक लम्बे सफर पर

जहां मैं तुमसे दूर होकर
तेरे जल, जंगल और जमीन
को याद कर सकूं !

और फिर लौट कर
बता सकूं
अपने हमशक्लों को

कि आसमान
कुछ भी नहीं होता !
सिवाए निर्वात के !

कमरा

कभी कभी किसी को खोना
खालीपन को पाने जैसा होता है

कुछ निर्जीव चीजें सजीव हो उठती हैं
तब आपका कमरा महज एक कमरा नहीं रह जाता

वह आपसे बातें करता है
गलबहियां करता है, ओरहन देता है
आपकी सिसकियों को थपकियां देकर
अपनी गोद में सुलाता भी है

वह देर की बिना शिकायत किये उठाता है
और आपके बिखरेपन और सलवटों को
जज्ब कर जाता है

वह आपके छोड़ जाने पर भी
गिला शिकवा नहीं करता
मुस्करा के सिखाता है...

दिलों में फैलना...
मगर दूसरों के लिए जगह खाली रखना

आजाद होना चाहता हूं

आजाद होना चाहता हूं

बादल से पहली बूंदों की तरह
आसमां को लांघते पंखों की तरह

आजाद होना चाहता हूं
दीये पर मंडराते पतंगों की तरह
जंजीरों पर चलते
नुकीले पंजों की तरह

हां! मैं आजाद होना चाहता हूं!
अंधेरे कमरे में गिरती
रोशनी की धार में कैद
धूल कणों की तरह

आजाद होना चाहता हूं
रसोई में पकती
नयी फसलों से उठती
सोंधी सुगंधों की तरह

चाहता हूं किसी भी आदेश
और उसके मानने के उपक्रमों से आजादी
ठीक रंगों की तरह

जिसे किसी भी 'आदेश' से
बदला नहीं जा सकता
जो चित्रों में बंध कर भी रंग ही रहते हैं !

ठीक उसी तरह
जैस तिमिर में
उजासी की फूटती है धार

प्रिज्म के त्रिकोण पर
इंद्रधनुषी, रंगों की तरह !

आजाद होना चाहता हूं
जहां मैं खुद से भी अस्तित्वहीन हो जाऊं

कि मेरा 'मैं' खुद को भी कोई आदेश न दे सके

अंधेरे की तरह!

हां चाहिए मुझे प्रकृति सा उल्लास
और उसी सा शोक भी
कि मैं कर सकूं भावनाओं की खेती
और आपदा ला नये अंकुरों की बना सकूं जगह

हां आजादी मुझे इसलिए नहीं चाहिए कि किसी को गुलाम बना सकूं
बल्कि दे सकूं दूसरों को आजादी
अंतरिक्ष की तरह!

तो फिर विपथन ही सही... IV

भानु भारती

'क्यूं न फिरदौस में दोजख को मिला लें या रब...'

भील जनजीवन से उन चार पांच सालों की अपनी सघन अंतरक्रिया के बाद, जिसे उसने अपने रंगजीवन का 'मध्यांतर' कहा है, जब उसे लग रहा था कि उसने थाह पा ली है और अब उसका मार्ग प्रशस्त है, अचानक जैसे 'ब्रेक' लगा और उसकी जिन्दगी राह के बीचोंबीच थम कर खड़ी हो गयी।

भीलों के साथ किये गये उसके रंगप्रयोगों की हर तरफ चर्चा थी। कोई नाट्य समारोह ऐसा नहीं होता था जिसमें उसके ये प्रयोग सम्मिलित न होते हों। एक राष्ट्रव्यापी पहचान उसके काम को मिल रही थी देश की विभिन्न अकादमियों और नाट्य विद्यालयों में लेक्चर डिमॉन्स्ट्रेशन, सेमिनार गोष्ठियों में चर्चाएं परिचर्चाएं। उन्हीं दिनों राज्य सरकार से उसे राजस्थान संगीत नाटक अकादमी का अध्यक्ष बनने का निमंत्रण भी मिला। उसने वह निमंत्रण टालना चाहा उस समय के सत्तारूढ़ राजनैतिक दल से अपने वैचारिक मतभेद का हवाला दिया, समयाभाव की भी बात की, पर अंततः उसे यह प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। अखबार में खबर देख कर उसके मित्र नंद किशोर आचार्य ने उसे गालिब का एक शेर लिख भेजा 'हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन/दिल के खुश रखने को गालिब ये खयाल अच्छा है'।

उसने भी गालिब का ही एक शेर जवाब में लिखा 'क्यूं न फिरदौस में दोजख को मिला लें या रब/सैर के वास्ते थोड़ी सी फजा और सही'। और उसने सैर की अच्छी भली। अकादमी का अध्यक्ष होकर तो इतनी नहीं वहां तो अपना भरसक उसने किया, और जब सरकार की ओर से हस्तक्षेप कोशिश हुई तो इस्तीफा भी दे दिया लेकिन एक शारीरिक व्याधि के चलते दोजख की फजा की अच्छी भली सैर उसने की।

उसके साथ नाटक में काम कर रहा कोई अभिनेता कभी जरा भी बीमार पड़ जाता तो वह झल्ला जाता ''हाउ कैन यू अफोर्ड टू फॉल सिक?'' लेकिन जब उस पर बनी तो वह सचमुच अफोर्ड कर सकने की हालत में बिल्कुल नहीं था। न भावनात्मक स्तर पर और न ही आर्थिक स्तर पर। इस समय उसके व्यक्तिगत जीवन में भूचाल आया हुआ था, जिसके चलते उसे तुरत फुरत में बड़ा निर्णय लेना पड़ा था, जिसके लिए न उसकी आर्थिक तैयारी थी और न ही मानसिक। उसी सबके बीच उसे सब छोड़छाड़ कर बम्बई के 'टाटा हास्पिटल' पहुंचना पड़ा। पेलविस (Pelvis) में एक गांठ सी महसूस कर रहा था। उसने उदयपुर में डॉक्टर को दिखाया भी लेकिन डॉक्टर को लगा उसके पांवों में कुछ जगह हड्डियां बढ़ी हुई हैं जोकि एक आनुवशिक प्रवृत्ति (Genetic Tendency) है, अतः पेलविस में यह गांठ भी उसे बचपन से ही रही होगी जिस पर उसका पहले ध्यान नहीं गया। लेकिन यह गांठ बढ़ती जा रही थी और अब उसमें कुछ दर्द भी होने लगा था। पर अपनी उलझनों और व्यस्तताओं के चलते वह उस पर ध्यान नहीं दे पा रहा था।

वह अकादमी के एक समारोह के लिए जयपुर में था तो उसने अपने पुराने मित्र और रेडियोलॉजिस्ट डॉक्टर विजय राव को इस गांठ के बारे में बताया। विजय ने उसे एक्सरे के लिए बुलाया तो उसने अपनी व्यस्तता बतायी। विजय ने दस मिनट में उसे फ्री कर देने का आश्वासन दिया तो वह चला गया। एक्सरे के बाद वह अपने कामों में लगा था तो विजय उसे ढूंढ़ता हुआ पहुंचा और पकड़ कर मानसिंह अस्पताल में आर्थोपेडिक सर्जन डॉ. पांडेय के पास ले गया। डॉ. पांडेय बड़े हंसमुख व्यक्ति थे और उससे भी उन्होंने बेतकल्लुफी से बात शुरू की। लेकिन जैसे ही उन्होंने एक्सरे रिपोर्ट देखी एकदम गम्भीर हो गये और उससे बोले ''आपने बहुत देर कर दी, अब तो आपका पांव भी नहीं उठता होगा।'' उसने अपना पांव उठा कर दिखाया तो भी वे सहज नहीं हुए और कहा ''आप बिना और देर किये सीधे बम्बई टाटा हास्पिटल जाइये कहीं और वक्त बरबार न करें।'' समारोह के उद्घाटन का समय हो चला था सो वह विजय से रात में मिलने को कह कर निकल लिया।

रात में विजय आया तो बहुत परेशान था। वह बहुत ही 'मैटर ऑफ फैक्ट' किस्म का इंसान है जो आपके स्वास्थ्य के बारे में खराब से खराब जानकारी भी बिना किसी लागलपेट के बता देने के लिए विख्यात है। लेकिन उस दिन वह बहुत भावुक था। आते ही बोला ''तेरे ही साथ ऐसा क्यों होना था।''

''डॉक्टर पांडेय के रिएक्शन से यह तो मैं समझ गया हूं कि मामला गम्भीर है और टाटा हास्पिटल का मतलब कैंसर होता है यह भी जानता हूं। पर तू मुझे ठीक से सब बता ताकि मैं अपने को मानसिक रूप से तैयार कर सकूं।''

''तेरा बोन ट्यूमर अंदर अंदर बहुत फैल चुका है और इसका आपरेशन मुश्किल होगा। किसी बहुत अच्छे आर्थोपेडिक सर्जन की जरूरत पड़ेगी।''

''सबसे बुरी स्थिति क्या हो सकती है?''

''जांघ के बिल्कुल ऊपर से टांग काटनी पड़ सकती है।''

''अच्छा किया तूने बता दिया... अब मैं अपने को तैयार तो कर सकूंगा।''

''यह जिनेटिक डिसआर्डर है लेकिन हजारों में से किसी एक केस में यह ट्यूमर में लिंगनेंट टर्न होते हैं। तेरे साथ यह क्यों होना था?''

''क्योंकि मैं हजारों में से एक हूं। चल खाना खाते हैं।''

जब भी हम किसी बड़ी मुसीबत में फंसते हैं, या किसी बड़ी व्याधि के शिकार होते हैं, तो सबसे पहले हमारी प्रतिक्रिया यही होती है मेरे ही साथ ये क्यों होना था? हम सबको लगता है कि हमारे पास तो अपने अपने गंडे ताबीज हैं, मृत्युंजय कवच है, तो हमें क्यों जगत गति व्यापेगी?

'मिटाया मुझको होने ने...'

उसे यह तो बिल्कुल नहीं लगा कि 'मैं ही क्यों', पर हां यह जरूर लगा कि अभी क्यों? क्योंकि जैसा वह बता आया है उन दिनों वह भावनात्मक और आर्थिक स्तर पर एक बड़ी अस्थिरता के दौर से गुजर रहा था, ऐसे में सब कुछ को मझधार में छोड़ कर इलाज के लिए कैसे चला जाये?

अब तक हर संकट से पार पा लेने का एक अदम्य साहस उसमें रहा था, जिसके चलते एक खास तरह की बेफिक्री भी उसमें आ गयी थी। कल की चिन्ता उसने कभी नहीं की थी, इसी के चलते कभी कुछ बचाने या जोड़ लेने की आदत भी उसे नहीं थी। 'कल की कल देखेंगे' वाला स्वभाव उसका हमेशा से रहा था। अब पहली बार जीवन में कल की शंका उसे व्यापी थी 'काश कि कुछ मोहलत होती'। लेकिन जब जिन्दगी इम्तिहान लेने पर उतारू हो तो मोहलत कैसी?

सो वह बम्बई पहुंचा टाटा हास्पिटल बिना किसी जान पहचान या रेफरेंस के। उसके पास था विजय का लिया 'एक्सरे' और उसके द्वारा दी गयी जानकारी। 'टाटा हास्पिटल' के ओपीडी में डॉक्टर को उसने वह एक्सरे दिखाया तो उसने उसे सी.टी. स्केन करवा लेने को कहा और एक प्राइवेट क्लीनिक का पता दे दिया। सी.टी. स्केन देख कर डॉक्टर ने कहा ''कुछ नहीं है, एक कोनिकल ग्रोथ है, हम आसानी से इसे निकाल देंगे। उसने कहा जयपुर में उसे बताया गया है कि ट्यूमर अंदर बहुत फैल चुका है और उसका पांव काटना पड़ सकता है, तो उसे फिर आश्वस्त किया गया कि ऐसा कुछ नहीं है। मामूली ऑपरेशन करना होगा और एक सप्ताह हस्पताल में रह कर पंद्रह दिन में वह बिल्कुल ठीक हो जायेगा। उन्होंने उसकी 'जोनिडिल वॉयप्सी' की, उसमें भी मेलेंगनेन्सी नहीं पायी गयी। उसे लगा हफ्ते दस दिन की बात है तो क्यों न निपट ही लिया जाये। उसने ऑपरेशन की तारीख ली, और प्राइवेट वार्ड में भर्ती हो गया। भर्ती होते हुए उसने फिर ताकीद की कि वह चल कर आया है और चल कर ही वापस जायेगा, और यह भी कि क्या 'आर्थोपेडिक सर्जन' की आवश्यकता बिल्कुल नहीं होगी? उसे फिर से आश्वस्त किया गया कि ऐसा कुछ नहीं है, और यह एक मामूली ऑपरेशन है। भर्ती होने के तीसरे दिन उसे ऑपरेशन के लिए ले जाया जा रहा था तो वह निश्चिन्त था। उसे जब होश आया तो वह अस्पताल के अपने कमरे में था। उसे लगा सब निपट गया, लेकिन कमरे में अजीब तनाव की स्थिति थी।

पता चला उसका ऑपरेशन तो हुआ ही नहीं है। ऑपरेशन थियेटर में चीरे के बाद डॉक्टरों को वह दिखा जो जयपुर में डॉ. पांडेय और विजय को उस एक 'एक्सरे' से दिख गया था। सो बिना ऑपरेशन किये उसे 'स्टिच'करके वापस कर दिया गया था, और अब बम्बई के मशहूर 'आर्थोपेडिक सर्जन' डॉक्टर बावड़ेकर को उसका केस सौंपा गया है। डॉक्टर बावड़ेकर बम्बई के 'हिन्दूजा अस्पताल' के कन्सलटेण्ट थे और माहीम में अपना क्लीनिक भी चलाते थे। 'टाटा अस्पताल के सुपरिन्टेन्डेण्ट डॉक्टर राव ने उसके केस की गम्भीरता को देखते हुए डॉक्टर बावड़ेकर से विशेष आग्रह किया था। लेकिन वे अब सारे टेस्ट दोबारा करवाने वाले थे, जोकि उसका जख्म भरने के बाद ही सम्भव होंगे।

दोबारा सारे टेस्ट। 1992 में भी वे टेस्ट खासे महंगे थे। फिर इतने दिन बम्बई में रहने का खर्च। उसने जिद की कि जो भी हो वह अभी ऑपरेशन नहीं करायेगा। बाद में कभी देखा जायेगा। परंतु इसके लिए कोई नहीं माना। डॉक्टरों का भी यही कहना था कि ऑपरेशन तुरंत होना चाहिए। उसके चित्रकार मित्र शैल चोयल इसदौरान बराबर वहां बने हुए थे, और सब संभाले थे। उन्होंने सबको आश्वस्त किया और पैसे के जुगाड़ के लिए कुछ दिनों के लिए बम्बई से चले गये। अब जीवन में पहली बार उसे पैसे का महत्व समझ में आ रहा था, पर जिस स्थिति में वह फंस चुका था उसमें उसके करने को कुछ बचा नहीं था। उसे रह रह कर उन डॉक्टरों पर क्रोध आता जिन्होंने उसे आश्वस्त किया था कि बस एक हफ्ते के हॉस्पिटेलाजेशन के बाद सब ठीक हो जायेगा, वरना वह किसी भी सूरत में अभी ऑपरेशन के लिए तैयार न होता।

लेकिन फिर उसने सोचा कम से कम उन्होंने कोई बेजा छेड़खानी तो नहीं की, और अब उसका सही इलाज भी सम्भव होगा। वरना शायद वह डॉक्टर बावड़ेकर जैसे सिद्ध सर्जन तक पहुंचता भी नहीं। सो उसे इसे एक शुभ संकेत समझ कर, भविष्य के लिए अपने को मानसिक रूप से तैयार करना चाहिए। जो भी हो उसे इस व्याधि से सही सलामत बाहर आना है तभी तो वह अपने सारे काम पूरे कर पायेगा। सही सलामत और जल्दी से जल्दी।

इस दौरान उसने अपने पढ़ने के लिए जो किताबें साथ ली थीं उनमें मीर और गालिब के दीवान भी थे। मीर उसके बहुत पसंद के कवि हैं, पर हस्पताल के बिस्तर पर वह उन्हें बिल्कुल नहीं पढ़ पाया, वहां तो उसे हौसला दिया गालिब ने। कविता आपके लिए कितना बड़ा सम्बल हो सकती है इसका विस्मयकारी अहसास उसे उन्हीं दिनों हुआ। यह विस्मय आज भी ज्यों का त्यों कायम है।

यों तो किसी भी अस्पताल, लेकिन विशेषकर टाटा जैसे कैंसर अस्पताल का अनुभव किसी को भी भीतर तक विचलित कर देने वाला होता है। वहां मानवीय पीड़ा से जैसा साक्षात्कार आपका होता है उसे सहन कर पाना दुष्कर है। और भी दुष्कर है उन छोटे छोटे शिशुओं को भीषण कष्ट में देखना जिन्हें पता ही नहीं है कि कष्ट के अलावा भी कोई जीवन होता है। इस सबके बीच आप अपना आप बिसर जाते हैं, और उन डॉक्टरों तथा नर्सों के लिए असीम श्रद्धा से भर उठते हैं जो दिन रात इन लोगों की सुश्रुषा में लगे हैं। जरूर इन सबमें बुद्ध का कुछ न कुछ अंश है नहीं तो वे यह नरक छोड़ कर भाग न जाते?

इस बीच वह बराबर जैसे अपने को याद दिलाता मैं पांव पर चल कर यहां आया हूं और पांव पर चल कर ही यहां से जाऊंगा। मुझे निष्क्रिय और निरर्थक जीवन नहीं चाहिए। लेकिन इसकी भी योजना बनाता कि अगर पांव कट ही गया तो वह क्या करेगा। ह्वीलचेयर और बैसाखियों के सहारे भी तो वह अपने सारे काम सम्पन्न कर सकता है। वह कैसे नहाये निबटेगा से लेकर नाटक डायरेक्ट करने तक के अपने सारे कामों को वह बिना टांग के अपने को करते देखने की कल्पना करता। लेकिन फिर उसमें विश्वास जागता कि नहीं, वह चल कर आया है चल कर ही वापस जायेगा।

टेस्ट पूरे हुए तो डॉक्टर बावड़ेकर (ए.वी. बावड़ेकर) उसे देखने आये। वे छोटी कदकाठी के सौम्य व्यक्ति थे, लेकिन बम्बई के चिकित्सा जगत में उनकी बड़ी ख्याति थी। इसका अंदाजा उसे सबसे पहले तब हुआ जब अपने टेस्टों के दौरान टेक्नीशियंस से लेकर रिपोर्ट लिखने वाले डॉक्टरों को अतिरिक्त सतर्कता बरतते देखा। डॉ. बावड़ेकर का केस है, यह हर कहीं हर किसी से सुनने को मिलता। अपने पेशे में ऐसा सम्मान विरलों को ही प्राप्त होता है। रिपोर्ट्स देख कर

डॉ. बावड़ेकर ने उससे पूछा ''वह क्या करता है।'' जब उसने बताया 'थियेटर' तो उन्होंने कुछ कहा तो नहीं लेकिन उनके चहेरे पर जो भाव आया उसी से वह समझ गया कि डॉक्टर बावड़ेकर भी अन्य मराठियों की तरह रंगकर्म की ओर रुझान रखने वाले हैं, और रंगकर्मियों से स्नेह करते हैं। उसके लिए यह कम आश्वस्ति की बात नहीं थी। शायद उसी क्षण उसका उनसे एक अलग तरह का रिश्ता बन गया था जो डॉक्टर और मरीज के रिश्ते से कहीं अधिक गहरा और आत्मीय था, जिसका अहसास उसे बाद के वर्षों में लगातार होता रहा। काफी देर रिपोर्ट्स देखते रहने के बाद उन्होंने कहा ''यू आर टू यंग, आई विल टेक इट अप ऐस ए चैलेंज। आई थिंक नाइन्टी परसेण्ट आई विल बी एबल टू सेव यूअर लिम्ब।'' उसे किस्से कहानियों के फरिश्ते याद हो आये। सफेद पैण्ट शर्ट में सामने बैठा यह कोई फरिश्ता ही उसके लिए अवतरित हो गया है, जो कह रहा है ''आई विल टेक इट अप ऐस चैलेंज।'' उसने कृत कृत भाव से कहा ''डॉक्टर साहिब, आई हैव नो वर्ड्स टू थैंक यू, बट आई हैव ए टोटल फेथ दैट यू विल सेव इट हंड्रेड परसेण्ट।'' एक छोटा सा स्मित उनके चेहरे पर आया और वे उठ गये। चलते हुए कहा ''नाउ नो स्मोकिंग फोर फोर्टी एट आवर्स।''

कैंसर अस्पताल में तम्बाकू और सिगरेट के आदी लोगों को मुंह, गले और फेफड़े के कैंसर से ऐसे वीभत्स रूप देखने को मिलते हैं कि कोई भी भला आदमी जिन्दगी भर के लिए इनके सेवन से तौबा कर ले। आजकल सिगरेट की डिब्बियों पर जो चित्र छापे जाते हैं, वे भी इसी उद्देश्य से कि लोग उनसे डर कर यह लत छोड़ दें पर कहां? मौत तो हमेशा किसी दूसरे की होती है, आप थोड़े ही न किसी के साथ मर लेते हैं। डिब्बियों पर लाख चित्र और चेतावनियां छपी रहें, पीने वाले मजे में धुआं उड़ाते रहते हैं। वह खुद अभी तक अपनी इस लत से मुक्त नहीं है। टाटा अस्पताल में जिस कमरे में वह था, बम्बई के हिसाब से वह अपेक्षाकृत काफी बड़ा कमरा था, और दो बड़ी बड़ी खिड़कियों के चलते हवादार भी। तो वह दरवाजा बंद करवा के पंखा तेज करवा कर, मजे से सिगरेट फूंकता था। कोई दरवाजा खटखटाता तो सिगरेट खिड़की से बाहर। लेकिन उसकी बू बास कहां फेंकता?

ऑपरेशन के बाद उसे होश आया तो वह अपने कमरे में नहीं एक वार्ड में था आदमजात नंगा। हर ओर बड़ी बड़ी मशीनों से वायर्ड (Wired)। सबसे पहले उसने अपना पांव देखना चाहा, पर जिस तरह उसे सीधा लेटाया हुआ था पांव उसे नजर नहीं आ रहे थे और हिलने डुलने में वह असमर्थ था। उसे लग तो रहा था कि पांव है, पर उसने सुन रखा था कि अंग के कट जाने पर भी काफी समय तक उसके होने का अहसास बना रहता है सो निश्चित नहीं था। पास में कोई था भी नहीं जिससे पूछता। कुछ देर बाद एक व्यक्ति आया और उससे बिना कुछ बात किये उसका वह पांव उठा कर उसमें ड्रिल से आरपार छेद किया, बिल्कुल जैसे खाली लकड़ी में करता है, और एक मोटा कीला अंदर डाल कर पांव को पलंग से खींच कर बांध दिया।

''तो पांव है... कटा नहीं।'' कैसी अपार खुशी उसे हुई।

उसने अंदाजा किया कि वह 'इन्टेन्सिव केयर वार्ड' में है। थोड़ी थोड़ी देर में कोई आता और बिना उससे कोई बात किये उन मशीनों को मॉनीटर करता जिनमें वह बंधा था, या किसी ड्रिप में कोई दवा इंजेक्ट करता और चला जाता। वह कुछ पूछता तो कोई जवाब न मिलता। सारा व्यवहार बिल्कुल मशीनी। आपस में भी उसके बारे में कोई बात होती तो उसका नाम नहीं बेड नम्बर बोला जाता। अपना नंगापन और वहां के स्टाफ का ऐसा व्यवहार उसे बेहद खल रहा था। वह उनसे अपने प्रति मानवीय व्यवहार चाह रहा था।

तब वह नर्स आयी और उसकी गर्दन थोड़ी उठा कर एक छोटा सा हुक्का उसके मुंह में ठूंसने लगी। वह दरअसल उसे स्टीम देना चाह रही थी, ताकि उसके फेफड़े ठीक रहें। पर उसने मुंह फेर कर नाराजगी से पूछा ''ये क्या कर रही हो?''

''ये तुम्हें लेना है।'' अब उसे बोलना पड़ा।

''कुछ नहीं लेना है मुझे।''

'स्टीम है, तुम्हारे 'लंग्स' के लिए जरूरी है।''

अब वह मुस्कराया ''तो ऐसा बोलने का।'' तब वह नर्स भी मुस्करा दी। उसे लगा जैसे उसने अपने अस्तित्व की लड़ाई जीती हो।

ड्रिप और'ब्लड प्लाज्मा' की बोतलों, थैलियों के अलावा जो मशीनें वहां थीं वह उसकी शारीरिक क्रियाओं को 'मॉनीटर' करने के लिए थीं। वह काफी देर से गौर कर रहा था कि वार्ड में तैनात युवा डॉक्टर उसके ब्लड प्रेशर को लेकर कुछ परेशान है। वह थोड़ी थोड़ी देर में आकर उसका ब्लड प्रेशर लेता। ब्लड प्रेशर का बड़ा मॉनीटर उसके एकदम सिरहाने लगा था, जिसे वह देख नहीं पा रहा था। इस बार वह डॉक्टर ब्लड प्रेशर लेने आया तो उसने कहा ''मेरा ब्लड प्रेशर ठीक है, तुम्हारा यह मॉनीटर खराब है।'' डॉक्टर मुस्करा कर जाकर सामने बैठ गया। तब उसने कहा कि वह उसके कमरे में फोन करके आज के अखबार उसे मंगवा दे। थोड़ी देर में अखबारों का पूरा बंडल उसके लिए आ गया, और वह मनोयोग से उन्हें पढ़ने में जुट गया। डॉक्टर सामने बैठा उसे हैरत से देख रहा था। थोड़ी देर बाद वह उठा और सामने के बेड से खोल कर दूसरा मॉनीटर ले आया। उसने हंस कर कहा ''मैं तो कह रहा हूं तुम्हारा मॉनीटर खराब है, मेरा ब्लड प्रेशर ठीक है।'' उसने ब्लड प्रेशर लिया। फिर, एक और मॉनीटर खोल कर लाया और दोबारा उसका ब्लड प्रेशर नापा। अब वह बोला ''यू आर राइट, यह मॉनीटर ही खराब है, यूअर ब्लड प्रेशर इज ओके।''

इसके दूसरे दिन उसे उसके कमरे में भेज दिया गया। ऑपरेशन से पहले वह चल फिर लेता था, बैठ लेता था लेकिन अब उसे सीधा लेटे रहना होता था। पांव में वजन लटका कर उसे ऊंचा करके बांध दिया गया था। नर्स रोज उसका बदन पोंछ कर,उसे हल्की करवट दिलवा कर उसकी पीठ पर अच्छी तरह पाउडर मलती। ऑपरेशन का चीरा काफी बड़ा था लगभग बारह इंच। उसकी ड्रेसिंग होती। अब धीरे धीरे उसे चीजें पता चल रही थीं। ऑपरेशन में साढ़े नौ घंटे लगे सिर्फ उसका पांव बचाने के लिए डॉक्टर बावड़ेकर और उनके सहयोगियों ने इतनी मेहनत की। निश्चित ही यह ऑरेशन डॉ. बावड़ेकर जैसे सिद्ध सर्जन के लिए भी एक चैलेंज ही रहा होगा। उसे यह भी पता चला कि राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के युवा स्नातक, जो बम्बई में फिल्मों के लिए संघर्ष कर रहे हैं, बड़ी संख्या में उसके लिए रक्त देने आये, इनमें अशोक बांडीया के साथ अतुल तिवारी की विशेष भूमिका थी। वही अतुल जिवारी जो 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' में उसके 'चमकू' नाटक के दौरान उन पांच छः छात्रों में शामिल थे जिन्हें विद्यालय से निष्कासित करने की बात थी। शैल चोयल तथा अन्य आत्मीय तो थे ही। कितने कितने लोगों ने उसके लिए क्या क्या किया है क्या कभी वह इन सबका प्रतिदान कर पायेगा? नहीं सम्भव ही नहीं है, वह सिर्फ इन सबके प्रति कृतज्ञ हो सकता है जो कि वह आज भी है।

लेकिन ऑपरेशन की यह प्रक्रिया अभी समाप्त कहां हुई थी अभी तो उसे 'हिन्दूजा अस्पताल' में स्थानांतरित किया जाना है जहां उसका 'बोन ग्राफ्टिंग का ऑपरेशन होगा। 'बोन ग्राफ्टिंग' और वह भी 'हिन्दूजा' में वह तो बहुत महंगा अस्पताल है?

डॉक्टर बावड़ेकर यह ग्राफ्टिंग करेंगे और वे 'हिन्दूजा' में हैं तो अब यह ऑपरेशन वहीं होना है।

यह सिलसिला तो खत्म ही नहीं होने को आ रहा कहां फंस गया वह? लेकिन अब तो वह बिस्तर से उठ कर कहीं निकल भी नहीं सकता। चारों खाने चित जो पड़ा है सो जो भी है उसे भुगतने के सिवा अब कोई रास्ता नहीं। इतना विवश वह अब तक कभी नहीं हुआ था खुदमुख्तारी ही उसका स्वभाव रहा था।

'टाटा' से जब वह स्ट्रेचर पर 'हिन्दूजा' ले जाया जा रहा था तो जो नर्स अब तक उसकी देखभाल करती रही थी, बोली ''मैंने बहुत मेहनत की है, अब आओगे तो 'बेड सोर' (Bed-sore) लेकर मत आना।'' नर्स ने सचमुच पूरे मनोयोग से उसकी परिचर्या की थी और भावुक होने की हद तक वह अपने को उसका कृतज्ञ अनुभव करता था, तब भी एक झटके से उसने कहा ''अब मैं यहां नहीं आने वाला।'' 'टाटा अस्पताल' का अनुभव यही है मरीज लौट लौट कर वहां आते हैं, पहले से और बिगड़ी स्थिति में। सो नर्स ने जब आश्चर्य से उसको देखा तो उसे अचरज नहीं हुआ।

'टाटा' के प्राइवेट वार्ड का किराया ज्यादा नहीं था और कमरा भी खासा बड़ा और खुला खुला। 'हिन्दूजा'के उसके कमरे में एक और मरीज था और कमरा भी अपेक्षाकृत कहीं छोटा, लेकिन खर्च 'टाटा' से चार गुना ज्यादा। नर्स और दूसरी परिचर्या भी उतनी अच्छी नहीं थी सो उसे वहां बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था।

शाम को डॉक्टर बावड़ेकर आये तो उन्होंने बताया ट्यूमर तो पूरा ठीक से निकाल दिया है लेकिन इस प्रक्रिया में 'पेलविक बोन' को काफी स्क्रेप करना पड़ा है जिससे वह ज्वाइंट ढीला पड़ गया है, उसे बोन ग्राफ्टिंग के द्वारा भरना होगा। डॉक्टर बावड़ेकर ने यह भी बताया कि यह ग्राफ्टिंग करने से दो स्थितियां हैं एक यह कि पांव थोड़ा छोटा हो जाये या दूसरी स्थिति कि वह नीचे जमीन पर न बैठ पाये। तो उसने कहा पांव थोड़ा छोटा हो तो ऊंचे तले का जूता पहन कर काम चलाया जा सकता है, लेकिन पांव पूरा न मुड़े तो कठिनाई अधिक होगी।

लेकिन ग्राफ्टिंग से पहले डॉक्टर बावड़ेकर जब एग्जामिन किया तो पाया उसे 'बोन इन्फेक्शन डेवेलप' हो गया है, तो ग्राफ्टिंग तब तक नहीं हो सकती जब तक यह इन्फेक्शन खत्म न हो और बोन इन्फेक्शन काफी समय लेता है। उसे तो जैसे अवसर मिला, तपाक से बोला ''उस स्थिति में क्यों न वह अस्पताल से कहीं और शिफ्ट कर ले। इन्फेक्शन खत्म होने तक तो उसे बस दवाई लेनी होगी।'' डॉक्टर बावड़ेकर नहीं चाहते थे कि वह अस्पताल से जाये, लेकिन जब उसने कहा वह अस्पताल का खर्च बर्दाश्त नहीं कर पायेगा तो उन्होंने बेमन से उसे बम्बई में ही कहीं 'शिफ्ट' करने की अनुमति दी।

बम्बई में आपको सब मिल जायेगा, सिवा लोगों के घरों में जगह के। जहां लोगों के पास अपने रहने के लिए जगह नहीं है वहां किसी बिस्तरनशीन मरीज और उसकी परिचर्या में लीन पत्नी के लिए जगह निकालना लगभग असम्भव है। लेकिन अशोक बाठीया ने इसे भी सम्भव बनाया । राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के स्नातक अशोक उदयपुर के मूल निवासी हैं, जो अब बम्बई में बस गये हैं, और फिल्म तथा टेलिविजन में काम करते हैं। उनकी बंगाली पत्नी माला भी फिल्मों के लिए कॉस्ट्यूम आदि करती हैं। व्यापारी पारिवारिक पृष्ठभूमि के चलते, अशोक ने बम्बई आगमन के साथ ही पश्चिमी अंधेरी के इलाके में दो बेडरूम का एक फ्लैट ले लिया था, जिसमें उस समय यह युवा दम्पत्ति अपने दो या तीन साल के बेटे नमन के साथ रह रहे थे। अशोक से

उसकी पहली पहचान 1975 में उस समय हुई थी जब वह एक थियेटर वर्कशॉप के लिए वहां गया था। अशोक बहुत ही मिलनसार और हमेशा दूसरों की सहायता में तत्पर व्यक्ति हैं, सो वह उसे तुरंत अपने यहां शिफ्ट करने को तैयार हो गये।

अशोक का फ्लैट चौथी मंजिल पर था और लिफ्ट में स्ट्रेचर समा नहीं सकता था, तो बेहद ही संकरी और घुमावदार सीढ़ियों से उन्होंने और अतुल तिवारी ने अच्छी खासी मशक्कत से उसे ऊपर पहुंचाया। अब तो उसके मजे हो गये। दोपहर में बियर, शाम को रम और दिन भर सिगरेट फूंकने की आजादी। हर दूसरे तीसरे दिन स्पेशयल्टी रेस्तराओं से अलग अलग तरह के खाने। अशोक का घर वैसे भी अड्डेबाजी के लिए प्रसिद्ध था, अब उसके यहां रहते तो हर दिन कोई न कोई आता रहता। अच्छा भला पिकनिक का माहौल था।

धीरे धीरे उसने स्थितियों को अपने नियंत्रण में लेना शुरू किया। सबसे पहले तो उसने टाटा अस्पताल के उस हाउस सर्जन को फोन किया जिससे उसकी दोस्ती सी हो गयी थी, और जो उसे काफी कार्यकुशल लगा था। अशोक जाकर उसे घर ले आये। वह अपने पूरे साज सामान के साथ आया। पहले तो उसने वह रबड़ का पाइप जो टाटा में ऑपरेशन के समय ड्रेनेज के लिए डाला था, निकाल बाहर किया। उसे हैरत थी कि 'हिन्दूजा' से कैसे उसे बिना वह पाइप निकाले भेज दिया गया। फिर उसने उसके चीरे की जांच की और ड्रेसिंग के लिए किसी को बुलाने की अब कोई जरूरत नहीं बतायी। छोटी मोटी ड्रेसिंग दरकार थी, वह घर पर ही कोई कर सकता था। अब तक डॉक्टर बावड़ेकर की क्लीनिक से कम्पाउडर हफ्ते में दो दिन आ रहा था। डॉक्टर को छोड़ कर अशोक आये तो उन्होंने बताया वह लगातार एक ही बात करता रहा कि उसने ऐसा मरीज नहीं देखा, और यह भी कि उसकी अब तक की प्रोग्रेस से वह काफी खुश था।

अब वह और एक कदम आगे बढ़ा। उसने अशोक से पूछा कि क्या वह किसी आर्थोपीडिशियन को जानता है? अशोक ने किन्हीं डॉक्टर भंडारी का नाम लिया तो उसने उन्हें बुलाने को कहा। डॉक्टर भंडारी को उसने अपने ऑपरेशन की तफसील बता कर पूछा कि वह देखें कि क्या उसे बोन ग्राफ्टिंग की आवश्यकता होगी? डॉक्टर बावड़ेकर के नाम का कोई संदर्भ भी उसने कहीं नहीं आने दिया। डॉक्टर भंडारी ने जब पूछा कि ऑपरेशन कहां हुआ, तो उसने सिर्फ 'टाटा' का नाम लिया। डॉक्टर भंडारी ने उसके पांव को ऊपर धक्का दिया, फिर नीचे खीचा, अच्छे से इत्मीनान करके उन्होंने जवाब दिया ''ग्राफ्टिंग की तो आपको जरूरत नहीं लगती।'' उसका जी चाहा वह उनका मुंह चूम ले, लेकिन वह उसी तरह गम्भीर बना रहा।

अब 'नेक्स्ट मूव' होगा डॉक्टर बावड़ेकर से मिलना, लेकिन उन्हें अशोक के यहां तो बुलाया नहीं जा सकता। उनके पास तो उसे खुद ही जाना पड़ेगा तो फिर वही स्ट्रेचर, सीढ़ियां और एम्ब्यूलेन्स! पर कोई चारा नहीं, जाना तो पड़ेगा। सो अशोक, अतुल और कुछ मित्रों ने फिर उसे स्ट्रेचर पर लादा और चार मंजिल नीचे लेकर आये। अब उसे समझ आया कि इन सीढ़ियों से स्ट्रेचर पर किसी को ऊपर चढ़ाना फिर आसान है, नीचे उतारना और भी कठिन।

डॉक्टर बावड़ेकर ने उसका एक्सरे करवाया, फेफड़े जांचे, 'ब्लड प्रेशर' नापा, उसका जख्म देखा। बोले ''सब कुछ ठीक है, लेकिन 'बोन इन्फेक्शन' अभी बना है, उसमें वक्त लगेगा।''

उसने पूछा ''कितना?''

''वह तो कहा नहीं जा सकता।''

''तो डॉक्टर साहेब मुझे उदयपुर जाने की इजाजत दीजिये, यहां दोस्त के यहां मैं कब तक पड़ा रहूंगा?''

डॉक्टर बावड़ेकर को सोच में पड़ा देख कर उसने फिर कहा ''मैं वहां से फोन पर आपसे बराबर सम्पर्क में रहूंगा, और रेगुलर मानिटरिंग के लिए वहां किसी अच्छे आर्थोपेडिक सर्जन को दिखाता रहूंगा। उसके लिए जो भी हिदायत हो आप मुझे लिख कर दे दें।

''जाओगे कैसे? हवाई जहाज से जा सकते हो?''

''स्ट्रेचर पर?''

''हां, प्रोवीजन है। मैं एयरलाइन के लिए चिट्ठी बना देता हूं।''

और उन्होंने वह चिट्ठी बना दी। उसे लगा एयरलाइन के लिए वह चिट्ठी उसकी मुक्ति का परवाना है। अब तक सब ठीक बैठ रहा है, तो इंशा अल्लाह आगे भी सब ठीक ही होगा।

उसने ह्वीलचेयर पर तो लोगों को हवाई यात्राएं करते देखा था, पर स्ट्रेचर पर किसी को हवाई यात्रा करते नहीं देखा था। इन दिनों में भी कभी ऐसा इत्तिफाक नहीं हुआ। अशोक को एयरलाइन के दफ्तर में कई 'फार्मेलिटिज' से गुजरना पड़ा, तब चार सीटों का किराया लेकर उसके स्ट्रेचर को हवाई जहाज में एक साइड की चार सीटें खोल कर उनकी जगह कसा गया, और वह एक स्ट्रेचर से दूसरे स्ट्रेचर पर होता हुआ, उदयपुर में अपने घर पहुंचा, जहां उसके पिता और दोनों बच्चे बेसब्री से इंतजार कर रहे थे। अस्पताल जाते हुए उसे सब कुछ आठ या दस दिन का मसअला लग रहा था, अब लौटा है तो चालीस दिन लगा कर, और वह भी स्ट्रेचर पर।

आर्थोपेडिक सर्जन डॉक्टर लढ्ढा की ख्याति उदयपुर के अस्पताल में एक अति उत्साहित डॉक्टर की थी, जो किसी अतिरेक तक भी जा सकते थे, तो उसे वहां अपने लिए वही सबसे उपयुक्त लगे। डॉक्टर लढ्ढा को उसने अपनी रिपोर्ट्स और डॉक्टर बावड़ेकर की टिप्पणी दिखा कर कहा ''डॉक्टर मैं जानता हूं आप ही मुझे उठा कर खड़ा कर सकते हैं, इसीलिए बम्बई से मैं यहां चला आया हूं।'' उसके बाद तो डॉक्टर लढ्ढा प्राणपण से उसके साथ जुट गये। रोज दोपहर को आते और दो ढाई घंटे उसके पांव को 'एक्सरसाइज' करवाते। अपनी ड्रेसिंग के लिए उसने बैरागी जी को नियत कर लिया था। बैरागी उदयपुर अस्पताल के आर्थोपेडिक विभाग में लम्बे समय तक कम्पाउडर का कार्य करके हाल ही में सेवानिवृत हुए थे, और उनका अनुभव किसी भी डॉक्टर से ज्यादा ही था।

उसके चीरे का घाव जल्दी ही पूरी तरह भर गया, लेकिन जहां नली लगी थी वह छेद अभी भी बना था, और उससे लगातार काफी 'अजिंग' हो रही थी। बैरागी जी काफी अंदर तक उस घाव को साफ करते फिर खूब रूई और पट्टियां रख कर उसकी 'ड्रेसिंग' करते। लेकिन कुछ ही देर में सारी पट्टियां गीली हो जातीं और उसके कपड़े खराब हो जाते। बैरागी जी कहते ''जब तक इन्फेक्शन है यह घाव नहीं भरेगा।''

पांच सात दिन की डॉक्टर लढ्ढा की मेहनत ने उसे बिस्तर में बैठने लायक कर दिया, फिर दसवें या बारहवें दिन वे बैसाखी ले आये और बोले ''आज आपको खड़ा करते हैं।'' बैसाखियों के सहारे, लगभग दो महीने बाद वह अपनी एक टांग पर खड़ा हुआ और फिर पूरा एतिहात बरतते हुए उसने दूसरा पांव जमीन पर रखा। पांच सात दिन की मशक्कत के बाद, बैसाखियों के सहारे चलते हुए उसने धीरे धीरे दूसरे पांव पर भी वजन लेना शुरू किया, और घर के बाहर आकर बरामदे में बैठा। बाहर आया तो उसकी आंखें चौंधिया गयीं। इतना अर्सा कमरों में बिस्तर पर रहते हुए उन्हें इतनी रोशनी की आदत ही नहीं रही थी।

अब तो वह टेबल पर ऊंचा बैठ कर अपने से भी टांग की एक्सरसाइज करने लगा और जल्द ही बैसाखी छोड़ कर लकड़ी के सहारे चलना शुरू कर दिया। तभी संगीत नाटक अकादमी,

दिल्ली से उसे साधारण सभा की मीटिंग का नोटिस आया। यह मीटिंग पूना में होनी थी। शैल चोयल भी ललित कला अकादमी की ओर से नॉमिनेटड होने के कारण इस मीटिंग में निमंत्रित थे। उसे लगा यह अच्छा अवसर है, पूना से लौटते हुए बम्बई में डॉक्टर बावड़ेकर को दिखाया जा सकता है शैल भी साथ होंगे तो और सुविधा रहेगी। पूना की इसी मीटिंग में उसके बड़े भाई मोहन महर्षि को अकादमी पुरस्कार देने का निर्णय हुआ, जो उसके और शैल के न रहने पर हरगिज न होता।

लकड़ी टेकता वह डॉक्टर बावड़ेकर के माहीम स्थित क्लीनिक पहुंचा तो उनकी सेक्रेटरी ने उससे 'विजिटर्स रूम' में बैठने को कह कर डॉक्टर बावड़ेकर को भीतर इत्तिला कर दी। दस मिनट बाद अपने कक्ष से निकल कर डॉक्टर बावड़ेकर सीधे उस वार्ड में गये जहां स्ट्रेचर पर मरीज लाये जाते थे। वहां उसे न पाकर उन्होंने मराठी में ऊंची आवाज में पूछा ''भानुभारती कुठेआहे?'' वह निकल कर बाहर आ गया। उसे देख कर डॉक्टर बावड़ेकर ने चकित होकर कहा ''यू केम वाकिंग?''

''यस डॉक्टर साहिब, आई केम वॉकिंग। आल बिकॉज आफ यूअर इफर्ट्स।''

उनकी खुशी का ठिकाना नहीं था। वह उसे अपने साथ अपने कक्ष में ले गये। उसके पांव का परीक्षण करके बोले ''यू डोण्ट नीड ग्राफ्टिंग। यू आर फाइन। ओनली द इन्फेक्शन इज परसिसटिंग, बट यू कैन मैनेज विद इट। वी विल गिव इट सम मोर टाइम, इफ इट डसण्ट हील दैन वी मे हैव टू गो फॉर एन ऑपरेशन।''

जब उसने उन्हें बताया कि टाटा के डॉक्टर ने उसे 'कीमियोथेरेपी' के लिए बोला है, तो उन्होंने एकदम मना कर दिया ''नो यू डोण्ट नीड इट।''

यह तो डॉक्टर बावड़ेकर के 2002 में न रहने के बाद उनकी लिखी किताब से उसे पता चला कि वे खुद आंत के कैंसर का शिकार हो गये थे, और स्वयं डॉक्टर होते हुए, उन्होंने बम्बई के सारे डॉक्टरों के इसरार के बाद भी कीमियोथेरेपी से इन्कार कर दिया था। इन डॉक्टरों में से अधिसंख्य उनके मित्र थे और इस वजह से उनसे नाराज भी हुए थे, लेकिन उनका कहना था कि उन्हें लम्बा नहीं, अच्छा और सक्रिय जीवन चाहिए। और उन्होंने एक कर्मयोगी की तरह लम्बे समय तक कैंसरमुक्त जीवन जीया। कोई दिन ऐसा नहीं जाता था जब वे दिन में दो या तीन ऑपरेशन न करते हों, और फिर 'हिन्दूजा' और अपनी क्लीनिक में प्रतिदिन सत्तर अस्सी पेशेन्ट्स न देखते हों। उनसे समय लेने के लिए हमेशा लम्बी कतार होती थी, और लोगों को दो दो महीने इंतजार करना होता था। कैंसर से अपनी लड़ाई का अनुभव उन्होंने मराठी में लिखा था जो अंग्रेजी में छपा उनकी मृत्यु के बाद। हालांकि इस किताब को लिखने का उनका उद्देश्य तो लोगों के मन से कैंसर का डर निकालना और उससे लड़ कर पार पाने के लिए प्रेरित करना था, पर कहीं कहीं उसमें बड़े मार्मिक मानवीय प्रसंग भी घुस आये हैं। एक प्रसंग तो उसे बहुत ही हॉन्ट करता है जब उनके पैथालॉजिस्ट डॉक्टर मित्र ने फोन पर उन्हें कैंसर कनफर्म होने की बात बतायी तो वे खड़े होकर फोन सुन रहे थे। फोन नीचे रख कर जब वे बैठे तो उन्होंने पाया कि वह बेखयाली में अपनी डॉक्टर वाली कुर्सी पर नहीं, सामने की मरीजों वाली कुर्सी पर बैठे हैं।

वह 1992 से 2002 तक बराबर डॉक्टर बावड़ेकर के सम्पर्क में रहा, और 1994 और 1999 में दो और ऑपरेशन भी उसे करवाने पड़े, लेकिन वह लगातार सक्रिय जीवन जी रहा है और उसी शिद्दत से अपना काम कर रहा है। पिछले 14 सालों में तो अब उसे 'चेकअप्स' के लिए भी नहीं जाना होता। पर यह अहसास उसे बराबर बना रहता है कि यह उसका नया जीवन है, और यह

डॉक्टर बावड़ेकर का दिया है। इस आपाधापी वाली दुनिया में भी ऐसे लोग हैं जो दूसरों की जिन्दगी खुशहाल बनाने के लिए अथक परिश्रम करते हैं। सो अजब नहीं कि अब उसकी हर सुबह 'गुड मॉर्निंग एंड थैंक्यू डॉक्टर साहेब' से शुरू होती है।

यूं याद वह बैरागी जी को भी इसी तरह करता है, जिन्होंने उसका 'बोन इन्फेक्शन' ठीक करने के लिए जितना श्रम किया वो दूसरा कभी न करता। वे बिना नागा उसकी पट्टी पूरी लगन से करते। इस बीच वह उदयपुर के भारतीय लोककला मंडल का डायरेक्टर हो गया तो वे वहां उसके आफिस आकर ड्रेसिंग करते। वह व्यस्त होता तो घंटा आधा घंटा इंतजार भी करते। उसके उकसाने पर उनकी चिमटी घाव को गहरे और गहरे कुरेदती। एक दिन हड्डी के उस टुकड़े तक पहुंच ही गयी जो हड्डी से अलग होकर आवारा हो गया था, और इन्फेक्शन का सबब था। इधर वह टुकड़ा बैरागी जी की चिमटी की पकड़ में आया और उधर उसका वह घाव भी तेजी से भर गया।

फिरदौस के साथ दोजख के मिल जाने से बनी जगह ने उसके जीवन को जो वितान दिया है वह अन्यथा दुर्लभ था। अब उसके जीवन में आवाजाही ज्यादा है, और मौत से तो दोस्ती हो ही चुकी है।

अर्थात् औरों की कथा-V

अरुण कमल

अब यह आखिरी किस्त होनी है। सबको पता है सबको बता दिया गया है। कोई भी आत्मकथा कभी भी पूरी नहीं होती। अगर कोई जीता जाये और साथ साथ लिखता भी जाये लेकिन क्या यह सम्भव है महाभारत जैसे लिखा गया कवि व्यास बोलते गये गणेश जी लिखते गये जीते वक्त कुछ भी लिखा नहीं जाता। जीने वाला और लिखने वाला अलग अलग हो ही जायेगा। न भी हो तो जीवन का अंतिम क्षण कभी कोई खुद दर्ज नहीं करता। इस अर्थ में कोई भी आत्मकथा कभी अखंड नहीं होती। या फिर बोर्खेस की उस कहानी की तरह जिसमें एक राजा अपने क्षेत्र का हूबहू, यथार्थ नक्शा बनवाने के लिए कहता है कि पूरी धरती, पहाड़, नदी सबको कागज से ढंक दो। यानी हर लेखन किसी सुदूर उपग्रह से लिया गया चित्र ही होता है, अपनी सारी यथार्थपरक समानताओं के बावजूद। यह भी हो सकता है कि चंद्रमा की जो सच्ची तस्वीरें ली गयीं उन्हें हम न मानें और जो चंद्रमा मैं आश्विन पूर्णिमा को आकाश में देखता हूं उसे ही सच मानूं। अंततः सारी कलाएं झूठ का ही तो खेल हैं। कभी कभी मैं सोचता हूं अगर मैं पैदा ही न होता तो क्या होता। क्या कोई फर्क पड़ता। तब शायद इस दुनिया को मैं उस तरह न जान पाता जैसे अब जानता हूं, एक मनुष्य के रूप में, यदि मैं कोई अन्य प्राणी होता, कोई भी जानवर, या कोई पेड़। कौन सा जानवर, कौन सा पेड़? कई बार मैं सोचता हूं कि पिछले या अगले जनम में मैं कोई अन्य जीव रहा होऊंगा। मुझे यह कल्पना बहुत रोचक लगती है कि मैं चौरासी लाख योनियों में घूम रहा हूं। जो कुत्ता या कौआ या नीम का पेड़ मेरे सामने है मैं वह सब था और फिर हो सकता हूं। अगर मैं अच्छे, शुभ कर्म करूं तो हो सकता है मोक्ष मिल जाये। लेकिन कुछ न कुछ होते रहना शायद ज्यादा मजेदार बात होगी। तब मैं अपने मनुष्य जीवन को याद करूंगा। तब एक अलग ढंग की कथा होगी। इसी तरह स्वर्ग नरक, लोक परलोक की कल्पना भी मुझे शुरू से मोहती रही। मेरी दादी का इन सबमें गहरा विश्वास था। विश्वास क्या, उनके लिए यह सब सत्य था। और मैं उनके प्रभाव में था।

एक बार एक पंसारी की दूकान पर मैंने एक कैलेण्डर देखा था जिसमें नरक में दी जाने वाली यातनाओं और सजाओं के चित्र थे। सबसे भयानक था एक स्त्री पुरुष युगल का आरी से चीरा जाना। अभी तक वह भयानक चित्र मेरा पीछा करता है और हो सकता है नरक में मुझे यही सजा मिले। वैसे अपने आप में यह सोचना मजेदार है कि मृत्यु अंत नहीं है। मेरे सारे अपने लोग वहां मेरा इंतजार कर रहे हैं। हम फिर मिलेंगे। बचपन में मैं बहुत धार्मिक था। दादी के साथ साथ रहता था और सचमुच समझता कि किसी दिन मुझे रास्ते में शिव जी मिल जायेंगे। अब मेरे पास कोई भी मिथ्या नहीं है। कुछ भी ऐसा नहीं है जो दिलासा दे। लेकिन बहुत करीब से मैंने अपने आसपास के धार्मिक लोगों को देखा है। चूंकि मैं जिस परिवार में पैदा हुआ वह 'हिन्दू' परिवार है, इसलिए मेरे अनुभव भी इसी पंथ के हैं। मैं खुद हिन्दू हूं या नहीं, यह तो दूसरे तय करेंगे। लेकिन कुछ बातें जो मुझे विशेष लगीं वो मैं कहना चाहता हूं। मेरी दादी और उनकी जोड़ा पाड़ी की स्त्रियां निःशंक भाव से पूजापाठ करती थीं। उनका सारा कर्म ऋतुओं के अनुसार चलता था। सूर्योदय और सूर्यास्त। चंद्रमा के उगने और डूबने से। चैत्र से फागुन तक। नक्षत्रों और ग्रहों के अनुसार। प्रकृति के साथ ऐसी एकलयता मैंने फिर नहीं देखी। सबसे मार्मिक क्षण थे सूर्योदय के नदी के उस छोर से उठता हुआ गोला और संध्या को लालिमा का प्रसार। जन्माष्टमी की गहरी अंधेरी रात और माघ चतुर्थी को चंद्रोदय की प्रतीक्षा। और वह सबकी पूजा करती थीं पशु, पक्षी, वृक्ष सबकी, प्रत्येक पत्थर की। जैसे जीवन का प्रत्येक कण पवित्र है। और यह तो बाद में पता चला कि हिन्दुओं का कोई ग्रंथ नहीं है, यह कोई ग्रंथ आधारित (टेक्स्ट बेस्ड) पद्धति नहीं है। इसलिए यहां छूट और स्वाधीनता भी है। और एक खास बात यह कि हिन्दू किसी भी मनुष्य की पूजा नहीं करते जो जन्मा और जो मरा उसकी पूजा नहीं करते। जैसा कि महादेवी वर्मा ने लिखा है, मैं किसी ऐतिहासिक राम को नहीं जानती, मैं तो पौराणिक राम को जानती हूं। इसके अलावा इनके देवी देवता भी आनंद और उल्लास के प्रतीक हैं। यह जीवन एक उल्लास है। बिना शैव दर्शन के भारतीय काव्यशास्त्र भी सम्भव न था। दादी को किसी से दुराव या घृणा नहीं थी। वह जीवमात्र बल्कि खनिज और मिट्टी को भी पूजती थीं। हालांकि मेरे लिए तो इस सारे पूजापाठ का एक अलग अर्थ भी था। और आज भी है। वो है त्योहारों में होने वाले उत्सव, विशेष भोजन और साज सज्जा। जीवन कितना रंग भरा हो जाता। अभी भी मेरी देह जान जाती है कि दशहरा आ रहा है। आश्विन की मदमाती हुई सप्रपर्णी के गंध से अधीर रात। और हर त्योहार पर हर बार वही पकवान। होली के पूए और दहीबड़े। दीपावली के मोतीचूर के लड्डू। दशहरे की पूड़ियां और ओल की तरकारी। शीतलाष्टमी के गुड़ के गुलगुले। तीज की पेड़किया। जिउतिया में मडुवा की रोटी और नोनी का साग। अनंत चतुर्दशी की सेवईं। और पूस महीने का पिट्ठा और खीर। जन्माष्टमी को सिंघाड़े का हलवा। पोस्ता दाने का हलवा। तिक्खुर। कुट्टुक की पूड़ी। और फिर मखाने की खीर। और धनिये का चूरन। आज भी हर त्योहार पर वही बनता है जो साठ साल पहले बनता था और जो जमानेदराज से बनता आ रहा है। इनमें से बहुत से पकवान तो साल में सिर्फ एक बार, उसी दिन बनते हैं। ये ही त्योहार मडुवा, नोनी और गुड़ को बचाये रखेंगे। घी में छनते पूओं की गंध से भरा हुआ घर मुझे उन दिनों की याद दिला देता है जब मां थीं, पिता थे, दादी थीं और तीन बहनें थीं मैं कितना भरा पूरा और सुरक्षित था। धीरे धीरे मेरे माथे से केश झरते गये और मेरे जीवन से भी। अब मेरा जीवन कितना गंजा, कितना खल्वाट है। जब तक मां पिता थे, मुझे अपनी उम्र का कोई एहसास नहीं हुआ। मेरी पीठ के पीछे एक भीत थी, एक टेक। अब मैं बिना मुंडेर वाली छत पर अंधेरे में बैठा हूं, ऐसा लगता है। मुझे माता पिता के सपने बहुत आते हैं। कोई दिन ऐसा नहीं जाता जब उनकी याद नहीं आती। जब तक मैं हूं तब तक वे भी इस पृथ्वी पर हैं। स्मृति में वास भी तो वास ही है। जीवन के अंतिम दिनों में वे नहीं चाहते थे कि मैं ज्यादा बाहर जाऊं। आदमी के जीवन में कोई न कोई ऐसा

जरूर होना चाहिए जिसकी भर्त्सना से भय हो। जबसे परिवार टूटने लगे, पड़ोस टूटने लगे तबसे ऐसा व्यक्ति मिल पाना कठिन होता जा रहा है। क्योंकि भर्त्सना उसी की भयकारी होगी जो आपसे निःस्वार्थ प्रेम करता हो। मुझे हमेशा लगता है कि मैंने अपने जीवन का कितना अपव्यय किया, ऐसे काम किये जो नहीं करना था, ऐसे लोगों के साथ समय बिताया जिनसे मिलना भी न था। लेकिन कई बार ऐसा इसलिए करना पड़ा कि जी सकूं। नौकरी और नौकरी के साथ के सारे काम इसीलिए तो करने पड़े। सोचा कि छह घंटे की तकलीफ अठारह घंटे का आराम देगी। लेकिन लिखने के लिए यह ठीक नहीं है। हर काम जो तुमको अपवित्र करता है, वो तुम्हारा क्षरण करता है। अभी रामविलास शर्मा की एक बातचीत निराला के बारे में पढ़ रहा था। उन्होंने कहा है कि ऐसा दूसरा व्यक्ति उन्होंने आज तक नहीं देखा जो लगातार कविता की ही बात करे, लगातार कविता और कवियों की ही चर्चा करे। ऐसा एकनिष्ठ, एकांत समर्पण दुर्लभ है। वास्तव में हमारा जीवन ही तय कर देता है कि हम कैसे कवि होंगे। एक दुनियादार आदमी, सद्गृहस्थ, समय सारणी से चलने वाला जिसे भूख भी घड़ी देख कर लगती हो कभी कुछ भी नहीं कर पायेगा। दुनिया में श्रेष्ठ साहित्य या तो उन्होंने लिखा जो फक्कड़ थे, जिनके पास खोने को कुछ भी नहीं, या फिर उन्होंने जिन्हें कुछ भी पाने की न जरूरत थी न परवाह। आज तक किसी ने पानी को नहीं रोका, बड़े से बड़ा बांध भी नहीं। मेरे जैसे लोग तो अधिक से अधिक किसी तालाब, पोखर या गड़हे का जल हैं। संतोष यही है कि यहां भी गौवें प्यास बुझाती हैं और भैंसें नहाती हैं। और कभी कभी कुछ बच्चे घुंघुचियां भी पा जाते हैं। निराला तो बहुत बड़े हैं। मुक्तिबोध की कविता ने मुझे जीवन के अनेक कठिन क्षणों में सांत्वना दी है। रास्ता दिखाया है। एक बड़ा कवि आपको जीने का रास्ता भी दिखाता है। कविता जीवन के बीहड़ में से ही गुजरती है। एक बार जब मैं अठारह उन्नीस साल का था तब मुझे लगा कि मेरा जीवन अब निरर्थक है। तभी मुक्तिबोध की कविता मुझे मिली। और मैं बच गया। जीवन से इतना गहरा, उत्कट प्रेम, ऐसी दुर्दमनीय लालसा जो बबूल की गोंद की तरह तुम्हें वापस जीवन से साट दे मेरे लिए मुक्तिबोध का यही अर्थ था। एक बार फिर जब सोवियत संघ समाप्त हो गया और बाद में कम्युनिस्ट आंदोलन भी, तब मुक्तिबोध की कविता ने मुझे संभाला और मैंने बहुत से प्रलोभनों और पतन से बचने की कोशिश की। मुक्तिबोध सर्वोपरि नैतिक कवि है, जीवन जीने की लालसा के कवि हैं। यहीं पर कविता कला के पार जाती है। ब्रेख्त भी ऐसे ही कवि हैं। और शेक्सपियर भी। जब कभी मुझे दुविधा होती है, हताशा होती है, जीवन भारी लगने लगता है, मैं अपने प्रिय कवियों को पढ़ता हूं। दुनिया की महान ट्रैजेडी महान इसलिए हैं कि वे हमें बताती हैं कि दुख और यंत्रणा की कोई सीमा नहीं है। पिछले कुछ वर्षों में मुझे अनेक तरह की विपत्तियों से गुजरना पड़ा। कभी कभी सोचता हूं कि मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी विपत्ति या त्रासदी क्या है। इसका कोई एक उत्तर तो है नहीं। लेकिन मैंने देखा कि बड़ी से बड़ी विपत्ति के बाद भी आदमी जीता है और भले ही यह दुनिया लवणहीन हो जाये फिर भी आदमी जीने की कोशिश करता है जमीन में गड़ कर भी।

लेकिन यह सब मैं क्यों लिख रहा हूं। किसको परवाह है मेरे जीवन और मन की। हम उसी लेखक के बारे में जानना चाहते हैं जिसकी रचनाओं को पहले से जानते हैं और पसंद करते हैं। अभी हाल में एक गुमनाम पोस्टकार्ड मिला जिस पर नागपुर के डाकखाने की मुहर थी। लिखा था, ऐसा व्यक्तिवाद और आत्ममुग्धता क्यों? मुझे थोड़ा धक्का लगा। ठीक तो कह रहा है वो आदमी। मैं या कोई भी आत्मकथा क्यों लिखे? यह तो खुद से प्रेम करना ही हुआ। बिना प्रेम के, खुद से भी और दूसरों से भी, लिखना सम्भव नहीं। लेकिन यह प्रेम, यह अंदर की ओर मुड़ना अपने को स्थापित या सत्यापित करना नहीं है। हो सकता है मेरे लिखने में अपनी तारीफ या दूसरों की निंदा कहीं कहीं हो गयी हो। इस प्रमाद के लिए क्षमा चाहता हूं। लेकिन गुमनाम पत्र लिखना भी तो आत्ममुग्धता है। आज का हमारा जीवन

पहले की तुलना में कहीं ज्यादा विपन्न और पतनशील है। चारों तरफ कमअक्ल लोगों, मीडियाकर का बोलबाला है। कोई गम्भीर राष्ट्रीय विवाद नहीं है। कहीं कोई गम्भीर चर्चा नहीं है। जिस समाज में विश्वविद्यालयों के कुलपतियों की बहाली आवेदनपत्र मंगा कर की जाती हो वहां ज्ञान की क्या गरिमा रहेगी? साहित्य में भी इधर मैं देख रहा हूं कि जिसके पास भी थोड़ा पैसा और शक्ति है वह स्वयं अपने पर ही कार्यक्रम करा लेता है और बड़े बड़े लोगों को बुला लेता है। मैं भी कई बार ऐसी जगहों पर गया। कई बार झूठी विज्ञप्तियां भी लिखीं। कई बार अपने मालिक के लिए भाषण भी तैयार किया। यही तो क्षरण है। और यही आत्ममुग्धता भी है। कर्मेन्दु शिशिर रामविलास शर्मा की एक बात अकसर दुहराते हैं बड़ा लेखन भले तुम्हारे वश में न हो, लेकिन बड़े लेखक का जीवन तो जी सकते हो। लेकिन यहीं तो पेंच है। बड़ा जीवन उसी लेखक का होगा जिसका लेखन भी बड़ा हो। हम खुद अपना घर, अपनी सुरंग बनाते हैं एक केंचुए की तरह, लगातार धरती को फोड़ते, चिकना करते। लेकिन बाहर के संसार का हम क्या कर सकते हैं? जहां जाति और धर्म के इतने जटिल और भयानक बंधन हों वहां उससे निकल पाना कितना कठिन है। कभी कभी मैं सोचता हूं, मेरी जाति तो केवल मैं ही जानता हूं, जाति का कोई बाह्य चिह्न तो है नहीं। अगर मैं अपनी जाति घोषित न करूं तो क्या मैं जाति से मुक्त नहीं हो जाऊंगा? लेकिन सरकार आपको विवश करती है कि आप कोई न कोई जाति वर्ग चुनें, चार में से कोई एक। मेरे एक साथी ने दूसरी जाति की लड़की से शादी की। लेकिन बाद में मैंने पाया कि उनके बेटे की जाति वही हुई जो पिता की थी। तो क्या जाति टूटी? क्या यह स्त्री का अपमान और पितृसत्ता का दमन नहीं है? होना तो यह चाहिए था कि बच्चे की कोई जाति नहीं मानी जाती। लेकिन देश के बड़े से बड़े जातिविरोधियों ने बच्चों को पिता की जाति दी। इसी तरह मेरे एक अन्य मित्र ने एक हिन्दू लड़की से शादी की। और यह भी प्रेम विवाह था। लेकिन यहां भी लड़की को अपना धर्म बदलना पड़ा। होना तो यह चाहिए था कि या तो दोनों का कोई धर्म नहीं होता या दोनों स्वतंत्र रूप से अपने अपने धर्म में जीते। ये सारी बातें मुझे परेशान करती हैं। जब भ्रष्टाचार की चर्चा सुनता हूं तो सोचता हूं कोई इतना धन क्यों जमा करता है, अपनी संतति के लिए ही तो। अगर सम्पत्ति का उत्तराधिकार ही समाप्त कर दिया जाये तो क्या भ्रष्टाचार कम नहीं हो जायेगा? मैं जानता हूं, ये सारी बातें आत्ममुग्ध अधेड़ का दिमागी फितूर हैं। मेरे एक साथी ने रिश्ते की एक बहन से शादी की। करीबी रिश्ते की। और हिन्दुओं में यह मना है। लेकिन की, और खुशी खुशी हैं। गांवों का मेरा जो थोड़ा सा अनुभव है उससे मैं जानता हूं कि हमारे समाज में करीबी रिश्तों के बीच यौन सम्बंध बहुत ज्यादा हैं। जो भी समाज बंद होगा, जो कुटुम्ब बंद होगा, वहां ये सारी बातें होंगी। ये बातें हमारे जीवन की संकीर्णता और विकल्पहीनता को दर्शाती हैं। हमारे पाखंड और व्यभिचार को। हमारा कौटुम्बिक जीवन नष्ट हो रहा है। एक समर्थ कुटुम्ब में एक स्त्री को अपना मंगलसूत्र या जिउतिया (संतान की रक्षा का यंत्र) बेच कर खर्च चलाना पड़े तो वह कुटुम्ब किस काम का? लेकिन हमारा जीवन भयानक गरीबी और गैरबराबरी से भरा हुआ है। क्या रास्ता है? सारे परिवर्तनकारी आंदोलन लगभग खत्म हो रहे हैं। वे कार्यकर्ता और नेता महान हैं जो अनेक बाधाओं और मुसीबतों के बावजूद काम कर रहे हैं। ऐसे लोग अब केवल कम्युनिस्ट पार्टियों में बच गये हैं। थोड़े से। अभी हाल के चुनाव में हमने देखा कि कैसे हर पार्टी से लोग दूसरी पार्टी में गये और जीते और इस तरह पार्टियों का विभाजन एक ही मकान के अलग अलग कमरों की तरह रह गया। सब एक हैं। सबकी नीति एक है, पूंजीवाद और पूंजीवाद की रक्षा। लेकिन यह सब जो मैं लिख रहा हूं इसमें आत्मकथा यानी कथा कहां है? मेरा शरीर केवल इंद्रियां ही तो नहीं है, इसमें मन भी है और मस्तिष्क भी। यह भी तो मेरा ही जीवन है। मेरी ही कथा है। एक कुत्ते के लिए भी शरीर का अर्थ पूरा ही शरीर है। और उसकी पूंछ उसके दिमाग का विस्तार है। मेरे पास एक तोता था जो कहीं से उड़ कर गर्मी की एक दोपहर

लगभग निर्जीव मेरी सीढ़ी पर गिरा पड़ा था। वह हमारे साथ बहुत दिन तक रहा। कई बार सोचा आजाद कर दूं। लेकिन तब कौए उसे मार देते। वह उड़ना भूल चुका था। जब उसके पंख झड़ने लगे तब मैं उसे अस्पताल में ले गया। रोमहीन, पंखहीन वह कई वर्षों तक हमारे साथ रहा और घर के एक सदस्य की तरह चौकस और प्रेममग्न। पूस की भंयकर ठंड में उसकी मृत्यु हुई और घुट घुट कर उसने दम तोड़ा। जब एक जानकार ने कहा, इसे छोड़ दीजिये यह खराब हो गया है तब मां ने कहा था जो भी है, जीवन तो है। मेरी मां, मेरी दादी और उन जैसे करोड़ों लोग जीव और जीवन के प्रति इसी प्रेम और सम्मान को व्यक्त करते हैं। उनके लिए धर्म का यही अर्थ है। बाकी सब अधर्म है। जब कभी धर्म को संगठित करने की चेष्टा होगी, धर्म की निजता और पवित्रता नष्ट होगी। और इसका अपसरण हिंसा तथा अधिनायकत्व में होगा। मेरे घर के पास ही एक हनुमान मंदिर के पुजारी को मैंने कम्युनिस्ट पार्टी के जुलूस में देखा था। उनसे मिला तो मालूम हुआ वह बेहद गरीब घर के हैं और यहीं मंदिर की देखभाल और पूजा से उनका जीवन चल रहा है। एक और पुजारी मिले जिन्हें दबंगों ने मंदिर से हटा दिया क्योंकि वह दानपात्र की राशि के गबन का विरोध करते थे। अब वह जहां तहां घूम कर जी रहे हैं। जरूरत है कि हम धर्म, जाति जैसे नाजुक सवालों पर खुल कर बात करें डरें नहीं क्योंकि इन पर बात करने का मतलब है पूंजीवाद की रणनीति पर बात करना। मैं तो सबसे एक ही सवाल करता हूं आपके पास सम्पत्ति कितनी है। कई बार इसी से उस व्यक्ति की पूरी कुंडली मालूम हो जाती है।

हालांकि अब मुझे तैयार हो जाना चाहिए। रंजीत टेम्पो वाले ने फोन किया था कि आज शाम को वह टेम्पो भेजेगा, उसके बेटे का जन्मदिन है और दूसरे बेटे की छट्ठी। आते जाते उससे दोस्ती हो गयी है। ऐसी दोस्तियां मेरी कम हैं। अपने पेशे के बाहर के लोगों से दोस्ती। जो थोड़ा सा परिचय आवाजाही है वो इसलिए कि या तो मैं पैदल चलता हूं या रिक्शे से। बाहर जाना हुआ तो कभी कभार टैक्सी भी लेता हूं। गाड़ी नहीं रखने का फायदा यह है कि आप बहुत से लोगों से मिलते हैं। उनकी भाषा, उनके शब्द सब आपको सुनने को मिलते हैं। अभी एक रिक्शेवाले ने कहा कि पेड़ की डालों को सरकार ने 'पांग' दिया है। यह नया शब्द था। छांटना। काटना। हाजीपुर के एक रिक्शेवाले ने केले की खेती और पौध के लिए इतने नये नये शब्द बोले कि मैं पूरा याद भी न कर सका। घर में काम करने वाली, सब्जी बेचने वाली और ऐसे ही छोटे छोटे कामों में लगे लोग हमारी भाषा को बचाये हुए हैं। वहां अंग्रेजी का घालमेल नहीं है। आखिर ऐसा क्यों है कि सबसे कमजोर, गरीब और कामगार लोगों के पास ही भाषा का अगमकुआं होता है? शायद इसलिए कि वो जीवन जीने यानी धरती, हवा, आकाश के ज्यादा करीब होते हैं। अभी बेटे की शादी में गांवों से आयी स्त्री रिश्तेदारों के कंठ से इतने तरह के लहर भरे गीत सुन कर मैं अवाक रह गया। एक वाक्य इतनी तरह की लय, लोच और लहर से भरा। बस एक साधारण, सादा सा वाक्य। मेरी मां को इतने गीत याद थे। मेरी दादी को इतनी कहानियां याद थीं। बचपन में जब मैं बीमार पड़ता दादी कांसे के कटोरे से तलवे सहलातीं। तेज बुखार में मां की सूती, मुलायम साड़ी और देह से लिपटे रहने का स्पर्श। पिता का आकर मुलायम, भारी तलहथी ललाट पर रखना। रात में लालटेन की धीमी रोशनी। गाय का जोर से सांस छोड़ना। अचानक तेज बौछार। हवा में हल्की नमी, एक सिहरन। पथ्य के पहले आग पर सिंके नींबू के टुकड़े पर काला नमक लगा कर चूसना। फिर पथ्य। उबाले आटे की रोटी, फुल्का भाप से भरा हुआ। और परवल का पानी और स्वस्थ रहने पर जाड़े में दादी बोरसी पर ही गुड़ घी लिट्टी बना देतीं। आज भी मेरा सबसे प्रिय भोजन यही है। गरमी की शाम में आधी चारपाई ओसारे में, आधी आंगन में बिछाये हल्की चादर ओढ़े मैं बाहर की एक एक आवाज को सुनता रहता। ऐसा सुनसान हो जाता थोड़ी देर में। फिर चांद। आज भी चांद और बादल दुनिया के सबसे रूमानी दृश्य हैं। कभी कोई दोस्त देखने आता। सीधे खेल के मैदान से। अभी अभी कुदरा के बचपन के दोस्त

हरि का नम्बर मिला और हमने बात की। नहीं, मैं मिलूंगा नहीं। मैं उस चेहरे को बदला हुआ, बूढ़ा होता नहीं देखना चाहता। नहीं, मैं वहां जाऊंगा भी नहीं। वह स्मृति भंग हो जायेगी। पुरानी, बचपन की जगहों पर मैं जाना नहीं चाहता। मेरा वह सारा लोक टूट जायेगा। सूर्य, चंद्रमा, आकाश, बादल इसलिए हम बार बार देखते हैं कि वे कभी बदले नहीं। हजारों सालों से एक ही चंद्रमा दुनिया के अरबों अरब बच्चों बूढ़ों ने देखा। मेरे जीवन की वे स्मृतियां अपरिवर्तनीय हैं। हम सबकी जिन्दगी में ऐसा कुछ न कुछ होता है जो केवल हमारा होता है और जिसे हम बचा कर रखते हैं। बचपन से ही मुझे बरसात की एक खास तरह की सांझ भय और अनहोनी की आशंका से भर देती है। अभी परसों नालंदा में वही सांझ मिली। अचानक सूर्य अस्त हो चुका था। जस्ते की तरह आसमान था। गहरे स्याह बादलों से भरा। खेतों में धान के पौधे, जहां तहां चमकता हुआ जल। हवा गुम। मैं हमेशा डर जाता हूं। जल और अंधेरे से। अंधेरे में जल से। एक सुनसान रास्ते से हम आ रहे थे। भादों की रात थी। घुप्प अंधकार। हवाहीन। अचानक बाबू जी ने मुझे गोदी में उठा लिया। और तेज चलने लगे। तालियां बजाते। उनकी सांस तेज और गहरी चल रही थी। उस रास्ते पर सांपों का डर था। आज भी मुझे वो रात, वो गहरी सांसें याद हैं। बाबू जी कहते थे, बहुत त्याग तपस्या से बच्चे आगे बढ़ते हैं। वो यह भी कहते थे, अवश्यमेव भोक्तव्यं कर्माणि फलाफले जो जैसा करेगा वैसा भोगेगा। यह भी तो धार्मिक बात ही हुई। जबकि वह नास्तिक थे। और उनका सबसे प्रिय ग्रंथ 'महाभारत' था। महाभारत पर उन्होंने इतनी किताबें जमा कीं। लेकिन दुनिया में घटती विभीषिकाएं, चाहे केदारधाम का प्रलय हो या कश्मीर का, बार बार यही तो कहती हैं अवश्यमेव भक्तव्यं। यह जितना सच सामूहिक जीवन के लिए है उतना ही सच व्यक्ति के निजी जीवन के लिए भी है। एक बार जब मैंने एक जरूरतमंद स्त्री को कुछ राशि देकर यौन क्रिया की तो मुझे बहुत ग्लानि हुई, अपने को धिक्कारा और लम्बे समय तक मेरे मन और शरीर पर उसके दुष्परिणाम रहे। यानी भोगना भोगना ही पड़ता है। लेकिन अकसर ऐसा नहीं होता। पाप ही फलता है। इस पर धार्मिक लोग कहेंगे कि इसका फल उसे अगले जनम में मिलेगा। भारत में अत्याचारों, अन्याय और हर तरह के कुकर्म को सहने के पीछे यही धारणा है। इस धार्मिक भाव ने जितनी सहायता शासकों शोषकों की की है उतनी फौज पुलिस ने भी नहीं और आज भी कर रहा है। मखनियां कुआं की जिस पतली गली में हम चौबीस साल रहे उसी में दो घर बाद एक दिन अचानक गाने बजाने, थपड़ी पीटने, झंकार आदि की ध्वनियां आने लगीं। पता चला उसमें रहने के लिए किन्नर या हिजड़े आ गये हैं। उनसे बीच बीच में बात होती थी। वे मुझे भइया कहते। उनमें से एक धर्मदेव ने बताया कि यह सब पूर्व जन्म का फल है। उनकी एक अलग दुनिया थी। कई लोगों को वहां एक विशेष शल्यक्रिया से 'हिजड़ा' बनाया गया। अकसर वे बेहद गरीब लोग होते, या परिवार से भागे या छूट गये या शारीरिक तौर पर अक्षम लोग। वहां एक अजीब तरह की यौनवृत्ति थी, अतृप्त देहों के लिए विचित्र, वीभत्स साधन। उनके अपने गुरु होते। हमारे समाज में अनेक तरह के हाशिए हैं, अनेक तरह के इतर। एक और श्रेणी है घर से भागे हुए लोगों की। मेरे रिश्ते का एक भाई बचपन से लापता हो गया। कोई खबर नहीं मिली। एक और परिचित का सयाना पढ़ा लिखा लड़का अचानक घर छोड़ कर चला गया। माता पिता लगातार उसकी खोज में दौड़ते रहे। तबाह हो गये। जहां कहीं से कोई खबर मिलती वे दौड़ जाते। अभी हाल में उनसे भेंट हुई। देखा, पिता ठीकठाक पोशाक में थे और केश भी रंग रखे थे, मां भी हल्के प्रसाधन से सुसज्जित थीं लेकिन एक गहरा विषाद उनके पूरे होने में था। इससे बड़ी विपत्ति क्या हो सकती है आपका अपना है भी और नहीं भी है। जैसे कौर कंठ में अंटका हो ऐसा जीवन। लेकिन उन्होंने एक बार भी नहीं कहा कि यह भाग्य है, या पूर्व जन्म की किसी चूक का फल। उन्होंने पूजापाठ भी छोड़ दिया था। ऐसे कई लोग मिले जिन्होंने प्रतिरोध स्वरूप पूजापाठ छोड़ दिया। ऐसे लोग भी मिले जो और भी सन्नद्ध हो गये। वह मानों

आंख मूंदना है लेकिन भीतर जो आरी चल रही है उसकी आवाज बाहर भी आती है, जरा सा ओट हटते, द्वार खुलते। और मैं द्वार जरा सा उठगा कर चुपचाप आहिस्ते उल्टे कदम से बाहर निकल जाता। बाहर मेरे दोस्त इंतजार करते होते और फिर बरसात का हरा मैदान, गीला, पानी से जहां तहां भरा और आसमान। मैंने जीवन में थोड़ा फुटबॉल खेला, थोड़ा वॉलीवाल, थोड़ा बैडमिंटन। जो भी खेला मैट्रिक तक, सोलह की उम्र तक। उसके बाद नहीं। न वे मैदान मिले, न सुविधा, न साथी। आज भी इन खेलों को देखने के लिए मैं खड़ा हो जाता हूं क्योंकि ये ही वे खेल हैं जिनको मैं थोड़ा बहुत जानता हूं। इन्हीं से मैंने यह जाना कि जीवन में जीतने से ज्यादा महत्वपूर्ण है हारना क्योंकि अधिकतर लोग अधिकतर बार हारते ही हैं। जीतता कोई कोई है और वह भी कल हार जाता है। अगर हारता नहीं भी है तो उसका शरीर हार जाता है। क्रिकेट मैं कभी नहीं खेला। लेकिन देखना अभी भी अच्छा लगता है हालांकि इसका व्याकरण मैं नहीं जानता। इन सभी खेलों के पीछे एक पूरा सिद्धांत है गणित, सांख्यिकी और दर्शन। और अब पूरा व्यापार भी है, पैसा। ग्लैमर। शुरू में तो कोई खेल नहीं था। बस दौड़ना था। दुनिया का सबसे पहला खेल। आज उसमें भी हार जीत है। फिर हर समाज ने अपने खेल बनाये। फिर पुराने आयुध खेल में बदल गये। हर खेल में बलि और हिंसा का एक परोक्ष भाव होता है जिसे हम कई बार ट्राफी जीतना कहते हैं और हमारी तमाम सतर्कताओं, विधानों के बावजूद श्रेष्ठतम प्रदर्शनों में भी यह व्यक्त हो जाता है, चाहे अनचाहे। बलि का स्थान जैसे नारियल फोड़ने और सिंदूर टीकने ने ले लिया है वैसे ही खेल में पदक हैं। मनुष्य ने अपने आनंद की खोज में कितने कितने करतब किये हैं जो सहज, नैसर्गिक देहवृत्ति है उसको इतने संश्लिष्ट विधानों में बांधा, खेल के इतने नियम बनाये और कामसूत्र भी। इस तरह हम पशुओं से अलग हुए। पटना में मेरा खेलना छूट गया। खेलता रहता तो बहुत से विकारों से बचता। शरीर भी पुष्ट रहता। आज भी मैं सबसे ज्यादा पराश्रित होने से डरता हूं। लेकिन घर समाज तो इसीलिए हैं। खेल हमें आत्मनिर्भर भी बनाते हैं और पराश्रित भी। दुर्भाग्य से हमारे बच्चों के लिए खेल के मैदान और साधन कम होते जा रहे हैं। शिमला के पास गोल्फ के जो मैदान देखे उन्हें देख कर यही लगा कि खेलना कितना सुंदर हो सकता है। देह धारण करने का सच्चा सुख। हालत यह है कि आप जितना ही प्राकृतिक जीवन जीना चाहेंगे उतना ही ज्यादा धन देना पड़ेगा। अगर आज कोई स्त्री पुरुष जंगल जैसी जगह में आदम और हव्वा की तरह रहना चाहें तो उन्हें दुनिया का सबसे अमीर आदमी होना होगा। कभी कभी अपने घर में मैं आदम की तरह रहता हूं और मैं सच कह रहा हूं, इससे बड़ा सुख जीवन में बहुत कम है। कुछ जगहें जहां रहना मुझे बहुत अच्छा लगा उनमें किन्नौर और श्रीनगर में चिनार का बाग तो है ही, केरल में कालडी में विदुषी प्रमीला जी के घर पर बिताये सात दिन भी हैं। पूरे परिवार के साथ, श्रीधरन जी और उनके हित मित्र के साथ। नारियल, सुपारी, गोलमिर्च के वृक्ष और वल्लरियों के साथ। और ऐसी हवा बिल्कुल फंटकी हुई, वृक्षों से चाली हुई। और इतने पवित्र लोग। जब कभी मैं ऐसी जगहों पर जाता हूं सोचता हूं मैंने ऐसा क्या किया जो लोग मुझे यह सब दे रहे हैं, मेरे लिए इतना कर रहे हैं। ठीक है कि मेरे पड़ोसी या पटना के लोग मुझे नहीं जानते, लेकिन इतना कुछ जो मिल रहा है बाहर क्या मैं उसका हकदार हूं? लिखा ही क्या है? और कितना कम? लिया बहुत, दिया बहुत कम। मुक्तिबोध के चूल्हे की गर्म राख से अपना मन मुकुर सुधार लूं। बहुत से लोग आते हैं, कोई सुनाता है, कोई विज्ञप्ति चाहता है, कोई प्रशंसा, कोई लोकार्पण। इनमें से अधिसंख्य ने मेरी एक भी पंक्ति नहीं पढ़ी। जानता हूं। कई बार फंस भी जाता हूं। अगले जनम में अगर मैं कुत्ता हुआ तो इनको जरूर काटूंगा, इस जनम में तो कुछ कर न सका। वाल्टर बेंन्यामिन ने ऐसे ही लोगों को लक्ष्य करके कहा था कि इनके साथ साथ इनके प्रकाशकों को भी दंडित किया जाना चाहिए। लिखना और छपना

इतना आसान भी नहीं होना चाहिए। दूसरी तरफ ऐसे बहुत से प्रतिभाशाली कवि हैं जिनके लिए किताब छपवाना मुश्किल है। अंगेजी कथाकार डोरिस लेसिंग ने प्रौढ़ावस्था में अपनी एक किताब नाम बदल कर, एक युवा लेखक बता कर कई प्रकाशकों के पास भेजी और पांडुलिपि हर जगह से लौट आयी। यह हालत हर जगह है। कई बार लोग पूछते हैं, आप अंग्रेजी पढ़ाते हैं, क्या इससे आपको कोई फर्क महसूस होता है। इसमें पहले यह याद करना जरूरी है कि पिछले चालीस वर्षों की हिन्दी कविता किसी भी प्रकार के अंग्रेजी प्रभाव से मुक्त है जबकि पहले ऐसा नहीं था। जहां तक मेरा निजी प्रश्न है मुझे लगता है कि अंग्रेजी पढ़ने पढ़ाने से एक घाटा मुझको जरूर हुआ है मुझमें मिलनसारपन घट गया, थोड़ी निस्संगता या 'अलूफनेस' आ गया जो मुझे औरों से घुलने मिलने, उनमें रम जाने और उनके आचार व्यवहार को सहज स्वीकार करने में बाधा देता रहा। इससे मेरे लेखन पर भी असर पड़ा होगा। मेरी तो इच्छा थी, और मेरे पिता की भी कि मैं डॉक्टर बनूं और चेखव की तरह घूमता फिरूं। एक लेखक के लिए सबसे जरूरी है अलगाव और कुलीनता का त्याग। जरूरी है कि वह भद्रलोक न बने, सार्वजनिक व्यक्तित्व न बने। निराला की तरह रहे। या जो कोशिश, जो आत्मसंघर्ष मुक्तिबोध लगातार करते रहे, जैसा जीने की। सत्ता से, हर तरह की सत्ता से दूर। एक वृक्ष की तरह बंधा, पर स्वतंत्र। एक कवि को चाहिए कि वह अपने औजारों को लगातार गंदा और भोथरा करता रहे, लगातार काम कर करके गर्द और पसीने से सराबोर और बार बार अपने औजारों को पजाते, फिर से तोड़ते, भोथरा करते। मैं तब तक पवित्र नहीं होती जब तक तुम मुझे भोगते नहीं। याद नहीं किसने कहा है कि उसने एक कारीगर से पूछा यह हंसिया तुम्हारे पास कबसे है तो उसने जवाब दिया शुरू से जबकि उसकी बेंट, उसका फाल, उसके दांत सब पता नहीं कितनी कितनी बार बदल चुके थे। हमारी हंसिया, हमारी भाषा भी तो वैसी ही है। शेक्सपियर ने कहा था स्पेन्डिंग अगेन ह्वाट इज आलरेडी स्पेन्ट। जैसे पेलिकन अपनी छाती को चीर कर अपने लहू से अपने बच्चों को पोषण करती है वैसे ही लगातार अपने को चीरता, लहुलुहान करता एक कवि...। लेकिन मैं तो बहुत मामूली हूं। फिर भी दो संतोष हैं। एक तो यह कि मैंने कुछ महान कवियों को पढ़ा है भागीरथी हम दोस भरै, पै भरोस इहै है, परोस तिहारे। और दूसरा यह कि 'सिंह भेंड़ों से बनते हैं'। मैं भी एक कवि भेड़ हूं जो अपने रोम भी दान कर देता है। अब जो भी जीवन बचा है उसमें यही इच्छा है

यदि तुम अपना जीवन वैसा न भी बना सके
जैसा चाहते हो
तो कम से कम इतना तो करो कि वह और
क्षुद्र न बने
संसार के साथ ज्यादा हिलमिल कर
बहुत ज्यादा भागदौड़ और गलचौर करके

इसे और न बर्बाद करो यहां वहां घसीट कर
चारों तरफ घुमा कर, सामाजिक रिश्तों और भोजों की
रोज ब रोज की क्षुद्रताओं में ढकेल कर
कि एक दिन वह बेकार का बोझ लगने लगे

कबाफी

प्रेम, करुणा और तकलीफ का समंदर

उर्मिलेश

तारीख और महीना ठीक से याद नहीं, पर जेएनयू में सन् 1978 की एम.फिल. पीएच.डी. प्रवेश परीक्षा से पहले की बात है, जब गोरख पांडे से मेरी पहली मुलाकात झेलम होस्टल स्थित उनके कमरे में हुई। जेएनयू की अखिल भारतीय प्रवेश परीक्षा देने मैं इलाहाबाद से दिल्ली आया था। उनसे मिलने का भले ही पहला मौका था पर मित्रों और शुभचिन्तकों के जरिए हम दोनों एक दूसरे से अच्छी तरह परिचित थे। इलाहाबाद में कृष्ण प्रताप, रामजी राय और बनारस में महेश्वर, अवधेश प्रधान जैसे अपने वरिष्ठ मित्रों से पांडे जी के बारे में काफी कुछ सुन रखा था। वह एक चर्चित कवि और मार्क्सवादी बुद्धिजीवी थे। अपने आने की उन्हें पहले ही चिट्ठी भेज चुका था क्योंकि उनके कमरे के अलावा दिल्ली में कोई और ठौर ठिकाना नहीं था। बेहद मुफलिसी का दौर था। दिल्ली के किसी साधारण होटल में भी रुकने की बात सोच नहीं सकता था। स्टेशन से सीधे जेएनयू गया और झेलम होस्टल पहुंच कर उनका कमरा खोजने लगा। नीचे से ही किसी ने पांडे जी का कमरा दिखाते हुए कहा ''सीढ़ियों से चले जाइए, वो ऊपर जो कमरा खुला हुआ है, वही है पांडे जी का कमरा।'' अपनी दो उंगलियां टेढ़ी कर मैंने कमरे के दरवाजे पर आवाज की, अंदर बेड के एक कोने में बैठे पांडे जी ने कहा ''आ जाइये।'' कमरे के एक कोने में मैंने अपना पुराना सा ट्रैवेल बैग रखा और उनसे हाथ मिलाया। कमरे की फर्श और दीवारें साफ थीं पर उसके अंदर की चीजें बुरी तरह बिखरी थीं। ढेर सारी किताबें और पत्रिकाएं बिस्तर पर पड़ी थीं। किताबों को एक तरफ कर बिस्तर पर मेरे बैठने की जगह बनाते हुए उन्होंने मुस्कराते हुए कहा ''कैसी रही यात्रा, कष्ट तो नहीं हुआ।'' थोड़ी देर की गपशप के बाद वह मुझे गंगा झेलम लान के सामने वाले ढाबे पर ले गये, जहां हम दोनों ने ब्रेड पकौड़े के साथ चाय पी। लगा ही नहीं कि मैं गोरख पांडे से पहली बार मिल रहा हूं। दुनिया भर की बातें होती रहीं। वहीं कुछेक लोगों से परिचय भी हुआ। फिर हम लोग कमरे में लौट आये।

तकरीबन आठ साढ़े आठ बजे रात को पांडे जी के साथ झेलम होस्टल मेस में खाने के लिए गया। उन दिनों झेलम 'को होस्टल' हुआ करता था, उसके एक हिस्से में लड़के रहते थे और दूसरे में लड़कियां। बीच में होस्टल के साझा भोजनालय (कामन मेस) का बड़ा सा हाल था। दोनों विंग के बीच कोई दीवार नहीं थी पर लड़के कभी भी लड़कियों वाले विंग में नहीं जाते थे, यदाकदा लड़कियां आ जाती थीं। पूर्वी उत्तर प्रदेश के इलाहाबादी माहौल से निकले मेरे जैसे गंवई छात्र के लिए यह सब अनोखा था। पांडे जी जब पहली बार आये होंगे तो उनके लिए भी यह अनोखा रहा होगा। मेरी तरह वह भी पूर्वी उत्तर प्रदेश के बनारस से वहां गये थे। इतनी सारी लड़कियों के साथ एक ही कतार में बैठ कर भोजन करने का यह मेरा पहला मौका था। लड़कियों में ज्यादातर स्मार्ट और सुंदर थीं। लेकिन उनमें इलाहाबाद की लड़कियों की तरह कस्बाई शर्मीलापन नहीं था। कइयों को तो खाने के तत्काल बाद सिगरेट सुलगाते देख कर चकित रह गया। उस दिन कम खाया। वैसे तो देख रहा था कि पुराने छात्र काउंटर पर जाकर थाली में बार बार कोई न कोई आइटम भर रहे हैं। पर अपन को वाकई संकोच हो रहा था। थाली में पहली बार जितना खाद्य निकाला था, उतना ही खाकर उठ गया। मेस की दाल मुझे बहुत अच्छी लगी। खाने का और जी कर रहा था। पांडे जी तो वैसे भी अल्पाहारी थे। उन्होंने भी मेरे साथ ही खाना खत्म किया। मैंने कहा ''पान खाने की इच्छा हो रही है।'' उन दिनों मैं जम कर पान खाता था। पांडे जी काशीराम ढाबे के पास की एक पान दुकान पर ले गये। उन्होंने उस रात सिगरेट ली और मैंने 120 नम्बर जर्दे वाला पान लिया। साथ में दो पान बंधवा भी लिया। पांडे जी ने मुस्कराते हुए कहा ''पान के मामले में आप भी पूरे बनारसी हैं।'' कमरे में लौटने पर थोड़ी बहुत गपशप हुई। फिर पांडे जी ने बेड के नीचे से एक फटी पुरानी सी रजाई निकाल कर नीचे बिछानी शुरू की और मुझे आदेश दिया ''आप बेड पर सोयेंगे। मैं नीचे सोता हूं।'' पांडे जी उन दिनों पीएच.डी. स्कालर थे, इसलिए सिंगल बेड कमरा मिला था। नये छात्रों, भाषा संकाय (स्नातक स्नातकोत्तर संयुक्त कोर्स) वालों या अन्य सभी संकायों के एम.ए. वाले छात्रों को डबल बेड वाले कमरे मिलते थे और एक ही कमरे में दो दो छात्र रहते थे। पांडे जी का आदेश सुन कर मैं परेशानी में पड़ गया। वह मुझसे उम्र, पढ़ाई, समझदारी हर स्तर पर बड़े थे। उनका यह आदेश मानना मेरे लिए कष्टप्रद था। मैंने हिम्मत जुटायी ''यह नहीं हो सकता। नीचे मैं ही सोऊंगा।'' फिर उन्होंने समझाना शुरू किया ''आपको परीक्षा की तैयारी करनी है, पढ़िए और फिर ठीक से सोइए, मुझे नीचे सोने की पुरानी आदत है।'' अंत में मेरी जीत हुई। बड़े भाई को छोटे की जिद के आगे झुकना पड़ा। सुबह मैं परीक्षा देने चला गया। वहां से लौटा तो उन्होंने पर्चे वगैरह के बारे में पूछा। मैंने कहा ''पेपर तो बहुत आसान सा था। अच्छा हुआ है।'' उन्होंने कहा ''चलिए अच्छी बात है, लिस्ट में नाम ऊपर रहा तो यूजीसी की फेलोशिप तुरंत मिल जायेगी। आर्थिक समस्या नहीं रहेगी।''

कुछेक दिन वहां रहने के बाद मैं इलाहाबाद लौट गया। एम.फिल. पीएच.डी.(हिन्दी) की प्रवेश परीक्षा का परिणाम आया तो पता चला, मैंने एडमिशन लिस्ट में टाप किया है। वहां पांडे जी को भी पता चल गया। कुछ समय बाद मैं फिर जेएनयू पहुंचा और फिर पांडे जी का कमरा ही मेरा बसेरा बना। वहां तब तक रहा, जब तक ब्रह्मपुत्र होस्टल(पूर्वांचल) में मुझे अपना कमरा अलाट नहीं हो गया। अपने कमरे में शिफ्ट होने के बाद भी आये दिन पांडे जी से मिलने जुलने का सिलसिला जारी रहा। शुरू में इस कैम्पस में वह मेरे लिए एक बड़े भाई की तरह थे। लेकिन धीरे धीरे हम दोनों का रिश्ता ज्यादा प्रगाढ़ होता गया। उन दिनों मैं एसएफआई से अलग हो रहा था या कि अलग हो चुका था। हम लोगों ने इलाहाबाद में पहले पीएसए नामक स्वतंत्र किस्म के वामपंथी छात्र संगठन का गठन

किया। इसमें तीन तरह के छात्र थे। एक वे जो सीपीआई(एमएल) लिबरेशन के समर्थक या उससे प्रेरित थे, दूसरे वे जो एमएल के ही एसएन सिंह चंद्रपुल्ला रेड्डी ग्रुप से प्रेरित थे और तीसरे वे जो मेरी तरह माकपा एसएफआई की लाइन से क्षुब्ध होकर उससे अलग, स्वतंत्र वाम छात्र संगठन बनाने के नाम पर इसमें शामिल हुए थे। पहले वाले समूह में रामजी राय प्रमुख थे। दूसरे में रवि श्रीवास्तव और निशा आनंद आदि। बीच का मैं था, शायद इसीलिए मुझे दोनों गुटों के छात्र सदस्यों का भरोसा और सद्भाव प्राप्त था। बातचीत से लगा कि गोरख जी को इलाहाबाद के राजनैतिक घटनाक्रम और उसमें मेरी भूमिका के बारे में पूरी जानकारी है। उन दिनों जेएनयू में भाकपा माकपा से अलग वामपंथी समूह के नाम पर दो ढीलेढाले छात्र समूह थे आरएससी यानी रेडिकल स्टूडेण्ट्स सेण्टर और जेसीएम यानी जनवादी छात्र मोर्चा। आरएससी में गोरख के अलावा निशात कैसर, गुमड़ी राव, ए चंद्रशेखर, जे मनोहर राव जैसे जेएनयू के कुछ छात्र शामिल थे, जबकि जेसीएम में त्रिनेत्र जोशी आदि सक्रिय थे। सन् 1978 में दोनों संगठनों ने मिल कर छात्रसंघ का चुनाव भी लड़ा। उन्होंने सिर्फ कुछ कौंसिलर सीटों पर अपने उम्मीदवार लड़ाये थे। जहां तक मुझे याद आ रहा है, वे सभी हार गये। इस वक्त मुझे ठीक से याद नहीं आ रहा है कि कैम्पस में पीएसओ की स्थापना जेएनयू में मेरे दोबारा दाखिले के बाद हुई या पहले ही हो गयी थी। दोबारा दाखिला इसलिए कह रहा हूं कि सन् 78 में मेरा 'प्रोविजनल एडमिशन' हुआ था और वह एमए फाइनल का रिजल्ट अक्तूबर, 78 तक न आ पाने के कारण रद्द हो गया। थोड़ी बहुत सहूलियत मिल सकती थी, जो भारतीय भाषा केन्द्र के अध्यक्ष डा. नामवर सिंह और उनके समर्थकों के 'प्रतिकूल या असहयोगी रवैये' के चलते नहीं मिली। एडमिशन रद्द होने के बाद अगले साल यानी 79 में मुझे फिर से प्रवेश परीक्षा में बैठना पड़ा और इस बार तीसरी पोजिशन आयी, अंततः फेलोशिप के साथ दाखिला मिला। नया होस्टल मिलने तक फिर गोरख जी के कमरे में ही रहा। उनसे बहुत कुछ सीखने और समझने का मौका मिला। इमर्जेन्सी के बाद मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के पास उभरने का बड़ा मौका था। पर धीरे धीरे उसके राजनीतिक चिन्तन और लाइन की समस्याएं सामने आने लगीं। यूपी में माकपा और उसके छात्र संगठन के सामने ढेर सारी मुश्किलें थीं। सच पूछिये तो एसएफआई से पीएसओ की तरफ मेरा झुकाव ज्ञान से ज्यादा अपने सांगठनिक अनुभव के आधार पर हुआ। माकपा एसएफआई से निराशा मुख्य कारण बनी। साथ में पढ़ना लिखना भी होता रहा। जेएनयू में एसएफआई एआईएसएफ गठबंधन के नेतृत्व के रवैये को देख कर मेरा मोहभंग कुछ ज्यादा तेजी से हुआ। माकपा की राजनीतिक लाइन के कई बिन्दुओं पर मेरी असहमति पहले से ही उभर रही थी। अंतरराष्ट्रीय हालात भी भारत के पारम्परिक वामपंथियों के लिए प्रतिकूल साबित हो रहे थे। अफगानिस्तान में रूसी सैन्य घुसपैठ को भाकपा की तरह माकपा के लोग भी जायज बताने लगे। इससे इलाहाबाद एसएफआई में हम जैसों ने असहमति जतायी। छात्र संगठन में बड़ा जबर्दस्त विवाद चला। संगठन के साथी और मेरे प्रिय मित्र व्यासजी से तो बोलचाल भी बंद हो गयी थी। कुछ महीने बाद फिर से संवाद शुरू हुआ और तब राजनीतिक मतभेद के बावजूद दोस्ती पुख्ता होती गयी, जो आज तक कायम है। हालांकि छात्र जीवन के बाद हम दोनों पूरी तरह प्रोफेशनल हैं। वह एक नौकरशाह और मैं एक पत्रकार। एसएफआई से मेरे अलगाव के कुछ समय बाद ही इलाहाबाद में पीएसए का गठन हुआ। पहली बैठक नवनिर्मित ताराचंद होस्टल के एक कमरे में हुई थी। सम्भवतः वह अरविन्द या शरद श्रीवास्तव का कमरा था। जहां तक मुझे याद आ रहा है, बैठक में रवि श्रीवास्तव और रामजी राय सहित आठ दस संस्थापक सदस्य मौजूद थे। इनमें शरद, मंगज, अरविन्द, राकेश और कमल कृष्ण राय जैसे लोग प्रमुख थे, जिनका नाम इस वक्त मुझे याद आ रहा है। अखिलेन्द्र प्रताप सिंह और लाल बहादुर कुछ समय बाद इस संगठन से जुड़े। उन दिनों कैम्पस में छात्र कार्यकर्ता

के रूप में मैं खूब सक्रिय था। पर अपने बारे में मुझे कोई भ्रम नहीं था। विचारधारा, अर्थतंत्र, दर्शन खासतौर पर मार्क्सवाद लेनिनवाद और राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय मसलों की मेरी समझ बहुत प्रारम्भिक किस्म की थी। उतनी ही थी, जितनी हिन्दी में छपी बुकलेट्स या अन्य पुस्तकों से मिल सकती थी। आज भी कुछ ज्यादा नहीं है। हम जैसे हिन्दी पत्रकारों को उच्च और गम्भीर अध्ययन का मौका भी कहां मिलता है! हमारे जैसी सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि के पत्रकार लेखक का ज्यादा वक्त रोजी रोटी और रोजमर्रे के संघर्ष में ही बीत जाता है। लेकिन छात्र जीवन में, खासकर जेएनयू में गोरख पांडे से विचार विमर्श के दौरान मुझे राजनीतिक विचारधारा, दार्शनिक परम्पराओं, खासकर मार्क्सवाद के बारे में काफी कुछ समझने को मिला। इलाहाबाद की स्टडी सर्किल में रवि श्रीवास्तव और अन्य वरिष्ठ मित्र भी विचारधारा और अर्थतंत्र जैसे विषय पर अपनी बातें काफी असरदार ढंग से रखते थे। इस स्टडी सर्किल में कभी कभी जाने माने वकील, साहित्यकार, कवि लेखक और कलाकार भी शामिल होते थे। कभी कभार आने वाले ऐसे मेहमान हिस्सेदारों में इस वक्त मुझे 'अमृत प्रभात' (इलाहाबाद) के पत्रिका सम्पादक और कवि मंगलेश डबराल, कवि वीरेन डंगवाल, उच्च न्यायालय के एडवोकेट योगेश अग्रवाल, मार्कंडेय काटजू (बाद में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश बने), कवि और प्रकाशक नीलाभ के नाम याद आ रहे हैं। साहित्य, विचारधारा और संस्कृति के क्षेत्र में कृष्णप्रताप, रामजी राय और हिमांशु रंजन काफी जानकार थे। कृष्णप्रताप मीठे स्वभाव के थे, जरूरत के हिसाब से वह विमर्श में कभी कभी व्यंग्यात्मक तेवर अपनाते थे। पश्चिम के मार्क्सवादी आलोचकों को भी खूब पढ़ते थे। ग्राम्शी, काडवेल और जार्ज लूकाच के बारे में पहली बार उनसे ही सुना था। हिमांशु रंजन शांत स्थिर लेकिन काफी दृढ़ शख्सियत वाले शोध छात्र थे। रामजी राय में राजनीतिक वैचारिक स्पष्टता और प्रतिबद्धता दिखती थी लेकिन तेवर अक्सर आक्रामक रहता था। उन दिनों वह 'कन्वीन्स' करने के बजाय 'कन्फ्रंट' करने के अपने खास अंदाज के लिए जाने जाते थे। मेरे मित्र व्यास जी कभी कभी उनके अंदाज का मजा ले लेकर वर्णन करते थे। लेकिन जेएनयू में मुझे गोरख बिल्कुल अलग ढंग की शख्सियत नजर आये। राजनीति, दर्शन और विचारधारा के अन्य प्रश्नों को समझाने का उनका अंदाज निराला था। बहुत सहज और सजीव। विचारधारा और दर्शन के मामले में मुझ जैसे नवसाक्षर को यह आभास दिये बगैर कि वह सचमुच कितने बड़े विद्वान हैं, मेरे टेढ़े मेढ़े सवालों का वह बहुत सहजता से जवाब देते रहते थे। बीए में दर्शन मेरा एक विषय रह चुका था। उसमें नम्बर भी अव्वल मिले थे। पर सच पूछिये तो जेएनयू के स्तर के हिसाब से उसमें भी मैं नवसाक्षर ही था। जहां तक मुझे याद आ रहा है, गोरख जी उन दिनों प्रोफेसर सुमन गुप्ता के निर्देशन में 'ज्यां पाल सार्त्र के दर्शन में अलगाववाद के तंतु' जैसे किसी गूढ़ विषय पर शोध कर रहे थे। वह दर्शन के अलावा राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक मसलों पर भी ज्ञान के सागर थे। लेकिन अर्थशास्त्र पर उतनी पकड़ नहीं थी। जेएनयू में उनसे भी बड़े कई विद्वान और ज्ञानी थे, जो अपने अपने क्षेत्र के ज्ञान स्तम्भ कहे जा सकते हैं। लेकिन गोरख में जो एक खास बात थी, वह औरों में मुझे नहीं दिखी। मैंने जितना गोरख को जाना, उसके आधार पर कह सकता हूं कि अपनी अब तक की जिन्दगी में उन जैसा फकीर वामपंथी हिन्दी रचनाकार दार्शनिक मैंने नहीं देखा, जिसके राजनीतिक सोच में फौलाद जैसी दृढ़ता हो पर जिसके व्यक्तित्व के अंदरूनी आंगन में करुणा, प्रेम और कोमलता का समंदर लहराता हो। (मैंने मुक्तिबोध या पाश को नहीं देखा था)। गोरख के व्यक्तित्व में कहीं कोई पेंच नहीं दिखता था। उन दिनों वह छत्तीस सैंतीस के रहे होंगे, पर छल प्रपंच और झूठ मक्कारी के दांवपेंच से वह वैसे ही दूर थे, जैसे छोटे बच्चे होते हैं, जैसे फूल होते हैं, जैसे दूब या हरीभरी वनस्पतियां, पानी से लबालब नदी या झरने होते हैं। एक पत्रकार के रूप में मैंने बड़े बड़े धुरंधरों और बौद्धिक महाबलियों, भूतपूर्व

अभूतपूर्व वामपंथी लेखक बुद्धिजीवी भी इसमें शामिल हैं, को महत्वपूर्ण एसाइनमेण्ट, पद शोहरत, धन दौलत, बंगला या सुविधा के लिए तरह तरह के प्रपंच रचते देखा है। पर जुलाई, सन् 79 से मार्च, सन् 1986 तक जैसा मैंने देखा, गोरख की पूरी निजी सम्पत्ति उनके बेड पर बिछे एक साधारण पुराने से गद्दे के नीचे बिखरी रहती थी। कहीं निकलना होता, कुछ खरीदना होता या किसी दोस्त या परिचित की जरूरत होती तो वह गद्दे के नीचे के अपने 'एटीएम' से कुछ हिस्सा निकाल लेते। उन्हें यूजीसी की फेलोशिप मिला करती थी। कल्पना कीजिए, वह कमरे से बाहर हैं और उनके किसी दोस्त परिचित ने उनसे मदद मांगी तो वह फौरन उसे अपने कमरे में जाकर गद्दे के नीचे से मांगी गयी राशि ले लेने को कहते। मुझे याद नहीं, उन्होंने किसी भी मित्र या परिचित से कभी दिये हुए रुपयों की मांग की हो या उनके कर्जदार होने की याद दिलायी हो। कभी कभी उनकी अपनी 'एटीएम मशीन' भी खाली हो जाती थी, ऐसी स्थिति में वह अपने मित्रों से जरूरत के हिसाब से कुछ मुद्रा मांगने में कोई संकोच नहीं करते। उनका पूछने का अपना ही अंदाज होता ''मित्रवर, कुछ मुद्रा है क्या?'' इस तरह, वह सही अर्थों में निजी सम्पत्ति और रक्त सम्बंध आधारित निजी परिवार के व्यामोह से मुक्त हो चुके थे। पूर्वी उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के अपने गांव से उनका रिश्ता बहुत पहले खत्म हो चुका था। जहां तक मुझे लगता है, अपने पिता या घर के अन्य सदस्यों के मुकाबले वह अपनी एक बुआ से ज्यादा प्रभावित रहे होंगे। परिवार की बात हो तो उनका जिक्र वह जरूर करते थे। हालांकि परिवार का जिक्र वह यदाकदा ही करते थे, वह भी सिर्फ बहुत नजदीकी मित्रों के पूछने पर। बचपन में घर वालों ने उनकी शादी कर दी थी। पर वह रिश्ते में नहीं तब्दील हो पायी। जहां तक मुझे याद आ रहा है और जैसा पांडे जी से सुना था, उक्त महिला का बाद के दिनों में किसी बीमारी से निधन हो गया। निशात कैसर ने भी मुझे इसी आशय की जानकारी दी थी।

लेकिन दिल्ली, खासकर जेएनयू में प्रलेस जलेस या सीपीआई सीपीएम के छात्र शिक्षक संगठनों से जुड़े कुछ लोग, पता नहीं क्यों गोरख जैसे निर्दोष किस्म के इंसान से भी बेवजह चिढ़ा करते थे। कुछेक तो उनके खिलाफ दुष्प्रचार अभियान में जुटे रहते थे। उन्हीं दिनों की बात है, जेएनयू से सम्बद्ध एक उभरते हिन्दी लेखक (जो अब हिन्दी के जाने माने कवि कथाकार हैं) ने एक कहानी लिखी। माना गया कि उक्त लेखक ने गोरख का उपहास करते हुए उक्त कहानी के केन्द्रीय पात्र को गढ़ा। मैं इतना जरूर कह सकता हूं कि ऐसे लोग गोरख को बिल्कुल नहीं जान सके। इसलिए ऐसे साहित्यकारों की कहानियों के काल्पनिक पात्रों में गोरख को खोजना फिजूल है। उन दिनों कई समकालीन लेखक, यहां तक कि जनवादी खेमे के भी, अक्सर उन्हें या उनकी रचनाओं को खारिज करते पाये जाते। वे मानते कि उनमें गुणवत्ता नहीं है। कभी कहते कि उनकी कविताओं गीतों में स्वाभाविकता नहीं है, 'अधकचरी बातें हैं या कल्पित क्रांति का बनावटी वर्णन' है। इनमें कुछ लोग उनकी निजी जिन्दगी की कतिपय समस्याओं और उनके रहन सहन का मजाक उड़ाते पाये जाते। कुल मिला कर वे नहीं चाहते थे कि गोरख को किसी तरह की रचनात्मक या बौद्धिक प्रतिष्ठा मिले। लेकिन ऐसे साहित्यकारों को क्या मालूम था कि जेएनयू के होस्टल में रहने वाले उस फकीर वामपंथी रचनाकार की रचनाएं बनारस से बरौनी, अररिया से आरा और कलकत्ता से कानपुर, लगभग सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र के आम जनजीवन में जगह बना रही हैं।

गोरख अपनी रचनाओं या अपनी साहित्यिक शख्सियत के प्रचार या शोहरत के लिए किसी तरह की तिकड़म या फार्मूला नहीं खोजते थे। वह आलोचकों को पटाने या प्रभावित करने की बात तो दूर, उनसे मिलने जुलने जैसी सामान्य व्यावहारिकता से भी बहुत दूर रहने वाले इंसान थे। उनका होस्टल डा. नामवर सिंह के फ्लैट के बिल्कुल पास था पर मुझे नहीं मालूम, उनके यहां वह कभी गये

होंगे या नहीं, गये होंगे तो कितनी बार गये होंगे! हां, आते जाते नामवर जी आमने सामने होते तो गोरख जी का उनसे दुआ सलाम जरूर होता था। गोरख जी की दुनिया में उनके अपने लोग ही शामिल थे, वह जनता, जिसके लिए वह लिखते थे और उनके समानधर्मा राजनीतिक साहित्यिक सोच के लोग। यहां गोरख जी के बारे में एक और बात बताना बहुत जरूरी है। वह कई मामलों में सचमुच अप्रतिम थे। आज के भारतीय समाज में जातिवादी वर्णवादी या दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी तत्वों की बात कौन करे, महाबली मार्क्सवादी आलोचकों, प्रगतिकामी जनवादी लोगों के बीच भी जात पात जैसी विकृति नीचे से ऊपर तक पसरी दिखती है, लेकिन गोरख के लिए सिर्फ एक ही जाति थी मनुष्यता। इसमें सामाजिक आर्थिक श्रेणी विभाजन की स्थिति को वह मंजूर करते थे। भारत की खास वस्तुस्थिति में दलित आदिवासियों और अन्य उत्पीड़ितों के खिलाफ सदियों से जारी शोषण उत्पीड़न को भी वह एक असलियत मानते थे। इसीलिए वह समता और सामाजिक न्याय के पक्षधर थे। दिल्ली के मंगोलपुरी, सुल्तानपुरी, नरेला और कंझावला जैसे पास के गावों में भी वह आंदोलन, सभा या रैली के वक्त अपने राजनीतिक मित्रों, मजदूरों, दलित पिछड़े वर्ग के गरीब लोगों के साथ आते जाते रहते। मंच से अपनी कविताओं, खासकर भोजपुरी गीतों का पाठ करते और फिर आम गरीब लोगों के बीच घुलमिल कर बातें करते। उनके साथ खाते पीते और कार्यक्रम खत्म होने के बाद डीटीसी की भीड़ भरी बस में सवार होकर देर रात जेएनयू पहुंचते। बस में वह हमेशा इस बात को लेकर सतर्क रहते कि कोई उनका पैर न कुचले। गोरख की एक और खास बात, जो उन्हें अपने अन्य समकालीन रचनाकारों से अलग करती है : उन्हें अपनी किसी रचना पर मूर्धन्य आलोचकों या टिप्पणीकारों के लेखों या शाबासियों का कभी इंतजार नहीं रहता था। शहर के काफी हाउस या मंडी हाउस की तरफ, कोई जाना माना आलोचक या बुद्धिजीवी अगर कभी उनकी प्रशंसा करता भी तो इसका उन पर बहुत ज्यादा असर मैंने कभी नहीं देखा। लेकिन मंगोलपुरी, सुल्तानपुरी, नरेला या दिल्ली के आसपास की किसी दलित, मजदूर बस्ती या ऐसी ही किसी जगह आयोजित किसान सभा, रैली या किसी राजनीतिक कार्यक्रम में उन्हें कविता सुनाने या गीत गाने का मौका मिलता या उनकी अनुपस्थिति में उनके गीत गाये जाते तो उसकी सूचनामात्र पाकर वह चहक उठते थे। एक बार मैं पटना मे आयोजित एक बड़ी रैली में भाग लेकर दिल्ली लौटा था। उन्हें पहले ही मालूम हो चुका था कि वहां उनके और विजेन्द्र अनिल के दो तीन गीत सभा मंच से गाये गये। उन्होंने मिलते ही इस बारे में मुझसे पूछा और रैली का पूरा ब्योरा सुन कर अपनी खुशी जाहिर की।

कुछ समय साथ रहने की वजह से गोरख की अनेक कविताओं और भोजपुरी गीतों का पहला श्रोता होने का मुझे गौरव मिला। सिर्फ सुनने का ही नहीं, कई सार्वजनिक मौकों पर उनके भोजपुरी गीतों को गाने का भी। उनके भोजपुरी गीत दिल्ली, बिहार, बंगाल, यूपी, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा आदि के दोस्तों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं और आम लोगों को तो पसंद थे ही, दक्षिण के हमारे कई छात्र साथी भी बार बार सुनने की मांग करते थे। कई बार हम लोग पीएसओ की बैठकों के बाद होस्टल के कमरे में ही उनके गीतों का समवेत गायन करने लगते। जेएनयू की गोष्ठियों से लेकर ट्रेड यूनियन के सभा मंचों से भी हमने 'गुलमिया अब हम नाहीं बजइबो, अजदिया हमरा के भावेले' या 'समाजवाद बबुआ धीरे धीरे आयी' के अनगिनत सस्वर पाठ किये होंगे। गोरख के भोजपुरी गीतों का पहला संकलन 'हिरावल' के सम्पादक संचालक शिवमंगल सिद्धांतकर ने छापा। शिवमंगल जी दिल्ली विश्वविद्यालय के एक कालेज में हिन्दी के व्याख्याता रहे हैं और जनवादी विचारधारा और आंदोलनों के प्रखर प्रवक्ता भी। सत्तर पार बाद भी वह आज उसी तरह सक्रिय हैं। सम्भवतः वह पुस्तिका 78-79 में आयी थी। दिल्ली ही नहीं, पूरे हिन्दी क्षेत्र में वह लोकप्रिय हुई। दूर दूर से लोग

इसकी मांग करते। हिन्दी के कई मठाधीशों, खासकर नकली प्रगतिकामियों को गोरख के गीतों कविताओं की बढ़ती लोकप्रियता कतई पाच्य नहीं थी। कइयों ने तो यहां तक कहना शुरू किया कि गोरख भोजपुरी में गाने लिखें, वह हिन्दी कविता में बेवजह टांग अड़ाते हैं। उनके पास आधुनिक प्रगतिशील कविता की न तो भाषा है, न मुहाविरे और न संस्कार हैं। लेकिन गोरख जमे रहे। उनका पहला कविता संकलन भी आ गया 'जागते रहो'। हिन्दी में उनकी कई कविताएं सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र में पोस्टरों पर उतर आयीं। जनता ने कवि और उसकी कविता को पहचाना। अभी कुछ ही दिनों पहले, मुजफ्फरनगर दंगे पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए जब मैंने फेसबुक पर और 'गुलेलडाटकाम' के अपने कालम में गोरख की इस कविता को उद्धृत किया तो 'द हिन्दू' के सम्पादक सिद्धार्थ वरदराजन (अब पद से हट चुके हैं) ने दंगों के 'राजनीतिक खेल' पर उसे बेहतरीन अभिव्यक्ति बताया। उन्होंने स्वयं अपने फेसबुक टाइमलाइन पर भी उसे दर्ज किया। कविता यहां फिर प्रस्तुत है

इस बार दंगा बहुत बड़ा था
खूब हुई थी
खून की बारिश
अगले साल अच्छी होगी
फसल मतदान की।

गोरख की एक छोटी सी कविता मैं जब कभी उद्धृत करता हूं, कम शब्दों में बड़ी बात कहने की उनकी रचनात्मक क्षमता पर लोग चकित होते हैं

वे डरते हैं
किस चीज से डरते हैं वे
तमाम धन दौलत
गोला बारूद, पुलिस फौज के बावजूद
वे डरते हैं
कि एक दिन
निहत्थे और गरीब लोग
उनसे डरना बंद कर देंगे।

महत्वपूर्ण कथ्य को किस तरह बेहद सहज भाषा और अंदाज में पेश किया गया है! पांडे जी की यह अपनी खास शैली है।

मुझे गोरख की रचना प्रक्रिया को भी नजदीक से देखने समझने का मौका मिला। कई बार वह एक झटके में कोई कविता या गीत पूरा कर लेते थे। कई बार लम्बे समय तक किसी एक कविता या गीत पर काम करते। बार बार सुनाते और सुधारते भी। सुनने सुनाने के नाम पर एक बार मैंने उनके साथ शरारत भी की थी। उन दिनों मैं यदा कदा कविताएं भी लिखता था (उन दिनों हमारी उम्र और पृष्ठभूमि के ज्यादा युवक ऐसा करते थे)। पांडे जी को जब कभी अपनी कविताएं सुनाता, वह बहुत उत्साह नहीं दिखाते। एक बार तो उन्होंने बड़े निष्ठुर ढंग से कहा ''उर्मिलेश जी, बुनियादी तौर पर आप में राजनैतिक सामाजिक सांस्कृतिक विषयों पर लिखने पढ़ने की क्षमता सम्भावना ज्यादा प्रबल है। कविता की नहीं।'' उन दिनों मेरी कुछ कविताएं लघु पत्रिकाओं में छपी भी थीं। यदाकदा कविता लिखता रहता था। एक बार शरारत सूझी। एक दिन, तीन चार छोटी छोटी कविताएं उनके सामने पेश कीं। मैंने बताया कि बर्तोल्त ब्रेख्त की कुछ छोटी कविताओं का पिछले दिनों मैंने अनुवाद

किया है। प्लीज देखिए न, ये कविताएं कैसी हैं और अनुवाद कैसा है? ब्रेख्त और नेरूदा पांडे जी के प्रिय कवि थे। उन्होंने कहा ''पढ़ कर सुनाइये।'' मैंने सुनाया। उन्होंने छूटते ही कहा ''मजा आ गया। आप अनुवाद अच्छा करते हैं।'' कमरे में एक दो और मित्र थे, जिन्हें मालूम था कि उर्मिलेश आज पांडे जी के साथ कुछ मजाक करने वाला है। थोड़ी देर के बाद मैंने खुलासा किया ''पांडे जी, यह कविताएं मेरी हैं।'' पांडे जी थोड़ी देर के लिए झेंपे फिर मुस्कराते हुए बोले ''कामरेड, आप कभी कभी अच्छी शरारत कर लेते हैं।'' पांडे जी ने बुरा नहीं माना। इसे छोटे भाई की शरारत के तौर पर लिया। जबकि कई बार वह कुछेक क्षण के लिए बात बात में 'दुर्वासा' भी हो जाया करते थे। मुझे नहीं लगता कि उनकी यह मनोदशा बहुत पहले से ऐसी रही होगी। सम्भवतः यह जेएनयू में बाद के दिनों में उभरी। इसके कुछ खास तरह के लक्षण थे। मसलन कहीं चलते हुए उनके पैर से अगर आपका पैर छू गया, तो वह अचानक आग बबूला हो जाया करते थे। डीटीसी की बसों में कई बार किसी अनजान व्यक्ति को भी वह कड़ाई से टोक देते थे। लेकिन हमेशा ही ऐसा करेंगे, ऐसा भी नहीं था। लेकिन कई बार अनजाने में कोई छोटा बच्चा भी उनके पैर को हल्के से छू दे तो वह तिलमिला उठते थे। ऐसे हालात में कई बार मैंने उन्हें बेहद आक्रामक प्रतिक्रिया करते देखा। विकासपुरी इलाके में भोजन के बाद टहलते वक्त उन्होंने एक बार ऐसा कर दिया कि हम सब हतप्रभ रह गये। साथ में मेरी पत्नी भी थीं। लेकिन हर समय वह ऐसा नहीं करते थे। निशात कैसर और मैं, कई बार उनकी इस समस्या पर आपस में बातचीत करते रहते थे। आईपीएफ (उन दिनों बना एक मोर्चानुमा संगठन) और भाकपा (माले) के दिल्ली स्थित सदस्यों को भी गोरख जी की इन समस्याओं की थोड़ी बहुत जानकारी जरूर थी। ऐसे भी बहुत मौके आये, जब वह बाद के दिनों में अपने नजदीकी मित्रों से कहा करते थे ''दिस रीगन (उन दिनों के अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन) वांटेड टू गेट मी किल्ड', या 'सीआईए मुझे खत्म कराना चाहती है। केजीबी भी लगी है... वो लोग कभी भी आ सकते हैं।'' कभी वह किसी भारतीय सत्ताधारी नेता या किसी अन्य विदेशी ताकत के बारे में भी इसी तरह की बातें किया करते थे। कैम्पस या मंडी हाउस या किसी अन्य स्थान पर भी वह अचानक सड़क चलते किसी हृष्टपुष्ट अनजान व्यक्ति की तरफ इशारा करके अपने किसी मित्र से कहते थे ''कामरेड, उसे आप देख रहे हैं न, ये लोग 'उसी' के भेजे हुए हैं। मुझ पर नजर रखी जा रही है।'' उन दिनों हम लोग छात्र थे और अपन जैसों के पास बहुत सम्पर्क या संसाधन भी नहीं थे। पर जहां तक मुझे याद आ रहा है कि मैंने, निशात कैसर ने या पीएसओ के अन्य कई मित्रों ने गोरख पांडे को अनेक बार समझाने की कोशिश की कि उन्हें यह सब नहीं सोचना चाहिए, यह सब उनकी परिकल्पना है, जिसका वास्तविकता से कोई लेना देना नहीं है। पर वह मुस्करा कर रह जाते। बाद के दिनों में हममें कइयों ने भाकपा(माले) के नेताओं को इन सारी बातों की जानकारी दी और इसका सही ढंग से इलाज कराने का सुझाव दिया। शायद, उनमें कुछेक लोगों ने इस दिशा में कोशिश की होगी। मई, 1983 के बाद मैं कैम्पस से बाहर रहने लगा था। पांडे जी सम्भवतः 1984 में विकासपुरी के एक घर में, जहां संदीप पहले से रहते थे, कुछ दिनों के लिए रहने आये तो वहां फिर से हमारी नियमित मुलाकातें होने लगीं। उन दिनों उसी मुहल्ले में मैं सपरिवार रहने लगा था। अलग फ्लैट में रहने वाले संदीप भाकपा (माले) के युवा कार्यकर्ता थे। इससे पहले वह मेरे साथ पीएसओ की दिल्ली इकाई में काम कर चुके थे। मुझे नहीं मालूम कि पार्टी में वह किस स्तर के कार्यकर्ता थे, पर वह पूर्णकालिक हो चुके थे। गोरख की पार्टी के तीन प्रमुख नेताओं प्रकाश, स्वपन मुखर्जी और बाद के दिनों में बृज बिहारी पांडे से अक्सर मुलाकात होती रहती थी। सभी उनका सम्मान करते थे। बृजबिहारी जी का रुख उन्हें लेकर काफी सहयोगपूर्ण और संवेदनशील था। जब भी मौका

मिलता, वह गोरख के साथ बैठते थे। उनकी रचनाओं से लेकर उनकी निजी समस्याओं पर भी गौर करते थे। मुझे लगता है कि पार्टी की तरफ से ही गोरख जी के लिए कुछ दिनों विकासपुरी में व्यवस्था की गयी होगी। पर उन दिनों भी उनकी मनोदशा में कोई बड़ा सुधार नहीं था। सात आठ दिनों में एकाध बार शाम को वह मेरे कमरे पर जरूर आते थे और खीर खाने की फरमाइश करते। उन्हें मेरी पत्नी का बनाया भोजन, खासकर खीर बेहद पसंद थी।

यह सही है कि गोरख की कुछ निजी समस्याएं और परेशानियां थीं, जो काफी समय से उनका पीछा कर रही थीं। जेएनयू में बाद के दिनों में वे बेहद जटिल और खतरनाक हो गयीं। लेकिन निजी समस्याओं के बावजूद राजनीतिक वैचारिक सोच के स्तर पर उनमें कोई उलझाव नहीं था। विचारों के क्षेत्र में उनका परिवार बहुत बड़ा था। साम्राज्यवादियों की साजिशों के चलते लैटिन अमेरिका, फिलीपीन्स या फिलीस्तीन में किसी जनयोद्धा या आम निर्दोष नागरिकों की जान जाती तो सचमुच वह अंदर से विलाप करते नजर आते, मानो उनके अपने परिवार, उनके अपने समाज पर हमला हुआ है। संयोगवश गोरख के पास अपना कोई निजी परिवार नहीं था। एक निर्दयी समाजव्यवस्था में निजी तौर पर वह परिवारविहीन थे। मुझे बार बार लगता था कि वह किसी मनपसंद स्त्री का प्रेम चाहते थे, जिसे वह जी भर कर प्रेम कर सकें। पर ऐसा अवसर उन्हें कभी नहीं मिला। यहां एक और सच को बयां करना जरूरी है। यह बात सही है कि एक समय गोरख जी जेएनयू की एक छात्रा को प्रेम करते थे, एकतरफा प्रेम। सम्भवतः वह पंजाब के किसी शहर से आयी थी और समृद्ध परिवार से थी। जहां तक मुझे याद आ रहा है, वह झेलम होस्टल में ही रहती थी। शुरू में शायद उन्हें भ्रम था कि वह लड़की उन्हें पसंद करती है और एक न एक दिन उनके प्रेम का जवाब सकारात्मक प्रतिक्रिया के साथ देगी। पर ऐसा नहीं हुआ और न होना था। बाद के दिनों में उसे मालूम हो गया कि दर्शन शास्त्र में पीएच.डी. करने वाले पांडे जी उसे चाहने लगे हैं। पर वह इससे बिल्कुल प्रभावित नहीं थी। दिलचस्प बात है कि गोरख जी की उससे शायद ही कभी बात हुई हो। पर देखादेखी अक्सर हो जाया करती थी। मेरा अनुमान है, पांडे जी या उसने एक दूसरे को कभी 'हैलो' भी नहीं किया होगा। एक दिलचस्प वाकया बताऊं। इससे पांडे जी के मासूम मानस को समझने में मदद मिल सकती है। उन दिनों जेएनयू में छात्रसंघ के चुनाव के लिए प्रचार अभियान जोरशोर से चल रहा था। पदाधिकारियों के पैनल में पीएसओ की तरफ से मैं इकलौता उम्मीदवार था। पीएसओ, जिसके पांडे जी भी एक सदस्य थे, ने आरएसएफआई (एसएफआई का विद्रोही गुट) और कुछ स्वतंत्र वामपंथी छात्र समूहों के साथ मिल कर डीएसएफ नामक एक मोर्चा बनाया था। इस मोर्चे की तरफ से मैं छात्रसंघ के महासचिव पद के लिए चुनाव लड़ रहा था। अध्यक्ष पद के लिए राजन जी जेम्स और उपाध्यक्ष के लिए सीताराम सिंह (आरएसएफआई नेता) प्रत्याशी थे। डीएसएफ के दो संयोजक थे। हमारे संगठन पीएसओ की तरफ से निशात कैसर और स्वतंत्र वाम छात्र समूह की तरफ से आर. दिवाकरन। निशात उन दिनों सेण्टर फार सोशल सिस्टम में पीएच.डी. कर रहे थे, जबकि दिवाकरन सेण्टर फार साइंस पालिसी में। वह भी गुमड़ी राव और जैकब की तरह गोरख पांडे के मित्रों में थे। सम्भवतः यह सन् 80 या 81 की बात है। गंगा झेलम की लान में एक दिन पांडे जी ने मुझे अन्य प्रत्याशियों के साथ कुछ छात्र छात्राओं से मिलते जुलते देखा। वह शायद ढाबे पर चाय पी रहे थे। जब अगले दिन की सुबह उनसे मुलाकात हुई तो उन्होंने छूटते ही पूछा ''बंधु, आप तो बड़े स्मार्ट हैं। लड़कियों से खूब बतियाते हैं। गुरु, आपको वोट ठीकठाक मिलेंगे।'' मैंने पूछा ''क्यों ऐसा कैसे लगा आपको?'' जवाब दिये बगैर उन्होंने अगला सवाल पूछा ''अच्छा, ये बताइये 'उन्होंने' क्या कहा आपको?'' यह 'उन्होंने' सम्बोधन उसी लड़की के लिए था, जिससे वह (एकतरफा) प्रेम करते थे। सचमुच, उस

दिन हम लोगों की उस लड़की और उसके साथ की कई अन्य लड़कियों से झेलम गंगा लान में मुलाकात हुई थी। हमारे साथ जेम्स, सीता और श्याम आदि भी थे। हम लोगों ने उन लड़कियों को समझाने की कोशिश की कि हमारा पैनल अतिवादी नहीं है, जैसा कि एसएफआई, एआईएसएफ वाले प्रचारित कर रहे हैं। लेकिन इसके अलावा किसी से कोई निजी बातचीत नहीं हुई। मैंने पांडे जी को साफ साफ बता दिया कि हां, मेरी 'उनसे' (उस लड़की से) बातचीत हुई। पर मुझे नहीं लगता कि वह हम लोगों को वोट देगी। शायद लड़कियों का वह ग्रुप 'फ्रीथिंकर्स'(उन दिनों जेएनयू में सक्रिय एक छात्र समूह, जो 'अराजनीतिक या स्वतंत्र विचारों' का होने का दावा करता था) को या एसएफआई वालों को देगा। फिर पांडे जी ने धीरे से पूछा ''उन्होंने आपसे मेरे बारे में तो कुछ नहीं पूछा?'' उन दिनों हम बच्चे ही तो थे, ज्यादा समझ नहीं थी। पांडे जी के इस सवाल पर हम हंस भी सकते थे, उनका मजाक उड़ा सकते थे लेकिन उस वक्त पांडे जी को देख कर मैं रुआंसा हो गया। लगा मैं रो पड़ूंगा। पांडे जी के अंदर उस लड़की के लिए प्रेम का यह कितना कोमल और पवित्र भाव था! उसे लेकर कितनी धैर्यभरी उत्सुकता थी! पर यह सब बिल्कुल एकतरफा! वह बार बार उस लड़की को 'उन्होंने' या उसके नाम में 'जी' जोड़ कर सम्बोधित कर रहे थे। सम्मान से भरपूर थे उनके भाव। वैसे भी महिलाओं के प्रति मैंने उनमें हमेशा बहुत सम्मान भाव देखा। उक्त घटना के बाद मैंने उन्हें दो तीन बार समझाने की कोशिश की कि उस लड़की की दुनिया अलग है। यह बात सही है कि वह बेहद संजीदा और समझदार लड़की लगती है। पर समृद्ध परिवार से आती है। उसकी सोच और सपने अलग हैं। आपको कोई गलतफहमी नहीं पालनी चाहिए। पर वह मानने को कहां तैयार थे! मेरी तरह कुछ अन्य मित्रों, खासकर निशात ने भी उन्हें कई बार समझाने की कोशिश की। पर बात नहीं बनी। वह अपने प्रेम के प्रति विश्वास से भरे हुए थे।

मैंने एक बार उनसे एक गम्भीर बात, मजाकिया लहजे में कही ''पांडे जी, आपको अब 'अरेंज मैरिज' या आपसी सहमति से किसी समझदार लड़की से शादी कर लेनी चाहिए। अगर आप इजाजत दें तो मैं अपने इलाके के एक ऐसे परिवार से बात कर सकता हूं, जिसके घर की एक बेटी तीस बत्तीस की उम्र की है। वह कुंवारी है और शायद किसी पढ़े लिखे योग्य वर की तलाश में है। शायद, वह आप जैसे पढ़े लिखे व्यक्ति के साथ शादी करना मंजूर कर ले। पर वह साधारण कस्बाई लड़की है, जिसे राजेश खन्ना की फिल्में देखना और कैरम खेलना बहुत पसंद है। वह मार्क्सवादी क्या राजनीतिक भी नहीं है।'' मेरी बात सुन कर पांडे जी मुस्कराए। उन्होंने फिर गम्भीरतापूर्वक कहा ''क्या बात करते हैं उर्मिलेश जी। ऐसे थोड़े होता है। प्रेम बहुत व्यक्तिगत मामला है।'' उनकी बात सही थी। मैंने तो समझौते का एक रास्ता भर सुझाया था। निशात भी कहा करते थे ''पंडित, अब हम तुम्हारी शादी रचा देंगे।'' उन दिनों निशात स्वयं भी अपेक्षाकृत अधिक उम्र में अपने से कुछ कम उम्र की एक पढ़ी लिखी लड़की से मुहब्बत कर रहे थे। शायद, शादी की योजना थी। पर वह अपनी हर बात बहुत गोपनीय रखते थे। उस लड़की से हम लोगों का परिचय भी बहुत बाद में कराया।

मुझे लगता है, बहुत बुरे समय में जिन लोगों को पांडे जी के निजी परिवार का विकल्प बनना था या उनकी समस्याओं को सहानुभूतिपूर्वक सम्बोधित करना था, कहीं न कहीं उनसे कुछ चूक हुई या लगातार जटिलता की तरफ बढ़ती समस्याओं की अनदेखी हुई। अंततः ऐसी ही कुछ समस्याओं से जूझने में निजी तौर पर असमर्थ होते जाने और मानसिक शारीरिक स्वास्थ्य की परेशानियों के चलते उन्होंने अपने जीवन का अंत किया होगा। इस बारे में मैं ठोस तौर पर कुछ नहीं कह सकता। मैं तो सिर्फ अपने जेएनयू और दिल्ली के दिनों (जुलाई, 1979 मार्च 1986) तक ही गोरख के बारे में थोड़ी बहुत बातें बता सकता हूं। अप्रैल, 1986 के पहले सप्ताह में ही मैं पटना चला गया था। नवभारत

टाइम्स में पत्रकार बन कर। उसके बाद पांडे जी से सम्पर्क कट गया। ऐसा नहीं कि गोरख की निजी समस्याएं या स्वास्थ्य सम्बंधी कुछ खास किस्म की मुश्किलें 78-86 के दौर में नहीं थीं। तब भी वे थीं। पर उन दिनों जेएनयू में उनके इर्दगिर्द बहुत सारे समान सोच या पृष्ठभूमि के छात्र थे। उनमें निशात कैसर, जैकब, गुमड़ी राव, राजू, जे मनोहर राव, अशोक टंकशाला, ए चंद्रशेखर, कोदंड रामारेड्डी और मेरे अलावा तुलसीराम, राजेश राहुल, शशिभूषण उपाध्याय, मदन, उज्ज्वल आदि प्रमुख हैं। ऐसे लोगों के साथ राजनीतिक सांस्कृतिक और निजी मसलों पर अक्सर चर्चाएं होती रहती थीं। पीएसओ के बाहर के भी कई छात्रों से उनकी खूब पटती थी। कैम्पस में उनके अनेक प्रशंसक और चाहने वाले थे। भाई बहन संजय और सुजाता प्रसाद उनके भोजपुरी गीतों के भारी प्रशंसक थे। तुलसीराम उन दिनों पीएच.डी. कर रहे थे और भाकपा लाइन के साथ थे, जबकि अजय कुमार समाजवादी सोच के। यह लोग भी उनकी रचनाओं के बड़े प्रशंसक थे। गोदावरी के पास वाले ढाबे के सामने की सीढ़ियों पर वह पीएसओ के साथियों के अलावा जिन अन्य लोगों के साथ बैठते थे, उनमें इस वक्त मुझे तुलसी राम, जैकब, गुमड़ी राव, नागेन्द्र प्रताप, अजय कुमार, ईश और दिवाकरन आदि के नाम याद आ रहे हैं। लगातार संवाद, गम्भीर विचार मंथन, गपशप, हंसी मजाक और सैर सपाटे का सिलसिला चलता रहता था। मुझे नहीं मालूम, सन् 85-86 के बाद पांडे जी को जेएनयू या बाद के दिनों में जहां भी वह रहे, कैसा माहौल मिला। उनके नजदीक कौन और कैसे लोग थे! मुझे गलत न समझा जाय, मैं किसी पर गैर जिम्मेदार होने का आरोप नहीं लगा रहा हूं। इस संसार में हर इंसान को अपनी जिन्दगी का बचाव स्वयं भी करना होता है। लेकिन मन में उभरते कुछ प्रश्नों का जवाब खोजने की कोशिश कर रहा हूं। क्यों नहीं, उन्हें बचाया जा सका? जिस समय उन्हें ज्यादा देखरेख, बेहतर चिकित्सा, प्रेम, करुणा और सकारात्मक माहौल की जरूरत थी, शायद वह उन्हें नहीं मिला। बीमारी के दौरान उन्हें जब जब एम्स में भर्ती कराया गया, डा. अनूप सराया जैसे जनपक्षधर डाक्टरों ने उनकी हर सम्भव मदद की। पर शायद काफी देर हो गयी थी। उनकी मनोदशा नहीं बदली जा सकी। मुझे बताया गया कि पांडे जी जब डाउन कैम्पस वाले अपने कक्ष में रहते थे और उनकी तबीयत ठीक नहीं रहती तो देखरेख के लिए उनके कुछ साथी समय समय पर उनके साथ भी रहे।

लम्बे अंतराल के बाद, एक दिन वह बुरी खबर मिली। पांडे जी चले गये। बाद के दिनों में जब मैंने निशात से पूछा तो उन्होंने बताया कि डाउन कैम्पस स्थित अपने कक्ष में उस दिन वह अकेले थे। पता नहीं, क्या मनोदशा रही होगी, जब उन्होंने अपने जीवन का अंत किया। इस आत्महत्या के कुछ दिनों बाद जेएनयू स्थित गंगा होस्टल में गोरख जी की स्मृति में एक सभा का आयोजन किया गया। निशात कैसर, जो उन दिनों 'जनसंस्कृति मंच' के उत्तरी क्षेत्र के सचिव थे, ने अपने अनुभवों की रोशनी में वहां एक बड़ी बात कही ''हमें जरूर सोचना चाहिए कि एक समान वैचारिकता के बावजूद हम लोगों के बीच सामुदायिकता क्यों नहीं विकसित हो सकी है? इस तरह की सामुदायिकता होती तो क्या गोरख का अकेलापन इस कदर बढ़ा होता? बीते एक डेढ़ साल से वह लगातार अकेलेपन और भयानक त्रासदी की तरफ बढ़ते गये। ऐसे में यह सवाल बना रहेगा कि हमारी वैचारिकता आगे सामुदायिकता की तरफ क्यों नहीं बढ़ती!'' निशात की यह टिप्पणी गोरख की आत्महत्या की पृष्ठभूमि और परिस्थितियों पर रोशनी डालती है।

आत्महत्या की खबर मिलते ही पटना में भी उनके पाठकों, श्रोताओं, राजनीति और विचार के स्तर पर उनसे जुड़े दोस्तों, प्रशंसकों और शुभचिन्तकों में मातम सा छा गया। उस दिन पटना स्थित मेरे घर में खाना नहीं बना। बच्चों को कुछ भी नहीं बताया। वे रात में केला दूध लेकर सो गये। हम दोनों देर तक गोरख जी के बारे में सोचते और बतियाते रहे 'अगर ऐसा हुआ होता तो ऐसा नहीं

होता' या 'उन्होंने वह बात मान ली होती तो ऐसा क्यों होता।' अब बेमतलब हो चुकीं ऐसी बहुत सी बातें मेरे और मेरी पत्नी के दिमाग में उमड़ती घुमड़ती रहीं। इस घटना के बाद कई पत्र पत्रिकाओं की तरफ से मुझे उन पर कुछ लिखने को कहा गया। कइयों ने बार बार जोर डाला। पर पता नहीं क्यों, मैं नहीं लिख सका। जैसे ही लिखने के वास्ते पुरानी बातें याद करने की कोशिश करता, पांडे जी सामने आकर खड़े हो जाते, मुस्कराते हुए ''कामरेड, चलिए चाय पीते हैं।'' मैं कहता ''पान भी खिलाएंगे न।'' वह 'हां' में सिर हिलाते और हम दोनों कभी गंगा ढाबे, कभी गोदावरी के सामने वाले ढाबे या कभी कमल काम्प्लेक्स की तरफ चल पड़ते। ऐसे में संस्मरण क्या लिखता! अंत में उनकी छोटी सी एक कविता के साथ अपनी बात खत्म कर रहा हूं

ये आंख हैं तुम्हारी
तकलीफ का उमड़ता हुआ समंदर
इस दुनिया को
जितना जल्दी हो सके
बदल देना चाहिए।

(इस आलेख में कुछ खास अवसर, वर्ष और घटनाओं का उल्लेख याददाश्त के आधार पर किया गया है, उनमें कुछ मामूली हेरफेर हो सकता है। पर इससे संस्मरण की मूल अंतर्वस्तु पर असर नहीं पड़ता।)

बाद उनके...

नीलाक्षी सिंह

एक

वे अपमान की जरूरत वाले दिन थे। स्याही सोख्ता पर पसर कर नीले रंग में फैल जाने वाला अपमान। वह स्याही सोख्ते पर उंगलियां फिरा कर देख लेती थी और उसके नीले रंग की खुरदुराहट उसे अहसास करा देती थी कि होकर गुजर चुका... अपमान। स्याही सोख्ता के कोर को नाखून से खुरचते हुए यकीन बना रहता था कि वक्त ने उसे याद रखा है।

उपेक्षा और तिरस्कार का अपना एक गणित होता है। कभी कभी लोग एक ही अपमान में जिन्दगी भर जलते रहना चाहते हैं, कभी किसी को सुलगने के लिए बार बार एक नये किस्म के अपमान की तलब होती है। वह इस दूसरी बिरादरी की थी और उसे भी उकेरे जाने के लिए अस्थायी प्रभाव वाले चोटों की लत थी।

बात अपमान की पहली आहट को आंखों की कोर से सूंघ लेने से शुरू होती। आंखें हालांकि पनियाई रहती थीं हर समय पर इस पहली दस्तक पर उसकी कोर में फड़फड़ाहट सी होती थी। वह इस उम्मीद से चहकती कि सकारात्मक उर्जा में अनुवाद कर सकने के लिए कच्चे मसाले का जुगाड़ हो गया।

वह यानी कौशिकी सक्सेना। जमाने के जितने भी मोबाइलों में उसके नम्बर सेव थे, उनमें से अस्सी प्रतिशत लोग उसके नाम के आगे 'ब्रोकर' लगा कर उसका नम्बर सुरक्षित करते थे। रियल इस्टेट ब्रोकर कौशिकी सक्सेना। ठस चीजों के खरीद फरोख्त की दुनिया में ठसके से जमी थी वह दुबली पतली स्याह लड़की।

मामूली से मामूली चीजों की शानदार पैकेजिंग और लच्छेदार प्रस्तुति। बार बार हार चुके दांव

को भी ऐसे पेश करना होता कि किसी न किसी को वह, उसका सपनों का महल लगने लगे। एक दफे उसे एक ऐसा फ्लैट बेचना था, जिसमें कोई बाल्कनी नहीं थी। कमरों में खिड़कियां थीं पर उनके पल्ले भी बगल की इमारतों से उलझ कर खुलते थे।

उस घर को दिखाने एक खास समय पर लोगों को लाती वह। दोपहर के ठीक साढ़े तीन से चार के बीच का समय। लगातार कई दिन। एक दिन वाकई ऐसा आया जब उस फ्लैट के गोलाकार डाइनिंग स्पेस की बड़ी बड़ी खिड़कियों से तीखे धार में छलकती सूर्य की रोशनी ने देखने वाले को बींध दिया। उस रोज कौशिकी सक्सेना ने महसूस किया था कि इस खास वक्त के सूर्य की लौ में बुझती उमर का अचानक से सुलग उठा वह सौन्दर्य होता है, जिसके उद्‌गम का स्रोत खोज पाना हासिल नहीं होता। जिन्दगी... उस एक मुकाम के आगे और पीछे... ताउम्र उस रूप के लिए तरसती रह जाती है। बहरहाल वह ग्राहक खूबसूरती का पारखी था जरूर। उसने घंटे आध घंटे रोजाना हासिल हो पाने वाले सौन्दर्य पर मुहर लगा दी और सौदा हो गया।

दुनिया की हर इमारत की मेल जेब से भारी भरकम खरीददारों से करवा देने की हसरत रखने वाली लड़की के खुद के हिस्से छह बाई आठ का एक कमरा आया था, जिसकी सरपट दीवारों के आगे व्यवधान के रूप में एक रोशनदान और दरवाजा ही मयस्सर था। कमरे में कोई खिड़की न थी। उसके भीतर दो चौकियां अटायी गयी थीं। उस वजह से दरवाजे का एक पल्ला ठीक से खुल भी न पाता था।

इस कमरे में बतौर पीजी वह पिछले तीनेक सालों से रहती आयी थी। इन तीन सालों के बाद उसे यह अहसास हो गया था कि उसकी जरूरत और कल्पना के मुताबिक किसी रिहाइश की कल्पना अगर इस दुनिया में सम्भव थी तो वो, यह कमरा ही था। मां के गर्भ की तरह प्रकाशहीन, खामोश... और सुकूनदायक।

उसे अचम्भा होता जब सुख सुविधाओं से लदेफदे घर में भी लोगबाग नुक्स निकाल लेते और अपनी जरूरत के मुताबिक उसे मोड़ लेने पर आमादा हो जाते। इधर एक वह थी कि उसके लिए चार दीवारों को जैसेतैसे जोड़ कर बनायी गयी यह जगह ही विश्वकर्मा की बनायी कलाकृति थी। ऐसा इसलिए था सम्भवतः कि उसके पास दूसरा कोई विकल्प नहीं था।

बहरहाल सवाल उठ सकता है कि जब उसके जीवकोपार्जन से जुड़ा विशेषण 'दलाल' ही एक शाश्वत अपमान था, तब उसे दूसरे अपमानों की क्या जरूरत थी! दरअसल इस सवाल के जवाब में ही उसके स्वभाव को डिकोड करने का सूत्र छिपा था। अपमान की जिह्वा की जड़ों में तिरते कसैलेपन की उसे लत लग गयी थी। जैसे जैसे दलाली का यह पेशा पुराना पड़ता जा रहा था, उस पर बेशरमी की परत चढ़ती जा रही थी और जीविका का कड़वापन असर गवांने लगा। ऐसे में लय बनाये रखने के लिए उसे हिकारत की अतिरिक्त खुराक की जरूरत पड़ती।

हर सम्भव जगह से इकट्‌ठा किये गये नीले रंग के जहर को एकसार कर वह उनमें बुतों की आत्माएं डाल देती और अनुवाद के इस जादू के सम्पन्न होते ही उसकी बनायी हर मूर्ति जीवन के वैभव से झिलमिला उठती। उसके कमरे की चारपाई के नीचे अधबनी आकृतियों का वैभव छितरा पड़ा था।

वह मूर्तियां बनाती थी। और सबसे दिलचस्प यह कि मूर्तियां गढ़ते वक्त वह आंखें मूंद लेती थी। यह सालों का रियाज था। सालों का इस तरह से कि एक अरसे से आंखें मूंद कर वह अक्स गढ़ा करती थी। सिर्फ हाथ लहराते हुए। हवा में चलते हुए कोरे हाथ। पत्थर, छेनी, कतरनी... उसके हाथों में बाद में आये। कह सकते हैं कि आकृतियां बननी पहले से शुरू हो गयीं, उन्हें बनाने वाले अवयव मूर्तिकार के हाथों में बाद में आये। यह अभ्यास इतना गहरा गया था कि मूर्तियां बनाते वक्त अगर कभी उसकी पलकें भूलवश भी खुल जातीं, तो हाथों का सारा तिलस्म गायब हो जाता। एकदम

से सूख जाती धार मानों। ऐसे में वह अकबका कर आंखें मूंद लेती वापस ताकि खोयी हुई लय को पाया जा सके पर यहां बात बिजली के नंगे तार वाली नहीं थी कि वापस जुड़ते ही प्रवाह कायम हो जाये। उसे फिर से एकाग्रता, अंधकार और एकांत का सम पाना होता तब जाकर उसकी उंगलियां साकार हो पातीं और धुन में एक अजूबा रच डालतीं। पर यह भी अजीब था कि सब कुछ शेष हो चुकने पर जैसे ही आंखें खुलतीं, वह मूर्ति से असंपृक्त हो जाती। एकदम बेलाग। वह उन्हें उठा कर आर्ट गैलरी तक पहुंचा देती। वहां से आगे वे एक बेनाम शिल्पकार की कृति के रूप में बिक जातीं। जाहिर है ऊंचे दामों में, जिसका एक सम्मानजनक हिस्सा उस तक पहुंचता, श्रम शोषण के सिद्धांत का दाग लिए बगैर।

उसकी चारपाई से दूर लगी जिस दूसरी चारपाई की वजह से दरवाजों के पल्लों का खुल पाना सम्भव न हो पाता था वह चारपाई एक प्लेटफार्म थी और उस चारपाई के नीचे का स्पेस उसका गोदाम। मिलाजुला कर यह कि अपमान के नीले रंग के, आनंद के सफेद रंग में रासायनिक परिवर्तन का क्रम अनवरत जारी था और वजह यही कि कमरे में पत्थर और छेनी के मेल से बनी जिन्दगी की खुशबू कायम थी।

'थी' इस छोटे शब्द के यहां बड़े मायने हैं क्योंकि अपमान की जरूरत वाली बात जो शुरू में कही गयी, वह इसी 'थी' से जुड़ी थी। पिछले कई दिन बगैर अनुवाद के गुजर चुके थे और कौशिकी सक्सेना आंखें मूंद कर खाली हाथ लहरा कर भी मनचाहा कुछ उकेर नहीं पा रही थी। घूम फिर कर उसके हाथ पुरानी आकृति में से ही किसी एक को दुहरा दे रहे थे। मूर्ति बनाये जाने के आखिरी चरण में आंखें बंद किये किये ही वह जान जाती कि जो कुछ भी बनाया जा रहा था, वह उसकी पिछली बनायी किसी मूर्ति की आवृति ही है। वह जानबूझ कर कोई ऐसी गलत छेनी चलाती ताकि कोई दोष आ जाये और इस चूक के साथ ही सही, पर बनने वाली चीज, पिछली आकृति की प्रतिलिपि बनने से रह जाये। लेकिन होता क्या! आंखें खोलते ही वह जान लेती कि हिल कर भी उस मूर्ति के नाक नक्श, पिछली बनायी कृति के और करीब ही पहुंच गये थे।

ऐसा कहीं से नहीं था कि पहले जैसी ही बन गयी मूर्तियां आसानी से नहीं बिकतीं। सच कहें तो मूर्तियों के बिकने का हिसाब रखने की उसे कभी जरूरत ही नहीं पड़ी क्योंकि पैसे समय पर मिल जा रहे थे। तो विशुद्धतः यह नया कुछ रच न पाने का दुख ही था, जो उसके मन को साल रहा था। पर कौन जानता था कि मन की यह बेध्यानी किसी नयी इबारत के लिखने के पहले का अलसायापन भर है।

ढलती दोपहर का वक्त था। एकदम नारंगी सी रोशनी सीधे आकर आंखों में घुस जा रही थी। हालांकि ये और बात थी कि यह शुद्ध शाकाहारी किस्म की रोशनी आंखों को कोई तकलीफ नहीं दे रही थी।

कौशिकी सक्सेना आर्ट गैलरी में मौजूद थी। आवृति के इन दिनों ने एक अजीबोगरीब संयोग उपलब्ध करा दिया था। अमूमन वहां किसी एक कलाकृति का दूसरा जोड़ा नहीं मिल पाता। इस बार हुआ यह कि उसकी बनायी एक कलाकृति किसी एक खरीददार को पसंद आ गयी और वह वैसी ही एक मूर्ति और पाना चाहता था। यह उन्हीं आकृतियों में से एक थी, जिनकी हमशक्ल चीज कौशिकी सक्सेना ने उन दिनों तैयार की थी। वह जानती थी कि एक और वैसी ही प्रति पाकर ग्राहक खुश हो जायेगा, फिर भी वह झिझकते हुए उस मूर्ति को गैलरी के हवाले करने गयी थी। जाहिर है अन्य कलाकारों की तरह वह भी दूसरों की नजरों से इस बात को छिपा लेना चाहती थी कि वह दोहराव नाम की खतरनाक बीमारी का शिकार हो चुकी थी।

गैलरी में बिकने से बची रह गयी अपनी बनायी मूर्तियों को देर तक निहारती रही वह। दो मूर्तियां ऐसी थीं, जिनकी नाक में बड़ी सी नथ पहनायी गयी थी। नथ के मोतियों की संख्या से लेकर

उनके बीच की दूरी भी हूबहू एक सी थी। इतनी बेशर्म नकल भले अपनी बनायी चीज की हो. .. असह्य थी। तुर्रा यह कि वे दोनों मूर्तियां पास पास ही रखी थीं आर्ट गैलरी में। कौशिकी सक्सेना के तलुवे कांपने लगे। एक तेज हूक सी उठी उसके भीतर और उसे तत्काल वहीं बैठ जाने की तलब महसूस हुई। पर वहां ऐसा आत्मीय स्पेस उपलब्ध न था।

अपने को थोड़ा संयत करने के लिहाज से उसने दूसरी कलाकृतियों को परखने में अपने आप को लगा देना चाहा। जब उसके तलुवों की कम्पन सम पर आयी तब अपने आप को समेट कर वह वहां से भागने ही वाली थी कि उसकी सांसें रुक गयीं। उसने देखा कि एक व्यक्ति नथ वाले दोनों चेहरे को हाथ में उठाए तन्मयता से निहार रहा है। इस धुन से तो मोतियों की शुद्धता की जांच ही की जा सकती थी। वह ठीक उसके पीछे जाकर खड़ी हो गयी।

आदमी उसकी तरफ मुड़ा और उसने कहा ''इन्हें किसने बनाया?''

यह शर्मिन्दगी की इंतिहा थी। सेल्स गर्ल समझे जाने की शर्मिन्दगी नहीं। यह सामने वाले के सवाल की वजह से उपजी लज्जा थी... क्योंकि सम्भव था यह व्यक्ति ताड़ चुका था कि कलाकार ने बेशरमी से दुहराया था अपने आप को।

''ये मेरी है।''

''ओह!'' उस आदमी ने बगैर अचरज कहा।

''ये आपकी हैं ये कैसे माना जा सकता है?''

''मेरी ही है।''

''वे तो यहां रखी थीं... और आप मालूम नहीं कहां...।''

''क्या जानना था आपको?'' लड़की ने दबी जुबान में मामले को रफादफा कर देने के अंदाज में कहा।

''बस इतना कि इन दोनों में से पहले कौन सी बनायी गयी थी?''

यह कैसा सवाल था!

''उससे क्या होगा?'' यह लड़की के मुंह से निकल गया।

''उससे मैं ये जान सकूंगा कि ये दोनों मूर्तियां आंसुओं को मुस्कुराहट में तबदील करती स्त्री की हैं या कि मुस्कुराहट की ताव से आंखें छलक आयी हैं स्त्री की।''

''वह कैसे होगा?'' यह लड़की के चेहरे पर लिखा था।

वह करीब खिसक आया और दो आकृतियां बढ़ा दीं उसने लड़की के आगे। दोनों स्त्रियों ने दायीं मांग काढ़ रखी थी। उनके बाल आगे के, घुंघराले थे और पीछे की तरफ बंधे थे जूड़े की शक्ल में। नाक नक्श तीखे थे और नथ बड़ी। एक से दो मुखड़े। कंधे तक की मूर्तियां। नथ और बालों के उतार चढ़ाव पर टिक जाती थी दृष्टि। इतना भर।

''गौर से इस चेहरे में आंसू की नमी और मुस्कुराहट का अनुपात देखिए और फिर इस दूसरी मूर्ति को देखिए! अगर इन्हें इस क्रम में रखा जाये तो यह हंसी से आंसू की ओर जाती स्त्री है। पर अगर बायें को दायें कर दें तो आंसू और मुस्कान भी अपना क्रम बदल लेंगे। इसलिए जानना जरूरी है कि पहले कौन सी बनायी गयी।''

उसने वाक्य को खत्म करते वक्त कौशिकी सक्सेना पर निगाहें पैनी कर दीं। और शब्द भी भीतर तक धंसते गये।

लड़की सहम उठी। दरअसल मूर्तिकार सहम उठी। उसने अगले ही पल दांव बदला ''इसे मैं खरीद चुकी हूं।''

''मैं कैसे मान लूं?''

''आप काउंटर पर दरियाफ्त कर सकते हैं कि यह मूर्ति अब बिकाऊ नहीं है।''

''इसके बिकाऊ होने न होने से मेरे सवाल का क्या ताल्लुक।''

''शुक्र है...।'' लड़की ने सोचा कि उन्हें खरीदने में सामने वाले की कोई दिलचस्पी नहीं थी।

''फिर तो सब कुछ आसान है। आप अपने सवाल काउंटर पर रखी फीडबैक बुक में दर्ज कर दीजिए और मैं मूर्तियां ले जाती हूं।''

यह व्यक्ति क्या कह रहा था, उसकी समझ में नहीं आ रहा था कुछ भी। पर उसकी बातों में ऐसा कुछ तो था ही कि कौशिकी सक्सेना उन मूर्तियों को वापस अपने घर तक ले जाने पर आमादा हो गयी। फिर चाहे इसके लिए उसे अपनी बनायी मूर्तियां ही क्यों न खरीदनी पड़ जायें!

सामने वाला आदमी मुस्कराया और मूर्तियों समेत काउंटर की तरफ बढ़ गया। काउंटर पर मूर्तियों को रख उसने कुछ दरियाफ्त की। बीच बीच में वह उसकी ओर देख लेता। कौशिकी सक्सेना मूर्ति के जैसे ताम्रवर्णी रंग में रंगती जा रही थी। क्या आवश्यकता थी उसे कूद कर इन सबके बीच में शामिल होने की! वह अपने आप को काट कर निकल भी तो सकती थी इस पूरे प्रसंग के बीच से। लेकिन जो कुछ भी हुआ वह सिरे से अप्रत्याशित था। और अब निश्चय ही काउंटर के उस तरफ खड़ा सेल्समैन उस व्यक्ति के सामने सारा सच साफ कर रहा होगा कि मूर्तियां लड़की ने बनायी थीं... और फीडबैक बुक में कुछ लिखने की बजाये वह आदमी वापस आकर उससे मुखातिब होने ही वाला था उसी सवाल के साथ।

अभी भी उसके पास मौका था। वहां से भाग लेने का। कोई रोकना भी चाहता तो न रुकती वह... ऐसे। कांउटर वाले आदमी से अपनी बातचीत के पूर्वार्ध में बार बार उसकी तरफ देख लेता आदमी, बात के रफ्तार पकड़ लेने के बाद उसकी तरफ देखना छोड़ चुका था। उत्तरार्ध से लेकर अंत हो जाने तक उस पर ध्यान दिये बगैर वह झटके से मुड़ा और तेजी से निकल गया। बाहर।

पता नहीं यह सब क्या था! सम्भव है काउंटर के पीछे वाले लड़के ने लड़की के मन की बात जान ली हो और झूठ कह दिया हो उस आदमी से कि मूर्तियां वाकई बिक चुकी थीं। पर ऐसा था तो उसने फीडबैक बुक में कुछ दर्ज क्यों नहीं किया! क्या बातें हुई होंगी दोनों में?

वह काउंटर तक गयी। उन दोनों मूर्तियों को लिए लिए। उसने उन्हें काउंटर पर रखा और अपना क्रेडिट कार्ड आगे कर दिया। आश्चर्य कि उसके इस ग्राहक वाले अभिनय का काउंटर के पार खड़े सेल्समैन ने भी उसी भाषा में जवाब दिया। उसने बगैर किसी प्रकार का आश्चर्य प्रकट किये पेमेण्ट ले लिए मूर्तियों के और उन्हें पैक करने लग गया। जबकि यह सेल्समैन अच्छी तरह जानता था कि उन दोनों को बनाने वाली वही ठहरी कौशिकी सक्सेना। पर कौशिकी सक्सेना के अचम्भे का तब ठिकाना न रहा जब सेल्समैन ने पूछा कि मूर्तियों पर से दाम का टैग हटा दिया जाये क्या पैकिंग के पहले! वह दरअसल इसके ठीक पहले कौशिकी सक्सेना के ऊपर से मूर्तिकार का टैग हटा कर ग्राहक का टैग चिपका चुका था। स्त्री ने इन मूर्तियों की एवज में उस दूकान से मिलने वाले पैसों के दोगुने से भी ज्यादा पैसे अदा किये और पैकेट उठा कर बढ़ गयी। उसे इंतजार अंत तक था कि काउंटर पर खड़े सेल्समैन की चेतना जागेगी और वह भूलसुधार कर लेगा आखिरी वक्त पर। या कोई संदेश ही देगा उसके नाम का। उसने उचटती एक नजर से परखा। काउंटर पर सदैव मुस्तैद रहने वाला फीडबैक बुक गुलाबी जिल्द में सजाधजा था यथास्थान। हद थी...!

पैकिंग जतन से की गयी थी। तारीफ लायक। पर भीतर की चीज निकालने की उतावली में पैकिंग का यह आडम्बर उसे झुंझला रहा था। जैसे तैसे निकाली गयीं दोनों मूर्तियां। उसने झांक कर.

.. घेर कर... सब यत्न करके देखा। आंखों में... होंठों पर...। पर कोई निशान नजर नहीं आया... उस आदमी की कही गयी बातों का। हालांकि दूकान में वह उसकी बातों से सहमत थी पर यहां ये आकृतियां उन बातों को झूठा साबित कर रही थीं। यहां इस कमरे के एकांत में नथ की मोतियों के सिवा कुछ भी सूझ न रहा था उसे। उसने धिक्कार से दोनों मूर्तियों को वापस डिब्बे में ठूंस दिया।

रात भर एक अजब सी खुमारी उस पर तारी रही। जो घट चुका था उसके सूत्र नहीं जोड़ पा रही थी वह। मूर्तियां बेजान थीं। न उनकी आंखें कुछ कहती थीं न होंठ। तो क्या उस व्यक्ति से हुई मुलाकात ही काल्पनिक थी! पर ऐसा था भी तो कांउटर के सेल्समैन को तो वैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए था! उसे तो चौंकना चाहिए था... जब अपनी ही बनायी मूर्तियां खरीद रही थी वह, तब। जो भी था... उस रात सब भ्रम था... सिवाए उस डिब्बे में ठुंसी जोड़ी भर मूर्तियों के।

कमरे की दहलीज पार करते ही वह अपनी इस दुनिया से रुख्सत ले लेती थी और एक दूसरी भूमिका में प्रवेश कर जाती थी। दफ्तर में पहुंच कर पिछली शाम से आयी सभी कॉल्स को चेक करना, कॉल वाले सभी ग्राहकों से बात कर उनकी प्रोफाइल तैयार कर लेना और फिर डिस्कशन रूम में दिन भर का शेड्यूल लेकर उपस्थित हो जाना उसकी सुबह की दिनचर्या। दफ्तर में सात कर्मचारी थे। एक बॉस। चार उसके जैसे ब्रोकर्स। दो फोन ऑपरेटर और एक व्यक्ति डेटा कलेक्शन में। चारों ब्रोकर्स के कार्यक्षेत्र बंटे हुए थे।

कुछ दिन पहले एक मालदार डील का ऑफर कम्पनी के हाथ लगा था। प्रोपर्टी की लोकेशन उसके इलाके के अंतर्गत आती थी। पर क्लाइंट के प्रोफाइल की पड़ताल बॉस ने स्वंय की थी। मामला संवेदनशील था इसलिए स्पष्ट था कि उसके इलाके की बात होते हुए भी बॉस उसे वह मामला नहीं सौंपते क्योंकि बड़े सौदों में मर्दानी सूझबूझ हमेशा सफल होती है यह बात जमाने में प्रचलित थी। पर आरम्भिक बातचीत में यह बात निकल कर आयी थी कि सम्पत्ति का मालिक एक बूढ़ा व्यक्ति था जो सनकी, चिड़चिड़ा और झक्की प्रतीत होता था। उसकी उम्मीदों का आकलन किया जा सके ऐसे किसी व्यावासायिक पैमाने का या तो आविष्कार न हुआ था या फिर कम्पनी को ऐसे किसी ईजाद की जानकारी न थी। बॉस ने सूंघ लिया था कि इस व्यक्ति को बाजार, आंकड़े और इमारतों के मोहरों से घेरना मुमकिन न था। पर सौदा इतना बड़ा था कि उस जैसी नयी और छोटी कम्पनी के लिए उस सौदे का हाथ से जाना अफोर्ड करने योग्य न था। अब चाल ऐसे चलनी थी कि या तो वह सौदा हाथ आता या फिर सौदे के हाथ से निकल जाने की बात पर कौशिकी सक्सेना से मुक्ति पायी जा सकती थी। उसके बाहर होने की स्थिति में बॉस के साले की कम्पनी में नियुक्ति का रास्ता साफ हो जाता।

लिहाजा उस रोज की मीटिंग में मामला कौशिकी सक्सेना के हवाले कर दिया गया। घर जिस रिहायशी इलाके में था उसे बहुत ज्यादा महंगा नहीं कहा जा सकता था। अड़तालिस सौ वर्गफीट में बना एक बंगला। घर पुराना था पर हाल ही में उसे रिनोवेट कराया गया था। इतनी जानकारी कौशिकी सक्सेना ने प्रोफाइल से हासिल कर ली। मामला जिस अप्रत्याशित तरीके से उसे सौंपा गया था उससे स्पष्ट हो गया था उसके आगे कि वह उसका आखिरी अभियान साबित होने वाला था।

उसकी उम्र सत्तर साल थी। शरीर लम्बा और तना हुआ। बावजूद इसके उसके हाथों में बेंत की एक छड़ी थी। उसने संतरे की रसदार फलियों के रंग वाला कोट पहन रखा था और उसकी नाक का रंग लाल था। सिर पर अगरबत्ती के राख के रंग की टोपी थी। उसके साथ एक बीच की उम्र का व्यक्ति था। उसी ने घर का दरवाजा खोला और भीतर से एक कुर्सी ले आया। बूढ़ा व्यक्ति उस कुर्सी पर बैठ गया और उस दूसरे आदमी ने कौशिकी सक्सेना को घर दिखाने के अभियान की कमान थाम

ली। पांच कमरे, एक बड़ा हॉल, एक डायनिंग स्पेस, किचन, बरामदा, बाथरूम आदि आदि।

कौशिकी सक्सेना उस व्यक्ति के पीछे चलते हुए भी वहां नहीं थी। वह उन लोगों के साथ ही गाड़ी से उस घर तक आयी थी। रास्ते भर किसी से उसकी कोई बात नहीं हुई। हालांकि बूढ़ा उस दूसरे व्यक्ति से बातें करता रहा था। अभी भी वह चुपचाप उस आदमी के पीछे पीछे चल रही थी। उसे इस बात का चैन था जरूर कि बूढ़ा उनके साथ नहीं था। क्योंकि उसकी मौजूदगी उसे असहज बना रही थी। बूढ़े आदमी के चेहरे पर नफासत थी और आंखों में दूसरों के प्रति हिकारत का भाव। ऐसा मान सकते हैं कि उसे देखते ही कौशिकी सक्सेना के सामने एक बार फिर से यह साफ हो गया कि इस मामले को उसके हवाले क्यों किया गया था।

वह चाहती थी कि घर घूमने की प्रक्रिया देर तक खिंचती रहे। इसलिए अतिरिक्त उत्साह और अनवरत सवालों को उसने अपना हथियार बना लिया। जवाब क्या मिल रहा था इस पर कोई ध्यान न था उसका। अलबत्ता जवाब कहां खत्म हो रहा था, इस बात पर जरूर सजग थी वह। जवाब के आखिरी हिस्से से ही अगले सवाल के लिए पृष्ठभूमि मिल जाती उसे। जितना लम्बा खींचा जा सकता था बात को उस हद तक... पसराया जरूर उसने। पर वह बिन्दु आ ही गया जहां से आगे सब कुछ टूट कर बिखर जाता। उसके चैन के पल भी खत्म हुए और अब वह बूढ़े के सामने थी।

बूढ़ा सम्भवतः लड़की से मुखातिब होना तौहीन समझ रहा था और इसलिए बगैर कुछ कहे वह गाड़ी की तरफ मुड़ गया। साथ वाले व्यक्ति ने कौशिकी सक्सेना से साथ चलने का आग्रह किया जिसे उसने तत्परता से ठुकरा दिया और अगले पल मुड़ कर निकल पड़ी वह, मुख्य सड़क की ओर।

उसने कयास लगाया कि बूढ़े की कार उसके वजूद पर चक्कों के निशान छोड़ती बढ़ गयी होगी आगे। कौशिकी सक्सेना को अपमान और संतोष के भाव एक साथ घेरने लगे। अपमान की वजह तो साफ थी। संतोष इस बात का कि फिर से वह एकांत में थी।

बूढ़े के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा था जोकि सामने वाले को तोड़ दे। उसकी भौंहों का उतार चढ़ाव ऐसा था जो कि दूसरों के लिए हलचल का सबब बन जाये। साथ के दूसरे आदमी से बूढ़े की बातचीत खुली सी थी पर कौशिकी सक्सेना की उपस्थिति को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया था उसने। कितना अच्छा होता कि वह बूढ़ा कम्पनी को फटकार लगाता और किसी दूसरे ब्रोकर को यह मामला सौंप देने की मांग कर बैठता। भले यह उसकी हार होती लेकिन जान तो छूटती इस व्यक्ति के सामने आने से। पर यह भी तो सम्भव था कि आगे की बातचीत में वह स्वयं शामिल न हो और वह साथ वाला व्यक्ति ही उसकी तरफ से बात करे।

अभी वह टैक्सी में बैठी ही थी कि फोन की घंटी बज उठी। उस तरफ वही दूसरा व्यक्ति था। कौशिकी सक्सेना से कहा गया कि अगर उसे तकलीफ न हो तो शाम की चाय साथ पीते हुए बूढ़ा उससे मकान के बारे में बातचीत करना चाहेगा। वह क्या जवाब दे सकती थी भला! तकलीफ का होना प्रकट कर पाना अफोर्ड कर सकती थी क्या वह! यह शिष्ट लोगों का तरीका था अपनी बात मनवा लेने का, जिसका जवाब 'नहीं... नहीं मुझे क्या तकलीफ हो सकती है भला...' से शुरू करना होता था सामने वाले को। लड़की ने रीति का निर्वहन किया। यह और बात थी कि सभ्य बनते हुए उसकी जबान तालू से चिपकने लगी।

कौशिकी सक्सेना के कान की लवों में पसीना था। सात दशक पार कर चुके एक बूढ़े व्यक्ति के साथ चाय पर जाने में उसे कंपकपाहट हो रही थी। उसकी कंपकपी की वजह घटनाओं का क्रम या कि मकान मालिक का दम्भी व्यक्तित्व नहीं था। उसकी अपने चरित्र की भीरुता इसकी वजह थी शायद। संशय... घबड़ाहट, बेचैनी... उसके मन के एक कोने के स्थायी भाव थे। जितना वे मन में

होते उससे कहीं अधिक मात्रा में वे अक्सर उसके चेहरे पर प्रकट हो जाते।

ठीक साढ़े सात बजे थे जबकि वह उस गेस्ट हाउस के दरवाजे पर आकर खड़ी हो गयी जिस जगह बूढ़ा ठहरा था। वह वेटिंग लाउंज में पहले से बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। कौशिकी सक्सेना के वहां पहुंचते ही वह उठ कर खड़ा हो गया। सम्मान मिला था अबकी लड़की को। पर उस अप्रत्याशित चीज ने उसके भीतर और खलबली मचा दी।

''आप बैठ सकती हैं।''

लड़की ने मजबूती से कुर्सी का हत्था थाम लिया।

''आप इस पेशे में क्यों हैं?''

''क्योंकि मैं इस पेशे के लिए नहीं बनी हूं।''

बूढ़े के चेहरे की रेखाओं में एकबारगी घालमेल हुआ और वह मुस्करा पड़ा। इस तसल्लीजनक मुस्कान पर कौशिकी सक्सेना को एक जोरदार ब्रेक लग गया और उसे लगा कि वह उसी वक्त भोकार मार कर रो पड़ेगी।

''कितने घर बेच चुकी हैं अब तक?''

''मैं एक अच्छी खिलाड़ी नहीं हूं।''

''फिर भी...?'' उसने उकसाया।

''मेरी चाल बेढब है। यह बात अक्सर मेरे हक में होती है क्योंकि ढबवाले लोग मेरी चाल समझ नहीं पाते।''

''मेरे घर की कीमत जानती हैं आप?''

''सात करोड़।''

वह हंसा ''कोई सा भी सात करोड़ नहीं...।''

अचानक वह गम्भीर हो गया ''आप की सबसे कीमती चीज क्या है? ...माफ कीजिएगा मोहतरमा यह सवाल थोड़ा गैर वाजिब है पर पूछना मानीखेज।''

वह जवाब देने के वक्त अपने आप के भीतर धंसती गयी और आंखों का गीलापन काजल की सरहद से टकराने लग गया।

''मेरी सबसे कीमती चीज वह दुनिया है जिसे मैं अपने हाथों से गढ़ती हूं।''

''उसे बेचते वक्त खरीददार में क्या देखना चाहेंगी आप?''

कौशिकी सक्सेना के सामने आर्ट गैलरी के एक शाम पहले वाले शख्स का चेहरा घूम गया।

''मैं चाहूंगी कि मेरी बनायी चीज में वह वो खासियत देख ले जिसकी स्वयं मैंने कल्पना भी नहीं की थी।''

''क्या कभी आपने ऐसी चीज बेची है?''

लड़की ने अपनी पनियाई आंखें बूढ़े की आंखों पर टिका दीं। सख्त निगाह।

''रोज बेच देती थी। पर जब ऐसा खरीददार मिला तो नहीं बेच पायी।''

''क्यों?''

कौशिकी सक्सेना कुर्सी के हत्थे पर पूरी ताकत से हाथ मार कर खड़ी हो गयी। उसका चेहरा भिंच गया था और आंखें बूढ़े की आंखों से हटी नहीं थीं जरा। अगले ही पल वह वापस बैठ गयी शांत पड़ कर।

''हम जानते हैं कि वह घर आपकी वर्षों की कमायी पूंजी है और हम पूरी कोशिश करेंगे कि आपको आपका मनचाहा दाम मिल जाये और अच्छा खरीददार भी जो घर को जतन से रखे।''

बूढ़े के होठ व्यंग्य से टेढ़े हो गये ''मकान की लेनदेन में अपने ग्राहकों की इच्छा पूरी करने की चाहत रखने वाली कुल कितनी एजेंसियां होंगी इस शहर में! बता सकती हैं?''

लड़की ने सिर झुका लिया। क्षण भर पहले का तेज स्याह पड़ गया। अभी बोला गया आखिरी वाक्य उसका अपना न था। यह व्यावसायिक दुनिया की रटंत भाषा थी। जिसे मांज कर अपना नहीं बना पायी थी वह।

''तो मैं क्या समझूं।'' रुक रुक कर लड़की ने कहा।

''क्या संयोग... यही सवाल अभी मैं आपसे करने वाला था।'' बूढ़े की आंखें चमक रही थीं।

''क्या आपके साथ कभी ऐसा हुआ है कि जिस चीज को आप पाना चाहते हैं प्रकाश उसे छिपा दे और उस चीज के पास अंधकार की सहायता से पहुंच पायें आप?'' लड़की ने पूछा।

''हां कुछ छोटी यादें हैं जिन्हें उजाले से परहेज है।''

''आपकी सबसे कीमती चीज क्या है?'' उसने साहस कर लिया अदम्य।

''उसके बारे में सिर्फ एक बात स्पष्ट हुई है। वह यह कि उस तक पहुंचने में आप माध्यम होने वाली हैं।''

''पर मेरी चाल बेढंगी है। ढंग के लोग...।''

''अभी अभी आप उठने का फैसला करने के बाद बैठ क्यों गयीं थी दोबारा?''

''मुझे लगा कि आई हैव नॉट फिनिश्ड विद यू येट।'' लड़की की आंखें जलने लगीं। ताप इतना था कि बूढ़े का हलक सूख गया। लड़की ने मेज पर रखा पानी एक सांस में खत्म कर दिया और कहा ''सुबह मुझे लगा आपमें अदब की कमी थी। पर इस शहर के अदब खुद अभी मुझे सीखने हैं। इजाजत?''

बूढ़े व्यक्ति को पहली बार लगा कि चेहरे के अंग अब पहले की तरह मस्तिष्क के इशारे नहीं ले पा रहे हैं और उसे एक फीकी मुस्कान तक मुस्कराने में तकलीफ हुई। सवाल उसके अदब पर लग चुका था पर फिर भी घुटने ऐसे कंपकपाए कि उठ कर लड़की को विदा देने की उसकी हिम्मत न पड़ी। उसने हाथों को माथे पर लगा कर एक अटपटा सा सलाम किया और सिर झुका कर बैठ गया। कौशिकी सक्सेना कुर्सी का हत्था पकड़े बगैर उठ खड़ी हुई।

उस रात लड़की ने सोचा कि अगर उसके हाथों में छेनी और पत्थर ना होते तो शब्द खोखले हो जाते पीड़ा के। वह अपने औजारों से नाद की ध्वनि को पैना ही तो कर रही थी। बेतरतीब प्रहार करते रहे उसके हाथ। आंखें खुलने पर फिर से एक दोहराव सामने था। जतन से तराश कर बनायी गयी एक पुरानी कृति का दोहराव। इस बार की बेधड़क ठोंकपीट का नतीजा भी वही था। यानि की छेनी से किये जाने वाले प्रहार की कोई जाति न थी। कोमल और क्रूर दोनों प्रकार के दस्तक की परिणति एक थी दोहराव।

दफ्तर आते ही उसने उस बंगले की बिक्री से सम्बंधित पहले दिन की तरक्की का ब्यौरा टाइप कर दिया। जाहिर है उसमें मकान का भ्रमण और मकान मालिक की अपेक्षाओं की विस्तृत जानकारी लेने का प्रयास, इन दो विषयों पर मोटी मोटी सूचनाएं थीं। दिन की शुरुआती मीटिंग में बॉस उसे लगातार हैरत से घूरता रहा। लड़की की तैयार की गयी रिपोर्ट पर उसने सरसरी निगाह डाली और बदले में तेज नजर डाल कर उसे यह सूचना दी कि बूढ़ा व्यक्ति हफ्ते भर के लिए जर्मनी लौट गया था और वापस लौटने के बाद वह जल्द से जल्द घर बेचना चाहेगा।

बॉस अचम्भे में था कि कौशिकी सक्सेना और बूढ़े ने एक दिन सफलतापूर्वक एक दूसरे को

झेल कैसे लिया था। उधर अपनी जगह पर बैठते हुए उसने सोचा कि हफ्ते भर के लिए वह स्वतंत्र थी। आजाद कल्पनाएं की जा सकती थीं। मसलन यह पता किया जा सकता था कि हफ्ते भर में जर्मन भाषा सीखी जा सकती थी क्या! अगर सप्ताह भर बाद वह उस बूढ़े को जर्मन बोल कर चौंका दे तो...! अभी अगर वह अपने कमरे में होती तो आंखें मूंद कर छेनी उठा लेती। देखा जाता कि इस खुश मन से पड़ने वाली उसके हाथों की हल्की थाप क्या चीजें उकेर पाती हैं।

उस रोज उसने ग्राहकों से बात कर उनकी जरूरतें रिकार्ड करना शुरू ही किया था कि एक फोन लाइन उससे कनेक्ट की गयी। उसने अपने पेशेवर अंदाज में बात शुरू की और सामने वाले की जरूरत की जानकारियां एकत्रित कर लीं। यह 'अर्जेण्ट रिक्वायर्मेण्ट' वाली कॉल थी, जिसकी फीस दोगुनी थी। यानी कि जहां बाकी मामलों में कम्पनी बेचने वाले और खरीदने वाले से दाम का एक प्रतिशत लिया करती थी, अर्जेंट मामलों में दो प्रतिशत फीस ली जाती थी। डेटा ऑपरेटर की मदद से उस लड़की ने उस ग्राहक के लिए चार पांच घर शार्टलिस्ट किये और उससे अप्वाइंटमेण्ट ले लिया। उसी दिन का। जगह तय हुई। समय भी।

यह सब रोज की कहानी थी। रास्ते भर वह सोचती रही कि लोगों की जरूरतें कितनी एक जैसी हैं बड़ा, सुंदर, खुला, सुरक्षित, वास्तु के अनुकूल... पर किफायती घर। हालांकि इस ग्राहक ने घर की चाहत का कोई ब्यौरा न दिया था। बस एक खास लोकेशन का जिक्र था उसकी कॉल में। कौशिकी सक्सेना ने तयशुदा जगह पर पहुंच कर उसके मोबाइल पर सूचना दे दी और पहचान का एक सूत्र भी थमा दिया बैगनी रंग। उसने फोन डिस्कनेक्ट किया ही था कि पीछे से आवाज आयी ''आपको रंग बतलाने की जरूरत नहीं थी। वैसे बैगनी के साथ गुलाबी रंग का मेल मुझे पसंद है।''

कौशिकी सक्सेना मुड़ी। पीछे। फीडबैक बुक की गुलाबी जिल्द उसके सामने तैर गयी। उसने अचानक अपने कपड़े देखे। वाकई। बैगनी और गुलाबी में होड़ लगी थी कुर्ते को छेंक लेने की ऐसे कि पहचान के लिए गुलाबी रंग भी दिया जा सकता था क्लू में। आर्ट गैलरी का एक शाम पहले वाला आदमी खड़ा था सामने।

''मुझे जो भी चीज पसंद होती है वह पहले से आपकी होती है ये मैं जान गया हूं।''

वह हंसा। लड़की का चेहरा तमतमा गया।

''आपने मजाक किया था। ...घर नहीं लेना आपको?''

''आपने ये कैसे सोचा?''

''घर लिए बगैर कोई घर सजाने के लिए मूर्तियां खरीदता है क्या?''

''घर खरीदने वाले के सिर पर पहले से छत नहीं हो ये शर्त है क्या आपकी कम्पनी की?''

''कम्पनी की नहीं आप मेरी बात कीजिए मेरा मतलब है मुझसे बात कीजिए।''

''ठीक कहा आपने। बिल्कुल मेरे मन की बात। कम्पनी में मेरी कोई दिलचस्पी है भी नही।''

''आपने मेरा वक्त बर्बाद किया।''

''क्या यह संयोग नहीं हो सकता?''

''नहीं। नहीं हो सकता।''

''मैं जानता था उस शाम कि मेरी पसंद की गयी मूर्ति पहले से आपकी हो ऐसा नहीं हो सकता। फिर भी मैंने संयोग के खाते में उसे डाल कर आपकी बात मान ली। इसलिए आपके पास भी संयोग वाली बात को मान लेने का विकल्प है और तकाजा भी।''

''आपकी कही बात बकवास थी। मूर्तियां हंस या रो नहीं रही थीं... मैंने देखा बाद में।''

''यानी आपने मेरी कही बात याद की बाद में... बार बार याद की?'' वह बुदबुदाया।

''सिर्फ एक बार याद की थी। और वह सब बकवास था। अच्छा हुआ आप मिल गये दोबारा और आपको मैंने बता दिया। अब फिनिश्ड!''

''चलिए अब आप भी इस दोबारा मिलने को अच्छा मान लेने पर सहमत हुईं।''

''उसके बाद भी मैंने कुछ कहा।''

''फिनिश्ड...। क्या फिनिश्ड! तलाश?''

लड़की ने तब पहली बार उसे गौर से देखा। वह एक लम्बा व्यक्ति था और अपने आप को आगे की तरफ झुका कर उससे मुखातिब था। उसने उसी वक्त अपने आप को भी देखा। वह अपने को भरसक ऊपर की तरफ खींचे उस आदमी से रूबरू थी। उस वक्त उस आदमी को और अपने आप को देखते हुए उसे दोनों में एक प्रकार का तादात्म्य अनुभव हुआ। कैसे कैसे मोड़ आने लगे थे उसकी सीधी सादी जिन्दगी में। पिछले दो तीन दिनों में उसका जैसे अजीबोगरीब सवालों से साबका पड़ा था, वैसा तो आजतक न हुआ था। किस चीज के शेष हो चुकने की घोषणा की थी उसने... ये खुद उसके आगे अस्पष्ट था। स्पष्ट थी तो केवल एक बात कि इस घड़ी वह एक लकीर पर खड़ी थी। लकीर जिसके कि दोनों ही तरफ आगाज था। वह किसी भी ओर कदम बढ़ाती और एक नये अध्याय में प्रवेश कर जाना तय था।

''मुझे लगता है मजाक आप कर रही थीं... आपके पास दिखाने के लिए कोई घर था ही नहीं?'' वह बुदबुदाया।

लड़की इस टोकाटाकी से घबड़ा गयी और बगैर सोचे समझे उसके कदम बढ़ गये।

फ्लैट हालांकि पुराना था पर लकड़ी की कारीगरी उसे भव्य बनाती थी। खिड़कियां काफी थीं और उनकी अवस्थिति ऐसी थी कि हवा बेरोक टोक आती थी। एक तरफ की बालकनी से स्लाइस भर पहाड़ और कुछ बाईट्स पेड़ों के मयस्सर थे। दूसरी बाल्कनी रूफ गार्डन के सामने खुलती थी। फ्लैट की अवस्थिति इतनी शानदार थी कि सेकेण्ड हैण्ड होते हुए भी कौशिकी सक्सेना ने सबसे पहले उसे दिखाना ही माकूल समझा। आदमी चुपचाप उसके पीछे चल रहा था। लड़की की मनःस्थिति ठीक उसी दिन जैसी थी जब वह बूढ़े का मकान देखने गयी थी। उस दिन की तरह आज भी वह इस देखने दिखाने की रस्म को भरसक लम्बा खींचना चाह रही थी। क्योंकि उसे पता था कि इस अध्याय के समाप्त होते ही एक चुभन भरा एकांत और अटपटे सवाल उसकी झोली में गिरने वाले थे।

वह उस व्यक्ति के ध्यान को बार बार बाल्कनी की तरफ खींचना चाह रही थी क्योंकि उस घर की यूएसपी बालकनी से दिखने वाला नजारा ही साबित होने वाला था। पर उस आदमी ने बाल्कनी से बाहर की तरफ एक उचटती सी नजर फेरी और गौर से कमरे की दीवारों को देखता रहा। लड़की को लगा कि शायद वह दीवारों की उम्र मालूम करना चाह रहा था और उसने स्पष्ट कर दिया कि घर तीन साल पुराना था। दो साल आठ महीने पुराना। सामने वाले ने उम्र वाली बात पर कोई ध्यान न दिया। वह मास्टर बेडरूम की दीवार को एकटक देखता रहा। वहां निशान थे। लड़की ने सफाई दी ''कोई तस्वीर टंगी होगी पहले।''

''आईना भी हो सकता है आदमकद। दीवार के स्विचबोर्ड बताते हैं कि पलंग वहां रही होगी। ...सामने। पलंग के ठीक सामने आईने का मतलब...।'' उसने रोक लिया अपने आप को। बीच में ही। रोका नहीं था बल्कि रास्ता बदल लिया था उसने ''यहां सेल्फ भी लगायी जा सकती है और उस पर बड़ी नथ वाली मूर्तियों का जोड़ा रहे तो...।''

उसकी आंखों की चमक ने लड़की की सांसें रोक दीं। वह बात को घुमा रहा था और लड़की

ने निश्चय किया कि व्यावसायिकता के सूत्र को एक पल के लिए भी हाथों से छूटने न देगी वह। लड़की के मन में जितनी तेजी से यह बात आयी उतनी ही शीघ्रता से आदमी ने डिकोड भी कर लिया उसे। आदमी ने खुद ही बात की दिशा बदल दी ''इस घर में लकड़ी का काम है तो अधिक पर लकड़ी की किस्म उम्दा नहीं। लकदक है काम पर रुचिसम्पन्न नहीं।''

वह घर में घूमता रहा। हर दीवार... हर तहखाने से मुखातिब। कौशिकी सक्सेना उसके पीछे पीछे घूमती रही। पर वह तो अपने में लीन था। केवल घर से संवाद करता। कौशिकी सक्सेना को लगा कि घर ने ग्राहक पर अपना जादू करना शुरू कर दिया है कि अचानक वह मुड़ा और कहा उसने ''एक वाक्य में कहूं तो घर की आत्मा मिसिंग है...। चलें?''

''यह आदमी शर्तिया वक्त बर्बाद कर रहा है।'' एक तेज आवाज उठी उसके भीतर।

उसने घर का ताला बंद कर दिया। शुक्र है कि यह घर पहली मंजिल पर था और वे सीढ़ियों से ही आ गये थे। वरना इस आदमी के साथ लिफ्ट में आते जाते हुए जान पर बन आना तय था।

''एक दूसरा मकान पास ही है आप अपनी गाड़ी से मेरे पीछे आइयेगा?''

''आज नहीं हो पायेगा।'' आदमी ने बेरुखी से कहा।

लड़की सकपका गयी। ऐसे उत्तर की उसे आशा न थी।

''आप कल मुझे मैसेज कर दीजिए कि कहां मिलना है।'' उसने एक सुर में खत्म किया और पीछे मुड़ गया। कौशिकी सक्सेना स्याह पड़ गयी। अचानक ऐसे बर्ताव की वजह क्या हो सकती थी! पर यह सब नया तो नहीं था उसके लिए! उसके पेशे के लिए तो यह आम बात थी। यह बात और थी कि इस तरह के रूखे सूखे व्यवहार रंग नहीं बदला करते थे उसके चेहरे के, पहले कभी।

क्या हो गया था अचानक उस आदमी को! एकांत में आंखें बंद कर कौशिकी सक्सेना ने याद करने की कोशिश की। अपनी धुन में घर की दीवारों को ताकता आदमी अचानक से फैसला क्यों कर बैठा! फैसला भी ऐसा! एकदम निर्णयात्मक। आत्मा नहीं थी घर की! ईंट मिट्टी के बने घर की आत्मा होती है क्या! और अगर होती भी है तो एक आवेग में उसकी शिनाख्त कर लेना सम्भव था क्या! क्या चल रहा था आदमी के भीतर! क्यों स्थगित कर लिया था उसने अपने आप को? सवाल यह भी था कि क्या वाकई वह घर देखने आया था! कौन था वह आदमी... कैसे थे उसके सवाल? और क्यों अपने आप को उसके सवालों के प्रभाव से नहीं बचा पा रही थी वह!

लड़की का ध्यान अभी अपने हाथ की छेनी पर जरा भी न था। और जब उसकी आंखें खुलीं तो सामने जो उकेरा पड़ा था वह बिल्कुल भिन्न था। पूर्ण कृति नहीं थी। एक हिस्सा भर था। लेकिन छाप नयी थी। कौशिकी सक्सेना को उस पल का स्मरण हुआ जब वह लकीर पर खड़ी थी। एक लगभग अपरिचित व्यक्ति के साथ। कौन था वह व्यक्ति, इस सवाल के मन में उठने की बारी थी। पर उसकी जगह एक ललक उठी मन में कि नया कुछ रचने की शुरुआत कर चुकी थी वह एक बार फिर... यह सूचना सबसे पहले उस आदमी के साथ ही बांटी जाये।

अगले रोज वह वक्त से पहले थी, तयशुदा जगह पर। लड़की नहीं चाहती थी कि फिर से वह आदमी इधर उधर किधर से भी प्रकट होकर उसे चौंका दे। वह उसे आते हुए देखना चाहती थी शुरुआत से। कुछ देर उसने सड़क पर खड़े होकर इंतजार किया। चौकन्नेपन और सजगता से। फिर उसने एक टेलीफोन बूथ के शेड के नीचे खड़े रह कर इंतजार किया। फिर भी बात नहीं बनी तो अपनी स्कूटी की सीट से कमर टिका कर प्रतीक्षा की। वह तब भी न आया जबकि दो मर्तबा मैसेज करके लड़की आने की जगह और समय बता चुकी थी। फिर वह चहलकदमी करती हुई इंतजार

करने लगी। पौन घंटे से ऊपर बीत चुके। उसने फोन लगाया। फोन कवरेज के बाहर था। ऐसा कभी हो सकता था क्या कि वह आये ही ना! लौट जाना चाहिए क्या उसे! उसने दस मिनट का मोहलत दी उस आदमी को। इनमें से शुरू के सात आठ मिनट तत्परता से खड़े रह कर और आखिरी पल चहलकदमी करके बिताये गये। ऐन दसवें मिनट के पूरा होने के कुछ पहले उसने रियायत के पलों का फिर से दस मिनट के लिए नवीनीकरण कर दिया। अबकी उसने बैठने के लिए जगह तलाश ली। गार्ड की कुर्सी रखी थी पास के एटीएम के बाहर। गार्ड पास के पान की दूकान पर खड़ा था। वह जाकर बगैर झिझके गार्ड की कुर्सी पर बैठ गयी। जब कोई हटाने आयेगा तो देखा जायेगा... का संकल्प लिए।

अब तक उसे भान हो चुका था कि वह व्यक्ति आने वाला नहीं। क्योंकि अगर वह आ जाता और उस कुर्सी पर बैठे रंगे हाथों पकड़ी जाती वह, तो इससे ज्यादा बेइज्जती की बात और क्या हो सकती थी! इतनी देर खड़े होकर इंजतार करने के बाद बैठ कर राह देखना आसान लगा। इसीलिए वक्त की मियाद खत्म होने पर एक और नवीनीकरण की गुंजायश बनती थी। तीसरी बार दस मिनटों का चक्र चलाया गया। आधी दूर तक बेड़ा पार हो जाने के बाद उसने गौर किया कि गार्ड आकर उसके बगल में खड़ा हो गया था। इसलिए उस चक्र के उतरार्ध में उसे सुख का त्याग करना पड़ा। वह वापस स्कूटी से टिक कर खड़ी हो गयी। क्या सोच रहे होंगे आसपास के लोग! इतनी देर तक खड़े होकर, बैठ कर, दौड़ कर कोई किसी की प्रतीक्षा करता है क्या! उसने फिर से फोन लगाया। पर उस पार से उसी आशय की सूचनाएं दुबारा आयीं। सारी गलती उसकी थी। खाली मैसेज भेज देने से ही उसने कैसे मान लिया कि सामने वाले को उसकी बात मंजूर थी! और इस खोखली जमीन पर इतने वक्त की कुर्बानी दे दी उसने। और यह सब आडम्बर भी तब, जबकि वह जानती थी कि सामने वाले की मंशा घर खरीदने की कभी थी ही नहीं। वह आदमी उसे उल्लू बना रहा था यह बात तो उसकी समझ में आती थी। पर वह खुद अपने आप को क्यों मूर्ख बना रही थी यह बात समझ से परे थी।

उसने घड़ी देखी। हे भगवान! चौथा चक्कर भी चालू हो चुका था। अपने आप ही रिन्यू हुए जा रहा था अब समय। उसकी स्वीकृति की भी प्रतीक्षा न रही। वह वापस तेज तेज चहलकदमी करने लगी। आज आये तो वह इतनी जलीकटी सुना देगी कि आत्मा परमात्मा का सारा दर्शन ही हवा हो जायेगा उसका। इस संसार में दूसरों के वक्त की किसी को कद्र है ही नहीं। वह उम्मीद भी किससे कर रही थी! एक दिन की पहचान(?) वाले व्यक्ति से! उसके मैसेज का जवाब तक देना जरूरी नहीं समझा जिसने। लड़की ने चौंक कर अपने मोबाइल का भेजा हुआ मैसेज चेक किया। डिलीवरी तो हो गयी थी दोनों संवादों की। बस बहुत हुआ। जैसे ही अबकी का दसवां मिनट खत्म होता वह चल देती यह बात पक्की।

बीतने लगी समय की सीमा। उसे एक अजीब सी निराशा ने घेर लिया। वह एकटक आने जाने वालों को देखती रही। और अचानक मुड़ कर चल पड़ी। उस समय दसवें मिनट के पूरे होने में सैंतीस सेकेण्ड बाकी थे। स्कूटी में चाभी डालते वक्त उसे आभास हुआ कि ठीक उसके पीछे से किसी की आवाज आयी और वह पूरी ताकत से पीछे पलटी। उसकी संभाल लड़खड़ा गयी पर उस बेसंभारी को संभालने के लिए कोई भी मौजूद न था वहां। भ्रम। उसने सिर को झटक दिया। दो और ग्राहक निबटाने थे उसे उस रोज।

उसका मन उखड़ गया। पर व्यावसायिक रूप से देखें तो किस्मत अच्छी थी उसकी उस दिन। दोनों ही ग्राहकों का काम बन गया। एक को नया मकान खरीदना था दूसरे को किराये का फ्लैट लेना था। इन दो अभियानों के सफल होने के साथ ही उसका इस महीने का टार्गेट भी अचीव हो गया था, जबकि महीने के खत्म होने में छह दिन बाकी थे। यह बात मायने रखती थी पर खुशी की कोई अनुभूति नहीं जागी उसके मन में। बल्कि इस घटना को स्वीकार करना तो दूर अनुभव तक नहीं कर

पायी वह। हर थोड़ी थोड़ी देर पर वह मोबाइल को पलट कर देख लेती थी। आवाज नहीं भी सुनायी दे सकती थी संदेश की। पर्स के भीतर से वाइब्रेटर भी धोखा देता था कभी कभी। दोनों ग्राहकों को निबटाने के बाद वह कुछ घरों को देखने के अभियान पर थी। ऐसे घर, जिन्हें बेचने के इच्छुक उन्हें उसकी कम्पनी में रजिस्टर करवा देते थे। वह मशीन की तरह काम निबटाती जा रही थी।

देखे जाते घरों से अंतर का कोई सम्बंध स्थापित नहीं हो पा रहा था। उसने बगैर सोचे आदमी के नम्बर पर एक बार फिर से कॉल कर दी। इस मर्तबा घंटी बजी। पूरी बजी। पर कोई जवाब न आया। मारे क्रोध के वह तमतमा उठी। उसने आवेग में भर कर अपना मोबाइल बंद कर दिया। ताकि आदमी वापस कॉल कर अगर बात करना चाहे तो भी न कर पाये बात। देखा जाये तो तयशुदा वक्त पर न आने की वजह से ऐसा व्यवहार अपने ग्राहक के साथ करने की बात वह सोच भी न सकती थी। पर उस समय लड़की को कुछ भी देख न पाने की तलब महसूस होने लगी। वह अपने एकांत में जाना चाहती थी जहां बंद आंखों से वह सिरजने का काम कर सके। कल के छोड़े गये बिन्दु से आगे का प्रस्थान। पर वह उस वक्त मयस्सर न था। उसने फौरन घर लौटने का फैसला किया।

घर पहुंच कर ही उसने मोबाइल ऑन किया। पर वहां कोई भी संदेश या मिस्ड कॉल न थी। निश्चय ही आदमी की घर खरीदने की कोई मंशा न थी। या कि...। हे भगवान! पिछले दिन की उसकी आखिरी टिप्पणी उस घर पर...! उसने कहा था कि घर बेजान था। तो क्या वाकई घर उसे पसंद न आया और इतना नाउम्मीद हो गया वह उसकी घर दिखाने की क्षमताओं से कि उसने दूसरी किसी एजेंसी का दामन थाम लिया। यह सब होता तो वह बॉस को खरी खोटी सुना चुका होता और सूद समेत गालियां उस तक पहुंच गयी होतीं। साधारण सी यह बात क्यों नहीं मान ली जा सकती कि किसी काम में फंस गया होगा वह! घर देखना ही उसका एकमात्र एजेण्डा थोड़े न होगा। और रही बात मैसेज या कॉल की तो व्यस्तताओं में कई बार ऐसा होता है कि चाह कर भी संवाद कर पाने का स्पेस नहीं मिल पाता। ऐसे ख्याल ही उस तक आते थे अमूमन, सबसे व्यावहारिक किस्म के ख्याल... परिस्थिति चाहे जो भी रहे। पर इस मर्तबा अतिनाटकीय किस्म के ख्याल उसे लुभा रहे थे। सीधा सपाट सा नहीं सोचना चाह रही थी वह! जो भी था... वह ज्वार भाटा किस्म के भावों से लबरेज था।

एक चेतना उसके मन में यह भी जाग रही थी कि निश्चय ही बाद में वह इन पलों पर ठहाके लगायेगी... खुल कर। पर भविष्य की घटनाओं का ठीक ठीक भान होने के बावजूद भी वह भावनाओं में बह जाने को आतुर थी। और भावनाओं की बुनियाद क्या! बस दो मुलाकात और दस बीस अटपटे संवादों का आदान प्रदान। ऐसे में क्रोध, अपमान, घृणा, लगाव... किसी किस्म की भावनाओं का आधार न बनता था। उसका सिर नाचता था। पर आंखें बंद करने पर भी तसल्ली न थी। किसी छेनी हथौड़ी को छूने की कूव्वत न थी मन में। उसने एक रात पहले की अधूरी आकृति को भी देखा। शायद वही मन में कुछ ललक जगा पाये! और एक बार रचने के सुख में लीन हो जाने के बाद इस नये भावनात्मक उथलपुथल के पल धूमिल पड़ जायें।

पर उस रात कौशिकी सक्सेना ने दूसरी मूर्तियों को तवज्जो दिया। दुहराव की उपज, वे मूर्तिद्वय। उन दोनों को सामने रख कर वह एकटक देखती रही। उस आदमी की कही बातों के परिप्रेक्ष्य में... अपलक। वह उन चेहरों पर नमी और हंसी का अनुपात नाप ही रही थी कि फोन की घंटी बजी। नौ की तीन आवृतियों से समाप्त होने वाला नम्बर... जिससे संवाद स्थापित हो पाने की आस में पूरा एक दिन गुजरने के कगार पर था। उसने फोन उठाया।

''आपने जो पता और समय भेजा था... वही तय रहा कल के लिए।'' उधर से आवाज आयी।

''ठीक है।''

''पहचान के लिए फिरोजी रंग। दुआ कीजिएगा कि उस पते का ठिकाना एक रोज में बदल न जाये।''

''ठीक।''

''और कि कल सुबह ग्यारह बजाने में घड़ी की सूई ज्यादा वक्त न लगाये।''

''अच्छा।''

''पर मुझे तो अभी मांगी गयी दोनों मन्नतों पर शक हो रहा है।''

इस बार वह मौन रही।

''कोई सवाल जवाब नहीं! अगर आप एक दिन में ही इतनी बदल सकती हैं तो इमारत के पते का या घड़ी की सूई की चाल का बदल जाना क्या बड़ी बात है...!''

उस हंसी के समानांतर लड़की की आंखों से ठोढ़ी तक एक गीली लकीर खिंच गयी। क्या बेहतर न होता कि वह भी अपने आप पर ठहाके लगाती। ऐसा दरका हुआ मन कि एक जरा सी आहट पर चाक चाक हो जाये! आहट भी उस आदमी की जिसका चेहरा तक ठीक ठीक स्मरण नहीं कर पा रही थी वह। वह व्यक्ति इतना मतलबी था कि अपने चेहरे की एक जरा झलक तक नहीं आने दे रहा था उसके ख्यालों में। और वह ऐसी ढोल निकली कि अपने विचलन की सारी गठरी खोल बैठी एक फोन कॉल पर। फोन के उस पार से वह क्या अब तक न पा सका होगा उसकी आवाज का रुंधापन। और आत्मसमर्पण वाले ऐसे जवाब! सामने वाला मजे लेता जा रहा था और वह उघाड़ती जा रही थी अपने मन को।

उसका मन किया कि जाये ही न वह। लेकिन कम्पनी की जिम्मेदारियों के नाते एक बंधन था। हालांकि यह तर्क कितना खोखला था, उसे इस बात का अंदाजा भी था। और वह जानती थी कि मर्जी न हो, तो नहीं जाने के रास्ते थे मौजूद। इसी 'जानने' को झुठलाने के लिए उसने एकदम वाहियात तरीके से तैयार किया अपने आप को। कोई बनाव सजाव नहीं। बालों को पीछे की तरफ बांध कर एक पोनीटेल। हरा पीला बंधेज का कुर्ता, मूंग दाल के रंग की लेगिंग्स और कत्थई लाल दुपट्टा। इतने सारे अलग अलग कुल गोत्र के रंग थे पर फिरोजी के खानदान की उपस्थिति न रहे... इस बात की विशेष सावधानी थी।

वह नियत समय से पहले पहुंची थी, फिर से। एक दिन पहले वाली वह जगह उसे बड़ी अपनी अपनी सी लगी। उसने एक रोज पहले वाले टेलीफोन बूथ की शेड वाली जगह चुनी अपने लिए। आदमी आया। उस शाम जाते वक्त कौशिकी सक्सेना उसका ड्राइवर वाला तामझाम देख चुकी थी। आज वह खुद गाड़ी चला कर आया था। भूरे रंग की कमीज थी। लड़की का मुंह टेढ़ा हो गया। उसके कपड़ों के रंग से उसका क्या लेना देना।

वह उतर कर चुपचाप खड़ा हो गया। अपनी गाड़ी से जरा सा दूर हट कर। अन्यमनस्क सा एक तरफ देखता। किसी किस्म के जोश, उत्सुकता या तलाश के भाव नहीं थे आदमी के चेहरे पर। लड़की ने अपनी एक दिन पहले वाली दशा याद की। बेचैन, इधर उधर ताकती, झुंझलाती छवि। कितना अंतर था दोनों के इंतजार में! सामने वाले की निस्पृहता देख कर लड़की को फिर से बेचैनी होने लगी और झुंझलाहट भी। उस तक बढ़ गयी वह। आदमी ने उसे देखा... भौंहें चढ़ायीं। बस इतने तक की इजाजत दी कौशिकी सक्सेना ने उसे। इसके बाद वह सरपट चलने लगी। आगे आगे। यह फ्लैट छठे तल्ले पर था। उसने लिफ्ट की तरफ इशारा कर कहा ''आप चलिए सिक्स्थ फ्लोर पर। मुझे सीढ़ियों से आना पसंद है।''

''मेरी पसंद की चीजें आपको पहले से पसंद होती हैं... इसमें नया क्या है?''

अजीब मुसीबत थी। तीसरे तल्ले पर चढ़ कर लड़की ने सोचा। अगर यह आदमी पीछे पीछे न आ रहा होता तो रुक कर सुस्ताया जा सकता था। वह एकदम धीमे धीमे चलने लगी। आदमी बगल से गुजर गया उसके।

छठी मंजिल पर आकर मुंह बंद किये सांसों को संभालती रही वह कुछ देर। आदमी चुपचाप खड़ा बंद दरवाजों का स्थापत्य परख रहा था। यह घर भी अपार्टमेण्ट की बुकिंग के वक्त ही खरीदा जा चुका था। पर यह बन कर अब तैयार हुआ था और फ्लैट का मालिक इसे बेच कर मोटा मुनाफा कमाना चाह रहा था।

दरवाजा खुला। घर में कुंवारेपन की खुशबू थी। उसमें प्रवेश करने के बाद कौशिकी सक्सेना की उपस्थिति धूमिल पड़ गयी। आदमी अकेला ही घूमता रहा कमरों में। उसने चाहा कि वह खिड़कियों के पल्ले खोल दे ताकि ग्राहक कमरे में आने वाली धूप और हवा की नापजोख कर सके। पर उसके कदम जैसे किसी ने रोक से लिए थे। वह हॉल में खड़ी रह गयी थी और उसके आंख और कान दौड़ कर आदमी का कमरों में आना जाना परख रहे थे। अतिश्योक्ति अलंकार में उभचुभा कर तैयार की गयी उसकी व्यावसायिक जबान अपना ढब दिखाना चाहती थी पर दांतों ने ऐसी मजबूत किलेबंदी कर दी थी कि कोई करिश्मा न रचा जा सका। बड़ी अजीब सी स्थिति थी। कशमकश से भरी। या तो उसे वहीं खड़े रह जाना था या कदम घसीट कर आदमी के पीछे पीछे उपस्थित रहना था। निश्चय ही पहला विकल्प सम्मानजनक था।

कुछ देर बाद वह व्यक्ति नमूदार हुआ कुछ देखने के लिए और उसने चौंक कर कहा ''अच्छा? आप हैं यहां!''

लड़की झेंप गयी।

''आइये मैं आपको घर दिखाता हूं।''

''इस घर की छत और जमीन का रंग एक दूसरे के लिए बना है।'' यह कहते हुए उसने लड़की के कपड़ों पर गहरी नजर डाली। कौशिकी सक्सेना अकबका कर छत का रंग देखने लगी। बाल्कनी एक ही थी हॉल में। उस तरफ घर में दीवार की जगह कांच का स्लाइडिंग दरवाजा था और सुरक्षा के लिए लोहे की ग्रिल भी।

उसे सरकाते हुए आदमी ने कहा ''प्रकृति के साथ होने के लिए यह जगह बेहतर है।''

घर के एक कमरे से लगा एक गोलाकार प्रकोष्ठ था, जिसके चारों तरफ ऊपर से नीचे तक खिड़कियां थीं थोड़े थोड़े दीवारों के अंतराल पर।

''जब अपने को अकेलेपन में कैद कर लेना हो तो यह उम्दा विकल्प।''

वाकई वह जगह पिंजड़े का सा नजारा देती थी।

''सब कुछ बेहद सुंदर। पर माफ कीजिएगा मैं खूबसूरती की तलाश में नहीं हूं। चलें?''

अचम्भा नहीं हुआ उसे। क्योंकि खूबसूरती क्या कहें... निश्चय ही यह व्यक्ति घर की ही तलाश में नहीं था। पर अगर यह सही है कि यह खेल था तो वह भी हार क्यों मान ले!

''कैसा घर चाहिए था आपको?'' ताला बंद करते हुए उसने पूछा।

''आपके जैसा।''

चाभी गिर गयी लड़की के हाथों से।

''क्या बकवास है!''

''सच कह रहा हूं। हालांकि शब्द मुझे दूसरे चुनने चाहिए थे। पर लब्बोलुआब यही है। आप एक आदर्श इमारत जैसी ही तो हैं।''

''कैसे हूं मैं इमारत? आदर्श इमारत।'' लड़की तमतमा गयी।

''मेरे शब्दों के चयन में मेरी सपाटबयानी का नमूना देख कर भी आप इस सवाल का जवाब सुनना चाहती हैं! ये तो जुर्रत हुई। शब्दों के सौन्दर्यशास्त्र को समझने के लिए थोड़ा वक्त चाहूंगा। फिर आपके सवाल का जवाब देना मुनासिब होगा।''

थोड़ा रुक कर उसने कहा ''वैसे सच कहूं तो मुझे पता है कि आपको भी इस सवाल का उत्तर मालूम है।''

लड़की ने मुंह फेर लिया।

पर मुंह का फेर लिया जाना समाधान था क्या! मुंह फेर लेने से सिर्फ सीढ़ियों तक पहुंचा जा सकता था... जहां से वापसी का रास्ता शुरू होता था। वह हांफने लगी थी सीढ़ियां उतरने में भी।

''क्या आप आगे भी घर देखना चाहेंगे?''

''पहले ही आपको बता दूं कि वह मेरे जैसा नहीं है।''

आदमी पहले सवाल का जवाब देने को मुंह खोलता कि लड़की ने दूसरा संवाद बोल दिया। वह मुस्कराया। उसकी मुस्कराहट ने लड़की के चेहरे पर मंडराते विचलन के बादल को फूंक कर उड़ा देने की बजाये उसमें थोड़ी हलचल ही पैदा कर दी।

''देखने वाले के नजरिए पर निर्भर करती है किसी चीज की छवि। आपने तो फैसला सुना दिया पर हो सकता है मेरी नजर कुछ और देख ले।''

लड़की का चेहरा तरल होने लगा। उसे लगा कि वह किसी भंवर के करीब खड़ी है और उसमें प्रवेश कर जाना ही उसकी नियति है।

''अब देखिए न आपके इस दुपट्टे पर लाल बुंदके हैं... आप कहेंगी। पर मैं इसमें फिरोजी अक्स देख पा रहा तो...।''

लड़की ने अपने चेहरे की तरलता को पोंछ डालने के लिए दुपट्टा हाथ में उठाया ही था कि उस आदमी की बात ने मुंह तक उठे मुट्ठी भर मैरुन लाल रंग को नीचे गिरा दिया... हठात्। गिर कर वे फिरोजी आभा में बिखर गये और लड़की के शरीर में मद्धम कम्पन होने लगा।

''तो मैं ही गलत कैसे करार दिया जा सकता हूं?'' आदमी ने अपना वाक्य पूरा किया।

कौशिकी सक्सेना ने कुछ नहीं किया। बगैर उसकी मर्जी उसकी आंखें उठीं ऊपर और पलकें जाकर उस आदमी के चेहरे पर छितरा गयीं। लड़की की आंखों की कोर नम थी हमेशा की तरह। पलकें हर घड़ी नम कोरों के सान्निध्य के कारण सिमसिमी सी रहती थीं। उन पलकों के सीलेपन ने आदमी को छू लिया। दोनों एक दूसरे को देखते रहे। अपलक नहीं... पलकें थीं उनके बीच में। एक अहम किरदार के रूप में।

''आपकी पलकों का एक कतरा अभी आपके गाल पर है।''

कौशिकी सक्सेना ने दाहिने गाल पर हथेली फेरी। एक पलक चिपक गयी उंगलियों से। आदमी ने अपनी मुट्ठी आगे कर फूंकने का अभिनय कर कुछ संकेत दिये। पलकों को फूंक कर उड़ाते वक्त जो मांगा जाये वह पूरा हो जायेगा... इस मान्यता का संकेत।

लड़की ने वैसा ही किया। यंत्रवत्। मुट्ठी पर पलकें रख कर आंखें मूंद कर फूंक मारी गयी। आंखें खुलीं उसकी। पलक अपनी जगह पर कायम थी। कौशिकी सक्सेना के होंठ एक फीकी मुस्कान की जद तक फैले। उसने झेंप कर मुट्ठी गिरा ली पर पलक अभी तक चिपकी थी उसी जगह।

''आपने जरूर कोई बड़ी चीज मांग ली होगी! पलक जिसके बोझ से दब कर उड़ न पायी होगी।''

लड़की ने तपाक से कहा ''हां मैंने मांगा कि मैं जान सकूं कि आप वाकई घर खरीदना

चाह भी रहे या...।''

''मुझे लग गया था कि जरूर कोई बड़ी विश रही होगी।''

वह हंसा और लड़की भी उस हंसी में बह गयी।

अगले फ्लैट को दिखाते वक्त लड़की ने अपने को एकदम हल्का महसूस किया। तनावमुक्त। वह आदमी के साथ साथ चलती रही। घर में रंगों का चयन भड़कीला था। कमरे की दीवार... फर्श हर जगह। घर के हर पहलू पर दोनों की छोटी छोटी टीका टिप्पणी जारी थी।

आदमी ने कहा ''फ्लैट आपकी तरह तो नहीं पर इसकी टाइल्स और पेण्ट पर आपके कपड़ों की छाप जरूर है।''

यह बोले जाते वक्त लड़की बेडरूम में बनायी गयी लकड़ी के सेल्फ पर लगे आईने के सामने थी। उसने उस आईने में अपना हुलिया देखा और बुरी तरह झेंप गयी। उसे सुबह की अपनी मूर्खता पर बड़ा क्रोध आया और कपड़ों का यह चयन सख्त नागवार लगा। मौसमी फूलों के गुलदस्ते से ज्यादा क्या लग रही थी वह! तत्काल उसने अपने आप को उस आईने के सामने से हटा लिया। पर आईने के आगे से अपने को हटा लेना कुछ भी नहीं बदल सकता था। नुकसान तो वह कर चुकी थी। कैसा नुकसान? उसके अंतर से सवाल उठा और वह कोई मन बहलाने लायक जवाब भी न जुटा पायी।

''यहां आयेंगी जरा?''

कौशिकी सक्सेना ने अपने अंतर का सामना करने वाले अध्याय को सरसरी निगाह डाल कर पलट दिया और उसके पास जाकर खड़ी हो गयी। आदमी ने सामने की खिड़की की तरफ इशारा किया।

''यह है तो साधारण रुचि का घर, पर इसमें संगीत है।''

लड़की ने देखा। आदमी की तर्जनी खिड़की के नीचे जिस बिन्दु पर जाकर ठहर गयी थी उसके समानांतर एक बिन्दी चिपकी थी। मटमैली लाल बिन्दी।

''कोई औरत घर की फिनिशिंग को आखिरी टच देने के अभियान में शामिल रही होगी। सम्भवतः खिड़की पर पॉलिश चढ़ाने का काम किया होगा उसने।''

''डिठौना!'' लड़की के मुंह से निकला।

''आप इस तरह एकटक देखेंगी तो हो सकता है डिठौना अपना प्रभाव गंवा दे और नजर ही लग जाये।''

उस मुस्कान के समानांतर वह झट से पीछे मुड़ गयी।

''आप मुड़ने में एकदम वक्त नहीं खरचतीं... मानना पड़ेगा।''

उसे झुंझलाना था... पर बदले में उपजी मुस्कान को जल्दी से समेट लेना चाहा लड़की ने... इसके पहले कि पीछे चलता आदमी देख पाये कुछ भी।

''क्या और कोई घर बचा है?''

लड़की ने लक्ष्य किया कि अपनी गाड़ी के पास खड़े होकर इस सवाल को पूछते वक्त वह खासा शुष्क था। एक ऊबे हुए ग्राहक की झलक थी वहां, जो दूकानदार के उसका स्वाद न पहचान पाने की खीझ से पैदा होती है।

लड़की इस परिवर्तन से सकपका गयी और दूकानदार के संवाद बोलने लगी ''हमें थोड़ा वक्त और दीजिए। हम पूरी कोशिश करेंगे कि आपकी पसंद के अनुसार घर जल्द से जल्द तलाश सकें।''

''कितना समय चाहिए और आपको?'' वह कुछ ज्यादा ही तल्ख हो गया।

लड़की का चेहरा सफेद पड़ गया ''बमुश्किल दो दिन और।''

''याद रखियेगा मैंने अर्जेण्ट रिक्वायरमेण्ट का विकल्प दिया है।''

''जी जरूर। क्या लोकेशन का कोई और विकल्प देंगे आप?''

वह कुछ पल मौन रहा। फिर उसने सिर डुला कर कहा ''नहीं।''

उसने मुड़ने में शर्तिया लड़की से भी कम वक्त लिया। गाड़ी का दरवाजा बंद हुआ और गाड़ी चल पड़ी। कोई अभिवादन... कोई शिष्टाचार नहीं। लड़की हतप्रभ सी खड़ी रह गयी। उसने पिछले दिन के आखिरी पलों को याद किया। आज का अंत भी उस दिन की पुनरावृत्ति ही थी। आखिरी पलों में उसके पीछे लौटते आदमी के मन में ऐसा कौन सा परिवर्तन आ जाता था कि अंतिम निशान पर कटुता के रंग ही होते थे।

अपनी स्कूटी स्टार्ट करते वक्त लड़की का ध्यान बंद मुट्ठी पर गया। उसकी हथेली पर ऊपर की तरफ... वह पलक अभी भी चिपकी थी। उसने दूसरे हाथ की चुटकी से उठाया उसे। ऊपर तक। फिर दोनों उंगलियों को अलगा दिया। और वह पलक को किस्तों में आजाद होता देखती रही।

क्या दुनिया में परिवर्तन हर जगह एक साथ होता है! घटनाओं ने जो असर उस पर छोड़ा था, क्या उसके छींटे दृश्य के दूसरे पात्रों पर भी गिरे होंगे? क्या एकांत में जिस तरह से वह बातों को धुन रही थी... क्या कोई तानाबाना दूसरे भी इससे बुन पा रहे थे! ऐसे सवाल उसे छू रहे थे। ये सवाल कीमती थे उसके लिए। तभी वे छेनी की जद में ना आ पायें यह लियाकत रखते हुए वह गढ़ रही थी प्रतिमा।

अगले रोज कौशिकी सक्सेना दफ्तर पहुंची ही थी कि अप्रत्याशित रूप से आदमी का फोन आ गया। पिछली शाम का एपिसोड जैसे हुआ ही न हो, वह इस तरह खिला हुआ था उस पार से। लड़की से पूछा गया कि क्या उस रोज भी वह किसी सम्भावित विकल्प को दिखाने की इच्छा रखती है।

कौशिकी सक्सेना के दिमाग में बहुत सारी बातें एक साथ आने जाने लगीं। न बोल कर के अपना भाव बढ़ा लिया जाये कि झूठ मूठ की हां कहके मिलने का एक मौका जुगाड़ लिया जाये! सामने वाले ने रातोंरात पाला क्यों बदल लिया। हां कहे जाने की स्थिति में घर कौन सा दिखाया जाये आदि आदि।

''हां है। घर है। मैं आपको मैसेज करने ही वाली थी।''

''तो कर दीजिए।''

अच्छा हुआ कि मैसेज का विकल्प उसके दिमाग में आ गया क्योंकि फोन पर पता बताने में हकलाहट हो सकती थी। पर मैसेज से सच झूठ की क्या परख सम्भव थी भला! उसने एक बेहद औसत विकल्प का लोकेशन भेज दिया। मैसेज टाइप करते वक्त उसके दिमाग में एक चुस्त ख्याल आया। इससे उस आदमी के विषय में ज्यादा कुछ जाना जा सकता था। उसने बिजली की गति से उस विचार को अंजाम दिया। सवालों का एक घेरा बनाया गया जिसमें ओल झोल जानकारियां जैसे फोन नम्बर, ईमेल आईडी, आय, वाहनों की संख्या आदि आदि की किलेबंदी की गयी और मध्य में वैवाहिक स्थिति की जानकारी को छिपा कर रखा गया। यह प्रारूप बनाते वक्त लड़की के भीतर एक तीव्र आत्मधिक्कार ने सिर उठाया। पर लड़की ने इस व्यावसायिक तर्क से उस भावना को कुचल दिया कि उस क्वेश्चनेयर के जवाबों से वह ग्राहक की पसंद नापसंद के करीब पहुंचेगी। बल्कि अगर वह सफल रही तो सवालों की इस सेना को वह कम्पनी से आधिकारिक मान्यता दिलवाने का भी प्रयास करेगी। तर्क खोखले थे जरूर पर फर्क विशेष न पड़ा क्योंकि तब तक उसके तैयार किये सवालों का प्रिण्टआउट निकल कर आ चुका था बाहर।

साजो सामान से लैस होकर वह जगह पर पहुंच गयी। अभी वह टैक्सी से उतरती कि आदमी का फोन आ गया। उस जगह के कुछ लैण्डमार्क लड़की ने फिर से बताये। बहरहाल लड़की को इंतजार

के पल खले नहीं जरा भी। कारण कि वह पूरी तरह से संशय और व्यस्तता के साये में थी। आदमी के आते ही सवालों का परचा बढ़ा देना था कि बात में उलझा कर बीच में घेर लेना था उसे या कि चलते वक्त थमा देने थे सवाल। किस्म किस्म की रणनीति अपना पासा फेंकने को आतुर थी। उसके लिए अपने मन की तड़फड़ाहट को काबू कर पाना एक बड़ी चुनौती साबित हुई उस समय।

आदमी कुछ ज्यादा ही प्रसन्न था।

''आह! फिरोजी!''

लड़की की सारी योजना ध्वस्त हो गयी। उसके कपड़े वाकई फिरोजी थे। ये गलती कैसे हो गयी उससे। कौशिकी सक्सेना ने अपने माथे का पसीना पोंछा और दायां हाथ बढ़ा दिया ''ये फॉर्म भरिए पहले।''

''यहां पर!'' आदमी ने हवा में हाथ हिलाया ''क्या इस फ्लैट को देखने के पहले फॉर्म भरना होता है?'' उसने अतिरिक्त भोलेपन से पूछा।

''हूंह खराब अभिनय।'' लड़की बुदबुदायी।

''सधा हुआ वस्त्र विन्यास।'' वह मुस्कुराया।

लड़की चिढ़ कर तेज तेज चलती हुई अपार्टमेण्ट की लिफ्ट में दाखिल हो गयी। उसने दसवीं मंजिल का बटन दबाया।

''क्यों दसवीं मंजिल तक सीढ़ियों से नहीं चढ़ सकतीं आप?'' आदमी ने ऊपर से नीचे तक उस पर आंखें फेरते हुए कहा।

''ग्यारहवीं मंजिल। इस बिल्डिंग की लिफ्ट ऑड नम्बरों पर नहीं रुकती। दसवीं मंजिल से आगे एक फ्लोर चढ़ कर जाना होगा सीढ़ियों से। यह खामी है इस फ्लैट की।''

बात खत्म करने के पहले ही लड़की को अपनी भूल का अहसास हुआ। भयानक भूल। चाभी!

''निकलिए मिस सक्सेना। आपका इवेन नम्बर आ गया।''

''चाभी..।'' उसने भय से आंखें छितरा कर सामने वाले को देखा।

''बढ़िया अभिनय।'' आदमी बुदबुदाया।

''अभिनय?'' लड़की की आवाज का स्वर बदल गया भौंहों के वक्र होने की ताल पर। पर अगले ही पल वह शांत पड़ गयी।

''मैं शर्मिन्दा हूं।''

''बात ही ऐसी है।'' वह लिफ्ट के दरवाजे पर पांव अड़काए अदा से खड़ा था।

''वापस चलें?'' लड़की ने अपनी झुंझलाहट पर शालीनता का आवरण चढ़ा कर कहा।

''वक्त कितना बरबाद हुआ न मिस सक्सेना।'' उसने लिफ्ट के भीतर आते हुए कहा।

''यह घर अच्छा नहीं था भीतर से। आपको पसंद नहीं आता।''

''मेरी पसंद... नापसंद...! आप सही रास्ते पर हैं।''

''ये फॉर्म भर दीजिए।''

''लिफ्ट के बाहर निकल पाने के लिए भी फॉर्म! अजीब घर है।'' आदमी मुस्कराया।

लड़की को अहसास हुआ कि गलत जगह पर बात चलायी उसने पर इस वार को खाली नहीं जाने देना था। लिफ्ट से निकलते ही उसने आदमी को पकड़ा दिया कागज। कलम भी। वह दीवार से कागज को सटा कर लिखने लगा। उसने बेमन से जल्दी जल्दी सवालों को निबटा कर कागज को लड़की के हवाले कर दिया। कौशिकी सक्सेना ने सरकती निगाह से देखा। कुछ कॉलम खाली थे। एक वह कॉलम भी, जिसे किलेबंदी कर पेश किया गया था।

''कुछ सवाल बचे रह गये।'' लड़की ने मन को मजबूत करके कहा।

''पूछिये क्या बचा रह गया?''

लड़की कांप उठी। क्या समझ चुका वह सब कुछ?

उसने अनजान बनते हुए कागज बढ़ा दिया।

आदमी ने जन्मतिथि लिखी और अविवाहित के आगे सही का निशान लगा दिया। लड़की ढंग से राहत की सांस ले पाती कि आदमी ने उसकी तरफ मुड़ कर कहा ''कुछ खायेंगी आप?''

''हां।''

''क्या?'' आदमी ने इस तरह पलकें झपकायीं मानों लड़की का उत्तर अप्रत्याशित था उसके लिए।

''कोई भी चीज। छोले भटूरे या आइस्क्रीम।''

आदमी ने भौंहें उचकायीं अदा से।

''चॉकलेट या बिरयानी...।'' वह जोर से हंसा।

''मुझे सच में समझ में नहीं आता कि आप कब क्या बोलती हैं। छोले भटूरे और आइस्क्रीम, एक दूसरे का विकल्प हो सकते हैं ये मैं कभी कल्पना नहीं कर सकता था।''

आदमी हंसी नहीं संभाल पा रहा था और क्रोध का सुरूर लड़की पर तारी होने लगा था।

''सोच कर बताइए।'' आदमी ने अपने को संयत किया। उसने अगले पल कहा ''ओह! गलती मेरी है। पहले चल कर बैठिए कहीं। फिर बताइयेगा सोच कर।''

बड़ी हास्यास्पद स्थिति थी। बनावटी ढंग से एक जगह बैठना और फिर किचकिच माहौल में खाने के विकल्प के बारे में सोचना। चॉकलेट और बिरयानी, कितना मजाक बनाया था आदमी ने उसका। पर वास्तविकता यह थी कि वह इस हास्यास्पद दृश्य का पात्र बनने जा रही थी और वह भी आदमी की गाड़ी में बैठ कर। ड्राइवर था इस मर्तबा और वे दोनों पीछे बैठे थे। वह ड्यूटी पर थी। आयी थी आदमी को घर दिखाने पर चाभी छूट गयी। फिर एक बेस्वाद बकझक के बाद वह आदमी की ही गाड़ी में बैठ कर क्या खाना चाहिए यह सोचने के लिए बैठने की जगह तलाश करने जा रही थी। कुछ भी तर्कसंगत नहीं था पर हुआ जा रहा था सब सहजता से।

''एक बार जरा वह कागज तो दिखाइए।''

''क्यों?'' लड़की को करंट लगा। कहीं उसे शक तो नहीं हो गया।

''चेक करूं, कहीं कोई डिटेल मैंने गलत तो नहीं डाल दी।'' उसने शरारत से कहा।

लड़की ने मुंह फेर लिया।

''पर ये डिटेल तो पहले दिन भरवाना चाहिए था। अब कैसे याद आया आपको?''

''भूल गयी थी।'' लड़की ने खीझते हुए बात को घसीटा।

''मिस सक्सेना... आप शायद।''

''मेरे नाम के आगे बार बार आप मिस क्यों लगाते हैं?'' लड़की ने उसकी बात को काटते हुए चुनौती दी।

''आप इतना नाराज किस पर रहती हैं हर वक्त?''

लड़की इस सवाल से चौंक गयी। पर दम था उसकी बात में। वाकई नाराजगी शाश्वत थी उसकी। पर किस पर?

''ओ अब मैं समझा आपके ऐतराज के माने। आप हैरान हो गयीं कि आपके नाम के आगे मिस लगाने का कांफिडेंस पाने के लिए मुझे कोई क्वेश्चनेयर भरवाने की जरूरत नहीं पड़ी।''

आदमी की हंसी ने पल भर पहले के लड़की के आत्ममंथन की ताल बिगाड़ दी। तो वह सब

कुछ जान चुका था! शर्मनाक था यह सब।

''सॉरी। आई वज जस्ट जोकिंग।''

राहत की तरह यह संवाद आया। दूसरी राहत की बात यह थी कि लड़की को उसके साथ इस तरह पास पास बैठ पाने से आजादी मिलने वाली थी क्योंकि... आदमी ने गाड़ी रुकवा दी थी।

गाड़ी से उतरते वक्त लड़की ने अपने आप को टटोला। सम्भवतः वह बिल्कुल भी भूखी नहीं थी। फिर भी वह आदमी के पीछे पीछे गयी।

बैठते हुए आदमी ने कहा ''आपने कितनी देर से कुछ भी नहीं कहा।''

लड़की उस वक्त अपने आप को सफाई देने में व्यस्त थी कि वह आखिर इस आदमी के पीछे कर क्या रही थी वहां।

''बताइये इनमें से कौन सा नैपकिन पसंद है आपको? किसे रखेंगी आप अपने हिस्से में?''

लड़की फिर भी मौन रही टेबल के नैपकिन को देखती।

''क्या आप कम्फर्टेबल नहीं हैं? क्या हमें चलना चाहिए यहां से?'' आदमी वाकई परेशान हो गया।

लड़की ने मेज पर नैपकिन की जगहें बदल दीं आपस में। आदमी के चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी।

''जिस तरह का व्यवहार मेरे साथ होता है आपका... क्या वैसा हमेशा करती हैं?''

लड़की ने चम्मच पटक दिया जोर से मेज पर। आदमी ने चम्मच को उठा कर वापस लड़की की तरफ बढ़ा दिया। लड़की ने दोनों हाथों से उस चम्मच को थाम लिया। आदमी ने चम्मच का एक सिरा थामे रखा।

''चलिए यह तय रहा कि जितनी देर हम यहां रहेंगे यह चम्मच हमारे बीच सेतु बन कर रहेगी। हम इस सूत्र को पकड़े रहेंगे। हूं?''

''कितने चतुर हैं आप! आपका एक हाथ रहेगा यहां और मेरे दोनों हाथ व्यस्त रहेंगे तो मैं खाऊंगी कैसे?''

''इस समस्या के निदान के कई रास्ते हैं पर उनकी तरफ ध्यान दिलाने की बजाये मैं समानता को चुनूंगा। आप अपना एक हाथ हटा लीजिए।''

लड़की ने आदमी की देखादेखी अपने दाहिने हाथ को आजाद कर दिया।

''जिसने चम्मच गिरा दिया उसका क्या होगा?'' लड़की ने पूछा।

''चम्मच जो गिरा दे वह हार जाये ऐसा खेल नहीं है ये। यह एक सामूहिक प्रयास है। जो कमजोर पड़ जाये उसकी मदद करनी है दूसरे को और मिल कर इस पुल को थामे रखना है।''

बैरा आया और लड़की ने अपने लिए स्वीट लाइम सोडा मंगवाया। बैरे ने आदमी की तरफ देखा। उसने स्वीकृति में पलकें झपकायीं।

''आपको नेलपॉलिश लगाना पसंद नहीं?''

लड़की को लगा चम्मच का सिरा उसकी उंगलियों से छूट जायेगा। उसकी नजरें अपने नाखूनों पर गयीं। हे प्रभु! कैसा भद्दा लग रहा था उसका हाथ! नाखून जैसे तैसे कटे हुए। न नाखूनों पर रंग न कोई अंगूठी। कलाई भी सूनी। हाथ तो उसका जाना पहचाना रोज जैसा ही था पर उसकी आकर्षणहीनता अभी उभर कर लड़की के सामने आयी थी। वह मन ही मन खुश हुई कि उसने दाहिना हाथ हटा लिया था वरना उस हाथ की उंगलियों पर तो छेनी चलाने की वजह से निशान भी पड़ गये थे कहीं कहीं।

''ये है आपकी खेल भावना! सामने वाले का ध्यान भंग करना टीम एफर्ट है!''

''मैंने तो बस एक सवाल पूछा था। वह भी इस जिज्ञासा से भर कर कि क्या मेरी तरह आपको भी बेवजह की लिपाई पुताई नापसंद तो नहीं?''

उनकी ड्रिंक आ गयी। लड़की ने पिछली बात से ध्यान हटाने के लिए ग्लास को अपने पास खींच कर स्ट्रॉ की मदद से घूंट भरी। इस क्रम में उसकी बायीं कनपटी से बालों की एक लट निकल कर सामने झूल गयी ठोढ़ी के समानांतर। उसके बायें हाथ ने तत्परता दिखायी और वह आने लगा लटों पर लगाम कसने। चम्मच लगभग छूट ही गया था। आदमी ने अपनी उंगली को आगे तक बढ़ा कर चम्मच का पूरा भार थाम लिया। लड़की की उंगली का आखिरी सिरा अलगता चम्मच से कि उसे अपने कर्तव्य का भान हुआ और उसने वापस पकड़ लिया चम्मच को।

आदमी लड़की की ठोढ़ी तक झूलती लट को देखता रहा। दो पल की यथास्थिति के बाद लड़की ने दाहिने हाथ से कनपटी की सरहद के पार पहुंचा दिया नन्हें घुसपैठियों को।

हड़बड़ा कर उसने कहा ''मुझे लौटना होगा अभी। मैंने देर कर दी बहुत।''

लड़की को अपनी ही कही बात से नाराजगी हुई और उसने तत्काल स्ट्रॉ से ड्रिंक खींचे जाने की रफ्तार धीमी कर दी।

''हम कितने बेवकूफ दिख रहे होंगे न!''

''यह भी हो सकता है कि इससे ज्यादा युक्तिसंगत कोई और पल न रहा होगा इस रेस्तरां में पहले। महसूस कीजिए कि कितना तादात्म्य स्थापित हो गया है इस पुल के माध्यम से हमारे बीच।''

लड़की ने महसूस किया कि वाकई शुरू के लम्हों का तनाव... हाथ का... कंधे का... निकल गया था और उसकी जगह सहजता ने ले ली थी।

आदमी ने तेजी से अपना ड्रिंक खत्म किया।

''मैं तैयार हूं। इंतजार में कि आप अपना ग्लास खत्म कीजिए और अपने जरूरी काम पर जायें।''

यह क्या अशिष्टता थी! कैसा रूखापन अचानक। लड़की ने अपना ग्लास सरका दिया परे। आदमी ने इशारा कर बेयरे को बुलाया। बिल आया। एक हाथ से आदमी ने पैसे अदा किये।

बेयरे के पैसे लेकर जा चुकने के बाद आदमी ने कहा ''आपका धन्यवाद! इस टीम वर्क की गरिमा बनाये रखने के लिए।''

उसका चेहरा सख्त था। उसने दाहिने हाथ से चम्मच को पकड़ा और टेबुल पर रख दिया। लड़की के बायें हाथ से चम्मच का सिरा छूट चुका था। पर हाथ उसका उठा रह गया उसी जगह। वह स्तब्ध थी।

''चलिए।''

वे उठ गये।

उस रोज के बाद से उस आदमी ने कोई खोज खबर न ली। हालांकि ग्राहकों से अपेक्षित भी नहीं था कि वे खबर लें। अब ऐसा हो रहा था कि जो भी घर शार्टलिस्ट हो पाता उस इलाके का, उसे खुद कौशिकी सक्सेना ही छांट दिया कर रही थी। अगर उस रोज की रुखस्ती किसी अच्छे बिन्दु पर हुई होती तो इन घरों को उस आदमी की नजरों से देख पाने का अवसर नहीं चूकती वह। पर आखिरी संवादों की औपचारिकता इतनी मर्मभेदी थी कि वह इसी निष्कर्ष पर पहुंचती कि अबकी उसे ऐसा ही घर दिखाना था जिसमें कि कमी निकाल पाना असम्भव होता आदमी के लिए।

घटना के बाद का तीसरा दिन था। वह एक दूसरे खरीददार के लिए सारी जानकारी इकट्ठी

कर के अभियान पर निकलने ही वाली थी कि बॉस का फरमान आया कि वह बूढ़ा आदमी जर्मनी से वापस आ चुका था और कौशिकी सक्सेना को अपने तमाम अप्वाइंटमेण्ट्स अपने सहयोगी को सिपुर्द करके उस बूढ़े से मिलने जाना था। इतनी जल्दी गुजर चुके थे सात दिन। कौशिकी सक्सेना ने अपने को विचित्र से भंवर में फंसा महसूस किया।

बाहर बारिश हो रही थी। फोन ऑपरेटर ने एक परची उसे थमा दी। उस पर उस जगह का पता दर्ज था जहां बूढ़े से उसकी मुलाकात होने वाली थी। वह बेवक्त के लिए बरसाती रखती थी अपने पास हमेशा। अब या तो यह होता कि बरसाती की जिल्द चढ़ा कर उसे स्कूटी से उस जगह तक का सफर तय करना होता या फिर टैक्सी ली जा सकती थी। जिल्द वाला ख्याल बेहतर था। क्योंकि वह किफायती था और व्यावहारिक भी... इस लिहाज से कि बूढ़े से मुलाकात का प्रसंग निबटा कर उधर से ही घर निकला जा सके।

कैफे तक पहुंचते पहुंचते उसके आगे के बाल गीले हो चुके थे। लड़की ने बरसाती उतार कर अपने को आजाद किया और तलहथी से गीलेपन को सोख कर बालों की कमी को ढंकने का प्रयास किया। नतीजतन आगे की लटें घुंघरुओं की शक्ल में चिपक गयीं मांग के दोनों तरफ। पार्किंग से कैफे के गेट तक तेज तेज चल कर, बूंदों से खुद को बचाती वह भीतर दाखिल हुई।

अंदर रोशनी मद्धिम थी और मौसम बेहद सर्द। कॉफी की तीखी खुशबू थी। उसके हाथों पर बारिश की बूंदों ने कलाकारी नहीं की थी। पर लड़की ने अपने हाथों को दुपट्टे से ऐसे रगड़ कर पोंछा मानों नमी के नामोनिशान को मिटा देना चाह रही हो। इतनी अदाकारी निभा ली गयी पर बूढ़ा नहीं दिखा उसे कहीं भी। उसने कलाई की तरफ देखा। क्या वह वक्त के पहले थी!

एक बैरा उसके पास आकर कुछ फुसफुसाया... अदब से। कौशिकी सक्सेना उसकी कही बातों का एक शब्द भी न सुन पायी। पर वह समझ गयी कि वक्त उससे पहले है। उसने देखा बूढ़ा दूर कोने में बैठा उसे देख रहा था।

उसे अपने आप पर हंसी आ गयी। वह खुद नहीं जानती थी कि वह क्या करने आयी थी वहां! निश्चय ही जो भी होने वाला था यहां उसका उसके प्रोफेशन से दूर दूर तक कोई सम्बंध न होता। ऊपर वाला उसे अनजान सी स्थिति में धकेल कर मजे ले रहा था। खतरनाक बात यह थी कि इस अप्रत्याशित स्थिति में उसकी खुद भी दिलचस्पी जाग गयी थी।

बूढ़े की मेज तक पहुंच कर बगैर किसी संकेत, आग्रह या आदेश की प्रतीक्षा किये, वह धप्प से बैठ गयी। बैठने के अगले पल ही उसने संतुलन खोया और तीन छींकें क्रमवार उपस्थित हो गयीं। उसने माफी मांगने के लिहाज से माथा उठाया बूढ़े की तरफ तो मांग से एक मोटी बूंद टपक गयी ललाट के बीचोंबीच। यह सब इतना प्रभावशाली था कि बूढ़े ने तुरंत कहा ''कॉफी पीयेंगी?''

वह 'हां' में सिर डुला चुकी थी। हे भगवान! यह सब कितना शर्मनाक था! उसने फिर से छींक दिया।

''आपकी उम्र कितनी है?''

''सत्ताइस। पर मैं दिखती नहीं हूं उतने की।''

कितना मजेदार था। कुछ भी बोल जाना। उसने अपने आप को शाबासी दी। अब वह इस खेल को थोड़ा थोड़ा समझने लगी थी। भय और अनजाने हालातों पर विजय पाने का सटीक नुस्खा था बदले में दिये गये असम्भावित और बेबाक जवाब।

''आप को ठंड लग रही है लगता है। कांप रही हैं... आप तो।''

''हां बढ़वा दीजिए टेम्परेचर।''

बूढ़े ने बैरे को बुला कर कुछ आदेश दिये। कौशिकी सक्सेना जम कर बैठ गयी।

''मैं आपके लिए कुछ लाया हूं जर्मनी से।''

यह अप्रत्याशित था। पर इसका भी कोई अच्छा तोड़ प्रस्तुत करना था।

''मुझे आज तक किसी का दिया तोहफा पसंद नहीं आया।''

बूढ़ा मुस्कुराया।

''लेकिन आप आजमा सकते हैं... अपनी किस्मत।''

''ऐसा है तो फिर मैं देने के लिए किसी बेहतर मौके का इंतजार करूंगा।'' वह गम्भीर हो गया।

''इंतजार खतरनाक चीज है। तब तो और भी जब ज्यादा वक्त न हो।''

यह तो हद पार करने जैसी बात थी सरासर। बूढ़े की उम्र पर इतनी तीखी बात कहना तमीज की सरहद के बाहर की चीज थी। लड़की ने अपनी जांघ पर नाखून धंसा लिए।

बूढ़ा हंसा।

''लम्बे इंतजार में अपनी एक कशिश है पर इस आकर्षण में एक लम्बे वक्त तक जी चुका हूं मैं। अब छोटे छोटे इंतजारों की ही ख्वाहिश है।''

उसने बगैर बूढ़े की प्रतीक्षा किये तुरंत कॉफी को मुंह से लगा लिया। पहली बूंद से उसे लगा कि इस स्वाद से अनजान थी उसकी जिह्वा। खूब गरम चीज, जिसकी भाप ही जीभ को जला देने के लिए पर्याप्त थी। कौशिकी सक्सेना ने ताबड़तोड़ चार पांच घूंट लिए। स्वाद की समस्त कोशिकाओं के लिए महरूम पैगाम था।

''देखता हूं आप इंतजार के सुख से महरूम हैं।''

''इसे इंतजार की बदकिस्मती भी मान सकते हैं।''

कॉफी की गंध ने लड़की पर गहराई से असर कर दिया। उसके शरीर के रोंए अकस्मात की गर्मी पाकर सिहरने लगे। उसने अपने पर काबू पाने की कोशिश की। टेबल पर रखा चम्मच उठा लिया और उसकी यह हरकत उसे दो लोगों के बीच बने पुल की स्मृति तक खींच ले गयी।

''कल मैं आपको अपना घर दिखाना चाहूंगा।''

उसके व्यवसाय से सम्बंधित पहली बात थी यह, उस शाम की। पर कौशिकी सक्सेना ने इस बात में कोई रुचि नहीं ली और पुल के इस छोर से उस छोर तक अंगूठे के नाखून को चलाती रही।

''और कॉफी लेंगी?''

''हां।''

उसने अपना खाली मग आगे सरका दिया।

''आप कुछ कहना चाह रही हैं ऐसा लगता है।'' बूढ़ा उसके हाथ की बेसब्र हरकत की ओर इशारा करके बोला।

''आप मेरी शिकायत कम्पनी से क्यों नहीं कर देते?''

''किस बात की शिकायत?''

''मेरी अशिष्टता की।''

''ओह...। मेरा ध्यान तो आपकी विशिष्टता पर था।''

कॉफी आ गयी दोबारा।

''यकीनन यह बहुत महंगी होगी।''

''है पर इसमें नशा नहीं।''

कॉफी का भाप उसके ललाट से टकरा जा रहा था और वजह यही शायद कि लड़की के माथे पर बूंदें चमकने लगीं।

''आप कितने वर्षों से इस जगह काम कर रही हैं?''

''मुझे सच में याद नहीं।''

''क्या?''

''कि मैं क्या कर रही हूं... क्यों कर रही हूं। यकीनन इस कॉफी में नशा नहीं है। दोष प्याले का भी नहीं है पर...।''

उसके मोबाइल की घंटी बजी। नौ की तीन आवृतियों से समाप्त होने वाला नम्बर। कॉफी की भाप अबकी सीधी लड़की की आंखों तक गयी और बूंद भर पानी छलक आया वहां। लड़की ने झपट कर फोन उठाया।

''कहां थे आप?''

उधर से कुछ पल की खामोशी के बाद जवाब आया ''मैं हूं मिस सक्सेना।''

''ये इतनी भी बड़ी बात नहीं कि मैं जान न पाऊं। आप कहां गायब हो जाते हैं अचानक? कितना परेशान हो गयी थी मैं! मेरे मन में कैसे कैसे विचार आ रहे थे मालूम है आपको?''

''नहीं।''

''हां ये बात सही नहीं। कोई विचार नहीं आये मेरे मन में। पर आपकी आखिरी बातों का क्या मतलब था यह तो जरूर सोचती रही मैं। बार बार सोचा मैंने।'' बुदबुदायी भर वह। पर इस तरह कि बात उस पार तक पहुंचे।

''मुझे उम्मीद है कि आपने मुझे पहचान लिया है।''

''चलिए अच्छा लगा कि कोई तो उम्मीद है आपको। वरना उस रोज तो सारी उम्मीद गवां चुके थे आप।''

''कल मिलते हैं।''

''यह मैं तय करूंगी।''

कुछ रुक कर फिर लड़की ने कहा ''ठीक है। कल।''

लड़की ने फोन टेबुल पर रख दिया।

''अब तीसरी दफे मैं नहीं पी सकती।''

उसने मग सरका दिया।

''क्या आप वही बातें कहना चाहती थीं, जो अभी आपने कहा फोन पर या आपकी बातचीत को मेरी उपस्थिति ने प्रभावित किया?''

''क्या मैं इतनी पारदर्शी हूं?''

''आपमें बनावट कम है। मिलावट भी कम।''

''यह दोष है?''

''आप हमेशा कुछ छिपाती क्यों है?''

''यह दिखता है?''

''छिपाना दिखता है। क्या छिपाया जा रहा... यह नहीं दिखता।''

बैरा बिल रख गया। लड़की ने आदमी के हाथ बढ़ाने के पहले ही उसे खोल कर पढ़ा।

''इतनी महंगी कॉफी मैंने आज तक नहीं पी।''

''शायद इस तल्लीनता से इस कॉफी को आज तक किसी ने न पीया होगा।''

''यह तारीफ है?''

''आपको दोष लगा?''

लड़की ने सिर झुका लिया।

''आपको क्या लगता है हमारी ये मुलाकात बेकार थी?''

''यकीनन नहीं।'' उठ कर खड़ी होती लड़की दोबारा बैठ गयी। बूढ़े ने भी उसका साथ दिया।

''शायद आपको बुरा लगे पर मैंने एक बड़ी चीज पा ली है। जो बातें मैंने फोन पर कीं, वे शायद कभी कह नहीं पाती। मेरे लिए यह मुलाकात एक लम्बी मानसिक यंत्रणा से आजाद हो पाने का अहसास है। ये बात और है कि मेरी जीभ गरम चीज हलक में उतार कर इस कदर झुलस चुकी है कि अगले दो दिनों तक किसी भी स्वाद को पा सकना सम्भव न हो। सलीका नहीं है न ढब मुझमें कि पी सकूं लियाकत से।''

''मुझे भी ऐसा ही लगा कि इस मुलाकात के बहुत मायने हैं।''

लड़की ने सवाल में पलकें उठायीं।

''जिस घर को आपके माध्यम से बेचने वाला हूं मैं, उस घर को बनाने में सबसे लम्बी उम्र मेरे सपनों की लगी, फिर अनुभव की, फिर उसके बाद बारी आती है बनने में लगे वक्त की... तीन साल और जमा किये गये पैसे। पर अब, जबकि उस घर को बेच देना ही एकमात्र विकल्प बचा था, उसे जस का तस उस रूप में नहीं बेचा गया मुझसे। मैंने पैसे बहा कर उसकी वास्तविक शक्ल को धो डालने की पूरी चेष्टा की। बहुत सफल भी रहा इसमें मैं और रिनोवेट होकर घर का हुलिया बदल गया। अब खुद मैं भी किसी झलक के मिल जाने की बिनाह पर ही यह कह पाता हूं यकीन से कि यह वही घर है। उसी तरह मुझे यकीन होने लगा है कि आप भी किसी चीज को छिपाये चल रही हैं, जिसे आप कभी गवांना नहीं चाहतीं।''

हे भगवान! यह दो दिनों के भीतर दूसरा मौका था जब किसी इमारत से तुलना की गयी थी उसकी।

''क्या मैं इमारत जैसी दिखती हूं?''

''दिखती शायद नहीं।'' लड़की ने चैन की सांसें लीं।

''पर वैसी हो सकती हैं सम्भवतः।''

लड़की को अकस्मात ही हंसी आ गयी।

''चलिए।'' उसने कहा।

वे निकल पड़े। दरवाजे तक आकर बूढ़ा ठिठक गया।

''आप जायेंगी कैसे?''

बाहर बारिश तेज हो गयी थी।

लड़की को उस पहले दिन की स्मृति हो आयी, जब बूढ़ा उससे साथ चलने का आग्रह किये बगैर अपनी गाड़ी की तरफ बढ़ गया था।

''आप निकलिए।'' उसने मुस्करा कर कहा।

''और आप?''

''बरसाती की ओट में अपने पर एक और परत चढ़ा कर लौट जाऊंगी।''

लड़की के हाथ जुड़े और वह निकल गयी।

जगह और वक्त लड़की ने तय किया था। दोनों विकल्प खुले थे। या तो पहले पहुंच कर इंतजार किया जाये ताकि शुरुआत से उसका आ पाना देखा जा सके। पिछले अनुभव के आधार पर इसमें

जोखिम यह निकलता था कि अगर उसे आने में देर हो जाती या आता ही नहीं वह, तो लम्बे खिंचते इंतजार के साथ उसका दिमाग उबाल खाने लगता। दूसरा विकल्प यह कि प्रतीक्षा को सामने वाले के खाने में डाल दिया जाये। पर यहां बखेड़ा यह था कि सामने वाले का इंजतार करने के अकाव्यात्मक ढंग का नजारा ले चुकी थी वह। देखा जाये तो इसमें उसका ही अपमान था जिसका रास्ता देखा जा रहा हो।

इस लिहाज से पहला ही विकल्प श्रेयस्कर था। उसने वक्त से पहले पहुंच जाने को चुन लिया। वह पहुंची और गाड़ी को पार्क कर जैसे ही उसने जगह का मुआयना करना शुरू किया कि उसकी सांस थम गयी। आदमी ठीक उसकी तरफ ही देख रहा था। लड़की ने पहली बार स्वीकार किया अपने आप की उपस्थिति में कि सम्भवतः वह व्यक्ति आकर्षक भी था! उसने आंखें मूंद लीं। उसके बाद अगली प्रतिक्रिया में वह अपने माथे को नीचे झुका कर दो पल का विराम ले सकती थी... अप्रत्याशित से इन पलों पर काबू पाने की कोशिश में। पर धुन में वह उस आदमी तक चली गयी और उसने कहा ''मैंने आपके लिए घर तलाश लिया है।''

आदमी ने आंखें सिकोड़ कर देखा उसे।

''आप उसे रिजेक्ट नहीं कर पायेंगे।''

आदमी ने होंठों पर उंगली रख कर उसे चुप रहने का इशारा किया।

लड़की ने सकपका कर चारों तरफ देखा और भौंहे उचका कर 'क्या कहना चाह रहा था वह' इस बात की तप्तीश की।

आदमी ने अदब से दाहिना हाथ बाहर किया और चलना शुरू किया। यह उसके लिए साथ आगे बढ़ते जाने का इशारा था, लड़की ने जिसे तत्काल के लिए मान लिया था। काफी दूर तक दोनों चलते रहे एक साथ। आजिज आकर लड़की ने पूछा ''कहां जा रहे हैं हम?''

आदमी हंसा।

''कमाल है। इतनी देर से आप यही सोच रही थीं?''

''ऐसा नहीं। लेकिन बात सोचने की है भी।''

''मुझे नहीं लगता कि हर सफर के पास मंजिल का पता हो ही।''

लड़की चुप रही।

''मैं जानता हूं कि आप यह सब नहीं सोच रही थीं। पूछे जाने के ठीक पहले यह सवाल आपके मन में आया और आपने पूछ लिया।''

''आप तो मेरे मन की सारी बात जान जाते हैं।'' उसने मुंह टेढ़ा करके कहा।

''उनमें से नब्बे फीसदी बातें सही निकलती हैं।''

''इसमें आपकी कोई योग्यता नहीं। मेरा मन है जो आपसे जा मिला है।''

बात पूरी होने के पल ही लड़की को अपनी भूल का अहसास हो गया। उसका चेहरा सफेद पड़ गया।

''बगैर सोचे समझे बोल गयीं आप।'' आदमी ने तुरंत जोड़ा और बात का रुख पलट दिया।

''उस रोज आपने क्यों छिपाया कि वे आपकी बनायी मूर्तियां थीं।''

लड़की ने सवाल पर ध्यान नहीं दिया। उसका ध्यान तो एक कदम पीछे ठिठका था। शर्मिन्दगी के मोड़ से उबार लाया था वह उसे। क्यों? क्या इसलिए कि वाकई उसके मन की आदमी से सांठ गांठ थी और आदमी यह भांप गया था कि लड़की अपनी झेंप का बदला अपने मन से ही लेती यकीनन।

''ऊं?''

आदमी ने उसे उकसाया। अवश्य ही वह उसके उत्तर की प्रतीक्षा में था। हे भगवान! पर सवाल भी तो जटिल था। वह सोच रहा होगा कि इतनी देर से वह इसका जवाब तैयार कर रही थी पर दरअसल सवाल पर तो उसका ध्यान अभी गया था।

''मैंने इस बारे में कभी सोचा नहीं। न वाकये के पहले न बाद में।''

''अभी सोच सकती हैं।''

''मैं समझ गयी थी कि आप कोई बेवजह की खोट निकालेंगे। इस वजह से कहा होगा। और जब आप जान ही गये थे कि मैंने बनाया उन्हें तो उतना नौटंकी पसारने की क्या जरूरत थी?''

''पर जिस बिन्दु पर आप समझ गयीं कि कोई नुक्स नहीं निकाल रहा मैं... तब तो आप भूलसुधार कर सकती थीं।''

''अगर मुझे ये लग जाता कि मेरे सही बात बता देने से कोई फर्क पड़ जाता तो जरूर बता देती।''

''क्या आप वाकई ऐसा मानती हैं कि किसी बात के सही या गलत होने से जब कोई फर्क नहीं पड़ता सामने वाले को... तब वैसा बोलना जायज है।'' वह संजीदा हो गया अचानक। बल्कि वह खड़ा हो गया था ठहर कर। लिहाजा लड़की को भी बराबर में खड़े होकर उसकी तरफ देखना पड़ा। यह सब क्या था! अचानक से रंग का बदल जाना! क्या जवाब देना चाहिए उसे!

अभी लड़की मुंह खोलती ही कि सामने वाले ने कहा ''सोच समझ कर जवाब दीजिएगा।''

लड़की के होंठ खुले रह गये। यह क्या बात थी। ऐसा क्या सवाल था कि सोचने समझने पर जोर था।

''हां।''

''आपकी ये बात मैं याद रखूंगा।'' वह एक पल रुका फिर उसने कहा ''पर इससे ज्यादा जरूरी यह है कि आप इसे याद रखें।''

उसके चेहरे से संजीदगी मिट गयी और एक हल्की रेखा मुस्कराहट की छा गयी वहां।

''उन दोनों मूर्तियों में से पहले कौन सी बनायी गयी थी ये बताया नहीं आपने?''

''हर बार आप ही सवाल करेंगे क्या?''

''कीजिए आप सवाल।''

''कल क्यों फोन किया था आपने, यह पूछना तो मैं भूल ही गयी।''

''मैं भी वजह भूल गया कल फोन पर आपकी बातें सुनने के बाद।''

लड़की को लज्जा आयी। एक शाम पहले की फोन पर अपनी कही गयी बेतकल्लुफ बातों को याद कर नहीं बल्कि कोंच कर वह सब याद कराये जाने से।

''बस एक ही सवाल?''

''हम कहां जा रहे हैं?''

वह उसका रास्ता छेंक कर खड़ी हो गयी। इस तरह कि उसने खुद ही अपनी आंखों को आदमी की आंखों के नीचे कर दिया। आदमी ने सामने वाली आंखों में घुटनों तक दाखिल होकर कहा ''अपना रास्ता पता है मुझे। आपको अपने रास्ते का चुनाव करना है।''

लड़की के दोनों कान धड़कने लगे।

''आपको कोई सुबहा दिखता है?''

उसने महसूस किया कि उसकी आंखों के कोर डबडबाने लगे थे। वजह चाहे जो भी रही हो... आदमी से नजरें मिलाए रहते चले जाने के लिए तरेर कर रखी गयीं पलकें या भीतर से उमड़ता

आवेग कोई, आंसू को निगल लेने के प्रयास में वह मुस्करायी।

''नहीं। जो जवाब मुझे देना चाह रही थीं आप... उसके संदेश मैंने पकड़ लिए। वे मूर्तियां इन्हीं पलों को कैद करने की कोशिश थीं, जो अभी यहां देखा मैंने।''

लड़की के लिए यह सब एक सपने जैसा था। उसने अपने चेहरे को थामे जाते हुए देखा।

''उन मूर्तियों के बनाये जाने का क्रम समझ गया मैं।''

लड़की की आंखों की जद से आजाद होकर आंसू पसर गया। वह भयानक निराशा से भर कर बोली ''और कुछ नहीं दिखता आपको?''

''चलें वापस?'' आदमी ने कुछ रुक कर कहा।

लड़की ने सिर डुला दिया 'हां' में।

रास्ते भर लड़की खामोश रही। पूरे सफर आदमी मौन रहा। आदमी धीरे धीरे चल रहा था और लड़की मन ही मन कभी पीछे की ओर भी चल देती कुछ कदम, ताकि सफर की डोर खिंचती रहे देर तक। दूरी लगभग तय होने को थी कि लड़की ने कहा ''चलिए कुछ खेलते हैं।''

आदमी ने इतनी कृतज्ञता से भर कर देखा उसे मानों यह कह कर... या कि कुछ भी कह कर लड़की ने अहसान किया उस पर।

''जैसे?''

''जैसे कि आप मेरे जन्म की तारीख बूझिए। इसके लिए दो क्लू दिये जायेंगे जो कि पहेलियों में हों। एक सवाल आप भी कर सकते हैं।''

सामने वाले का मनोरंजन हुआ था। खिलखिलाहट गूंज गयी।

''मुझे ये सब नहीं आता।''

''आपने हार मान ली?''

''हां मान ली।''

''तो फिर पूछा क्यों था आपने जैसे?''

''पूछा तो था क्योंकि आपने खेल की बात की थी। अब हार इसलिए मान रहा क्योंकि जब आपकी साधारण बातें पहेलियां होतीं हैं तो पहेली कैसी होगी।''

जाहिर है वह मजे ले रहा था उसे खिझा कर।

लड़की ने पैंतरा बदला और नरमी से बोली ''खेलिए न!''

आदमी ने उसे एक पल स्थिर होकर देखा और कहा ''पूछिए।''

लड़की कुछ देर सोचती रही। फिर उसने कहा ''दस गुने तीन में शामिल है यह पहला क्लू।''

आदमी चुप रहा। मौन के लम्बा खिंच जाने पर लड़की ने कहा ''समझ गये? तो आगे कहूं क्या?''

''समझा नहीं पर आप कहिए।''

''मैं थोड़ा और वक्त दे सकती हूं।''

वे उस जगह पर पहुंच गये जहां से कि आगे की यात्रा आरम्भ की गयी थी। दोनों बगैर कुछ कहे या सोचे कुछ... मुड़ गये उस जगह से दोहराव की यात्रा पर। यह सब इतना सहज था मानों पूर्वनिर्धारित हो उनका इस तरह बार बार चलना उस रास्ते पर।

''आपको समझने में जितनी मुश्किल हो रही है, क्लू चुनना उससे ज्यादा मुश्किल काम था।'' लड़की ने ताना मारा।

''अप्रैल जून सितम्बर नवम्बर।''

लड़की की आंखें फैल गयीं। तो आदमी ने सुलझा लिया था दस गुने तीन.. तीस दिन वाले

महीने को।

लड़की ने जोश में कहा ''दूसरा क्लू, हैट्रिक।''

आदमी ने आंखें सिकोड़ीं। वह चलता गया चुपचाप फिर उसने कहा ''यह पहेली सुलझाने के पहले एक सवाल आपसे। बेटरहाफ के बारे में।'' उसके चेहरे पर एक शाश्वत मुस्कान फैल गयी ''कौन सा हिस्सा महीने का?''

लड़की के चेहरे पर एक लाल रेखा खिंच गयी।

उसने धीरे से कहा ''सेकेण्ड हाफ।''

आदमी कुछ पल मौन रहा फिर वह बुदबुदाया ''चौबीस सितम्बर।''

लड़की के चेहरे की रंगत क्षण में बदल गयी।

''आपने मेरा प्रोफाइल चेक किया। यह धोखा है। पहेली बूझने का नाटक क्यों किया? साफ साफ बता देते।''

''आपने भी तो साफ साफ नहीं बतलाया।'' उसकी आवाज धीमी ही थी।

''क्या नहीं बताया मैंने?''

''कि पहेली ना बूझ पाना खेल की आखिरी शर्त थी।''

''पर आप कैसे बूझ सकते हैं माना कि मैंने आसान क्लू दिये।'' उसने पैंतरा बदला फिर एक बार ''तीन आवृति सितम्बर में हो सकती 'ई' की यह समझ गये आप। माना कि सेकेण्ड हाफ की बात बता दी मैंने, यानी महीने के आखिरी पंद्रह दिन। पर पंद्रह दिन में से एक किसी दिन को कैसे निकाला जा सकता है इतनी आसानी से?''

आदमी ने कुछ बोलने के लिए मुंह खोला पर आखिरी वक्त में अपनी मंशा बदल ली और कहा ''खैर छोड़िए। हर खेल में जीतने पर इनाम दिया जाता है। कहां है मेरा रिवार्ड?''

''आपने खेल का नियम भंग किया है। छल से जीत हासिल की है। आपको पहले से सब पता था।''

''लेकिन दोष तो आपका भी बनता है। आपने वही सवाल क्यों पूछे जो पहले से मुझे पता हो या कि आसान सूत्र क्यों दिये... आदि आदि...।'' आदमी मुस्करा रहा था।

''मैं आपके अभिनय के झांसे में आ गयी। मुझे लगा कि पहेली बूझना वाकई में मुश्किल है आपके लिए इसलिए आसान क्लू दिये।''

''यानी कि आप चाहती थीं कि मैं पहेली सुलझा लूं। फिर मेरी जीत से बौखलायी क्यों आप? इनाम देने से भाग रही हों, ऐसा तो नहीं लगता।''

कितना आसान हो जाता सब कुछ यदि वह आदमी के पास आ पाती और उसकी मुट्ठी तक नीचे झुक कर अपने आगे के दांत कस कर धंसा पाती उसकी कलाई पर। उसके भीतर की सारी झुंझलाहट उड़ेल दी जाती और उस आदमी को यथोचित दंड भी मिल पाता, ऐसा लड़की ने सोचा।

पर इंसान के सोचने में और चीजों के होने में फर्क तो होता है सदैव। वह उसकी दाहिनी तर्जनी का नाखून ही था जो स्पर्श की पृष्ठभूमि बना। नाखून भर की जमीन पर कोई चीज ससर रही थी। मुलायम सा अंश। साथ वाले की उंगलियां सम्भवतः। लड़की सरपट चल रही थी और उसके हाथ खुले लहरा रहे थे शरीर के साथ साथ। पार्श्व का आदमी भी उसके बराबर ही चल रहा था। पर इस तरह लय साध कर कैसे चला जा सकता है कि एक के नाखून से दूसरे की उंगली का साथ लगातार बना रहे और कोई दूसरा हिस्सा एक दूसरे को छूने भी न पाये। लड़की को लगा मानों पूरे शरीर की चेतना उसके नाखून में जा सिमटी हो। उस तरफ से कुछ उकेरने की कोशिश थी उसके

नाखून पर या कि कुछ मिटा देने की। आश्चर्य कि बजाये उन संकेतों को पकड़ने की चेष्टा करने के, वह सिर्फ छुअन को महसूस भर करने में डूबी रहना चाह रही थी। पर अगर उसके हाथ खुले झूल रहे थे और पार्श्व का आदमी उससे हाथ भर लम्बा था तो बगल वाले की उंगलियां उसके नाखून तक कैसे पहुंच सकती थीं चलते हुए! लड़की ने अपनी आंखों की कोर से इस बात की तफ्तीश करनी चाही और परिणाम ने उसे चौंका दिया। अछूते थे उसके नाखून। कोई था नहीं इर्दगिर्द उसके। यह सच उसकी आंखों में आंसू भर देने के लिए पर्याप्त था। हुआ भी यही।

आंसू निकल कर दो कदम चले पर अगले ही पल उसने चाहा कि उन्हें वापस अपने उद्गम तक लौटाया जा सके। कोई और मौका होता तो बेशक वह इन सबसे उलझ सकती थी। पर उस वक्त... और कुछ नहीं। पर्याप्त था उद्वेग। उसके गाल के रास्ते होता हुआ वह कतरा दाहिने हाथ की तर्जनी के नाखून पर बिखर गया। अभी गीले नाखून के ऊपर से होकर गुजरने वाली हवा की पहली आहट को उसने महसूस ही किया था कि उसे कंधे से पकड़ कर सीधा किया गया।

''आप मुझसे एक सच बात कहिए और एक झूठ बात। इसी क्रम में कही जायें वे बातें.. . यह जरूरी नही।''

लड़की को गीली पलकों को उठाने में अतिरिक्त श्रम लगाना पड़ा।

''मेरी आंखों में कुछ चला गया इसलिए भर आयीं आंखें एक बात। मैं अभी इसी वक्त यहां से चली जाना चाहती हूं दूसरी बात।''

लड़की का चेहरा तप रहा था।

आदमी हंसा ''इसे पहचानना तो बेहद आसान है। मतलब सच और झूठ पहचानना। पहला वाक्य झूठ, दूसरा सच।''

वह अगले पल गम्भीर हो गया ''मैंने आपसे झूठ कहा था कि मैं घर की तलाश में हूं एक। दूसरा जब जब हम नहीं मिले... मैंने आपको याद करने की कोशिश की।'' उसने शिनाख्त के लिए दो वाक्यों को प्रस्तुत कर दिया। आदमी का चेहरा धधक रहा था अब, ऐसा लड़की ने महसूस किया। जबकि परीक्षा लड़की की थी और उसे सामने वाले की अभी कही दो बातों को दो खानों में फिट करना था।

उसने आदमी की ओर देखा। इस बार उसकी पलकें सूख चुकी थीं। पर श्रम सम्भवतः उतना ही लगा उन्हें छितरा कर खोलने में... एक प्रश्नवाचक चिह्न की घुमावदार लय में।

''कठिन है क्या?'' आदमी मुस्कराया जरूर पर उसकी आंखें पीड़ा से बिंधी पड़ी थीं। लड़की के लिए सब कुछ और भी जटिल बन गया। पर सामने वाले की आंखों के भाव गहराते गये। पीड़ा ने गहरा कर तीक्ष्ण कटाक्ष का वेष धर लिया।

आदमी ने कहा ''मैं आपकी वे मूर्तियां खरीदना चाहता हूं। बताइए क्या कीमत लगेगी?''

यह सवाल नहीं था बेशक। उसे लपेट कर दूर पटक देने वाली चाबुक की धार थी यह। तो वह एक ग्राहक ही था मूलतः। उसकी हर बात खरीद से आरम्भ होकर फरोख्त पर खत्म होती थी। लड़की ने तुनक कर सोचा और मन को कड़ा करके कहा ''आपकी पहली बात झूठ थी और दूसरी बात सच।''

हालांकि वह स्वयं महसूस कर पा रही थी कि वाक्य के आखिर में उसकी आवाज सांद्र बूंदों के झुरमुट में खोकर रह गयी। आदमी की हंसी ने उन बूंदों को जड़ से कंपकंपा दिया।

''कितनी दूर तक आप मेरे साथ चलना चाहेंगी?''

''ऐसे में अब एक भी कदम चलना मेरे लिए...।'' इसके आगे सब कुछ धुंधला पड़ गया।

''अगर मैं ये कहूं कि आप हार गयी हैं और मेरे कहे में झूठ और सच का क्रम उलटा था तो... तब भी?''

''हां तब भी।'' लड़की ने तमक कर कहा। वह अपने साथ चलते जाने वाले खेल से रुष्ट थी।

''सोच लीजिए।''

''हां सोच लिया।''

अगली सांस में उसने कहा ''अब आगे मैं आपको कोई भी घर दिखा सकने की स्थिति में नहीं हूं। आप चाहें तो अपने लिए बेशक कम्पनी से कोई दूसरा ब्रोकर...।''

उसे रुक जाना पड़ा बीच में बोलते हुए। कारण कि उसकी नजर अपने बाजुओं के समानांतर झूलते आदमी के हाथों पर पड़ गयी थी और उसने यह बूझना चाहा कि इतनी ऊंचाई पर रहते हुए वह अपनी उंगलियां उसके नाखून पर टिकाए कैसे चल सकता था! अगले ही पल फिर उसने अपने को सुधारा। स्वयं अपनी आंखों से देखा था उसने कि भ्रम था वह सब उसका।

''आप कम्पनी से किसी विकल्प की बात मतलब किसी विकल्प के लिए बात कर सकते है।''

''आपकी कम्पनी में विकल्प दे पाने की कूव्वत है क्या?''

लड़की के लिए समय रुक सा गया। वह अनवरत आदमी को देखती रही। मन्नत की एक गूंज उसके कंठ तक आकर फंस सी गयी।

''मेरे गालों पर कोई पलक टूट कर चिपकी है क्या?'' वह बुदबुदायी।

आदमी ने इंकार में सिर डुलाया।

''आप कौन हैं?''

आदमी ने भौंहें उचकायीं और मुस्कराहट दौड़ गयी उसके चेहरे पर।

''पहले आप बताएं।''

लड़की को झुंझलाहट नहीं हुई। न निराशा। न दुख। न आवेग। न अचरज। न भय। न आशंका। न लज्जा। न पश्ताचाप। न टीस। ठीक ठीक इनमें से कुछ भी नहीं पर इन सबके जैसा कुछ। एक नयी किस्म की भावना थी, जिसकी थरथराहट एड़ी से लेकर भौंहों तक लड़की को सुगबुगा गयी। ऐसा लगा मानों हथौड़ी की कोई थाप उस जगह जा लगी हो जहां से मूर्ति के मुकम्मल हो चुकने का सफर पूरा होता हो।

मान अपमान, उचित अनुचित, सम्भव असम्भव... सबके बीच की रेखाएं मिटने लगी थीं। कौशिकी सक्सेना ने पूरे शरीर की उर्जा समेटी और कहा ''मैं आपके संदेश की प्रतीक्षा करूंगी।''

इसके बाद उसे जो करना था उसमें वह घोषित रूप से निपुण थी। वह घूम कर मुड़ गयी पीछे और वापस दफ्तर में आकर ही दम लिया उसने। आदमी अपना पूरा नाम लिखने की बजाये इनीशियल इस्तेमाल करता था। उस आदमी की पूरी फाइल को छान मार कर भी वह उसका पूरा नाम हासिल नहीं कर पायी, जिससे कि सोशल साइट पर उसे खोजा जा सके। नहीं मिला एक मुकम्मल नाम कहीं भी उस आदमी का। हताशा में लड़की ने अपना मोबाइल निकाला और संदेश टाइप किया।

''मैंने आपके घर के लिए ग्राहक खोज लिया है जल्दी ही हम मिलेंगे।''

फिर उसने उस बूढ़े आदमी का प्रोफाइल खोला कम्प्यूटर पर, उसका नम्बर निकाला और संदेश को उस नम्बर के ठिकाने पर भेज दिया। अभी वह आंखें मूंद कर बूढ़े तक संदेश के पहुंच चुकने की गणना कर ही रही थी कि मोबाइल पर संदेश की घंटी बजी। यह संदेश वहां से नहीं आया था, जहां अभी अभी मैसेज भेजा गया था।

नौ की तीन आवृति से समाप्त होने वाले नम्बर ने लिखा था ''अपनी गरदन को पीछे मोड़िए। दाहिनी तरफ। और नीचे देखिए... क्या दिखता है?''

लड़की ने मुंह बिचकाया। उसने बायीं तरफ गरदन मोड़ कर देखा। कुछ भी तो न था।

''कहां है कुछ भी?''

''मैं जानता था आप गरदन बायीं तरफ मोड़ेंगी।''

लड़की ने अकचका कर चारों तरफ देखा। कोई कैमरा तो फिट नहीं था कहीं.... फिर?

''खैर नीचे की तरफ देखिए।'' अगला संदेश आया उसका।

''देखा तो। कहां है कुछ?''

''आपकी चोटी के अंत में दो बाल लटके हैं नीचे की तरफ। टूट गये हैं पर चोटी में गुंथा होने के कारण अलग होकर गिरे नहीं।''

सच में! उसने अपनी चोटी आगे की।

''दो नहीं छह हैं।''

''ठीक है। चार आपके। दो मेरे।''

उसे हंसी आ गयी। अगले ही पल उसने अपने को जब्त किया। दो और चार से उसे कुछ याद आया। चौबीस सितम्बर।

''आपने सही तारीख को कैसे ढूंढ़ा?''

''तो आप अभी भी मानती हैं कि मैंने कोई छल नहीं किया बल्कि खोजा आपके जन्म की तारीख को। मैं जानता था कि आप मानती हैं ऐसा।''

''जवाब दीजिए।''

''तुक्का था मिस सक्सेना।''

''पाप लगेगा आपको न बताया तो।''

''आप इमोशनल हैं इतनी, कलाकार भी, तो आपकी जन्मतिथि का मूलांक छह ही हो सकता था, ऐसी मेरी धारणा थी। फिर इसके बाद अगर आप स्वयं बता देती हैं कि 'महीने का आखिरी हिस्सा' क्लू है तो अंतिम के पंद्रह दिन में एक ही तारीख बचती है जिसके अंकों का जोड़ छह हो।''

लड़की समझ न सकी कि इस संदेश का क्या जवाब दिया जाये। फिर एक बार सामने से ही मैसेज आया।

''वैसे मुझे पाप लगने की ज्यादा फिक्र न थी।''

लड़की फिर से जवाब तलाश न पायी। कुछ पल रुक कर उसने लिखा ''यह बात आप मुझे उस वक्त भी तो बता सकते थे।''

लिख चुकने के बाद लड़की को लगा कि बड़ी चिपकू किस्म की बात लिख दी उसने। कुछ पल तक कोई जवाब न आया। उसने अपना भेजा गया मैसेज चेक किया। मैसेज की डिलिवरी हुई थी उस पार। फिर क्यों न आया कुछ? अकबका कर उसने फिर से उस संदेश को भेजा। उसके भी सामने वाले तक पहुंचने की सूचना थी। पर अबकी भी कोई जवाब न आया। लड़की ने मोबाइल को बंद करके फिर ऑन किया। अभी भी कुछ न था। क्या वजह हो सकती थी? उसका पिछला संदेश आये ग्यारह मिनट सैंतीस सेकेण्ड बीत चुके थे। उसने अपने और उसके भेजे तमाम संदेशों का समय चेक किया। औसतन उसका जवाब आने में एक मिनट से भी कम वक्त लगता था। फिर ऐसा क्यों था। लड़की चोटी से आजाद हुए बालों को उंगली पर लपेटने लगी। उसे अपना भेजा संदेश लिजलिजा सा लगने लगा और मुलाकात के अंत में कही अपनी बात कि 'मैं आपके संदेश की प्रतीक्षा

करूंगी' ...अश्लील लगने लगी।

उसे उंगली पर लपेटे बाल को चिन्दी चिन्दी तोड़ कर फेंक देने की इच्छा हुई। भटक चुकी थी वह रास्ता। अपने आप को दयनीय बना कर हासिल किये पल कितने निरर्थक साबित हो रहे थे। हर बार यही हो रहा था। वह अपने आप को नीचे गिरा कर अगले संवाद को सम्भव बना रही थी और सामने वाला अपनी मर्जी से उनके संवाद की डोर को मनचाही दिशा में ले जाकर छोड़ दे रहा था।

एक संदेश आया 'मुझे जरूरी नहीं लगा।'

लड़की ने नचा कर अपना मोबाइल फेंक दिया। हालांकि इस बात का ख्याल रखा गया कि वह तकिए पर ही गिरे। तमाम अदाकारी को निभाते हुए अपनी जेब के आयतन का भी ख्याल रखना था। उसके होंठ थरथराने लगे अपमान से। वह उस आदमी को अब क्षमा करने के पक्ष में नहीं थी। उसका संदेश आ जाये तो भी कोई जवाब न देना था। कुछ पल बीते वैसे ही। वह सोचने लगी कि वह आदमी जैसे जान जाता है कि वह क्या कर रही है क्या सोच रही है... वैसे ही जानने की कोई शक्ति उसे भी हासिल हो पाती जिससे कि वह भी कयास लगा पाती कि क्या कर रहा था वह उस घड़ी। क्या चल रहा होगा उसके मन में... उसे ऐसे रूखे संदेश भेजते वक्त।

लड़की ने अपना मोबाइल देखा। कुछ न था वहां। हो सकता है आदमी ने अंतिम संदेश के आगे या पीछे और कोई संदेश भेजा हो जो डिलीवर न हो सका हो और जिसके कि अभाव में 'मुझे जरूरी नहीं लगा' रुखड़ा लग रहा था उसे।

हे भगवान! तो अपने आप को थोड़ा और गिराया जाये क्या? लड़की ने सोचा एक बार गिरने और बार बार गिरने में विशेष फर्क है क्या!

''चलिए मान लिया।''

तीन शब्द लड़की ने बिजली की गति से लिखे और फौरन भेज दिये। सम्भवतः उसे आशंका थी कि सोचने के लिए दी गयी जरा सी भी मोहलत संदेश के भेजे जाने में बाधक साबित हो सकती थी। पर खुद से की गयी इस चालाकी ने लड़की को अपने आप से नाउम्मीद कर दिया और गहरी निराशा से भर कर उसने अपना मोबाइल बंद कर दिया। वजह चाहे खुद को सजा देने की मंशा हो या कि प्रतिउत्तर में आने वाले मौन अथवा किसी कड़वे संदेश से स्वंय को बचा लेने की कोशिश। वह तर्जनी पर लपेटे गये बालों को अंगूठे से दबाए गिनती रही रात की धड़कन। एक दाह तलुवे से उठ रही थी और लड़की ने महसूस किया कि अपमान की दाह से ज्यादा झुलसाने वाली साबित होगी यह लहक। यकीनन। कैसे करता होगा कोई तीरंदाज अभ्यास! क्या सदैव प्रत्यंचा और बाण ही होते होंगे प्रयास के उसके अवयव! या कभी कभी प्रत्यंचा की डोर को अपनी उंगलियों के पोर से तराश कर भी कर लेता होगा कोई रियाज। उस लड़की का मन अपने को उंगली की रेखाओं में तबदील कर लेना चाहता था जो घटनाओं की डोर को मांजते हुए लहूलुहान कर बैठे अपने आप को। तकलीफ की एक घूंट उसके गले के बीचोंबीच अंटकी थी और तय नहीं हो पा रहा था कि उसे भीतर प्रवेश पाना है या बाहर मुक्ति का आसमान उसकी मंजिल है! प्रेम की तलाश कहां की जाये... अपने भीतर या बाहर!

अगले दिन दफ्तर पहुंचने के बाद लड़की ने पौन पन्ने का त्यागपत्र टाइप किया। प्रिण्टआउट निकाला। दस्तखत के लिए छोड़ी गयी जगह पर उसने अपनी उंगलियां फिरायीं। एकदम चिकनी और शफ्फाक जगह। स्याही के लग जाने पर जिसकी शुचिता भंग होती थी। बाहर मौसम बेहद खराब था। तेज गर्जन तर्जन। हवा और बेपरवाह हल्की बूंदें। कौशिकी सक्सेना बॉस के टेबुल पर अपना इस्तीफा लहरा कर मौसम को चीरती हुई निकल सकती थी। पर मौसम की बेरहमी ने नहीं बल्कि त्यागपत्र

को बढ़ा दिये जाने वाले दृश्य के परिणामों ने उसे विचलित कर दिया। उसने त्यागपत्र के मजमून को दराज में सरका दिया और अगली सांस में छुट्टी का आवेदन लिखा तबीयत की खराबी के कारण उस दिन की छुट्टी का आवेदन। हालांकि एक बार आ चुकने के बाद लौटने की अनुमति लेना अवकाश का अपमान करना था। फिर भी। आखिरकार बॉस के टेबल पर उसने आधे दिन की छुट्टी वाला कागज लहराया और स्कूटी स्टार्ट कर दी, बगैर बरसाती या ऐसे किसी तामझाम के।

थोड़ी दूर तक आगे बढ़ने के बाद उसे लगा कि अपने आप को प्रताड़ना देने वाले इस दृश्यविधान में सब कुछ परफेक्ट है सिवाए उसके वाहन के। अनावश्यक शोरशराबे के अलावा उसकी सवारी सीन की कलात्मकता में खलल डाल रही थी सो अलग। जिहाजा वह वापस दफ्तर तक आयी और दफ्तर के गैराज के एक सुरक्षित कोने में उसे आश्रय दिला चुकने के बाद लड़की ने फोन करके अपने एक सहकर्मी को बुलाया और गाड़ी की चाभी इस ताकीद के साथ उसके हवाले की गयी कि शाम में गार्ड की इजाजत लेकर या तो स्कूटी को वहीं रहने दिया जाये या किसी सुरक्षित ठिकाने तक पहुंचा दिया जाये। सहकर्मी इसके पहले कि इस प्रस्ताव को स्वीकार या अस्वीकार कर पाता, वह निकल गयी वहां से।

रास्ता खाली था। धुला हुआ। यह पहला मौका था जब वह पानी को चीरती हुई निकल पड़ी। चटक मैरून कुर्ता था उसका। उससे दो शेड गाढ़े रंग की लेगिंग्ज और ऑफ व्हाईट जैकेट पूरे आस्तीन का मौसम में आयी हल्की ठंडक और दफ्तर के एसी के मद्देनजर जिसे पहना गया था। उसके कानों में मैरून और नारंगी धागे में कढ़ा तीन लड़ियों वाला कुंडल था। इस विषम समय में भी उसके चेहरे पर मुस्कान खेल गयी कारण कि वह जिस नाटकीय दृश्य का हिस्सा बनने वाली थी, उसके अनुरूप पात्रसज्जा पूर्ण थी।

तकरीबन सौ मीटर आगे बढ़ते ही बूंदें सघन हो गयीं। गीलापन हावी होने लगा और अपना निर्णय उसे फिर से विचार करने लायक लगने लगा। क्या हासिल होने वाला था ऐसे होश गंवाए हुए की तरह बेमतलब भीगते जाने से। क्या साबित करना था उसे? और किसके आगे? मौसम का मजा लेने की बात तो इतनी उमर बीते सूझी नहीं उसे। तो यह ढकोसला किसलिए मिस सक्सेना? कोई आसपास नहीं था पर किसी ने चुभती हुई आवाज में पूछा उससे यह सवाल। उसने आसपास की पड़ताल को गरदन घुमाया कि एक गाड़ी दाहिनी तरफ से उसका रास्ता काटती खड़ी हो गयी।

गाड़ी का शीशा नीचे सरका और लड़की को अंदर आने का आदेश मिला। लड़की के कपड़ों से पानी टपक रहा था और लड़की की आंखों में विस्मय था। वजह शायद यह थी कि दृश्य की अतिनाटकीयता का अहसास लड़की को हो गया था।

उसकी तरफ का दरवाजा भीतर वाले आदमी ने खोल दिया था। लड़की भीतर बैठ गयी थी और सबसे पहली बात जो उसके जेहन में आयी वह यह कि अभी इस वक्त ड्राइविंग सीट पर किसकी उपस्थिति ज्यादा चौंकाऊ होती जिसका इंतजार था उसे उस जवान आदमी की या उसकी सोच के विपरीत उस पीछे छूट गये बूढ़े आदमी की!

जवान आदमी ने गाड़ी को मद्धिम गति दी।

''अभी मैं क्या सोच रही हूं... आप बताइए प्लीज?''

आदमी की लड़की के मन की बात जान लेने वाली क्षमता का सच परखने का इससे माकूल अवसर नहीं आने वाला ऐसा लड़की ने सोचा।

आदमी ने गाड़ी रोक दी और आंखें सिकोड़ कर लड़की को देखा।

''इसके लिए मुझे ध्यान से आपको देखना होगा।''

''देखिए।'' लड़की ने अकस्मात की गर्मी पाकर सिहरते हुए चुनौती दी।

गाड़ी के भीतर हल्की गरम हवा का इंतजाम था।

''आपने मेरी जगह किसी और के होने की कल्पना की।''

लड़की की आंखें अधिकतम फैलाव में पसर गयीं।

''कैसे पता आपको?''

लड़की ने स्टियरिंग पर ताकत से हाथ रखा। एक बेसुरी सांस का हॉर्न बज गया। लड़की ने अपने हाथ वापस किये। आदमी मुस्कुराया और उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी।

''आपका रंग कच्चा निकला मिस सक्सेना।''

लड़की विस्मय से उसे देखती रही।

''कुर्ते का रंग। अपनी बांह पर एक नजर डालिए। फिर आगे आप मुझे देख सकती हैं।''

लड़की ने वैसा ही किया। जैकेट की बांह पर भीतरी कुर्ते के मैरून रंग की छाप चढ़ गयी थी।

''कैसे पता आपको?''

लड़की अपने पिछले सवाल वाली जिद पर ही कायम थी।

आदमी संजीदा हो गया ''मैंने तो अपनी समझ से सबसे दूर का विकल्प रखा था। सबसे गलत जवाब। पर आपने उसे सही जवाब के सम्मान से अपनाया। इसलिए श्रेय मेरा नहीं।''

लड़की खामोश रही।

''मैं तो यह जानता था मिस सक्सेना... यह जानता हूं मिस सक्सेना कि मैं आऊंगा ही इस बात का पक्का यकीन था आपको। इस बिगड़े मौसम में घुसपैठ करने के पहले भी आप यह जानती थीं और इसमें दाखिल हो चुकने के बाद भी हर पल आपको पता था इस बात का।''

लड़की सर्द पड़ गयी दोबारा। गीले कपड़े और कनपटी से टपकती बूंदों की वजह से नहीं बल्कि उसके अपने मन और उस आदमी की सांठगांठ पर। लेकिन उसकी शारीरिक स्थिति ऐसी थी कि उसे ज्यादा कुछ सोचने समझने की इजाजत नहीं थी। कपड़ा भोथरा होकर शरीर से चिपक चुका था। शुक्र है कि शरीर से चिपके कपड़े के ऊपर से जैकेट का आवरण था। फिर भी काश कि गीले कपड़ों का खलल नहीं होता। फिर तो दृश्य को अधिकतम सीमा तक खींच ले जाने का उपक्रम करती वह। उसने अपने आप को टटोला। क्या उन कपड़ों में देर तक रहने की गुंजाइश थी! कुर्ता सूती था। इस जिहाज से जवाब नकारात्मक ही बनता था। फिर क्या रास्ता था? क्या उससे यह कहा जा सकता था कि आप मेरे घर चलिए। मैं सूखे कपड़े पहन लूं फिर आप जहां चाहे चलिएगा।

हे भगवान! अपने मन का उघड़ापन उसे लज्जित कर गया। पर अगले पल उसे भान भी हुआ कि मंजिल के बारे में उसे कुछ मालूम नहीं था।

''कहां जा रहे हैं हम?''

''आपके कपड़े गीले हैं। ऐसे में आपको ही तय करना है।''

''इतनी देर से बगैर कुछ तय किये हुए चल रहे हैं हम?''

''मिस सक्सेना! कभी कभी लोग जिन्दगी भर चल लेते हैं बगैर कुछ तय हुए।''

लड़की ने होंठ काट लिए। आदमी ने ब्लोअर तेज कर दिया। गर्म हवा उसके शरीर पर घुमड़ने लगी।

बात जिन्दगी भर की थी तो उसे भी बगैर तय किये चलने में कोई ऐतराज न था क्या इतनी हिम्मत थी लड़की में कि वह यह कह सके?

''बताइए।''

क्या बताना था उसे हिम्मत के बारे में या कि दिशा के बारे में!

क्या कहती वह कि उन कपड़ों से मुक्ति पाकर वह फिर से उसके साथ आना चाहती है। और कपड़े अगर न बदले गये तो ज्यादा से ज्यादा क्या होता! जवाब में उसे एक जोरदार छींक आयी।

''रोक दीजिए गाड़ी। मेरा सफर पूरा हुआ।''

''मैं आपके घर का पता जानता हूं मिस सक्सेना। आर्ट गैलरी से मैंने उन मूर्तियों को बनाने वाले का पोस्टल ऐड ्रेस लिया था। इसलिए अभी आपने एक चौथाई ही सफर तय किया है।''

''रोकिये गाड़ी अभी रोकिये अभी।''

गाड़ी रुक गयी।

''क्या चाहते हैं आप मुझसे? क्यों जीना मुश्किल कर दिया है आपने मेरा? क्यों हाथ धोकर पीछे पड़ गये हैं आप मेरे? क्यों मैं चाह कर भी दूर नहीं कर पा रही आपको? क्यों मति मार दी है आपने मेरी कि मैं गिरती जा रही हूं रोज रोज रोज रोज?''

आदमी ने लड़की को एक तेज नजर देखा और गाड़ी स्टार्ट कर दी दोबारा। लड़की शीशे से सिर टिका कर निढाल बैठ गयी।

''अभी आप गीली हैं मिस सक्सेना। हम आपके हर 'क्यों' का रहस्य सूखी जमीन पर तलाशेंगे।'' गाड़ी ने रफ्तार पकड़ ली तेज। कोई कुछ भी न बोला। निःशब्द गर्म लहर गुजरती रही दोनों से टकरा कर।

लड़की गाड़ी का दरवाजा खोल कर उतरी और पीछे मुड़े बगैर बढ़ती चली गयी। घर के बगल से होकर सीढ़ियां ऊपर की तरफ जाती थीं जहां उसका कमरा था। उसने ऊपर पहुंच कर ताला खोला और दाखिल होकर वापस बंद किया दरवाजा अपने पीछे। गीले कपड़ों को उसने धिक्कार भाव से अलगाया क्योंकि वे ही उसकी इस ताजा जलालत की जड़ में थे। कपड़े बदल कर लड़की ने एक जूट के बैग में उन स्त्रीद्वय में से एक को डाला। अगले ही पल उसने उसे वापस निकाला और देखा। आखिरी बार के देखने जैसा देखना। फिर उसने मूर्ति को वापस बैग में डाला और कूद कूद कर सीढ़ियां उतर आयी नीचे। गाड़ी अपनी पुरानी जगह ही खड़ी थी। उसकी तरफ का दरवाजा खुला पड़ा था पहले की तरह। उसने दरवाजा बंद किया और शीशे तक झुकाया अपने को।

''बात जहां से शुरू हुई थी, वहीं खत्म भी हो जाये तो अच्छा।'' उसने आदमी की आंखों में प्रवेश कर कहा। अगले पल उसने खिड़की से जूट का बैग भीतर सरकाया और अगली सीट पर रख दिया। विदा लेने में कोई अतिरिक्त पल खरचे बगैर अगली सांस में वह अपने कमरे में थी।

रात लम्बी ज्यादा थी कि काली ज्यादा... यह एक सवाल था। पर इस सवाल से टकराते हुए लड़की की आंखें लम्हा भर भी खुली नहीं। हथौड़ी और छेनी रात भर बेरहम ताल पर उठते गिरते रहे। लड़की बवंडर को अपने दो हाथ और दो औजारों से घेर कर बांध लेने में जुटी रही। गलत ताल, बेसुरी धुन, ताबड़तोड़ प्रहार। जो उकेरा जा रहा था नीचे, उसे देखने तक को आंखें नहीं खुलीं लड़की की। सच तो यह था कि कुछ भी देख पाने के लिए आंखें नहीं खोलना चाह रही थी वह। कारण कि दुनिया के अलग अलग बिखरे हुए रंग उसे संभाल से बाहर लग रहे थे। उसके मन के भावों को थामने की सामर्थ्य सुरंग से अंतहीन रंग का ही था केवल। सुरंग सा अंतहीन रंग आंसुओं से धुल कर जिसका कि वैभव और भी निखर रहा था।

दो

आदमी गाड़ी को उसके मालिक के हवाले कर लौट रहा था पैदल। उसके हाथ में जूट का एक थैला

था। इसके पहले गाड़ी में पीछे छूट गयी लड़की की निशानियों को अपने हाथों से पोंछ कर मिटा दिया था उसने। पैर के पास के मैट पर टपक आयीं पानी की बूंदें। बैठने की जगह पर सीट के ऊपर बिछे तौलिये का गीलापन। पीठ की तरफ चिपके रह गये लम्बे बाल। तौलिए को अपने साथ ले जाने की इजाजत ले ली थी उसने। वजह भी स्वाभाविक थी। हल्की बूंदें जो अब भी मौजूद थीं उनसे बचने का जुगाड़। गाड़ी का मालिक नेकदिल था। वह आदमी को उसके गंतव्य तक पहुंचवा देने पर तुला रहा। फिर आदमी की ना पर उसका प्रस्ताव था कि उस पहले से भींगे हुए तौलिए की जगह आदमी को दूसरा तौलिया ले जाना चाहिए। पर आदमी गीलेपन को ही गीलेपन का कवच बनाने पर आमादा था। इसलिए वह गीला तौलिया उसका हुआ। कम से कम उतनी देर तक तो जरूर... जब तक कि उसमें नमी बची थी।

आदमी को अपने कमरे के पलंग और मेज कुर्सी आदि से खाली बची रह गयी जगह की अधिकतम दूरी को नापने में सत्ताइस कदम लगते थे। लड़की का कमरा जो उसने बाहर से देखा था... वह इस कमरे का कुम्भ के मेले में बिछड़ा हुआ सगा भाई हो सकता था। बेशक दोनों की परवरिश अलग माहौल में हुई हो। उसने मोबाइल को देखा। लड़की कभी भी अपनी पहल पर संदेश नहीं करती थी। तो उसे देखना बेकार ही था।

वह बिस्तर पर लेट गया। उसे ऐसा लगा मानों वह लड़की का पहना गया ऑफ ह्वाइट जैकेट हो... जिसके कि ऊपर लड़की के कुर्ते का मैरून रंग चढ़ चुका हो। लड़की के टूट कर तौलिए से चिपक गये बालों को साथ लाने के लिए उसे किसी की इजाजत नहीं लेनी पड़ी थी। वह उन बालों को अपनी तर्जनी पर लपेटने लगा।

सफर के आखिरी चरण में शीशे से टिक कर बाहर देखते वक्त ही क्या लड़की ने मन ही मन विदाई वाले दृश्य की परिकल्पना कर ली थी! उसने आखिर में जो कुछ भी कहा क्या उन संवादों को उसी समय लिख लिया गया था! क्या उससे पहले पूछे गये अपने सवालों के जवाब जानने में वाकई लड़की की रुचि नहीं थी या कि उसने आदमी को मौका ही नहीं दिया उत्तर देने का?

आदमी अपने कमरे के क्षेत्रफल को सत्ताइस कदमों में नापने लगा। अब इस भ्रमजाल को और लम्बा खींचना उचित था क्या! भ्रमजाल किसका? उसका अथवा लड़की का! आदमी के माथे के बीचोंबीच कुछ बूंदें पसीने की चुहचुहा आयीं। उसने कोशिश तो कई बार की पर या तो लड़की उसके हिस्से का सच सुनने से महरूम रहने पर आमादा थी या कि उसके बताने के प्रयासों में कमी थी ईमानदारी की। आदमी मुस्कराया। ईमानदारी की उससे अपेक्षा भी कैसे की जा सकती थी। पर अप्रत्याशित रूप से इस ताजा ख्याल ने उसे गुदगुदाने की बजाये बेचैन कर दिया। वह वापस आकर बिस्तर पर लेट गया और उसने आंखें बंद कर लीं। क्योंकि पहली बार उसे लगा कि अपने सच का सामना उजाले में करने की ढिठाई कमजोर पड़ने लगी थी।

आदमी जोड़तोड़ का गुण लेकर पैदा हुआ था। अपनी व्यावसायिक काबिलियत और कुटिलता की वजह से सात वर्षों में वह रियल इस्टेट कम्पनी के मामूली कर्मचारी से कम्पनी के डायरेक्टर्स में से एक बन बैठा। फिर देखते ही देखते शहर के सबसे बड़े बिल्डरों में उसका नाम शुमार होने लगा। औनेपौने दामों में स्थानीय लोगों से जमीन खरीदना, अच्छी रकम देकर नक्शा पास करवाना, स्वीकृत नक्शे के कुल क्षेत्र और अन्य प्रावधानों की धज्जियां उड़ा कर आसपास की और भी जमीनों को शामिल कर उन पर अर्पाटमेण्ट बनवाना, बैंकों से कर्ज उगहवाना और ऊंची कीमतों में बेच देना। अंधाधुंध प्रचार प्रसार और सरकारी कर्मचारियों के मुंह में पैसे ठूंसे रखने को अपना मूलमंत्र बना कर कम्पनी ने अपने सभी प्रतिद्वंद्वियों को पीछे छोड़ दिया। सफलता के नशे ने कम्पनी के मालिकों में और मुनाफे

की लालच पैदा कर दी। कालांतर में अर्पाटमेण्ट के निर्माण में प्रयोग किये जाने वाले सामानों में बेलगाम मिलावट से होने वाली आमदनी का रास्ता भी खुला। सब कुछ अच्छा चल रहा था कि अचानक कम्पनी की बनायी एक नयी नवेली सात मंजिला इमारत की ऊपरी छत ढह गयी। चारेक मजदूर बाकी जिन्दगी के लिए किसी काम के लायक न बचे। बिक चुके फ्लैट के मालिकों ने कम्पनी पर मुकदमा कर दिया। पुलिस, बाजार, बैंक... सबने अपने मोर्चे खोल दिये सो अलग। गनीमत थी कि जिन्हें शारीरिक क्षति पहुंची वे मजदूर थे। गरीब लोग। कम्पनी ने हाथ खोल कर पैसा खर्च किया और मुखर जबानों को ढांप लेने में सफलता अर्जित की। डायरेक्टरों पर नॉन बेलेबल वारंट जारी था और वे चारों जमींदोज थे। कम्पनी को पूरी उम्मीद थी कि मामले के थोड़ा बासी पड़ चुकने पर बात पूरी तरह से रफादफा हो जायेगी और पहले वाली साख दोबारा पायी जा सकेगी। पर तक तब मालिकों को शहर से अलगा कर रखना था।

आदमी इसी कड़ी में उस शहर तक आया था और कुछ दिनों के अंतराल पर अपने रहने के ठिकाने बदल लिया करता था। कम्पनी की कोशिश थी कि मालिकों की सुविधाओं में किसी किस्म की कमी न रहे। ऐशो आराम के तमाम साधन तो थे पर आजादी न थी। दिन भर फोन पर कर्मचारियों को हिदायतें देने, सरकारी तंत्र से सम्पर्क साधने और मुकदमे पर नजर रखने के अलावा कोई काम भी न था। उस रोज आर्ट गैलरी में उसका जाना महज एक इत्तेफाक था। आर्ट गैलरी के मेन हॉल में उसके एक अमीर दोस्त (जो बारिश वाले दिन दृश्य में गाड़ी के मालिक के रूप में था) की पत्नी के बनाये तैल चित्रों की प्रदर्शनी थी। आदमी शिष्टाचार निभाने वहां गया तो पर उसका मन वहां रमा नहीं। इसलिए सबकी आंख बचा कर वह बाहर निकल आया। वहीं इधर उधर भटकते हुए वह मेन हॉल से लगी उस गैलरी की तरफ बढ़ गया जहां बेचने के लिए पेटिंग्स और अन्य कलाकृतियां रखी थीं।

वहीं स्त्रियों के दो मुखैटों पर उसकी नजर पड़ गयी और वह उन्हें देर तक देखता रह गया। उस वक्त वह इस बात से अनभिज्ञ था कि ये जुड़वां स्त्रियां उसकी जिन्दगी को उलट कर रख देने का माद्दा रखती थीं। पर ऐसा कुछ था जरूर कि आदमी को एकबारगी लगा कि वह अतीत में दसेक साल पीछे चला गया हो, जहां वह भी इन स्त्रीद्वय की तरह भावप्रवण था और सम्भवतः निष्कलुष भी। उसकी एकाग्रता को बेधती एक लड़की आ खड़ी हुई थी इसी बीच अपने अजीबोगरीब सवालों से लैस। एक दुबली पतली पीली लड़की जिसकी आंखें बड़ी थीं और नाक नक्श साधारण। पर उसके हावभाव और बातों की दिशा हर पल बदल जा रही थी... चौंकाने की हद तक। आदमी ने गौर किया बस। इससे ज्यादा की हकदार नहीं थी लड़की।

पर अगले ही पल काउंटर पर यह जान कर वह स्तब्ध रह गया कि मूर्तियों को उसी लड़की ने बनाया था। यदि ऐसा था तो लड़की को झूठ कहने की क्या जरूरत थी कि उसने खरीदी हैं वे मूर्तियां। क्यों वह उसे दूर रखना चाह रही थी मूर्तियों से? उस झूठ ने आदमी की दिलचस्पी जगा दी और उसने खेल को लड़की की शर्त पर ही खेलने का निर्णय लिया। उसने काउंटर के आदमी से लड़की का पता लिया और पांच सौ के दो नोट थमा कर यह ताकीद भी दी कि लड़की के सामने यह जाहिर न होने दिया जाये कि वह जान चुका है सब कुछ। आदमी ने तत्क्षण लिए गये इस फैसले पर बाद में विचार किया और परखा कि लड़की हजार रुपये खरचा जाना डिजर्व करती थी अथवा नहीं।

उसने सरसरी तौर पर लड़की के बारे में जानकारियां इंटरनेट पर तलाशनी चाही और एक ब्रोकिंग एजेंसी के कर्मचारियों की लिस्ट में उसका नाम दिखा। वैसी दीनहीन लड़की ब्रोकर हो सकती है यह बात आदमी के लिए अकल्पनीय थी। उसे लगा कि उसके नाम वाली किसी दूसरी लड़की के पते पर पहुंच गयी थी उसकी खोज। फिर भी एक चांस लिया जा सकता था। आदमी ने उस एजेंसी में सम्पर्क किया और अगले दिन बैंगनी गुलाबी शेड वाली वह लड़की उसके सामने खड़ी थी। उसके

आगे घटनाओं की कमान पूरी तरह से लड़की ने थाम ली और वह बस चलता गया। शुरू में इस जिज्ञासा में कि यह खेल किन गलियों से होकर गुजरता है और वक्त बीतते बीतते जिज्ञासा की जगह एक गिल्ट ने ले ली।

वह रोज सोचता कि आज वह इस खेल का पटाक्षेप लिख देगा पर विदा लेने के ठीक पहले वह अंत को अगली मुलाकात पर टाल देता। बीच में कभी कभी एहतियात के तौर पर ठिकाना बदल कर वह पास के किसी दूसरे शहर तक भी जाया करता। ऐसे वक्त उसे दृश्य से पूरी तरह गायब हो जाना पड़ता। ऐसे मौकों पर उसने टटोलने की कोशिश की कि लड़की से न मिल पाने का क्या असर पड़ता था उसके ऊपर। पर जो था वह इतना खुल कर प्रकट था कि इसके लिए अपने भीतर झांकने की जरूरत ही न थी। उसकी बचीखुची किलेबंदी लड़की के आतुर संवाद ध्वस्त कर दिया करते। पर अब उसे हर हाल में लड़की को रोक लेना था। पर लड़की को यदि वह रोक भी लेता तो खुद उसे रोक पाने के लिए किसका आसरा था!

ऐसा नहीं था कि अपने आप के कमजोर पड़ते जाते वाले पलों में उसने अपने भीतर के राक्षस को जगाने की कोशिश नहीं की। उसकी जमा सम्पत्ति किस दिन काम आती। लड़की का मुंह ऐशोआराम और सुविधाओं से बंद किया जा सकता था और पा भी लिया जा सकता था उसे। पर अगर पैसे से ही पाना था तो लड़की से बेहतर विकल्प मौजूद थे संसार में। और यह भी तो निश्चित नहीं था कि वह लड़की को पाना ही चाहता था। उसे तो बस लड़की की उपस्थिति से खुशी मिलती थी। उसकी बातों का हिस्सा बन कर सुकून मिलता था। उसके चेहरे पर बदले भावों का कारण बन कर तोष मिलता था। उसके पैसे नाजुक सूत पर सधने वाले इन लम्हों का संतुलन बिगाड़ सकते थे। और सबसे बड़ी बात यह कि लड़की की जबान ही अगर बंद हो जाती तो उसमें फिर बचता क्या मुग्ध करने लायक!

फिर? लड़की को रोक देना... अपने को रोक देना ही एकमात्र विकल्प! वैसे एक रास्ता और भी था कि बीच से ही अपने को अनुपस्थित कर लिया जाये दृश्य से। सब कुछ छोड़ कर अचानक से एक दिन गायब हो जाया जाये लड़की की दुनिया से। सच तो यह है कि इसका प्रयास किया था आदमी ने बीच में अपने को स्थगित करके पर स्वयं उसके भेजे संदेशों ने ही इस सम्भावना का अंत किया। ये बात और है कि उसके बाद जब भी आदमी लड़की से मिला, वह मन ही मन अपना आभारी हुआ संदेश भेजने का निर्णय करने के लिए।

पर उस रोज की लड़की की बातों से जाहिर था कि वह भी अब ज्यादा वक्त तक खेल को खींच ले जाने के पक्ष में नहीं थी। आदमी ने आंखें खोल दीं। उठ बैठा वह। कहां जाना था यहां से आगे। क्या यह सही मौका नहीं था कि वह पीछे खींच ले अपने आप को पूरी तरह! लड़की ने स्वयं अंत की घोषणा की थी। यही वह मोड़ था जहां से वह बगैर अपने मन पर कोई बोझ लिए आसानी से अपना रास्ता बदल सकता था। लौट सकता था अपनी दुनिया में। यही चयन बेहतर। तो तय रहा।

आदमी ने जूट के थैले में से मूर्ति को निकाला। यह भी एक पहेली थी कि लड़की ने उसे बतौर तोहफा एक ही स्त्री मूर्ति क्यों दी? आदमी गौर से उस मूर्ति को देखता रहा और मूर्ति के चेहरे के बरअक्स आदमी का चेहरा भी एक संकल्प से दहक उठा। अंतर बस इतना था कि जहां मूर्ति की आखों में आंसू के कतरे कैद थे, आदमी की आंखें सूखी थीं... रेगिस्तान की मानिन्द। आदमी ने फोन लगाया और अपने मातहत को आदेश दिया कि उसके रहने के इंतजामात उस शहर से दूर करवा दिये जायें तत्काल।

उसने एक उचटती सी नजर कमरे में बिखरे अपने सामानों पर डाली और वापस लेट गया.

.. चित्त। क्या हो पायेगा उससे यह सब! करना ही था क्या ऐसा? उसने अपने को याद दिलाने की कोशिश की कि उसकी जिन्दगी में मकसद पैसा और ताकत हासिल करना है। ऐसे दो चार पल के सुकून वाले लटके झटके के लिए अपना संतुलन नहीं बिगाड़ सकता वह।

फोन आ गया आदमी के मातहत का। अगले ठिकाने का इंतजाम कर लिया गया था। उसे अगले दिन की सुबह ही शहर छोड़ देना था। आदमी ने सामने वाले को सुधारा और दोपहर की रवानगी निश्चित की। सुबह से दोपहर तक की मोहलत क्यों ली गयी थी इसका जवाब आदमी को एकांत में भी लज्जित कर गया। निकलना तो था ही। सुबह सबेरे की हड़बड़ी का क्या मतलब उसने मन ही मन कैफियत दी।

अगली सुबह हुई। सामान बंध गया आदमी का। गाड़ी आ गयी। सामान सहित चेक आउट करने की बजाये वह खाली हाथ आकर गाड़ी में बैठ गया। ड्राइवर को शहर में ही एक पते पर चलने का आदेश मिला। आदमी आर्ट गैलरी तक गया और उसने काउंटर पर दरिआफ्त करके लड़की की बनायी हुई तमाम अनबिकी कलाकृतियों को खरीद लिया। उसने गौर किया कि उन आकृतियों में स्त्री के मुखौटों का जुड़वा पीस शामिल नहीं था। तो यकीनन लड़की ने उसे अपने पास रखा था।

बहरहाल इस नयी खरीद के साथ अपने साजो सामान सहित आदमी शहर से विदा ले चुका था। वह अपने आप को व्यस्त रखने के प्रयासों में जुट गया। उसने अपने शरीर को खंगाल कर इधर उधर बिखरे उत्साह को एकत्रित किया। वह नये सिरे से सरकारी कर्मचारियों से अपने मुकदमे में आने वाले पेंचों और उनके सम्भावित हल की जानकारी पाने में जुट गया। उसने महसूस किया कि पिछले कुछ दिनों में आये ढीलेपन ने उसके मुकदमे के निबटारे को कई दिन पीछे कर दिया था। वह कम्पनी के बाकी तीन डायरेक्टरों के मुकाबिल कहीं ज्यादा प्रभावशाली था। दूसरे भी उसके आसरे थे इस मुसीबत के निबटारे में। इसलिए आदमी अपना फोकस गंवाया जाना अफोर्ड नहीं कर सकता था। मुकदमा एक बार निबट जाये तो रियल इस्टेट की दुनिया में फिर से अपनी साख पायी जा सकती थी और कम्पनी के मुनाफे को वापस पहले वाली पटरी पर लाया जा सकता था। पैसे का दुनिया में कोई विकल्प नहीं हो सकता ये कैसे भूल गया था वह! क्या पुरुष... एक ताकतवर पुरुष अपने आप में एक मुकम्मल इकाई नहीं! जबकि समाज उसके हक में पक्षपात करने को उद्धत हो और बाकी के संसार को खरीद पाने की कुव्वत उसके धन में हो तब भी क्या पुरुष पूर्ण नहीं! क्यों ऐसा था कि अपने शरीर की धमनियां उसे सूखी लकड़ी के जंजाल से ज्यादा नहीं लग रही थीं। आंखों की पुतलियों को घुमाने में इतना श्रम लगता था कि इस काम के लिए किसी रिमोट के ईजाद की सूचना तलाशने लगता था वह खबरों के बाजार में। मन की तरंगों को अगर ठीक ठीक ग्राफ में व्यक्त किया जाये तो सिर्फ आड़ी तिरछी सपाट रेखाएं आतीं उसके हिस्से में। तो क्या अंतर की ये नीरवता इस बात का संकेत थी कि वह उस रेखा पर आकर खड़ा हुआ था जहां से आगे जाकर या तो राक्षस बना जा सकता था अथवा परमपुरुष। इनसान बन पाने का रास्ता शेष हो चुका था उसके लिए!

कोई ज्यादा मशक्कत नहीं करनी पड़ी आदमी को। जल्द ही वह अपने पुराने साम दाम वाले रंग में लौट आया। स्वाभाविक गुणों की तरफ ढलने में वैसे ही मनुष्य को ज्यादा कष्ट नहीं होता। आदमी की कम्पनी ने अपने नये चल रहे प्रोजेक्ट के एक चौथाई भाग के लिए ही नक्शा स्वीकृत करवाया था। बाकी के तीन चौथाई हिस्से का नक्शा जालसाजी से तैयार किया गया था। प्रोजेक्ट का काम पूरी जमीन पर शुरू हो चुका था। पर एक फ्लैट के कुछ ऊपरी हिस्से के ढह जाने से विरोधियों ने उसकी कम्पनी के खिलाफ शहर में माहौल बनवा दिया। उसके प्रोजेक्ट में फ्लैट लेने वाले ज्यादातर लोगों को जो बैंक लोन मुहैया करा रहा था, वहां तक यह बात पहुंच चुकी थी कि नक्शों

में जालसाजी हुई है। लिहाजा बैंक के अधिकारी सर्किल ऑफिसर के दफ्तर में नक्शे की सत्यता से सम्बंधित अर्जी लगा चुके थे। सर्किल ऑफिसर के दफ्तर में यह अर्जी आधे पौन महीने से अटकी थी और कम्पनी से मोलतोल जारी था। आदमी ने तात्कालिक नुकसान उठाने का फैसला किया और सीओ और उसके मातहतों के मुंह भर दिये गये। कम्पनी को क्लीन चिट मिल गयी और बैंक ने वापस उस प्रोजेक्ट में फ्लैट लेने वालों को लोन देना शुरू कर दिया।

जबसे आदमी ने पूरे मनोयोग से वापस कम्पनी का काम संभाल लिया था, तबसे व्यावसायिक मुसीबतें तेजी से छंटने लगी थीं। महीने दो महीने में उसे बेल मिल जाने की उम्मीद थी। फिर आजाद हो जाता आदमी। उसे तसल्ली थी कि जितना पैसा इन दिनों उसे बहाना पड़ रहा था, उसे सूद समेत वसूल लेगा वह।

बीते दिनों की घटनाओं से वह खुद को अलगा लाया था। सच तो यह था कि लड़की की बनायी कलाकृतियां, जिन्हें आदमी खरीद लाया था, एक कोने में पड़ी थीं। वैसे ही। पैकिंग पेपर में कैद। दूकान से लाने के बाद खोल कर देखा तक नहीं गया था उन्हें। बल्कि यह भी सम्भव था कि होटल के उस कमरे को छोड़ते वक्त यदि साथ चलता सामान अधिक हो जाता, तो कुछ गैरजरूरी चीजों के साथ उन पैकेटों को भी छोड़ दिया जाता कमरे में अपने पीछे।

आखिरी मुलाकात के बाद का लाया गया वह तौलिया भी अब अपनी नमी के सारे निशान गंवा चुका था। आदमी के सामानों के साथ कमरे में तुड़ामुड़ा पड़ा था वह। जिस जगह पर आदमी के सामान बिखरे थे वहां की सफाई करने में रूम अटेण्डेण्ट भी झिझकता था क्योंकि आदमी के रसूख को वह भी सूंघ चुका था। लिहाजा तौलिए को गुड़ीमुड़ी स्थिति में उस जगह पड़े रहने की सहूलियत थी। एक रोज आदमी की मिजाजपुर्सी में आये एक मातहत के हाथ से चाय का प्याला मेज पर छलक गया। तत्काल सफाई की तत्परता में मातहम के हाथ उस तौलिए को उठाने बढ़ गये। आदमी को जरा भी बुरा न लगा तौलिए का वह इस्तेमाल होता देख कर। बल्कि वह तत्काल याद भी न कर सका कि तौलिए के साथ कौन सी स्मृति जुड़ी थी। एक बार दाग लग चुकने के बाद तौलिए ने हर किस्म के गर्द का खौफ दिया और उसने बेझिझक अपने को झाड़पोंछ में प्रयुक्त हो जाने दिया। लेकिन तौलिए में स्वाभिमान था और जिद भी। वस्तुओं पर जमी गर्द उससे बच नहीं पाती थी पर स्मृतियों पर पड़ी गर्द के पास कभी खुद को फटकने नहीं देता था तौलिया। लिहाजा आदमी का वैभव तो चमकता रहा पर यादों पर परतें जमती गयीं।

एक रोज जब आदमी ट्रेडमील पर दौड़ चुकने के बाद एक नये और बेदाग तौलिए से अपना पसीना सुखा रहा था तो उसके मोबाइल पर संदेश की घंटी बजी। संदेश ब्रोकिंग एजेंसी की तरफ से आया था। लब्बोलुआब यह कि उसकी जरूरत के मुताबिक घर का चयन कर लिया गया था और कम्पनी देरी के लिए शर्मिन्दा थी। आदमी ने अगली सांस में मैसेज को डिलीट कर दिया और वापस ट्रेडमील पर चढ़ कर स्पीड बढ़ाने लग गया, बावजूद इसके कि रोज का तयशुदा कोटा वह पहले ही पूरा कर चुका था। मशीन वापस लय में चलने लगी और आदमी ने आंखें मूंद कर अपनी गति उस लय से मिला ली। एक बार सम पर पहुंच जाने के बाद आदतन आदमी ने दोनों हाथों की पकड़ से ट्रेडमील को आजाद कर दिया और धुन में दौड़ने लगा। उसकी पूरी चेतना गति को साधने में लगी थी। घुप्प अंधकार में पैरों की थाप को महसूस लेने में उसकी समस्त इंद्रियां ध्यानस्थ हो गयीं। उसने शरीर के रोओं से अहसास किया उस अनुभव का। असीम सुखकारी अहसास। ठीक इसी समय अपनी दोनों भौंहों के बीचोंबीच एक फिरोजी लौ दिखायी दी उसे।

तत्क्षण आदमी की आंखें खुल गयीं और उसके हाथों ने हड़बड़ा कर ट्रेडमील के बाजुओं को

थाम लिया। आदमी इस कदर विचलित हो गया था कि उसने कूद जाना चाहा ट्रेडमील से नीचे। पर तत्काल उसने चाल को काबू में किया। गति धीरे धीरे कम की गयी और आदमी उतर गया नीचे। वह वहीं रखी आरामकुर्सी पर निढाल पसर गया। भीतर से उठे एक तेज भभके ने जतन से दाब कर रखी स्मृतियों के ढक्कन को उड़ा दिया और अतीत के मैरून रंग के फिरोजी रंग में अनुवाद की पूरी प्रकिया उसके आगे खुल गयी। उसने तौलिए से अपना मुंह रगड़ रगड़ कर पोंछा। मानों उसकी कोशिश थी कि लड़की के दुपट्टे का कच्चा रंग पूरी तरह से उसके चेहरे पर छा जाये। उसके कपड़ों की तरह लड़की का रंग भी कच्चा था। आसानी से दूसरे पर चढ़ जाने वाला। ये बात और थी कि एक बार चढ़ चुकने के बाद दूसरे के लिए उस रंग को उतार पाना मुमकिन न हो पाता।

आदमी ने अपना मोबाइल फिर से पलट कर देखा। कुछ भी न था वहां। आदमी को अपनी कनपटी पर गीलेपन का अहसास हुआ। आंसू नहीं हो सकते... पसीना होगा! आदमी ने उसे पोछते हुए अपने आप से कहा।

नाश्ते के वक्त आदमी के दिमाग में यह विचार आया कि कहीं ऐसा तो नहीं कि लड़की से उसकी नाकामी के कारण आदमी की फाइल छीन ली गयी हो और दूसरा कोई ब्रोकर इस मुहिम पर लग गया। वरना संदेश लड़की के नम्बर से भी तो आ सकता था। कम्पनी की तरफ से संदेश आने का क्या मतलब हो सकता था और? उसे अहसास हुआ कि आनन फानन में संदेश को नहीं मिटा डालना चाहिए था। अगर कि वह इनबॉक्स में मौजूद होता तो हरेक शब्द को पुनः पढ़ कर उसके पीछे की सम्भावनाओं को सूंघने का प्रयास तो किया ही जा सकता था। पर इन सबके विषय में फिक्रमंद होने की उसे क्या आवश्यकता थी! उसने नाश्ते में अपना ध्यान केन्द्रित कर दिया।

आदमी का सारा दिन अपने वकील और मातहतों के साथ रणनीति की माथापच्ची में बीता। उसने जांच कर रहे अधिकारियों के दूर के रिश्तेदारों के नाम पर उसी प्रोजेक्ट में दो एक्जीक्यूटिव फ्लैट देने की पेशकश पर विचार किया और उसे मंजूरी दे दी। इसमें बड़ा तात्कालिक घाटा था पर हालात के पतलेपन को देखते हुए यह बेहतर विकल्प था। पर अभी के उठाए वित्तीय नुकसानों की भरपाई फ्लैट खरीदने वाले ग्राहकों की जेब से होती, यह तो जगजाहिर बात थी।

दूसरी तरफ एक अच्छी खबर आयी थी। काफी दिनों से शहर के सीमांत इलाके में कुछ स्थानीय जमीन मालिकों से जमीन खरीदने की बातचीत चल रही थी। उस मामले में कुछ पेंच थे जो सुलझ गये थे और इस बड़ी डील का रास्ता साफ हो गया था। लेनदेन की पृष्ठभूमि पर सरकारी कर्मचारियों के साथ सम्बंधों का इन दिनों रिन्यूवल हो चुका था। इससे भविष्य में इस नये प्रोजेक्ट का नक्शा पास होने में कम झंझट की सम्भावना थी।

शाम में आदमी का मन बेहद हल्का और प्रसन्न था। वह एक लम्बी सैर पर निकल गया था पैदल। स्मृतियां और विचार किसी किस्म की घुसपैठ न करें इसलिए कानों में एयरफोन लगा कर वह गाने सुनता रहा। रात का खाना खा चुकने के बाद वह न्यूज चैनल देख रहा था तभी उसके फोन की घंटी बजी। हड़बड़ायी सी हल्की सांस। आदमी जब तक बगल के तकिये के उस पार रखे फोन को उठाता, तब तक कट चुका था फोन। आदमी ने चेक किया। लड़की का मिस्ड कॉल था। एक संदेश भी था। आदमी ने संदेश को पढ़ने के पहले उसका समय चेक किया। डेढ़ दो घंटे पहले का संदेश था। अभी आदमी उस संदेश को पढ़ता कि दूसरा संदेश आ गया।

''चेक करने के लिए कॉल किया था कि फोन ऑन है कि नहीं। बात कुछ नहीं करनी थी।''

आदमी ने दूसरा संदेश पढ़ चुकने के बाद पहला संदेश खोला।

''आखिरी मुलाकात के पहले ही मैंने आपके लिए घर खोज लिया था और इस बात की सूचना

भी आपको पहले ही दे दी गयी थी। इसलिए हमारे बीच हुई आखिरी बातें उस पर लागू नहीं होतीं। आपको घर देखना ही होगा।'' फिर एक पता लिखा था और नीचे मिलने की तारीख और वक्त।

आदमी ने याद किया। घर खोज लिए जाने की सूचना लड़की ने शायद उस दिन दी थी जब वे एक गली के छोरों को मापते रहे थे बार बार। उसे उम्मीद नहीं थी किसी संदेश की यह बात बेमानी थी। संदेश हठधर्मिता भरा उंटपटांग होगा यह भी जानी हुई बात थी। फिर भी, सब कुछ प्रत्याशित होते हुए भी... लड़की को उत्तर में दिया जा सकने वाला कोई जवाब सोच नहीं पाया आदमी। कोई जवाब देना भी चाहिए कि नहीं यह बड़ा प्रश्न था। अगर सिर्फ पहला संदेश ही आया होता तो सोचा भी जा सकता था जवाब दिये जाने के बारे में। पर दूसरे संदेश में जब लिख दिया गया कि कोई बात नहीं करनी थी... तब फिर बात की ही क्यों जाये!

आदमी सोचने लगा कि अगर लड़की उसके बारे में सब कुछ जान जाती, तब भी क्या उसका व्यवहार ऐसा ही रहता? क्या उससे सम्पर्क रखती वह? कैसी बातें सोचने लग गया वह भी। कोई चोर उचक्का थोड़े न था वह। केस मुकदमा तो किसी भी व्यवसाय में लगा रहता है। सम्भव है यह जान कर लड़की खुश ही हो जाती कि वह घर खरीदने की हसरत रखने वाला एक आम आदमी नहीं, बल्कि रियल इस्टेट की दुनिया में एक जाना माना नाम है। इस सोच का खोखलापन वाक्य के हिस्से में ही लिथड़ कर प्रकट हो गया। यह ख्याल एक तसल्लीदार मुस्कराहट तक का जुगाड़ नहीं कर पाया आदमी के चेहरे पर।

आदमी कुछ अंतराल के बाद प्रवेश कर रहा था शहर में। वह घटनाओं के घटने के पहले किसी भी प्रकार की मोर्चाबंदी या रणनीति बनाने से बचा रहा था अपने आप को। परिस्थितियों के सामने आकर खड़े हो जाने के पहले कोई भनक तक न हो उसके दिमाग को कि वह क्या करने वाला था। लड़की का सामना करने की यह नीति सर्वोत्तम थी। कारण कि वैसे भी वह लड़की हालात की डोर को अपनी मर्जी से घुमाने फिराने में माहिर थी। लड़की ने मिलने की जो जगह बतायी थी, वह उस इलाके से खासी अलग थी जहां कि घर लेने की ख्वाहिश आदमी ने प्रकट की थी। इसलिए यह भी सम्भव था कि लड़की उसे बेवकूफ ही बना रही हो और उसे बुला कर खुद न आये। उस वक्त आदमी के मन में इस सम्भावित स्थिति को लेकर कोई प्रतिरोध नहीं जन्मा। उसका अंतर बेवकूफ बनाये जाने को भी तैयार लगा। वैसे देखा जाये तो यह स्थिति बेहतर होती। कारण कि वैसा होने से लड़की की बात भी रह जाती और उसका सामना हो पाने से खुद को बचाया भी जा सकता था। पर क्या वह वाकई खुद को बचा लेना चाहता था!

ड्राइवर को शहर की विशेष जानकारी न थी और रुक रुक कर पता पूछते हुए वह लक्ष्य की ओर बढ़ रहा था। विलम्बित ताल की यह यात्रा आदमी के ख्यालों में बहुत सी आशाएं और प्रत्याशाएं जगा रहीं थीं।

आदमी पते पर पहुंच गया। लगभग समय से। कोई नहीं था वहां उसके इंतजार में। आदमी ने ड्राइवर को होटल भेज दिया इस ताकीद के साथ कि उसके अगले आदेश की प्रतीक्षा की जाये। आदमी खड़ा रहा कुछ देर एक लैम्पपोस्ट के नीचे। फिर उसने चक्कर लगाना शुरू कर दिया। नियत समय से दस मिनट ज्यादा हो चुके थे। लड़की को फोन करने का विकल्प सामने आया और चला गया नेपथ्य में..., यह भांप कर कि आदमी को कोई हड़बड़ी नहीं थी। वह लैम्पपोस्ट के नीचे की दुबली पतली जगह में बैठ गया। पैरों को फैला कर और उन्हें इस तरह रोप कर जमीन पर कि शरीर का अधिकांश भार थाम सकें वे दोनों। उसे अहसास हुआ कि इतनी पतली सुतली जगह बनाने की

बजाये अगर थोड़ा चौड़ा चबूतरा बनाया गया होता तो सुस्ताने के लिए भी इसे उपयोग में ला सकते थे राहगीर। सरकारी फंड के कामकाज में लूट की जगह अगर उसे सही जगह खर्च किया गया होता, तो थोड़ा भला हो जाता लोगों का। अचानक उसके जेहन में अपने प्रोजेक्ट की वह इमारत कौंध गयी जिसका ऊपरी सिरा बनने के दौरान ही टूट गया था। मुंडेर से गिरे चार मजदूर। उसके तलवे में झनझनाहट होने लगी और वह हड़बड़ा कर उठा कि एक स्कूटी उसके समानांतर आकर रुक गयी। लड़की ने हेलमेट उतार कर इधर उधर देखा।

''बगैर गाड़ी के आपको पहचानने में दिक्कत हुई। मेरी स्कूटी पर बैठ कर जायेंगे क्या?''

आदमी को अपने पिछले ख्याल की जमीन से इन सवालों की हकीकत तक आने में वक्त लगा। लड़की प्रश्नवाचक चिह्न की तरह मुंह को टेढ़ा मेढ़ा बना कर उसे देख रही थी।

''कहां जाना था? पता तो यही था।''

''हां पर पता तो मिलने का था। यहां आसपास कोई घर दिखता है क्या? घर तक कैसे जायेंगे।''

''पैदल।''

''आप कहना चाहते हैं कि आप पैदल चलें और मेरी स्कूटी आपकी चाल के साथ जुगलबंदी करे?''

''कितनी दूर चलना है?''

''पांच किलोमीटर।''

आदमी ने भौंहें चढ़ायीं। लड़की स्कूटी से उतर गयी।

''चलिए ज्यादा दूर नहीं चलना... ऐसे ही चलते है।''

आदमी चलने लगा। पर बड़ा विचित्र सा था। वह पैदल चल रहा था और लड़की उसके समानांतर स्कूटी धकेलती चल रही थी। उसके दिमाग में एक बार भी शिष्टाचार से भरा यह ख्याल नहीं आया कि स्कूटी को धकेलने की जिम्मेदारी वह अपने ऊपर ले ले। कारण कि वह अभी तक इमारत के ऊपरी हिस्से के भहरा कर गिरते जाने वाले दृश्य से बाहर नहीं आया था। थोड़ा आगे चल कर लड़की रुक गयी और गाड़ी से पानी की बॉटल निकाल कर पानी पीने लगी।

उसने हांफते हुए कहा ''आप चलते रहिए सीधे। मैं आती हूं।''

लड़की की सांसें चढ़ रही थीं पर उस पर एक नजर डाल कर आदमी बढ़ता गया। चाल जरूर उसने धीमी कर ली। लड़की ने तेज चल कर बीच में आयी दूरी को पाट लिया। कुछ आगे चलने के बाद लड़की के तेज सांसों की आवाज फिर से आने लगी।

आदमी ने कहा ''लाइए। अब मैं ले चलता हूं।''

''शुक्रिया।'' लड़की ने तेज स्वर में कहा ''पहुंच गये।''

वे एक कॉलोनी में पहुंच गये जिसमें प्लॉटिंग की गयी थी और उस पर स्वतंत्र बंगले बने थे। एक बंगले के लॉन के बाहर लड़की ने गाड़ी लगा दी।

आदमी लड़की के पीछे पीछे लॉन में दाखिल हुआ।

वहां तीन कुर्सियां खाली थीं। एक कुर्सी पर एक बूढ़ा आदमी बैठा था। लड़की ने बूढ़े पर नजर पड़ते ही अपना दाहिना हाथ हिलाया और उसके बगल की खाली कुर्सी पर बैठ गयी। आदमी लड़की के बगल में बैठ गया। बूढ़े ने आदमी की तरफ नजर उठा कर भी नहीं देखा। उसका सारा ध्यान लड़की की तरफ था।

''मैं ग्राहक लेकर आयी हूं।'' लड़की ने एक बेशर्म दलाल की तरह कहा। उसके चेहरे पर

गजब का आत्मविश्वास था।

बूढ़े ने पीछे खड़े घर को आंखें नचा कर देखा। कोठे की उमरदराज मालकिन की तरह, जो अपने निहारने के अंदाज से अपने सामान की कीमत बढ़ाने का प्रयास करती है। आदमी ने बूढ़े की पुतलियों का पीछा करते हुए घर को नजर भर देखा।

''इतने दिन कहां रहीं?'' बूढ़े की न तो सम्भावित ग्राहक में कोई दिलचस्पी थी न सौदे में।

लड़की आदमी का चेहरा देखने लगी और उसने गहरी अदा से कहा ''मसरूफ थी।''

आदमी को इन दोनों के संवाद घनघोर नाटकीय लगे और वह एक दर्शक की तरह सामने चलते इस दृश्य में दिलचस्पी तलाशने लगा।

''कॉफी मंगवाऊं क्या?'' बूढ़े ने पूछा।

लड़की ने अचकचाने का अभिनय किया ''कॉफी? यहां!''

''यहां मंगवा नहीं सकता पर मंगवाने की इच्छा तो जाहिर कर सकता हूं।''

लड़की ने पैंतरा बदला अचानक।

''ओह! मैंने तो इनसे आपको मिलवाया ही नहीं।''

आदमी चौंक गया क्योंकि उसे अप्रत्याशित रूप से दृश्य में खींच लिया गया था।

''मिलवा चुकीं आप! आपने कहा था कि आप ग्राहक लेकर आयी हैं।'' आदमी ने कहा।

''पर मैं इनसे आपको क्या मिलवा सकती हूं।'' लड़की अपनी रौ में थी ''जब मैं खुद नहीं जानती कुछ।''

आखिरी हिस्सा उसने बुदबुदा कर पूरा किया।

''आप दोनों खुद ही मिल लें।'' लड़की ने कहा और उठ खड़ी हुई जाने के लिए।

''रुकिये मिस सक्सेना। मैं आप दोनों को एक साथ मिलवाना चाहूंगा अपने आप से।''

बूढ़ा अभी भी आदमी की तरफ न देख कर जमीन की घास की तरफ देख रहा था। लड़की ने भौंहें उचकायीं और कुर्सी को सख्ती से पीछे खींच कर बैठ गयी।

''शुरू कीजिए।''

आदमी मुंह खोलता इसके पहले बूढ़े ने बोलना शुरू किया।

''मैं गिरीश अग्निहोत्री। समाजशास्त्री हूं। उसके पहले प्राध्यापक भी था। दसेक साल हुए रिटायर कर गया। कुछ किताबें भी लिखीं। दो बेटे हैं। दोनों जर्मनी में सेटल हो गये। पत्नी गुजर चुकी हैं। यही घर सम्पत्ति है। इसे बेच कर जर्मनी चला जाना चाहता हूं... बच्चों के पास।''

बूढ़े ने घास से बॉटल उठायी और पानी पीया।

''अभी जो सब कहा मैंने वे बातें कॉमन हो सकती हैं अगर मैं दस लोगों से अपने ऊपर निबंध लिखने को कहूं तो। पर अगर मुझसे कहा जाये लेख लिखने को अपने ऊपर... अपने मकसद के ऊपर तो मैं इतनी पंक्तियां खर्च नहीं करूंगा। सिर्फ दो वाक्य में कहूंगा ''मुझे सिर्फ कीमत चाहिए। और यह कीमत पैसों में ही हो जरूरी नहीं।'' बूढ़े ने पहली बार आदमी की आंखों में देखा।

''अगर आपने दूसरी पंक्ति नहीं कही होती तो मैं मानता कि मिस सक्सेना की खोज मुकम्मल है।''

''आपके पास बहुत पैसा है?'' लड़की ने पूछा।

जीवन में पहली बार ऐसा हुआ कि आदमी ने इस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर नहीं दिया। ये बात और थी कि ऐसा प्रश्न उससे किया ही पहली बार गया था। उसने नजरें घुमा लीं।

''बताइए न! आपके पास बहुत पैसा है?''

आदमी ने नजरें नहीं फेरीं।

''इतना पैसा है कि मेरी सारी कलाकृतियों को खरीद चुकने के बाद भी बचा रह गया।'' वह फुंफकार उठी आक्रोश से।

''जब आपने कहा कि आप ग्राहक लेकर आयी हैं तो मुझे लगा आप मेरे घर के खरीददार की बात कर रही हैं। ...आपने अपनी मूर्तियों के ग्राहक की बात की थी यह मैं समझ नहीं पाया।''

''मैंने आपके घर के संदर्भ में ही वह कहा था।'' लड़की ने संयत स्वर में बूढ़े को जवाब दिया।

आदमी के पास पर्याप्त कारण थे अपने को विजातीय महसूस करने के पर वह अपनी जगह बगैर हिचकिचाहट बैठा रहा।

''आप घर देखना चाहेंगे?'' बूढ़े ने आदमी से पूछा।

''नहीं। यह जानना चाहूंगा कि अगर मुझ पर लेख लिखने को कहा जाये तो आप क्या लिखेंगे?'' जवाब आदमी ने बूढ़े को दिया था पर नजरें उसकी सवाल बन कर लड़की पर टिकी रहीं।

बूढ़ा हंसा ''मैं लिखूंगा कि आपके पास बहुत पैसा है और आप उन पैसों को दुनिया की अनमोल चीजें खरीदने के योग्य बनाना चाहते हैं।''

''आपको अवश्य ही निबंध में पास मार्क्स तक नहीं मिल पाते होंगे।'' लड़की ने बगैर उन दोनों की तरफ देखते हुए बूढ़े के जवाब में कहा।

''मिस सक्सेना। मैं मानता हूं कि आप निश्चय ही जिन्दगी की एक कड़ी परीक्षक होंगी पर एक कड़ा परीक्षक हमेशा ही औचित्यपूर्ण निर्णय ले, यह आवश्यक नहीं।'' आदमी ने कहा।

''चुनाव अगर औचित्य और ईमानदारी में हो तो मैं हमेशा ही बाद वाले को चुनूंगी।'' लड़की की ग्रीवा तन गयी।

''ईमानदारी!'' आदमी के होंठ व्यंग्य से वक्र हो गये।

''आश्चर्य है कि आपने ईमानदारी को चुनने की बात की। मेरे अनुभव में तो जब भी सामने वाला ईमान का रास्ता पकड़ना चाहता है आप उसे बेईमानी की पटरी पर उतार देती हैं।''

''लगता है आप दोनों एक दूसरे से ज्यादा परिचित हैं।'' बूढ़े ने कहा।

''नहीं मैं आपके बारे में ज्यादा जानती हूं।'' लड़की ने रुखाई से कहा।

''किसी के बारे में ज्यादा जानने और किसी को ज्यादा जानने में भयानक अंतर है।'' बूढ़े ने संजीदगी से कहा। उसके हाथ अपनी जेब में गये और अगले पल उसने उसमें से कुछ निकालते हुए लड़की से कहा ''लीजिए यह मैं आपके लिए लाया था जर्मनी से।''

वह सिल्वर चेन की एक पतली घड़ी थी।

''शुक्रिया। बहुत अच्छा।'' लड़की ने कहा और अपनी कलाई में बांध लिया। एक घड़ी पहले से वहां बंधी थी।

''यह मेरे लिए एक अच्छा तोहफा है। मैं इंतजार करने का सलीका सीखना चाहती हूं ताकि वक्त मेरे लिए कभी बोझ नहीं बने।''

''आइए घर देखते है।'' बूढ़ा उठ खड़ा हुआ। बाकी के दो लोग भी उठ गये उसके पीछे पीछे। लॉन को पार कर वे घर के भीतर दाखिल हुए। बूढ़ा आगे आगे, फिर लड़की और आखिर में आदमी। बूढ़े को इस बार घर में घुसते ही महसूस हुआ कि वह बहुत जल्द इस घर से बतौर मालिक विलगने वाला है। लड़की सोच रही थी कि अब जबकि वह आदमी के आगे चल रही थी तो आदमी की आंखों से कैसे देख पायेगी उस घर को! आदमी को न तो कुछ महसूस हुआ न उसने कुछ सोचा।

वह अपने आगे चल रही लड़की के तलुवों और चप्पल के बीच के तारतम्य को देख रहा था। लड़की जैसे ही आगे बढ़ने को कदम बढ़ाना चाहती, तलुवे चप्पल का मोह छोड़ अलग जाते थे ऊपर की तरफ और फिर जब एड़ी जमीन पर पड़ती तो दोनों एकसार हो जाते। यानी कि मिलने की आवश्यक शर्त बिछुड़ना था। जब कभी लड़की रुक रुक कर कुछ देखने लगती, आदमी की सांसें भी थम जातीं। वह शिद्दत से चाहने लगा था कि लड़की चलती रहे अपनी धुन में बेखबर... घर के इस कोने से उस कोने तक लगातार। उसके आगे आगे।

लड़की दो मर्तबा देख चुकी थी पीछे मुड़ कर आदमी की खामोशी का भेद जानने की गरज से। दोनों बार उसने लक्ष्य किया कि आदमी उसके पदचिह्नों को देख रहा था।

''फटी एड़ियां पहले कभी नहीं देखीं क्या?''

आदमी इस व्यवधान से बौखला गया।

''क्या चुपचाप चलती नहीं रह सकतीं आप?''

लड़की ने अविश्वसनीय आज्ञाकारिता का परिचय दिया और आदमी के आगे चलती रही लगातार बगैर रुके। पर उसकी इस सजग यंत्रवत चाल ने दृश्य की सुंदरता और पाकीजगी को नष्ट कर दिया और आदमी को बहुत झुंझलाहट हुई।

''कैसा लग रहा है आपको?'' बूढ़े ने पूछा।

''एक खराब थाप ने पूरी लय बिगाड़ दी। सुंदर नहीं बचा कुछ भी।'' आदमी ने कहा।

''आपने गौर कर लिया?'' बूढ़े ने पूछा हैरत से, घर की छत को देखते हुए।

''हां देख लिया मैंने सुंदर को असुंदर होते हुए।'' आदमी ने फर्श की ओर देखते हुए जवाब दिया।

बूढ़ा प्रसन्नता से आदमी की तरफ मुड़ा।

''तब मैंने जो पैसे बहाए जो परिवर्तन करवाए इस घर में सब सार्थक रहे! विश्वास कीजिए पहले यह घर बेइंतिहा सुरुचिपूर्ण था। एक एक ईंट में हमने अपनी कलाप्रियता छिपा दी। इतना सुंदर कि मेरी पत्नी सम्भवतः मुझसे ज्यादा प्रेम इस घर से करती थी। और वह गलत भी नहीं थी, यह मानता हूं मैं। इस घर को उस रूप में बेच भी नहीं सकता था और बेचना अनिवार्य था, कारण कि पत्नी के बाद इस घर में अकेले समय काटना सजा थी। फिर मैंने यह तरकीब निकाली कि बेचने के पहले पैसे बहा कर इसकी कलात्मकता पर भव्यता का नकाब पहना दिया जाये। और मैं उसमें सफल रहा क्योंकि आपने कुछ भी न जानते हुए भी देख लिया इस सच को।''

आदमी ने पहली बार नजर उठा कर उस घर को देखा। वह बुदबुदाया ''सुंदर के असुंदर में रूपांतरण से आत्मा भी बदल जाती है क्या?''

बूढ़े के चेहरे का रंग उतर गया एक पल। अगले ही पल उसकी आंखों में चमक आ गयी ''मैं यह घर आपको ही सौंपूंगा।''

''मैं कहूं कि घर खरीदने की मेरी कभी इच्छा थी ही नहीं तो?''

''मैं जानती थी यही होगा।'' लड़की चिल्लायी।

''आपको तो मैंने बता दिया था सामने से पर आपने उसे झूठ समझा।''

लड़की का माथा घूम गया। एक बात सच एक बात झूठ वाले खेल में आदमी ने दो वाक्य कहे थे मैं घर नहीं खरीदना चाहता और जब हम नहीं मिले उन दिनों मैंने आपको याद करने की बहुत कोशिश की। कितनी बड़ी बेवकूफ थी वह कि उसने झूठ को सच और सही को झूठ करार दिया। मूर्ख नहीं हास्यास्पद। कोई अपना इस कदर भी तमाशा बना सकता है क्या? पहली बात को वह झूठ समझ बैठी इससे कष्टप्रद कि दूसरी बात को उसने सच समझ लिया। उसकी आंखों में आंसू आ गये।

''मिस्टर अग्निहोत्री। मैं एक बड़ा बिल्डर हूं। मुझ पर वारंट जारी है और मैं भूमिगत हूं अभी। अभियोग यह है कि मेरी बनायी हुई इमारत में मिलावट काफी थी और एक हिस्सा गिर जाने से चार मजदूर अपने कामिल अंग गवां बैठे। आप सोच रहे होंगे कि मैं यह सब क्यों बता रहा हूं पर मिस सक्सेना।'' वह लड़की की ओर मुड़ा ''आपके आंसुओं के अनुपात में मैं अपने आप को जलील करना चाहता हूं।''

लड़की की आंखों में अविश्वसनीयता की सिलवटें थीं। वह बुदबुदायी ''अब देर हो चुकी। इस ईमानदारी का अब क्या औचित्य? ये बातें पहले भी बतायी जा सकती थीं।''

''अभी अभी आपने बताया कि औचित्य और ईमानदारी में से आप किसे चुनेंगी।''

लड़की झटके से मुड़ी और लगभग दौड़ती हुई निकल गयी घर से। बूढ़ा भी उसके पीछे गया। आदमी बचा रह गया अकेला। वह घर के भीतर घूमने लगा। उसकी दिलचस्पी अकस्मात जाग गयी घर में। वह घूमता रहा देर तक। बूढ़ा जिस चीज को नष्ट कर पाने का मुगालता पाले बैठा था, वह चीज दबा दी गयी थी बेशक, पर उसके झांकते अक्स की मौजूदगी से इंकार नहीं किया जा सकता है। घर में खिड़की और दरवाजों की उपस्थिति ऐसी थी कि सूरज की किरणों को हर कोण के कटाव से महसूस किया जा सके। संगमरमरी फर्श पर किरणों के जोड़ घटाव का साक्षी बनता वह एक किनारे के कमरे में पहुंचा। उस कमरे में बाकी घर की तुलना में रोशनी की आवाजाही कम थी पर ऐसी चीज थी जिसे किसी भी घर में देखे अरसा हो चुका था उसे। उस कमरे की पूर्वी दीवार पर ऊपर की तरफ बीचोंबीच एक छोटा सा रोशनदान था। आदमी रोशनदान के सामने की दीवार में उस जगह लग कर खड़ा हो गया जहां कि सूर्य की पहली किरण के आकर गिरने की कल्पना की आदमी ने।

जैसे ही वह उस जगह जाकर खड़ा हुआ उसे वह कमरा कालकोठरी सा प्रतीत होने लगा। उसका अपना सम्भावित भविष्य। वह वहीं दीवार से टिका... बैठ गया धीरे धीरे। क्यों थी मन में ऐसी शंकाएं जबकि पैसा इतना जमा कर चुका था वह कि कानून के लम्बे हाथों को गिरेबान तक बढ़ने की बजाय नोट गिनने के काम में व्यस्त किया जा सके। वह चाहता तो चुटकियों में उस घर को खरीद लेता। नहीं चाहता तो आराम से बाहर निकल चुके दो व्यक्तियों से विदा लेकर या बगैर विदा लिए ही निकल सकता था उस स्थिति से। किसी किस्म का बंधन नहीं था उसके इर्दगिर्द। फिर कैसा था यह असमंजस, द्वंद्व, संशय... सम्भवतः ग्लानि भी। क्या आवश्यकता थी उसे अपना सच उन दो लगभग अजनबी व्यक्तियों को बता देने की, जबकि वक्त ऐसा नाजुक था कि उसकी रिहाइश का पता तक गुप्त रखा जा रहा था। ऐसे में बगैर सोचे विचारे इतना बड़ा खतरा लेना कितना जोखिम भरा साबित हो सकता था। एकांत के पलों में ऐसे ख्याल, ओवर एक्टिंग से उसकी सोच को वश में करने का प्रयास करने लगे। पर एक गहरी तसल्ली और उदासीनता थी आदमी के भीतर कि वह निस्पृह भाव से बैठा ख्वाबों की आवाजाही को महसूसता रहा देर तक।

दरवाजे के बीचोंबीच बूढ़ा आकर खड़ा हो गया। वह आशंका से भरा आदमी को देख रहा था। फिर उसकी नजर रोशनदान पर गयी और उसके चेहरे के भाव बदल गये तुरंत। वह अविश्वसनीयता से कुछ पल आदमी को देखता रहा। फिर उसके चेहरे पर गहरा संतोष छा गया।

बूढ़े ने कहा ''आपने बैठने के लिए सबसे उपयुक्त जगह तलाश ही ली। पर आइये अभी बाहर चलें।''

आदमी ने बगैर प्रतिवाद, दीवार का सहारा लेकर उठा दिया खुद को। दोनों बाहर आ गये। लड़की तन कर बैठी थी। तुनक कर बैठे बच्चे के समान। वे दोनों भी बैठ गये।

''आप जिस तेजी से निकली थीं, मैंने सोचा नहीं था कि इतनी कम दूरी तय कर के ही रुक

जायेंगी।'' आदमी ने कहा

''मजाक करने की हैसियत खो चुके हैं आप।''

''आपकी कलाई पर दो दो घड़ियां बंधी हैं मिस सक्सेना। दोनों यकीनन, कुछ हेरफेर से ही सही... अलग अलग वक्त बता रही होंगी। एक ही समय में इन दो घड़ियों के अलग अलग सच को साध रखा है आपने। फिर उन वाक्यों के बोले जाने के पहले और बाद के मेरे दो अलहदा सत्य को नहीं साध सकतीं आप ऐसा अविश्वास आप पर मैं क्यों करूं!''

चुप्पी पसरी रही आगे। फिर आदमी ने कहा ''और रहा देर से या अब यह सब बताने का सवाल तो आपने ही कहा था कि जिस बात से सामने वाले को फर्क नहीं पड़ता उसे न बताया जाये तो भी कोई हर्ज नहीं।''

''फर्क पड़ता कि नहीं पड़ता इसका निर्णय आपने कैसे लिया?''

''मैं यकीन के साथ कह सकता हूं मिस सक्सेना।'' आदमी की आंखें शांत पर बेधक थीं ''कि आप यह सब जानने के बाद भी वही सब महसूस कर रही हैं मेरे लिए जो कुछ घड़ी पहले तक महसूस कर रही थीं... या फिर अभी कर रही हैं। इसलिए फर्क नहीं पड़ता यह तय था।''

लड़की का चेहरा लाल पड़ गया। क्रोध, अपमान लज्जा... तीनों भावनाएं उपस्थित हो गयीं इस असामंजस्य में कि लड़की को इनमें से किसी की भी जरूरत पड़ सकती थी। पर लड़की ने माथे के आगे तलहथी की आड़ लगा कर धूप से बचने का अभिनय कर सूरज की रोशनी को चेहरे की लाली का कारण घोषित कर दिया और तीनों भावों को दरकिनार होना पड़ा।

बूढ़े की उपस्थिति फीकी पड़ चुकी थी और उसने भी जिम्मेदार भाव से इस फीकेपन को अपना लिया। अपनी पहल पर वह एक छतरीदार गोलमेज में तबदील हो उपस्थित हो गया आदमी और लड़की के बीचोंबीच। उसकी इस प्रत्युत्पन्नमति से दृश्य में प्राण आ गया। लड़की का चेहरा धूप से बच गया साथ ही आदमी और लड़की को एकांत भी मिल गया।

''आपके पैर कांप रहे हैं।''

मंच की सज्जा में इस परिवर्तन के बाद लड़की ने अपने आप को एकदम अकेला महसूस किया और वह दुपट्टे में मुंह छिपा कर फफक पड़ी।

आदमी बुत बना बैठा रहा। कर भी क्या सकता था वह! लड़की को भी अहसास था कि कुछ करने नहीं जा रहा था आदमी। इसलिए थोड़ी देर सिसक चुकने के बाद लड़की ने स्वयं ही दुपट्टे से अपना मुंह पोंछा और बैठ गयी वापस सिर झुका कर।

आदमी ने धीमे स्वर मे पूछा ''आपको कौन सी बात बुरी लगी असलियत या कि असलियत बताने में की गयी तथाकथित देरी?''

''कुछ नहीं। कुछ भी नहीं। बुरा यह लगा कि उस सच झूठ के खेल में झूठी बात को सच मान लिया मैंने।''

आदमी मौन रहा कुछ पल फिर उसने कहा ''मैंने कहा था... मैंने आपको याद करने की कोशिश की यह बात झूठ थी और इसे सच मान लिया आपने यही बात आपको तकलीफ दे गयी? हां ये बात झूठ थी कि मैंने आपको याद करने की कोशिश की। क्योंकि कोशिश करके याद करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। सोच पर अनवरत जब किसी का कब्जा हो तो प्रयास करने की जरूरत होती है क्या! उलटे मैं तब शायद मुक्त होना चाहता था और मैंने न याद करने की भरपूर कोशिश की। सम्भवतः यह भी गलत। मुक्त कभी नहीं होना चाहा मैंने।''

''बंद कीजिए।'' लड़की लगभग गिड़गिड़ायी। फिर उसने अगले पल संयत किया अपने को।

''होंगे आप बातों के रफूगर। लच्छेदार जबान के धागे से बातों को सीने वाले। पर यह बात तार तार हो चुकी है। आपको इस बार लौट कर आना ही नहीं चाहिए था।''

''मैं कुछ महसूस करने लगा हूं।'' आदमी ने सपाट स्वर में कहा।

लड़की के होंठों पर फीकी मुस्कान खेल गयी ''आपका महसूस करना ही खबर है। लोगों के हाथ पैर चले जाते हैं यहां... कमाई का जरिया खो जाता... और बात रफादफा हो जाती है।''

आदमी को लगा कि अभी अभी उसके पैर जहां थे, उस जमीन का कोना भहरा कर गिर चुका नीचे।

लड़की का चेहरा सख्त हो गया ''अगर मैं आपके यहां होने की सूचना पुलिस को दे दूं तो?''

''मैं फिर भी बच निकलूंगा मिस सक्सेना।'' आदमी ने बुझी हुई आवाज में कहा।

''बच तो जायेंगे आप निःसंदेह। पर ईंट मिट्टी के बने घरों में आत्मा ढूंढ़ने का स्वांग करने वाले इंसान के भीतर भी तो कोई आत्मा होगी कहीं। उस पर पड़े हुए बोझ से किस विधि निजात पायेंगे आप?''

''मुझे तो लगता है मेरी आत्मा से ज्यादा बोझ आपके मन पर पड़ गया है।'' एक लम्बी सांस लेकर आदमी ने अपना दाहिना हाथ बढ़ाते हुए कहा ''इन उंगलियों में से किसी एक को चुनिए।''

लड़की ने कोई प्रतिक्रिया न दिखायी।

''चुनिए न।''

लड़की ने अपनी तर्जनी निकाल कर आदमी की तर्जनी की ओर इशारा किया।

आदमी ने दाहिने हाथ की पांचों उंगलियों पर बायीं हथेली का आवरण छिपा दिया, इस तरह कि उंगलियों के ऊपरी सिरे को देखा जा सकता था केवल।

''अब इनमें से अपनी चुनी हुई ऊंगली चुनिए।''

लड़की आदमी के यह कहने के पहले ही जान चुकी थी, हाथों की भंगिमा से, कि उसे क्या करना था। वह हिचकिचायी। बात जिस गम्भीर मुकाम पर थी उससे आगे यह सब खेल कौतुक बचकाना था। फिर भी उसने अपने पर्स से एक कलम निकाली और हिचकते हुए आदमी की एक उंगली पर निशान बना दिया। आदमी ने बायीं हथेली हटा ली। दाहिने की उंगलियां छितरा दी गयीं। लड़की की कलम का नीला निशान आदमी की अनामिका पर लगा था।

''आपने एक अकेले सच को चुना। फिर जब वही सच झुंड में था तब आपके लिए कोई दूसरा चेहरा सच बन बैठा और उस पहले वाले ने अपना तेज खो दिया। यानी किसी चीज को अकेला होने पर जैसा देख पाती हैं आप, आवश्यक नहीं कि उसका प्रभाव दूसरी चीजों से घिरा होने पर भी वैसा ही रहे। यही बात उन चीजों पर भी लागू होती है जो बुरी मानी जाती हैं। एक पहलू जो बुरा है वह दूसरी घटनाओं के साथ लग कर जब सामने आता है तो सम्भवतः अपनी कलुषता गंवा चुका होता है।''

अचानक से आदमी के चेहरे पर मुस्कान खेल गयी। उसने उंगलियों को लक्ष्य करके कहा ''उम्मीद करता हूं आपकी स्याही का रंग आपके कपड़ों के रंग जैसा कच्चा न हो।''

अगले ही पल वह संजीदा हो गया और अपनी दाहिनी हथेली को गोद से थोड़ा ऊपर तक उठा कर बुदबुदाया ''यह निशान जल्दी न जाये तो अच्छा।''

''आप ऊपरी आवरण के कच्चेपन में उलझे हैं और मैं भीतरी रंग के पक्केपन की दरियाफ्त करना चाह रही हूं... यही अंतर है।''

दोनों देर तक खामोश रहे।

''आपको कभी गिल्ट नहीं होता?''

''मैंने सोचा नहीं।''

''रातों को बेचैनी नहीं होती?''

''बेचैनी का रात से क्या सम्बंध? दिन में भी हो सकती है।''

''आगे आपने क्या सोचा है?''

''यह घर मैं खरीद लूंगा मिस सक्सेना।''

''भविष्य के बारे में क्या सोचा है?'' लड़की झुंझलायी।

''यही मुस्तकबिल बन सकता है।'' आदमी ने गहरी सांस लेकर घर की ओर देखा।

''जो पाप आप करते आये हैं, उसके बारे में क्या सोचा?''

''आप यह कहलवाना चाहती हैं कि मैं अपना रास्ता बदल लूंगा... प्रायश्चित करूंगा... शुद्धिकरण करूंगा... सजा काटूंगा आदि आदि?''

''कुछ कहलवाना नहीं चाह रही मैं। आपके महान विचार सुनना चाह रही हूं।''

''आप ऐसा चाहती हैं। अगर मैं आपकी चाहत में हामी भरता जाऊं तो इस बात के क्या मायने? यह सच है कि मैंने जब भी कल्पना करने की कोशिश की कि आपकी क्या प्रतिक्रिया होगी ये बातें जानने के बाद तो मैं दहल गया। और आज अचानक कह गया मैं सब कुछ सहजता से। यह सब सोच समझ कर नहीं हुआ।''

''आगे?''

''आगे अब सब बातों का जवाब एक है। उस दिन विदा लेने के पहले आपने जो सवाल पूछे और जिनके जवाब देने का मौका मुझे नहीं मिला... उन तमाम सवालों का बस एक उत्तर है।''

''मुझे वह उत्तर नहीं सुनना।''

''सुन नहीं सकतीं पर उत्तर दे तो सकती हैं। कह तो सकती हैं अपनी जबान से।''

''ये बातें किल्कुल झूठ हैं। आपको मेरी... किसी की कोई परवाह नहीं है।''

आदमी चुप हो गया। लड़की को उसका चुप होना अच्छा नहीं लगा। उसने चाहा कि आदमी अपना पक्ष रखे और अपने पक्ष में लड़की को राजी कर ले। पर उसका राजी हो पाना कैसे सम्भव था! अजीब गड्डमड्ड सी स्थिति थी। उसने थोड़ी देर पहले कही अपनी बात को फिर से दोहराया।

''आप मेरे बुलावे पर आये ही क्यों?''

दरअसल इससे मिलते जुलते सवाल पर ही आदमी उस जवाब तक पहुंचा था पूर्व में जिसे वह सुनना चाह रही थी। इस मर्तबा आदमी पलट गया और उसने कहा ''इतने सबके बाद भी आपने मुझे बुलाया तो वह घर मैं जरूर देखना चाहता था मिस सक्सेना। घरों से मुझे लगाव है।''

लड़की का चेहरा क्रोध से तमतमा गया। उसने दूसरा रास्ता अपनाया अपनी बात सुनने का।

''आपने क्यों खरीदी मेरी बनायी चीजें? उनसे भी लगाव था क्या?''

''मैं उन्हें हमेशा अपने साथ रखूंगा। एक जोड़ी कछुवे, राखदान, हाथी, एक ऊंट, ढोल बजाता एक आदमी, नथ वाली एक स्त्री...। मेरा अंत ही उन्हें अलग कर सकेगा मुझसे।''

लड़की को यह बात भली लगी। पर वह इसे संभाल नहीं पायी। उसने मुंह फेर लिया।

''मैं आपके बगैर नहीं रहना चाहता।''

लड़की जिस बात को बोले जाते वक्त आदमी को देखने की चाह रखती थी शिद्दत से, वह बात बोली जा चुकी थी। पर ऐसा क्यों था कि बात के बोले जा चुकने के बाद भी लड़की गरदन मोड़ कर आदमी की तरफ न देख पायी।

''मैं चाहने लगा हूं आपको।''

''क्या आप मेरी लिखावट पहचान सकते हैं?''

आदमी ने 'न' में सिर डुलाया।

''मैं भी नहीं पहचान सकती आपकी लिखावट। हम दोनों एक दूसरे को जानते ही कितना हैं!''

''लिखावट नहीं पहचान सकता पर मैं ये जानता हूं आप लिखने क्या वाली हैं। इतना पर्याप्त नहीं... इसलिए और जानना चाहता हूं आपको।''

लड़की पूरे ताव में पलटी ''पर आपको इसका कोई अधिकार नहीं है। आप अपराधी हैं। बेईमान हैं। आपको जेल में होना चाहिए।''

''पर मुझे चाहने का अधिकार है मिस सक्सेना। भले बदले में चाहे जाने का हक न हो।''

लड़की का चेहरा पिघल गया। उसने अपने आप को बोधा ''मुझे यकीन नहीं होता कि आप...।''

अगले पल वह फुंफकारी ''नहीं मुझे शुरू से पता था कि आप अच्छे आदमी नहीं हैं।''

''आपको इस तरह पीड़ा में देख कर मुझे तकलीफ हो रही है।''

''तकलीफ तो आपको अपने आप पर होनी चाहिए अपने किये पर होनी चाहिए।''

''उसके लिए तो उम्र पड़ी है। फिलहाल मैं आहत हूं इस अहसास के लिए कि आपने मेरे लिए अपने आप को गिराया। बार बार गिराया... जैसा कि आपने उस रोज कहा था।''

''मैं गिरूंगी, उठूंगी... फिर और जोर से गिर जाऊंगी... यह मेरा निजी मामला है।''

लड़की की बात खत्म होती कि बीच में ही छतरी वाली मेज में कम्पन हुआ और बूढ़ा खांसने लगा। उसकी खांसी की आवाज ने उसके छद्म रूप को अनावृत कर दिया। दृश्य का पूरा संतुलन बिगड़ गया। लड़की और आदमी ने एक दूसरे को नयी रोशनी में देखा। लड़की ने नीचे से उठा कर पानी की बॉटल बूढ़े की ओर बढ़ा दी। बूढ़े की खांसी काबू में आ गयी। उसे शर्मिन्दगी महसूस हुई और उसने वापस अपने आप को गैर मौजूद कर छतरी के भीतर समा जाने का प्रयास किया। पर एक बार बिगड़ चुके सुरों को साध पाना सम्भव न था उस वक्त।

''लगता है यह धूप अब आपके लिए ठीक नहीं।'' लड़की ने बूढ़े से कहा।

''आइए भीतर ही चलें।'' बूढ़े ने उठते हुए कहा।

''भीतर?'' लड़की ने पूछा।

''हमने पूरी तरह घर को देखा कहां! बात बीच में ही रह गयी थी, जैसे अभी रह गयी।''

आदमी उठ खड़ा हुआ। आखिर में लड़की को भी उठना पड़ा। तीनों गये भीतर। क्रम अभी भी वही था। बूढ़ा, लड़की फिर आदमी। अबकि आदमी ने देखा कोई सम्बंध बन नहीं पा रहा था लड़की के तलवे और चप्पलों में। दोनों अपना अपना कर्तव्य निभा रहे थे बस। बूढ़ा सीधा उस रोशनदान वाले कमरे में जाकर खड़ा हो गया। वे दोनों भी आ गये वहां।

''एक बार बाहर जाकर हम अपनी अपनी कुर्सियां ले आयें? क्योंकि जो मैं बताने वाला हूं उसमें थोड़ा वक्त लगेगा। बैठना उचित रहेगा।''

बूढ़ा मुड़ा। वे भी। कुर्सियां लायी गयीं। बूढ़े ने अपनी कुर्सी उस जगह लगायी जहां आदमी बैठा था... दीवार के सहारे कुछ देर पहले। आदमी और लड़की उसके अगल बगल बैठे थे।

''इस जगह जहां मैं बैठा हूं बिस्तर लगा हुआ था मेरी पत्नी का।''

''इस कमरे में?'' लड़की ने पूछा। कारण स्पष्ट था। इस कमरे से ज्यादा हवादार और बड़े कमरे मौजूद थे घर में।

''हां यहीं। रोशनदान के सामने। यह कमरा उसे पसंद था। हम दोनों को। शैय्या नहीं। मृत्युशैय्या थी उसकी यहां। हम जानते थे कि वह ज्यादा समय साथ नहीं रहने वाली। पत्नी की पूरी दिनचर्या यहीं लगे बिस्तर के इर्दगिर्द सीमित थी। मैं अक्सर उसके पास वहां बैठा करता था बूढ़े ने आदमी की कुर्सी की ओर इशारा किया। मैं वहां बैठता पत्नी की सुश्रूषा करते जाने का भाव लिए पर मन ही मन मैं उसके न रहने की कामना करता। कारण यह नहीं था कि वह कष्ट से मुक्त हो जाये यह इच्छा थी या कि उसकी परेशानी देखी न जाती ऐसा कुछ। कारण यह था कि मैं यह चाहता था कि वह जाये तो मैं अपनी प्रेमिका के पास लौट सकूं।''

दो लोग सन्न रह गये।

''वैसे मृत्युशैय्या पर रहते हुए बीमारी की खुनक और ऊब के सिवा कोई और शारीरिक परेशानी थी भी नहीं मेरी पत्नी को। उसके बिस्तर पर पड़ने के कुछ वर्ष पूर्व मेरा एक प्रेम सम्बंध बना था। पत्नी को खबर न थी। यहां उस जगह पर बैठ कर एक भी ऐसा क्षण न बीता जबकि मैंने पत्नी के आंखें मूंद लेने की इच्छा न की। वैसी स्थिति में उसे छोड़ कर अलग संसार नहीं बसा सकता था, न उसकी तीमारदारी से अनुपस्थित रह कर प्रेमिका के साथ वक्त ही बिता सकता था। बहुत पेशोपेश के पल थे वे। उसी स्थिति में मेरी पत्नी छह वर्षों तक घसीट ले गयी जीवन को। मैं इंतजार की सांस को उस हद तक खींच ले जाने की सामर्थ्य रखता था पर जिस स्त्री से मेरा प्रेम था, उसका धीरज चौथे साल में ही छूट गया। जब वह अलग हुई मैं पीड़ा से भर गया। किसी से बांट भी नहीं सकता था वह सब। पत्नी को लगता कि उसके मरते जाने की बात के गाढ़ेपन ने मुझे विचलित कर दिया था। वह और भी प्रेम में भर कर मुझे धैर्य देने लगती। प्रेमिका के जीवन से निकल जाने के बाद मरती पत्नी के सिरहाने उस कुर्सी पर बैठे बैठे तब मुझे किस बात की मन्नत मांगनी चाहिए यह मैं तय नहीं कर पा रहा था। इतने वर्षों तक पत्नी के न रहने की दुआ मांग चुका था शिद्दत से कि अचानक से दुआ को उलट देना नाइंसाफी होती ईश्वर के साथ। फिर?

मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मुझे प्रेम में मिले आघात से ज्यादा मन्नत में मांगी जाने वाली दुआ का विकल्प छिन जाने ने दुखी किया था। कुछ दिनों तक उसके सिरहाने मैं बगैर कुछ मांगे बैठा रहा। पर ऐसे में वहां रोज रोज बैठते हुए झुंझलाहट होने लगी थी मुझे ऐसा मैंने महसूस किया। मेरी झनक निकलती पत्नी पर ही। लिहाजा वह सहमी सहमी रहने लगी। पूर्व में मैं जब उसके मर जाने की दुआ मांगता तो इस ग्लानि को कम करने के लिए अतिरिक्त लाड़ बरसाता पत्नी पर। उन दिनों जबकि ग्लानि की वजह मिट चुकी थी उस स्नेह से भी महरूम हो गयी थी बीमार स्त्री।

उसके साथ होते इस अन्याय से बचने का एक ही रास्ता सूझा मुझे। अगर किसी एक के साथ अन्याय होना तय था तो ईश्वर ही सही। ईश्वर सह लेता अपने प्रति किया गया अन्याय। मैंने पत्नी के सिरहाने बैठ कर उसके स्वस्थ हो जाने की दुआ मांगनी शुरू की और तीन महीने के भीतर ही वह गुजर गयी।''

कमरे में थोड़ी देर खामोशी छा गयी। मालूम होता था तीनों लोगों ने सांसें लेने को भी साइलेण्ट मोड में डाल दिया था। सन्नाटा बूढ़े की धीमी आवाज से ही भंग हुआ।

''मैं एक ईमानदार अध्यापक था। नामचीन समाजशास्त्री। पर अपने मन की गहराई में उन वर्षों मैं एक गिरा हुआ इंसान था। किसी ने भी मेरे बेईमान चेहरे को नहीं देखा। आज तक मैंने किसी से ये बातें साझा नहीं कीं। और समाज ने मुझे जिस ऊंचे आसन पर बिठाया, उस पर बैठ कर मैं अपनी महानता को देखता रहा। आपने एक बार पूछा था न...।'' वह लड़की से मुखातिब हुआ ''मेरी सबसे कीमती चीज क्या है! और मैंने कहा था कि उस तक पहुंचने में माध्यम आप होंगी।

मेरी सबसे कीमती चीज वर्तमान है। ठीक अभी का पल जब मैंने अपने आप के गिरते जाने की बात कबूल ली। वह साहस पा सका कि साझा कर सकूं अपना अपराध। इस कमरे में मैंने जिन्दगी का सबसे बड़ा पाठ सीखा था। प्रेम, इंतजार और लालसा के त्रिकोन की भुजाओं के बीच झूलते हुए। आज अपने मन के पाप को उजागर करके मैंने उस घुटन से मुक्ति पा ली, जो आज तक मेरे गले में फंसी थी या कि आजादी ही दे दी उस घुटन को कि वह गरदन से ऊपर की ओर पसर कर लील जाये मेरे वजूद को।''

बूढ़े ने सिर झुका लिया। लड़की ने नजरों के एक अर्धवृत्ताकार घेरे से दोनों व्यक्तियों को देखा।

रोशनदान से होकर आती एक धुंधली सी गोल आकृति तीनों लोगों से दूर छिटकी दीवार के एक कोने पर पसरी थी। तीन इंसान अपनी अपनी चाक से मौन पर रेखाएं खींचते रहे।

तीन

बूढ़े को जीवन के अठहत्तरवें साल में शोध कार्य पर बड़ा पुरस्कार मिला था। उसने आपराधिक प्रवृति वाले इंसानों के मानसिक गठन, उनके अंतर के नजरिए और प्रेम के प्रति उनके दृष्टिकोण पर घूम घूम कर शोध किया था। कई देशों की यात्राएं की गयीं और अलग अलग लोगों के व्यवहार को परखा गया। बूढ़े की यह पुस्तक बेईमान और अपराधियों को पूर्व निर्धारित मानदंडों पर परखने की बजाये एक नयी दृष्टि देती थी उनकी प्रवृति और मानसिक बुनावट को समझने के लिए। उसके काम को देश विदेश में सराहना मिली और वह इसी पुरस्कार को लेने के लिए एक अंतराल के बाद जर्मनी से अपने देश लौटा था।

समारोह में शिरकत करने के बाद वह अपने घर भी आया। घर बिकने से रह गया था और एक ट्रस्ट को दे दिया गया था। ट्रस्ट की देखरेख में वहां एक संग्रहालय बन गया था। उस घर के बाकी कमरों में ऐतिहासिक महत्व की और अन्य कलात्मक चीजें रखी थीं। एक कमरा जो अपेक्षाकृत छोटा था और जिसमें कि एक रोशनदान था, उसके आगे 'ट्रिब्यूट टू फाउंडर' का बोर्ड लगा था। उस कमरे में कुछ भी न था, सिवाए तीन कुर्सियों के। यह घर के मालिक के विशेष आग्रह पर उसके जीवन की एक शाम को सुरक्षित रखने के लिए किया गया था। कुर्सियों की स्थिति तक भी न बदली गयी थी जरा भी।

लड़की और अपने बीच हुए दो तीन वर्ष पूर्व के संवाद के आधार पर उसने लड़की को खोज लिया। अपने संक्षिप्त पोस्टकार्ड में लड़की ने लिखा था कि वह नेत्रहीन बच्चों के एक स्कूल में मूर्तिकला सिखाती थी। मिलने का स्थान तय हुआ। बूढ़ा कई वर्षों के बाद लौटा था और शहर की चालों और ढब से वह अनजान था। फिर भी जगह उसने ही चुनी। लड़की ने कोई प्रतिवाद न किया मिलने की जगह की तफसील जानने पर।

कॉफी हाऊस की शक्ल बदल चुकी थी। उसकी ऊपरी मंजिल पर एक बार खुल चुका था और रौनक सारी उधर सिमट चुकी थी। अंधेरा कॉफी हाउस में पहले भी हुआ करता था पर अब माहौल में एक घुटापन था। बूढ़ा एक खाली मेज की तरफ बढ़ गया। वह हर चीज को पीकर जेहन में उतार लेने की तसल्ली से देख रहा था। चीजें बेशक बदल चुकी थीं पर पिछली स्मृति के उस तापमान को बदस्तूर बनाये रखा गया था कॉफी हाउस में। मालूम नहीं लड़की तापमान के उस ठंडेपन को अब भी उसी तरह खुल कर महसूस कर पाती होगी या नहीं।

बूढ़े ने गौर किया कि वह मेज भी अब खाली हो चली थी, जिस पर पिछली दफा वे बैठे

थे। बूढ़े ने बेझिझक जगह बदल ली। अभी वह तसल्ली से अपनी जगह बैठ पाता कि सामने की कुर्सी भर गयी।

बूढ़े ने देखा सामने एक स्त्री थी। उसने उन्नावी और बादामी साड़ी पहन रखी थी। उसका चेहरा भरा भरा था और जूड़े की जद से निकल कर एक लट बायीं ठोढ़ी को छू रही थी। उसके होठों पर जो मुस्कान थी, उस तरह से नहीं मुस्कराना चाह रही थी वह। यह द्वंद्व उसकी आंखों में झलक रहा था जिसकी की दरियाफ्त बूढ़े ने चश्मे के फ्रेम को ऊपर की तरफ सरका कर की। निःसंदेह सामने जो स्त्री थी वह लड़की का बेहतर संस्करण थी।

''अचानक कहां से आ गयीं आप?'' बूढ़े ने पूछा।

''मैं वहां दूर बैठी थी और मेरा सारा ध्यान इस बात पर था कि कब यह मेज खाली हो और मैं इसे आरक्षित कर सकूं... हमारे लिए। मेज खाली हुई और मैं आयी। पर आप पहले आ गये! यह बाजी भी निकल गयी मेरे हाथ से।''

बूढ़ा हंसा ''शुक्र है आपकी आवाज नहीं बदली।''

''आप बूढ़े हो गये हैं।''

बूढ़ा हंसा।

''इन दो रंगों का मेल इतना सुंदर होगा सोचा न था।'' उसने स्त्री की साड़ी की ओर इशारा किया।

''अजनबी कुल गोत्र की दो चीजों का मेल कभी कभी अद्वितीय हो ही जाता है।''

एक खामोशी की लकीर खिंच गयी हल्की।

''कॉफी नहीं मंगवायेंगे?''

स्त्री की बात पूरी होने के पहले ही बैरा कॉफी लाकर रख गया।

''ऑर्डर मैंने उसी टेबुल से दे दिया था। जैसे ही मेहमान आ जायें उनके पसंद की मात्रा में कॉफी आ जानी चाहिए ऐसा आदेश था।''

''आपको याद हैं सारी बातें... कॉफी की मात्रा...।''

''आपको भी तो याद है...।''

''मेरे पास वक्त ज्यादा है काम कम, इसलिए रियाज कर लेती हूं पुरानी यादों का।''

''स्कूल कैसा चल रहा है?''

''बहुत अच्छा।'' स्त्री के चेहरे पर चमक आ गयी ''मैं ठीक ठीक जो महसूस करती हूं मूर्तियां बनाते वक्त... वे बातें उन बच्चों तक जिस सहजता से सम्प्रेषित हो जाती हैं, वह सब दूसरी जगह सम्भव नहीं।''

स्त्री ने एक तेज घूंट भरा और अगले पल कहा ''फिर से जल गयी मैं। कॉफी से। यह एक अच्छी बात है।''

बूढ़े ने हैरत से देखा।

''मुझे लगने लगा था कि अब कोई कॉफी मुझे जलाने का ताव नहीं रखती पर दोष कॉफियों का नहीं था। मेरी जीभ ने ही तय कर रखा था कि कहां जल जाना है।''

''जाहिर है। जीभ किसकी है!''

दोनों हंस पड़े।

''हंसते वक्त आपके चेहरे की झुर्रियां हिलती हैं।''

''और आपकी आंखों में आंसू छलक आते हैं खुल कर।''

''मैं आपके लिए कुछ लाया हूं।''

''मांग लूंगी। अभी मत दिखाइए। अभी मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूं। यह सवाल इन दिनों बार बार आपसे पूछा गया होगा... फिर भी कैसा लग रहा है आपको इतना सम्मान पाकर?''

बूढ़ा मुस्कुराया ''जो जवाब मैंने लोगों को दिया वह आपको नहीं दूंगा। अच्छा किया कि आपने यह सवाल पूछा। मैं जो सच में महसूस कर पा रहा हूं उस पर उंगली रखना आवश्यक है। वह आखिरी शाम जो मैंने आपके साथ बितायी वह मेरी जिन्दगी का उरूज था। उसके बाद का सफर ढलान जैसा था। ये और बात है कि मैंने उतरते जाने के एक एक पल को गुनगुना कर जीने की कोशिश की। ये सम्मान भी उसी ढलान का एक पड़ाव। खूबसूरत पड़ाव इतना जरूर कहूंगा।'' बूढ़े की आंखें खुशी से चमकीं।

''क्या शोध के विषय को चुनने की प्रेरणा आपको हमारी आखिरी मुलाकात से ही मिली?'' स्त्री का चेहरा अबूझ हो गया। पीड़ा, तसल्ली और जिज्ञासा सब समा गये उसकी आंखों में।

''नहीं। वह शाम मूल टेक की तरह कायम रही मेरे भीतर पर शायद जिस चीज का प्रभाव ज्यादा हो उसके तले कभी कभी सोच दब जाया करती है। फिर कोई हल्की त्वरा की चीज आपके विचार को उद्वेलित कर देती है और आप खुद ब खुद एक प्रक्रिया का हिस्सा बन जाते हैं बेशक जिसकी अंतर्ध्वनि वही मूल टेक हो। ऐसा ही मेरे साथ भी हुआ। अपने अध्ययन के सिलसिले में एक रोज मैं वहां एक ऐसी स्त्री से साक्षात्कार करने गया जिसने पच्चीस से साठवें साल के बीच का जीवन कैदखाने में गुजारा था। वह कई बैंक लूट और हत्याओं की मुख्य अभियुक्त थी। अपने बातचीत के रास्ते को इतमीनान और अनौपचारिकता की पटरी पर लाने के लिए मैंने उससे कुछ सवाल किये। उसने भी मेरा पूरा सहयोग किया और कृत्रिम जवाबों से बचा ले गयी अपने को। उन हल्के क्षणों में ही मैंने उससे पूछा कि अब इतने दिनों बाद संसार में लौटने पर अगर उसके पास कुछ विकल्प हों किताबों के तो वह किसे पढ़ना चाहेगी जीवन जीने की कला से सम्बंधित किताब, आपराधिक घटनाओं पर आधारित थ्रिलर, प्रेम कहानियां, लजीज भोजनों की रेसिपी... या कुछ भी नहीं? उसने छूटते ही कहा प्रेम कहानियां। वजह मैं पूछता कि उसके पहले ही उसने कहा कि बाकी सारी चीजों के स्वाद वह चख चुकी थी सिवाए इसके। हमारी बातचीत मनचाही पटरी पर आ चुकी थी और मैं पहले से जो सवाल तैयार कर के लाया था उनमें बेधड़क प्रवेश किया जा सकता था। हो भी गये हम दाखिल पर मेरा मन वहीं अटक गया... और मैंने अपने नये शोध का विषय वहीं चुन लिया।''

कुछ देर मौन कायम रहा। फिर बूढ़े ने पूछा ''क्या आप दोनों कभी मिले नहीं फिर?''

''आपने इस सवाल को पूछने में इतनी देर लगा दी?''

बूढ़े का चेहरा लाल हो गया ''अगर बताना ठीक न लगे तो माफी चाहूंगा।''

स्त्री का चेहरा दमकने लगा उत्फुल्लता से। उसके तेज को देख कर बूढ़े ने अपनी बात का आखिरी सिरा धीमी आवाज में... लगभग बुदबुदाते हुए पूरा किया।

''मिले थे। पहली बार उस शाम के चार रोज बाद।'' रविवार था ढलती दोपहर का वक्त। मैं चादर में दुबकी ऊंघ रही थी कि कमरे के दरवाजे पर दस्तक हुई। बेढब सी थाप। मकान मालिक से लेकर दूधवाला, अखबार वाला या कोई भी लेनदार हो सकता था जो घर पर मेरी मौजूदगी की पक्की सम्भावना को सूंघ कर आया था। मैंने बाल समेटे, चादर को तहा कर एक तरफ किया, पर्स के पैसे गिने और दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खोलते ही परदे में आये उफान से अहसास हुआ कि मौसम खराब हो चुका था। पर इस अहसास को परे ढकेलते वह दाखिल हुआ। उसने मैरून शर्ट पहन रखी थी। ऊपर से ऑफ व्हाईट जैकेट भीगा हुआ। उसके कमीज का रंग निकल कर जैकेट पर चढ़ गया था... हे प्रभु!''

बूढ़े ने इशारे से और कॉफी की बावत पूछा। स्त्री ने हां में सिर डुलाया और कहना जारी रखा।

''मैं उसे घूरती... उससे दोगुनी आंखें फाड़ कर वह मुझे घूर रहा था मुझे नहीं मेरे कमरे को। मैंने अपनी नजरों से देखा तो मुझे कमरा सामान्य लगा बिल्कुल। थोड़ी बेसंभारी थी पर वैसा भी अबूझ नहीं था सब कुछ। वह बिस्तर पर बैठ गया और उसने मुझसे तौलिया मांगा।

मैं हिचकिचा गयी। तौलिया था तो, पर वह मेरा था। उस दिन सुबह नहा कर देह पोंछा था उससे। अपना जूठा किया तौलिया मैं उसे कैसे दे सकती थी? मुझे एक बेहतर विकल्प सूझा। और मैंने वहीं कुर्सी पर लटका एक सूती दुपट्टा खींच कर उसे दे दिया। वह ज्यादा नहीं भीग पाया था। वह रगड़ रगड़ कर दुपट्टे से पोंछने लगा गीलापन। मेरे इस सवाल के जवाब में कि वह भीग कैसे गया, उसने कहा कि पानी के नीचे खड़े होकर भीगने की प्रक्रिया को बेहतर समझा जा सकता था।

बहरहाल। क्या प्रयोजन था उसके आने का यह मैंने पूछ लिया। उसने कहा कि वह मुझे मूर्तियां बनाते देखना चाहता था। वह तो तौलिए से भी ज्यादा गोपनीय चीज थी। उस प्रक्रिया को उसके साथ साझा कैसे कर सकती थी मैं। मैंने इंकार में सिर डुला दिया। हालांकि मेरी मुद्रा में दृढ़ता की भारी कमी थी। उसने फिर से इसरार किया। लेकिन वह वैसा क्यों चाहता था यह मैंने पूछ लिया। उसने मेरी नकल कर दी और इंकार में सिर डुला दिया। मैंने बदले में उससे इसरार किया। फिर उसने जो वजह बतायी वह मेरे लिए अकल्पनीय थी। उसके हिसाब से जिस प्रकार प्रस्तर पर हथौड़ा मार मार कर उस प्रस्तर के भीतर से मैं प्रतिमा के अंगों को बाहर निकाल लाती थी, उसी प्रकार उसके अंतर पर पड़ी किसी थाप ने ही उसके भीतर से कुछ भावनाओं को उकेर दिया था। वह मेरे मूर्ति बनाने की प्रक्रिया को देख कर अपने भीतर के परिवर्तन को महसूस करना चाहता था। मैं निरुत्तर हो गयी। क्या करती।''

स्त्री ने दोबारा आयी कॉफी का एक बड़ा घूंट भरा।

''आपको क्या लगता है आगे क्या हुआ होगा?''

''आपने सामने वाले की इच्छा पूरी की होगी।'' बूढ़े ने कहा।

स्त्री हंसी जोर से।

''बिल्कुल नहीं। कभी नहीं। उसके उत्तर ने ही मुझे रास्ता दिखा दिया। अंतर में हुए किसी परिवर्तन की प्रक्रिया को देख लेना सृष्टि के बनाये कायदों का उल्लंघन नहीं है क्या! जिसे महसूस किया जाये उसे देखने की क्या जिद? उसने मेरी बात सरलता से मान ली। पर अगले पल ही कहा कि मैं उससे दो बातें कहूं एक सच और एक झूठ। आप ही बताइए उसने साहस कैसे किया। जिस खेल में मैं एक दफे इतनी रुस्वा हो चुकी थी वही खेल दोबारा खेल सकती थी भला! उसने कहा अगर मैं न चाहूं तो न सही। वही दो बातें कहेगा और बूझना मुझे पड़ेगा। यह तो ज्यादा बड़ा खतरा था। मैंने लपक कर स्वयं ही दो वाक्य कहने की बात मान ली। उसने ताकीद की कि खेल को गम्भीरता से खेलना था। बहरहाल मैंने दो वाक्य तलाश लिए। पहला कि उसके गीलेपन को पोंछने के लिए दुपट्टा देने में मुझे खुशी हुई। दूसरा कि दरवाजे पर जब थाप पड़ी तो मैंने उसके उस पार होने की कल्पना की थी। थोड़ा सोच कर उसने पहले को सच और दूसरे वाक्य को झूठ करार दिया। मैं मारे प्रसन्नता के उछल पड़ी। गलत था वह। दरवाजे पर हुई थाप ने सबसे पहले उसका ही स्मरण कराया था तभी सबसे पहले मैंने बाल समेटे थे। वह सच, खेल में उसे हरा पाने की प्रसन्नता में जाहिर हुआ था खुद मेरे आगे। जोश में भर कर मैंने उसे भी दो बातें कहने की अनुमति दे दी, जिसमें से सच झूठ बीनने की बारी मेरी होती।

उसने दो वाक्य मेरे सामने रखे मैं यहां इसलिए आया था कि मैं आपको मूर्तियां बनाते

देखना चाहता था। दूसरा वाक्य कि अभी जो मैंने कहा वह झूठ था। मैं समझ गयी फौरन। दूसरे वाक्य में सचाई थी। मैंने बताया और उसने मान भी लिया कि मैं सही थी। माना कि उस खेल में वह मेरा दिन था। पर सवाल तो यह उठता था कि वह आया क्यों था आखिर? पूछ लिया मैंने उससे।''

बूढ़ा उसे मंत्रमुग्ध सा देख रहा था।

''क्या आप जानते हैं फिर क्या हुआ?'' स्त्री ने पूछा।

''आपके मुंह से सुनना चाहता हूं।'' बूढ़े की आवाज में गजब का आत्मविश्वास था। स्त्री का चेहरा लाल पड़ गया।

उसने आवाज धीमी कर दी और कहा

''एक उंगली बस।''

स्त्री ने अपनी तर्जनी निकाल कर मेज पर रख दी।

''बढ़ायी उसने पूरी हथेली थी। पर मुझ तक आकर एक उंगली में सिमट गया सब। उसने बिस्तर पर रखी मेरी दाहिनी मुट्ठी के ऊपर चलायी अपनी उंगली।''

मेज पर ससरती स्त्री की तर्जनी थम गयी और उसने नजरें उठा कर बूढ़े की आंखों में देखते हुए कहा *''और फिर वह उंगली उठी और मेरी गरदन की उभरी हड्डियों पर चलने लगी। मेरी आंखें बंद हो चुकी थीं और मैं इतने मद्धिम ताल में कांप रही थी कि मेरी कंपकंपाहट को उंगलियां फिराने वाला ही महसूस कर पा रहा होगा बस। वह बुदबुदाया 'मैं दावे से कह सकता हूं कि आपको अपने शरीर का यह हिस्सा ही सबसे ज्यादा पसंद होगा। वरना अपने शरीर के किसी अंग को इतनी शिद्दत से महसूसे बगैर कोई कलाकार अपनी कृति में हूबहू उसे उतार नहीं पा सकता।' मैं उसकी हर चाल से मंत्रबिद्ध सी थी और उसकी यह बात समझने में उलझन हुई। मैंने अधमुंदी आंखों से उसे देखा और उसकी नजरों का पीछा करते हुए मैं कोने में रखी उस मूर्ति को देख पायी, जिसकी एक प्रति उसे भेंट में दे चुकी थी मैं पहले। वह समझ गया कि मैं उसकी नजरों के ठीक पीछे हूं और उसने मेरी आंखों पर छा जाते हुए कहा ''उस मूर्ति के गले के उभरे ऊबड़खाबड़ रास्ते यही हैं न! मेरे गले पर उसकी उंगलियों की चाल गहरी हो गयी और मेरी आंखें वापस मुंद गयीं। सम्भवतः वह उत्तर था मेरा। उसने उस उभरे बोन लाइन के नीचे दाहिनी तरफ की तिल के पास अपने अंगूठे का नाखून धंसा दिया।''*

स्त्री ने देखा बूढ़े का चेहरा कांपा। स्त्री ने नजरें झुका लीं। उसके प्याले में कॉफी बची थी पर उसकी खुशबू और ताव उसका साथ छोड़ चुकी थी। स्त्री ने जोर से उस प्याले को पकड़ लिया अपनी दोनों हथेलियों से। उसे गरमी देने की गरज से। उसकी सांसों को लौटाने के प्रयास में। वह कुछ पल प्याले को थामे बुदबुदाती रही कुछ और बूढ़े ने हैरत से देखा कि कुछ समय पहले तक बेजान पड़े प्याले से भाप की एक लकीर उठी ऊपर की तरफ। स्त्री की आंखों में चमक आ गयी और उसने धीरे धीरे प्याले पर से अपने हाथ का दवाब कम कर दिया।

प्याला दोबारा से जीवन की धुन में लौट आया था और स्त्री ने उसे होठों से लगा कर बात का सिरा थाम लिया

''नाखून से खुरच कर उसने उस जगह पर कुछ उकेर दिया। बाद में जब आईने में मैंने उस निशान को निहारा तो वह मुझे उसके हस्ताक्षर सा प्रतीत हुआ। बहरहाल उसने अपने हाथ मुझ पर से खींच लिए वापस और कहा कि अगर कभी वह मेरे सामने जीवन भर साथ चलने का प्रस्ताव दे तो मैं उसे हरगिज न मानूं। मेरे कारण पूछने के पहले ही उसने कहा कि अगर हम साथ चलते तो सम्भव था वह दृश्य हमारे बीच भी।''

स्त्री ने बूढ़े को देखा। वापस।

''वही दृश्य जो आपने हमें सुनाया था उस कमरे में। आपके जीवन का वह सीन हमारे मध्य भी सम्भव था यह उसने स्वयं कहा मुझसे। उसने कहा कि अगर मैं मृत्युशैय्या पर होती तो मुमकिन था कि वह मेरे सिरहाने बैठा मेरे मरने की कामना करता ताकि मेरे न रहने के बाद वह वापस लौट सके अपनी बेईमान दुनिया में। आपके जीवन में घटित उस दृश्य को भविष्य की कल्पनाओं में मेरे साथ हूबहू जीने लगा था वह। मैं कुछ कहती इसके पहले ही वह मेरे बिस्तर से उठ गया और उसने अपने बैठने से पड़ आयी सिलवटों को चादर से दूर किया और वह जाने लगा कमरे से।

मैंने उसकी कलाई को अपनी पांचों उंगलियों से पकड़ लिया। वह रुका। मुड़ा नहीं। मैं उसके कंधे के ठीक पीछे तक बढ़ आयी चल कर। एक सूत भर का फासला रह गया जबकि मैंने उसकी कलाई छोड़ दी। उसने ठान लिया था कि वह मुझे पूरी तरह बेपर्दा करके ही छोड़ेगा। तभी तो वह बुत की तरह खड़ा रहा और पहल की सारी जिम्मेदारी मेरे माथे पर डाल दी गयी। झुंझलाहट तो हुई मुझे पर उतनी नहीं कि उसे जाहिर करके वक्त का एक रेशा भी बरबाद किया जाये। मैं हलका आगे की तरफ झुकी और उसके बाद जब मैंने पलकें उठायीं तो वे उसके कान के निचले सिरे से उलझ गयीं। यह स्पर्श उसे तत्काल मेरी तरफ मोड़ देने में सफल हो गया।

हम इस तरह खड़े थे कि मेरे चेहरे का आधा हिस्सा और उसके चेहरे का आधा हिस्सा एकसार हो गया। इस तरह कि मेरे कान की ऊपरी फुनगी पर उसकी सांसों का साम्राज्य था और मेरे माथे के बीचोंबीच उसकी कनपटी के बाल गिर रहे थे।''

बूढ़े को ठीक अपनी स्थिति समझाने के प्रयास में स्त्री के चेहरे पर लाली छा गयी और वह एक क्षण ठिठक गयी।

अगले पल उसने फिर से अपने को अतीत से जोड़ दिया धीमे स्वर में।

''उस स्थिति में हम एक लम्बे समय तक कायम रह सकते थे बगैर थके। कम से कम अपने डटे रहने की बात तो मैं दावे से कह सकती थी। इसके पहले कि मैं उसके बारे में भी आगे बढ़ चढ़ कर दावे करने लगती, उसके शरीर में हल्का कम्पन हुआ और अपने स्थान में थोड़ा हेरफेर करके उसने मेरी भौंहों के बीच अपने होंठ सटा दिये। क्षण भर की छुअन रही होगी बस। फिर वह छिटक कर अलग खड़ा था और मैं ललाट के उस हिस्से को तलहथी से ढांप कर उजबक की तरह खड़ी हो गयी।

'थोड़ा रुक जाइये।' मैंने कहा।

वह बैठ गया। हम चुपचाप बैठे रहे। बगैर कुछ बोले। मेरी तलहथी बार बार अपने माथे तक जाकर उसकी शर्मिन्दगी को कोंचती रही।

उसने कहा 'आपको मुझे नहीं रोकना चाहिए था सम्भवतः।''मैंने उसे किस तरह रोका था... वह यह याद दिला कर अपनी लज्जा कम करना चाहता था।

मैंने पूछा 'क्यों?'

उसने कहा 'तभी मेरा जाना स्वाभाविक सा था। अब मैं जाने की भूमिका कैसे बनाऊं!'

'ठीक सोचते हैं आप। दृश्य में पात्र के आने की स्थिति कैसी भी हो सकती है। किसी भी प्रकार से प्रवेश तो किया जा सकता है। पर जाना सदैव प्रभावशाली होना चाहिए।'

उसने कहा 'आप कल मिलने का वायदा कर मेरी मदद कर सकती हैं... प्रभाव उत्पन्न करने में।'

मैंने तुनक कर कहा 'आप भी तो आगे कभी न मिलने की घोषणा कर अपनी तरफ ध्यान आकर्षित कर सकते हैं।'

वह मुस्कुराया और उसने कहा 'आप निश्चय ही बुद्धिमती हैं।' वह उठ खड़ा हुआ। उसने मेरी तलहथी को मेरे माथे से हटाया और उसे अपने होठों तक ले गया अब यह हथेली और ललाट अपना दुख सुख बांट सकेगी समानता से। लेकिन वे अभी ऐसा नहीं कर पायेंगी। वे ऐसा करेंगी पर मेरे जाने के बाद। फिलहाल मसला यह है कि आप इमारत कैसे हो सकती हैं।''

इतना कह कर उसने मुझे कंधे से पकड़ कर उठा दिया। मैं तैयार थी।''

स्त्री की आंखें पथरीली हो गयीं। गहरी, सूनी और सख्त। बूढ़े के पार देखते हुए उसने कहा *''मेरा दायां कंधा... बायां कंधा... कोई एक कंधा, उस जगह उसने दो उंगलियां धंसायीं गहरे और मेरा सारा शरीर तरंगित होने लगा। वह जहां कहीं भी उंगली रखता भीतर का दर्द टीस मारने लग रहा था। कॉलर बोन से लेकर कंधे तक कई कई जगहें तलाश लीं उसने, जहां वह उंगली धंसाता मैं चीख कर उस जगह पर पीड़ा के छिपे होने का ऐलान कर देती। अभी तक यह एक तरह की थेरेपी ज्यादा थी, किसी तरह का अनुराग प्रदर्शन कम। मैं पीड़ा का साक्षात्कार करने में इतनी लीन थी कि उसे बदले में कोई सुख न दे पाने की बात मेरे दिमाग में आयी जरूर, पर कदमताल खत्म कर निकल भी गयी।*

हम पीड़ा की सीढ़ियां चढ़ चुके थे साथ साथ। जैसा कि अक्सर होता था मेरे साथ कि सीढ़ियां चढ़ने पर मेरी सांसें चढ़ने लगती थीं, वही हुआ। मैं हांफने लगी बेसाख्ता, जबकि वह संयत था। उसने थोड़ा ठहर कर मुझे सांसें संभालने का मौका दिया। मैंने कांपते हाथों से उसे चाभी थमायी और उसने आहिस्ता से दरवाजा खोल दिया। वह आवरण हटाता गया और हर बार हटाये जाने के बाद ही मैं जान पा रही थी कि मेरे अंतर के गवाक्ष कहां कहां छिपे थे। रोशनी, हवा और सांसें मेरे शरीर में प्रवेश कर पा रही थीं। वह फर्श, दीवार और छत पर पूरी तन्मयता से पच्चीकारी कर रहा था और मैं अपने शरीर की इमारत में अनुवाद होने की प्रक्रिया को अंधमुंदी आंखों से महसूस कर पा रही थी। वह एक लौ की तरह मेरे भीतर कौंध रहा था एक सिरे से दूसरे सिरे तक। समान गति... समान दमक से। एकबारगी वह जोर से भभका। अपनी पूरी दीप्ति के साथ। मैंने आंखें मूंद लीं। वह चरम का क्षण था ऐसा मुझे लगा। पर ऐसा था नहीं।

सुख उसके आगे था। वहां जहां एक रोशनदान खोज लिया था उसने मेरे भीतर। वहां आत्मा थी। उस वक्त वहीं हमारी आत्मा थी। उस बिन्दु पर आकर सब कुछ स्थिर पड़ गया। उसके आगे मैंने महसूस करने की क्षमता गंवा दी। और जब मेरी चेतना जागी, मैं इमारत से वापस अपने वजूद में लौट चुकी थी। मैंने उसे जाते हुए देखा... आखिरी झलक। अंतिम फ्रेम। बस।''

स्त्री ने अपनी हथेली को ललाट से हटाया और बूढ़े को देखा। उसका चेहरा जर्द पड़ चुका था। निष्प्राण और पीला। उसे वैसे ही ट्रीट्रमेण्ट की आवश्यकता थी जो कुछ घड़ी पहले कॉफी के प्याले के साथ की गयी थी। स्त्री ने एक नजर बूढ़े के ठंडे चेहरे को देखा और दूसरी नजर उसने अपनी सुसुम तलहथियों पर डाला। क्या वह एक बार फिर जीवनदायिनी की भूमिका के लिए तैयार थी। स्त्री ने अपनी हथेली आगे बढ़ायी। इस बार उसके कम्पन को महसूस करने के अलावा उसे प्रत्यक्ष देखा भी जा सकता था। उसके दोनों हाथ बूढ़े के गाल के समानांतर खड़े हो गये और आहिस्तगी से उन्होंने बूढ़े के गालों को छुआ। वहां सुप्तावस्था में पड़ी दाढ़ी के तिनके स्त्री की हथेली के पोरों के आगे खड़े हो गये और अगले ही पल स्त्री की हथेली फिसल गयी। उसकी हथेली मेज पर गिरती पर उसके पहले ही बैरे ने बिल रख दिया मेज पर। अब स्त्री की दोनों हथेलियां बिल पर थीं। दरअसल बिल इस शर्मिन्दगी से भर चुका था कि उसका अकस्मात आगमन ही स्त्री के हाथों की फिसलन का कारण बना और उस बिल की जलालत को ढांक लेने के लिए फिर से स्त्री की हथेलियां मौजूद थीं। बूढ़े ने स्त्री की दोनों हथेलियों को अपने हाथों से अलग हटाया और बिल उठा कर देख चुकने के

बाद पैसे रख दिये।

स्त्री अपनी हथेलियों को देखती रही जो कि उस वक्त किसी काम की न रह गयी थीं। बैरे के पैसे उठाते ही बूढ़ा उठ कर खड़ा हो गया। स्त्री अपनी हथेलियों को... दरअसल अपने आप को समेट कर चलने लगी बूढ़े के पीछे। दो मेज को पार कर बूढ़ा रुका और उसने पीछे मुड़ कर स्त्री से पूछा ''वह बेईमान ज्यादा था कि ईमानदार?''

स्त्री ने कहा ''वह था भी कि नहीं... कभी कभी मैं यह सवाल भी पूछ लेती हूं खुद से।''

दो लोग तेजी से बाहर निकल गये।

बाहर निकल कर बूढ़े ने एक कार्ड बढ़ा दिया। स्त्री ने देखा। उस पर किसी होटल का पता था। सम्भवतः बूढ़ा वहीं ठहरा होगा। स्त्री ने कार्ड पलट दिया। पृष्ठ भाग कोरा था। स्त्री ने अपने पर्स को खंगाला। कलम तो वहां कभी होती नहीं थी। एक आईब्रो पेंसिल जरूर मिली। स्त्री ने उसका ढक्कन खोल कर कार्ड के पिछले हिस्से पर अपने कमरे का पता लिखा और पेंसिल का ढक्कन बंद करते हुए कहा ''कल मैं मेजबान रहूंगी।''

सीढ़ियां संकरी थीं और ऊपर तक पहुंचने में वाकई बूढ़े के घुटने टीसने लगे। दरवाजा अधखुला था और दस्तक देने को जैसे ही उसने मुट्ठी बढ़ायी पल्ले खुल गये पूरी तरह। स्त्री कहीं जाने की तैयारी में थी सम्भवतः और बूढ़े को देखते ही उसके चेहरे का रंग उड़ गया।

''क्या मैं गलत वक्त पर हूं?''

''हां शायद थोड़ा पहले।''

बूढ़ा झेंप गया ''हां जल्दबाजी कर बैठा। आप शायद...।''

स्त्री ने अपने कदम वापस खींच लिए ''आइए।''

कमरे में एक चारपाई थी और दूसरी तरफ दो कुर्सियां।

दोनों बैठ गये। बूढ़े ने कमरे का मुआयना करना चाहा पर उसकी नजरें उठीं नहीं संकोच से। एक अपरिचित सी स्त्री के कमरे में होने का अनुभव नहीं था उसे। यह तो थी ही एक वजह पर स्त्री ने एक शाम पहले कैफे में जो बातें बतायी थीं, उसकी धुरी भी वही कमरा था। स्त्री के उन गोपन पलों की पृष्ठभूमि। इस बात के स्मरण ने बूढ़े के संकोच को गाढ़ा किया।

''घर खोजने में मुश्किल तो नहीं हुई?''

''नहीं।''

बात का सिरा तेजी से फिसल गया और बूढ़ा वापस संकोच की ओर बढ़ गया। थोड़ी प्रतीक्षा के बाद उसने कहा ''मैं कल निकल जाऊंगा।''

''जानती हूं। कमरा कैसा लगा?''

''अच्छा है।''

''झूठ।'' स्त्री हंसी।

''अस्तव्यस्त है। पहले इसमें एक और चारपाई हुआ करती थी। बाद में उसे हटवा दिया तो कुछ जगह बनी।''

''आपकी मूर्तियां कहां हैं?''

''मैं अब कम... बहुत कम काम करती हूं। सिर्फ जब उन बच्चों के बीच होती हूं तभी औजार थामती हूं।''

''फिर भी कहूंगा कि यह कमरा अच्छा है। जहां से स्मृतियां जुड़ जायें वह सदैव अच्छा ही

होता है। जैसे मेरे घर का वह कमरा। उसे मैं संग्रहालय में तबदील करने की अनुमति नहीं दे सका। पत्नी की यादें तो थीं ही, आप दोनों के साथ बितायी वह आखिरी शाम बहुत कीमती थी मेरे लिए।''

कुछ रुक कर उसने कहा ''माफ कीजिएगा। आखिरी शाम से मेरा मतलब था मेरे हिस्से की अंतिम शाम।''

''हम तीनों के लिए आखिरी शाम।'' स्त्री ने आंखें उठायीं। तरल और बड़ी। गम्भीर और एकाग्र। बंधनमुक्त और संसार से परे।

''वह हम तीनों की आखिरी शाम थी। उसके बाद हम दोनों ने भी एक दूसरे को कभी नहीं देखा। इस कमरे में नहीं आया था वह। मैंने जो कहा था कल शाम... वह सब... वह सब... कभी नहीं हो पाया।'' उसने सिर झुका लिया।

बूढ़ा उसे देखता रहा चुपचाप।

''आप कहीं जा रही थीं अभी?''

''हां मैं ताला बंद कर बाहर चली जाना चाह रही थी ताकि आप लौट जायें और मिलना न हो पाये। मैं आपसे मिलने से बचना चाह रही थी।''

''आप उससे प्रेम करती थीं... हैं! निश्चय ही। फिर... फिर क्यों नहीं मिल पायीं कभी?''

स्त्री की पुतलियां स्थिर हो गयीं। उसने कहा '' मेरी जिन्दगी में उसके बाद भी कई पुरुष आये।''

''पर इससे मेरा सवाल उत्तरित नहीं हुआ।''

''मैं जीना चाहती हूं आगे भी।''

''मेरा सवाल दूसरा था।'' बूढ़े ने हाथ हटा लिए वापस।

''नहीं आपका सवाल पहला था। पहला सवाल। जिसके उत्तर के आधार पर मुझे अपनी जिन्दगी का मानचित्र खींचना था। मैं बहुत तड़पी। बहुत भटकी। बहुत लहूलुहान किया मैंने अपने अंतर को। बेमकसद प्रस्तर पर चोट करती रही अहर्निश। और अपने सवालों का जवाब मुझे वहीं से मिला। मूर्ति तो प्रस्तर के भीतर छिपी थी। और मैं छेनी से ठोंक ठोंक कर बस उसे उभार लाती थी प्रस्तर के गर्भ से। उसी तरह प्रेम तो मेरे भीतर सदैव था। उसने उसके ऊपर उंगली रख मुझे एकात्म कर दिया था उस भावना से। मैं पत्थरों को गढ़ती थी उसने मुझे गढ़ा। पर जैसा कि जरूरी नहीं कि हर कलाकृति अपने कलाकार को सम्मान दे ही, मैंने भी उसे नकार दिया।''

''क्यों? आपको लगा कि जो आदमी सीमेण्ट बालू में मिलावट कर सकता है उसकी भावनाएं अछूती कैसे होंगी घालमेल से?''

''नहीं। उस पर अविश्वास नहीं था मुझे। मेरी जिद थी कि मैं उसमें से सारी बुराई को निकाल कर ही उसके भीतर प्रवेश पाऊं।''

''ये वाजिब भी है।''

''पर व्यावहारिक नहीं। अपनी मर्जी से स्वंय को बदलने और एक शर्त की तरह बदलने में काफी फर्क होता है।''

''अगर मान लीजिए वह नहीं बदलने का फैसला करता तब आप क्या करतीं?''

''यकीनन मैं अपना रास्ता चुनती। जिन्दगी जीने का रास्ता। और उस रास्ते का मेरे प्रेम से कोई लेनादेना नहीं होता। कभी कभी एक दूसरे से पूरी तरह सहमत होकर ही हम जिन्दगी जीते हैं, पर प्रेम कहीं नहीं होता। कभी असहमति की आठ दस मुलाकातों में ही प्यार का उत्स छिपा दिख जाता है। जो जहां मिल गया मैंने उसे लपक कर जी लिया। और जीती जाऊंगी भी पर आवश्यक नहीं कि मेरा रास्ता वही हो जो उन आठ दस मुलाकातों के मेरे साथी की राह हो। आपको मालूम

नहीं पर हमारे बीच एक पुल बना था। सामूहिक प्रयास वाला खेल। टीम एफर्ट। पुल से चल कर सब लोग एक ही तरफ पहुंचें जरूरी नहीं। हम एक दूसरे के सामने के रास्तों को काटते हुए अपनी मंजिल तक जा सकते थे। पर दिशाएं अलग हैं, इस वजह से पुल के आधार को तो नहीं डगमगाने दिया जा सकता था। जिस रोज मैं अपने और उसके बीच सामूहिक प्रयास वाले खेल का अर्थ समझ पायी, एक और बड़ा भेद खुला मेरे आगे। विशुद्धतः मुझसे सम्बंधित। पहले मुझे अपनी कला के श्रेष्ठतम रूप तक पहुंचने के लिए अपमान के दंशों की जरूरत होती थी और अपनी कलात्मकता की खुराक मैं उसे ही मान बैठी थी। पर धीरे धीरे प्रेम की छुअन कब मेरी रचना की धुरी बन बैठी मैं जान ही न पायी! यह एक ऐसा कैटेलिस्ट था जिसकी उपस्थिति में नया रचते जाने के लिए मुझे किसी दांवपेंच की जरूरत नहीं थी। नहीं चाहिए थी अब मुझे अपमान की खुराक। एक सोता मेरे भीतर उमड़ आया था जिससे मैं आंखें खोल कर भी रचने का सुख पा सकती थी। उस जान पाने के पल जानते हैं सबसे पहले मैंने किसे याद किया? आपको। मैं आपको साक्षी बनाना चाहती थी अपनी उस खोज का। मैंने उसी दिन छेनी उठा ली और आंखों को खोल कर मूर्ति बनाना शुरू किया। खुली आंखों से बनने वाली मेरी पहली कृति। यकीनन आखिरी भी।''

स्त्री ने एक मूर्ति बढ़ा दी आदमी की ओर ''यह आपके लिए।''

बूढ़े ने उसे अपनी हथेली पर रखा। वह एक बहुत बूढ़े इंसान की प्रतिमा थी। पर वह बूढ़ा इंसान वह नहीं था बूढ़ा उसे एक नजर देखते ही जान गया। हथेली पर रखी उस मूर्ति के चेहरे की झुर्रियां उमरदराज थीं बहुत पर चेहरा उस जवान आदमी का ही था। वही आंखें वही जबड़ा। उस आदमी के बुढ़ापे की कल्पना करके बनायी गयी थी मूर्ति।

''ध्यान से देखिए।'' स्त्री ने कहा। बूढ़े ने स्त्री की तरफ देखा और दोबारा जब उस मूर्ति की ओर देखा तो चौंक गया। मूर्ति की भौंहों की उठान और उसके नाक की गढ़न स्त्री जैसी ही थी। तो? बूढ़े ने गौर से देखा। मूर्ति के बाल छोटे थे और ठुड्ढ़ी पर दाढ़ी के लक्षण भी थे हल्के। वह प्रतिमा एक साथ आदमी और औरत दोनों के होने का भ्रम दिला रही थी।

''एक उम्र के बाद आदमी और औरत अपना शारीरिक अंतर खो देते हैं मिस्टर अग्निहोत्री। मैं अपनी बाकी जिन्दगी अपने तरीके से जीऊंगी पर उम्र के आखिरी पड़ाव पर उसके जैसी ही दिखना चाहूंगी। उस आदमी के जैसी।'' स्त्री की आंखों में एक पारदर्शी चमक थी।

''आप मेरा वह रूप देखने के लिए नहीं रहेंगे यकीनन।'' स्त्री हंसी ''इसलिए भविष्य का एक टुकड़ा मैं आपके हवाले करूं तो बेहतर।''

बूढ़ा मुस्कुराया ''इसका तो यह भी अर्थ हुआ कि आप दोनों एक जैसे दिखेंगे... नब्बे की सीमा पार कर जाने के बाद।''

''हां उसे मेरे जैसा ही दिखना होगा। और मुझे वैसा।'' स्त्री ने जिद्दी बच्चे की तरह कहा।

''हूं।'' बूढ़े का चेहरा जर्द हो गया। और वह उठ गया।

''अब हमें विदा लेनी चाहिए। कल तड़के मैं देश छोड़ दूंगा।''

''जानती हूं।''

''आप कुछ पीयेंगे?'' उठ चुके मेहमान से मेजबान स्त्री ने पूछा।

स्त्री ने पूछा ''आपने तो शोध किया है। आपके शोध का विषय सुन कर ही मैं समझ गयी थी कि ऐसा चयन क्यों किया गया। बताइए आप कि क्या उसे अपराधी मान लिया जाये या कि उसने जो कहा था उस पर भरोसा किया जा सकता है!''

''मैं अलग अलग लोगों से मिला। दूसरों के अनुभव के आधार पर जानकारियां हासिल कीं। कई किताबें छान मारीं। नये शोध... खोज। पर जो हासिल हुआ देखता हूं कि आप उससे आगे निकल चुकी है।'' बूढ़ा बैठ गया।

स्त्री ने उसके हाथ से मूर्ति ले ली और उसे अखबार में लपेटने लगी। कागज में लिपटी चीज उसके हाथ में थमाते हुए स्त्री ने कहा ''मेरे लिए आप कुछ लाए थे!''

''अब मैं वह नहीं देना चाहता।''

स्त्री ने मुस्कुरा कर कहा ''अभी आपने कहा कि आप अलग अलग लोगों से मिले... क्या उन अलग लोगों में वह भी शामिल था?''

''नहीं। मिला नहीं। पर बिल्कुल भी नहीं मिला... यह भी सच नहीं।''

''लाइए। अब दीजिए वह चीज जो आप लाये थे मेरे लिए।'' स्त्री ने मुस्कुरा कर कहा।

बूढ़ा आदमी एक चौखटे फ्रेम में जड़ हो गया। उसने पैण्ट की दाहिनी जेब से कुछ निकाला और स्त्री की ओर बढ़ा दिया। स्त्री ने देखा एक पुराने कूरियर की पावती थी साल भर पहले की तिथि वजन 3585 ग्राम। वह बैठ गयी कुर्सी पर। आगे सामानों की सूची थी...

एक मूर्ति। एक हाथी।

एक राखदान

एक जोड़ी कछुए

एक...

उसके दिमाग में सूची के सामानों के नाम बार बार अपने पूरे तामझाम के साथ कदमताल करने लगे। सारी चीजें उसकी अपनी बनायी थीं और ऊपर वाली को छोड़ कर बाकी की सारी आर्ट गैलरी से एकमुश्त खरीद ली गयी थीं। और जिसे कि खरीदने वाले ने यह घोषणा की थी कि उसके जीते जी उनसे कोई अलग नहीं कर सकता था। तो...? मतलब वह...।

स्मरण का यह आखिरी वाक्य स्त्री पर भारी पड़ गया और उसने डगमगाते हुए पलकें उठायीं जरूर पर बूढ़े की आंखों के समानांतर तक उठने के पहले ही वे भहरा कर गिर गयीं। वापस उस पावती पर लिखे सामानों की सूची पर। तो यह अंत था। शेष हो चुका सब। आदमी बचा नहीं था दुनिया में! इतने बड़े संसार में उसने अपनी स्मृतियां सौंपने के लिए बूढ़े को चुना और विदा लेने के पहले सब बूढ़े के पास भिजवा दिया। हे प्रभु तो क्या वाकई सच यह था! क्या 90वें साल के बाद उसे अकेले दिखना था उस मूर्ति की तरह! उसने अकुला कर चारों तरफ देखा और वह वहीं बैठ गयी। यह सच नहीं हो सकता। उसने पावती को बार बार पढ़ा। कभी नहीं। वे व्यक्तिगत स्पर्धा वाले हार जीत के खेल का हिस्सा नहीं थे। उनके बीच तो सामूहिक प्रयास की शर्त थी। सेतु को एक तरफ से थामने वाले हाथों के बेजान पड़ जाने की खबर पर तो पहला हक उसका बनता था। यह सच था ही नहीं। कभी नहीं।

स्त्री ने पावती को फिर से देखा। उसकी आंखें चमक उठीं। एक झूठ और एक सच का खेल आदमी को प्रिय था। स्त्री मुस्कुराई। अभ्यास करते करते वह भी इस खेल में माहिर हो चली थी। निश्चय ही इस खेल में आदमी झूठ का पासा फेंक चुका था पहले और अगली बारी अब सच की थी।

बूढ़ा कमरे से बाहर निकल गया। स्त्री को अपनी जगह ले लेनी थी मुस्तैदी से ताकि आगे खेल में आदमी जैसे ही सच का पासा गिराए उसे तत्काल लपक लिया जाये गोद में। लड़की की नजरें अपने पैरों के लिए माकूल जमीन तलाशने लगीं।

शून्य

स्थान अड़तालिस सौ वर्गफीट में बना एक बंगला, जोकि संग्रहालय में तबदील हो चुका था।

डिस्प्ले में एक मूर्ति रखी थी एक बहुत बूढ़े इंसान का चेहरा। एक आदमी उसे तन्मयता से निहार रहा था। इस धुन से तो रत्न की शुद्धता की जांच ही की जा सकती थी। लड़की ठीक उसके पीछे जाकर खड़ी हो गयी।

वह उसकी तरफ मुड़ा और उसने कहा ''इसे किसने बनाया?''

''ये मेरी हं।''

''ओह!'' उस आदमी ने बगैर अचरज कहा।

''ये आपकी है ये कैसे माना जा सकता है?''

''मेरी ही है।''

''संग्रहालय में रखी मूर्ति किसी एक की कैसे हो सकती है?''

''क्या जानना था आपको?'' उसने दबी जुबान में मामले को रफा दफा कर देने के अंदाज में कहा।

''इसमें एक साथ आदमी और औरत दोनों की छवि है इतना तो दिखता है। पर कौन सा हिस्सा किसका है यह जान नहीं पा रहा।''

यह कैसा सवाल था!

''उससे क्या होगा।'' लड़की के मुंह से निकल गया।

''उससे मैं ये जान सकूंगा कि ऐसी मूर्ति की कल्पना किस प्रकार सम्भव हुई होगी।''

उसने वाक्य को खत्म करते वक्त लड़की पर निगाहें पैनी कर दीं। और शब्द भी भीतर तक धंसते गये।

लड़की सहम उठी। दरअसल मूर्तिकार सहम उठी। उसने अगले ही पल दांव बदला ''हर कलाकृति को बनाने वाले से पूछ कर डिकोड करते हैं क्या आप? आप अपने सवाल काउंटर पर रखी फीडबैक बुक में दर्ज कर दीजिए।''

आदमी ने मुंह खोला पर कोई शब्द नहीं निकला आगे। लड़की इंतजार करते हुए थक सी गयी।

उसने कहा ''आप अपने संवाद भूल रहे हैं।''

''ये वही कुर्ता है। मैरून। उस रोज पानी में भीग कर इतना रंग निकल कर चढ़ चुका था इसका सफेद जैकेट पर, फिर भी इसका कोष रिक्त नहीं हुआ।''

''विषयांतर मत कीजिए... दृश्य खराब हो जायेगा।''

''हम उस जद से बाहर निकल चुके हैं। देखने दीजिए मुझे।''

''मैं नहीं देखने दे सकती।'' स्त्री ने अपनी ही आंखों पर हथेली का आवरण रख दिया।

''आपको नेलपॉलिश लगाना पसंद नहीं?''

लड़की ने अपने नाखून के बेरंगेपन को छिपाने के लिए तुरंत हथेली गिरा ली।

डिस्प्ले में रखी मूर्ति के ऊपर के शीशे के आवरण पर आदमी और स्त्री का आधा आधा चेहरा तैरता रहा।

पुरानों का नयापन अर्थात जगूड़ी की कविताएं

विजय बहादुर सिंह

शब्दों की प्रतिद्वंद्वितापूर्ण मैत्री, अर्थों का चमत्कारी वैलक्षण्य, खयालों की आंकीबांकी भंगिमाएं और विचारों की पुरुषार्थजीविता **लीलाधर जगूड़ी** की कविताओं की एक पहचान कही जा सकती है किन्तु अंतिम तो कदापि नहीं। यों तो कवि के कवित्व का मूलाधार वह कल्पनाशक्ति होती है जिसे परम्परा में प्रतिभा कहा जाता रहा है। यह शक्ति न हो तो न तो कविता में अंतःप्रेरणा जागृत होगी, न विषयवस्तु कोई मूर्त रूप ग्रहण कर पायेगा। लेकिन यह सब जिस रंगमंच पर घटित या साकार होता है उसे ही तो भाषा कहते हैं। इस मायने में भी जगूड़ी का कवि किसी अनन्य सूत्रधार से कम नहीं है। वह अपनी 'सृष्टि' की एक एक ध्वनि और उसकी प्रत्येक प्रतिध्वनि को किसी ब्रह्म की तरह धारण किये रहता है। जहां दिल चाहिए दिल है जहां सर चाहिए सर है वाली शैली में। इस मायने में भी जगूड़ी का जवाब नहीं। वे असाधारण प्रजापति हैं जो अपनी सृष्टि के दक्ष विधाता हैं।

बीसवीं सदी के छठे दशक से गिनें तो इक्कीसवीं के इस मध्य दूसरे दशक तक उन्होंने कविता के कई दशक पार किये हैं। सो भी एक यशस्वी यात्री की तरह किन्तु बगैर कोई शोरशराबा या हंगामा किये। इन पचास पचपन बरसों के बीच न जाने कितने काव्यांदोलन आये गये, राजकमल चौधरी, धूमिल से लेकर परवर्ती कविता पीढ़ियों के लोग भी साथ साथ सफर में रहे या यूं कहें जगूड़ी ही इन सबके साथ अपनी सधी हुई चाल में चलते रहे। उन्हें न तो अपनी चाल बदलने की चिन्ता ने घेरा न वे किसी तात्कालिक विचलन के शिकर हुए। इसके कारण में जायें तो कहना होगा कि उनका वह सघन आत्मविश्वास जिसने उन्हें यह सामर्थ्य दिया कि अपनी साधना में अविचलित रह कर अपने अनुभवों की रोशनी में वे अपनी स्वतंत्र राह बनाते और चलते रहे। आज यह भी कहा जा सकता है कि किसी हड़बड़ी ने उन्हें घेरा नहीं,किसी महत्वाकांक्षा ने उनकी पीठ पर कोड़े नहीं बरसाये। प्रतिफल यह कि वे कविता के प्रति अपनी जिम्मेदारियों और कवि के प्रति बरती जाने वाली साज सम्हाल को

लेकर निरंतर बाखबर रहे। एक सतत जाग्रत और आत्मसचेत शिल्पी की तरह।

अपने नये कविता संग्रह **जितने लोग उतने प्रेम** में वे एक बेहद संवेदनशील काव्य भाषा, कथ्य एवं शिल्प की विविधता एवं ढेर सारे जीवन अनुभवों की मार्मिक और जीवंत छवियों के साथ उपस्थित हैं। कविता की रूढ़ सोच और उधार की बौद्धिकता के बजाय यहां एक प्रौढ़ कवित्व अपनी समूची तरल व्यापकता और उदारता के साथ मौजूद है। यह कहने की भी जरूरत है कि कवि यहां दोहरी तिहरी भूमिका में है। पहली में एक विचारक तो दूसरी में स्वप्नदृष्टा की तरह। कवि की तरह हुए बगैर तो यह सब चलने वाला ही नहीं।

यह भी कि वे हमारे बोलचाल के तमाम मुहावरों का बेहद सटीक सर्जनात्मक प्रयोग करते हुए उस यथार्थ पर अपनी निगाह गड़ाये हुए हैं जिससे समकालीन जीवन को उबारना और पार जाना है। यह सब करते हुए न तो वह पस्तहाल हैं न निराश बल्कि एक उम्मीद निरंतर एक धीमी लौ की तरह जीवन के अंधेरे में झिलमिला रही है। जब कभी मनमौज में आकर वे जीवन रूढ़ियों और धार्मिक आडम्बरों पर प्रसन्न आक्रामक रुख अपनाते हुए अपने समय की विडम्बनाओं की फेहरिश्त गिनाते हैं तब 'वैतरणी पर पुल' जैसी कविताएं बहाना भर बच रहती हैं

आश्चर्य तो यह कि मृतक को
मरने के बाद भी भूख का मुकाबला करना पड़ता है
धांधली यह कि किसी का पिंडदान कोई और खा जाता है
यहीं जैसा लुच्चापन वहां भी
जीते जी जैसे कामों से मरने के बाद भी छुटकारा नहीं...
कैदियों की तरह मृतक की भी जमानत करवानी पड़ती है...

यह वह विडम्बनात्मक यथार्थ है जो धार्मिक व्यवस्थाओं की पोलपट्टी खोलता है साथ ही हमारे अपने रूढ़ि समय का भी साक्षात्कार कराता है। लेकिन जगूड़ी सिर्फ यही और इतना भर नहीं करते। बगैर किसी भावावेश के वे जिस तरह हमें हमारी विडम्बनापूर्ण सामाजिक जिन्दगी का साक्षात्कार कराते हैं उसी तरह एक सांस्कृतिक कमांडर की तरह इस तरह की पंक्तियां रचने में संकोच नहीं करते

धर्म की खोज में शुरू हुई इस दुनिया को
धर्मों की तमाम खामियों में सोचो
सोचो कि मनुष्य होने के धर्म को
इस पृथ्वी सहित कैसे बचाया जा सकता है।
x x x x x x x x x x x
कोई और तरह का विस्फोटक ढूंढ़ो जो धर्म न हो
ऐसा कुछ करो कि श्मशानों और कब्रगाहों से न पहचानना पड़े
इस दुनिया को 'ना' के लिए 'हां' कहने वालो
एक बार 'हां' के लिए भी तो 'ना' कह कर देखो

जगूड़ी एक भारतीय कवि हैं, प्रगतिशील या आधुनिक, उत्तर आधुनिक नहीं। भारतीय कवि होने की शर्तें हैं कि कोई सतही जीवन यथार्थ की काव्यात्मक मुनीमी न करे, न ही सूची प्रदत्त काव्य विषय और प्रायोजित काव्यदृष्टि का अनुशासित शब्द सैनिक बन कर रह जाये बल्कि उस वास्तविक सक्रिय और गम्भीर जीवन का साक्षात्कार करे जो प्रथमतः जातीय होकर भी, अपनी तमाम विलक्षणताओं के साथ विश्व व्यवस्था में भी शामिल होने योग्य हो। जगूड़ी की कविता में जातीय जीवन की ये गहरी आवाजें हमारी सांस्कृतिक मूर्च्छना का अपवारण करती हैं। इस दृष्टि से उनकी काव्य

चेतना मौलिक और उनके काव्य प्रयास अपूर्व कहे जा सकते हैं। इस अर्थ में भी कि वे परम्परा को दरकिनार न करते हुए भी उसकी अगतिकताओं का निदान अपनी कविता में ढूंढ़ते हैं और इसके लिए लोकजीवन और संस्कृति में जितना उतरना अपेक्षित है उससे कहीं अधिक उतरते हैं। लोक और नागर का बगैर कोई विभेद किये लोक को अपनी भाव प्रवणता तो नगर को अपनी रचनात्मक बौद्धिकता से जांचते परखते और अंगोकार करते चलते हैं। इस लिहाज से उनकी चेतना एक अविभक्त चेतना है जिसे किसी भी स्थिति में वर्गवादी या कोरी बुद्धिवादी या कलावादी नहीं कहा जा सकता। अपने काल को अखंडकाल का वर्तमान मानते हुए ऐसे अविच्छिन्तावादी जहां कोई एक सत्ता दूसरी से विच्छिन्न नहीं है।

लोक में प्रवेश करते हुए उनका कवि एक चित्रकार की तरह उस भूगोल को ऐसा प्रतिचित्रित करता है जो अपनी कल्पनाशीलता में कालिदास आदि कवियों की याद दिलाता है। तथापि जगूड़ी की अपनी मौलिक काव्य भंगिमाएं समकालीनों में से बहुतों को कई कई स्तरों पर पीछे छोड़ती चली जाती हैं और उनकी संवेदनात्मक व्यापकता अपने पहाड़ी मुहावरे का स्पर्श पाकर इतनी निखर उठती है कि स्थानीयताओं का अतिक्रमण करती हुई राष्ट्रीय और वैश्विक क्षितिजों को छूने लग जाती है।

प्रत्येक स्थिति में यह याद रखते हुए कि कवि को सबसे पहले यहां तक कि कविता से भी पहले अपने कवि की चिन्ता करनी है, वे यह काम अत्यंत सजगतापूर्वक करते हैं। कवियों की भीड़ के बीच जायें तो कविताओं के ढेर के ढेर मिलेंगे पर कवि से तो विरले ही कभी भेंट होगी। कवि से भेंट होने का मतलब है साक्षात स्रष्टा से मिला। वह जो स्वयं एक वरदानी उपस्थिति है। जिसमें जितनी भूमा है उतना ही भौतिक का उदात्त निखार भी। जितनी मृदुता और कोमलता है उतनी ही कठोरता भी। जितनी व्यष्टि उतनी ही समष्टि भी। जितनी सीमा है उतनी ही अनंतता भी। कोई दो शब्दों में कहना चाहे तो कहे अमित तरलता और प्रवहमयता या फिर सृष्टि विदग्धता कहे। इसे अधिक शास्त्रीय धरातल पर समझना चाहें तो आचार्य अभिनवगुप्त हमारी सहायता करते हुए कहते हैं कि वह जिसका हृदय सृष्टि की प्रत्येक धड़कन से चमक उठे। उसकी चेतना स्पंदित हो उठे। सहृदयता तो यही है।

जगूड़ी के यहां इसीलिए नये पुराने का भेद नहीं है। वह जो घट चुका है, या घट रहा है, आगे कभी घटित होगा उसका भी नहीं। इसीलिए न तो उनकी कविता कोरी फूल की कविता है न कांटों की। उनकी दृष्टि समग्रतावादी और रचनाप्रक्रिया संश्लेषधर्मी है। इस रूप में वे सबके साथ और सबके होकर भी स्रष्टा धर्म की स्वाधीनता में निवास करते हैं।

अपने कवि धर्म पर विचार करते हुए वे यह दावा पेश करने में हिचकिचाते नहीं कि वे परम्पराओं के आधुनिक संस्करण हैं, न कि पुराने। तभी तो कह पाते हैं कि कविता तो वस्तुतः किसी अनजाने अनुभव के भाषिक रहस्य को एक बार फिर से किसी कवि के मार्फत जानना है। किन्तु यह किसी वैज्ञानिक द्वारा किन्हीं प्रयोगों के मार्फत जानना और पुराने को गलत साबित करने वाली कार्रवाई नहीं बल्कि पुराने समेत एक और जानना है। शास्त्रों में शायद यही पुनर्नवता या नवीनीकरण है। पुराने को नया करना।

कवि इसे कैसे सम्भव करता है तो सुनिये उन्हीं से *'अच्छी कविता भाषा में/से अभाषा और विभाषा को पकड़ने की कोशिश है।'* उनके इस कथन को फिर समझना हो तो कह सकते हैं कि प्रत्येक कवि की अपनी भाषा होती है। आम प्रचलित अथवा काव्य प्रयोगों में निःशेष हो चुकी भाषा से अलग एक ऐसी सर्वथा अप्रयुक्त भाषा जिसे दंडी आदि आचार्य 'अग्राम्य' कहते आये हैं। यह दंडी ही हैं जो कहते हैं कि कवि की विदग्धता उसके द्वारा अग्राम्य प्रयोगों में ही महसूस की जा सकेगी। ग्राम्य

अथवा कॉमन रोजमर्रा के प्रयोगों में नहीं। भामह जैसे आचार्य पहले ही कह चुके हैं कि जनसाधारण से भिन्न शैली अथवा भाषा विन्यास। जगूड़ी खड़ी बोली के आचार्य कवि की तरह अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए वस्तुतः इसी तरह पुरानों से अपना सम्बंध ही नया नहीं करते उन्हें भी नयेपन में ले आते हैं।

आजकल कवि भवानी प्रसाद मिश्र के कथन 'जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख' को कई प्रतिभाहीनों द्वारा दोहराया जा रहा है किन्तु यह विचार नहीं ही किया जा रहा कि कवि भवानी मिश्र को मैथिलीशरण गुप्त की नीरस भाषा से परहेज रहा हमेशा। वे इसीलिए दिनकर और मैथिलीशरण या सुभद्रा कुमारी चौहान से अलग हट कर अपनी अलग भाषा में लिखते रहे। 'हम' के बोलने में लोक की अनुभव दृष्टि और भाव भंगिमा भी है यह क्यों भूल जाना चाहिए। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि नाट्येतर काव्य में भाषा ही वह मूल आधार है जिससे कविता और अकविता की पहचान होती है। तभी तो कालिदास, तुलसीदास आदि अधिसंख्य कवि वर्ण, शब्द और अर्थ की सबसे पहले वंदना करते हैं। जगूड़ी भी यही करते हुए अभाषा और विभाषा की मांग कर रहे हैं। कौन नहीं जानता कि इस 'भाषा' का काम क्या है? अर्थात भाव सृष्टि। किन्तु इसके लिए जरूरी है वह विभाव विधान आचार्यगण जिसे अलंकार या मुक्तिबोध आदि फैन्टसी कहते रहे हैं। अनूदित पदावली में इसी ही अब कल्पना कहा जा रहा है।

जगूड़ी के यहां यह शक्ति भी अपनी असाधारणता के साथ प्रकट हुई है। उसमें जितनी रूपमयता है उतनी ही विचार विदग्धता भी। यह जगूड़ी ही हैं जो 'गरीब धूप' और 'प्रतिभाशाली दमकते अमरूद' जैसी कल्पनाएं करते हैं। ऐसा भी नहीं कि उन्हें परम्परागत भाव पद्धतियां रुचती ही नहीं हों किन्तु इस क्षेत्र में भी दो चार कदम सबसे अलग रखने के लिए वे यह अनन्य पौरुष रेखांकित करते हैं।

अच्छी कविता का एक अर्थ गम्भीर कविता से भी है और यह गम्भीरता भाव से लेकर विचार की सतहों तक हो सकती है। जीवन और उसका यथार्थ चूंकि बदलता ही रहता है इसलिए कविता के स्वाभाविक बदलाव को भी टाला नहीं जा सकता। जगूड़ी खूब जानते हैं कि कविता को मजेदार ही नहीं आनंदमय भी होना चाहिए। उन्होंने महान कवि जयशंकर प्रसाद की इन पंक्तियों को पढ़ा ही होगा 'पुरातनता का यह निर्भीक सहन करती न प्रकृति पल एक/नित्य नूतनता का आनंद किये है परिवर्तन में टेक।' जगूड़ी की नूतनता सिर्फ भावदृष्टि में नहीं, उनकी विचार शैली और अभिव्यक्ति भंगिमाओं में भी है। वे परम्परा के सगे होकर भी उसकी लकीर कभी नहीं पीटते उसी तरह अपने को दोहराने वाले हुजूम से सावधान रह कर बार बार नवोन्मेष का प्रमाण देते चलते हैं।

एक अंतिम बात जो मैं कहे बगैर नहीं रह पा रहा वह यह कि जगूड़ी की कविताओं के अर्थ एक बार खुलने पर भी बासी नहीं हो जाते बल्कि धूमिल, राजकमल चौधरी से अलग खड़े रह कर बार बार खोले जाने की मांग करते हैं। इसी रूप में वे समकालीन होकर भी आधुनिक और आधुनिक होकर कालांतरगामी हो उठते हैं। अपनी इसी कालांतरगामिता के बल पर वे परवर्ती पीढ़ियों के कवियों के लिए महत्वपूर्ण बने रहेंगे।

जितने लोग उतने प्रेम : लीलाधर जगूड़ी, **प्रकाशक :** राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, **मूल्य :** 295 रु.

आसपास की जीवंत कविताएं

प्रांजल धर

जीवन भी कविता हो सकता है वरिष्ठ कवि का ऐसा कविता संग्रह है जो आम लोगों के जीवन को खंगालता है, बारीक प्रेक्षण के जरिये सार और तत्व का संधान करता है और सधी किन्तु सरल भाषा में कविता को पाठकों के सामने पेश करता है। जैसा यह समय है, उसमें बेचैनी और उन्माद बेहद आम हैं। परिवर्तन की बात करने वाले लोगों की प्रतिबद्धताएं बदल रही हैं। बदलती प्रतिबद्धताओं के विकट दौर में विष्णु नागर की 'समय बदल चुका है' नामक कविता बहुत संक्षेप में कहना चाहती है कि बच्चों को यह कह कर चुप करा दिया जाता है कि तुम अभी बच्चे हो, युवाओं को यह कह कर कि तुम्हारा खून गर्म है, तुम नहीं समझोगे और वृद्धजनों को यह कह कर चुप करा दिया जाता है कि समय बहुत बदल चुका है। फिर वे मानवीय जिज्ञासाएं कहां जायें जो बहुत ही सहज हुआ करती हैं? नागर कहते भी हैं कि आदमी नहीं सुधरता, मशीन सुधर जाती है। पर क्या किया जाये? क्या आदमी को मशीन बना दिया जाये! कविता का एक काम यह भी है कि हमें वह एक ऐसी दुनिया में ले जाये जो हमारे अपने अनुभव के दायरे से, चाहे जिस वजह से सही, जरा दूर ही छूट जाया करती है। हमसे छूट जाने वाली और उपेक्षित हो जाने वाली छोटी मोटी चीजों, घटनाओं और प्रेक्षणों को उकेरने में विष्णु नागर का कोई जवाब नहीं है और यह बात उनके चार दशक पहले आये संग्रह 'मैं फिर कहता हूं चिड़िया' से लेकर वर्तमान संग्रह 'जीवन भी कविता हो सकता है' तक बराबर रूप से लागू होती है।

पर सवाल तो यह है कि इन बहुविध अनुभवों तक वे पहुंचते कैसे हैं? क्या सहज ही स्वीकार की जाने वाली कवि की बेचैनी के कारण या परिवर्तन की अकुलाहट की वजह से या फिर उनके अपने अनुभव संसार में ही ऐसी चीजें नींव की ईंट की तरह व्याप्त हैं? एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था ''बचपन में मेरा मन पढ़ने में बिल्कुल नहीं लगता था। हां, भटकने में मेरी दिलचस्पी थी। सो स्कूल से भाग कर अपने छोटे से कस्बे में मैं यहां वहां भटकता रहता था। कभी नदी किनारे जाकर

बैठ जाता था। एक छोटी सी पहाड़ी थी, वहां जाकर बैठ जाता था। मंदिर की सीढ़ियों पर जाकर बैठ जाता था। पिता की तो बचपन में ही मृत्यु हो गयी थी। मैंने उन्हें देखा भी नहीं। मां के साथ रहता था, जो भटकने की मेरी इस आदत को लेकर चिन्तित थीं।'' इस कविता संग्रह में इसी 'भटकने' की आवाज प्रतिध्वनित होती है। तभी वे यह जान पाते हैं कि हवा अदृश्य होती है, जो दृश्य को लगातार हिलाती डुलाती दुलराती झुलाती रहती है। तथाकथित भूमंडलीकरण के इस दौर में जब हवा और पानी तक को बेचा और खरीदा जा रहा हो, तब हमें मुफ्त में मिलने वाले ये अनमोल संसाधन कितने महत्वपूर्ण लगते हैं। 'बेचो बेचो बेचो' जैसी कविता इसका जीवंत दस्तावेज है।

अनुभूति की तीव्रता, परिस्थिति के विश्लेषण के साथ साथ जय पराजय का यथार्थबोध और तुलना कर सकने की अचूक क्षमता किसी कवि को बड़ा बनाती है। संग्रह की एक कविता है कि आदमी की तरह खुद को कब तक देखूं? क्यों न खुद को किसी फूल की तरह देखा जाये, भले ही किसी मुरझाये फूल की ही तरह! फिर सुंदर फूल की नश्वरता के बहाने मानव जीवन की सार्थकता का उत्स तलाश लेना इस कविता को विशिष्ट बनाता है। तभी वे कहते हैं कि झड़े हुए फूल मरे हुए फूल नहीं होते। कविता की भाषा सरल है लेकिन अनुभव से भरी हुई है। हां, कहीं कहीं पुनरावृत्ति अटपटी भी लग सकती है। लेकिन यह पुनरावृत्ति स्वयं कवि का दोष न होकर हमारे समय का दोष है जहां सभी लोगों को एक खास भाषा और एक खास संस्कृति में रंगने का अघोषित अभियान पूरी साजिश के तहत चलाया जा रहा है। विशालकाय आवारा पूंजी वाली बड़ी बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और उनसे उत्पन्न बाजारों ने मनुष्य ही नहीं, बल्कि मानवता को भी बौना साबित कर दिया है। संग्रह की 'अपनी आवाज' नामक आखिरी कविता में कवि का चिन्तन इसी तरफ इशारा करता है : *मैंने कितनों की आवाज को/अपनी आवाज बनाया/फिर मैं इस पर इतराया/कि ये मेरी अपनी आवाज है!* कॉल सेण्टरों में काम करने वाला हमारा युवा वर्ग यही तो सोचता है कि सारे काम उसके 'अपने' काम हैं, जबकि उससे मुनाफा कमाती हैं कम्पनियां। शायद इसीलिए जॉर्ज ल्यूकाच जैसे विचारक ने मार्क्स की इस बात पर विशेष बल दिया था कि वर्तमान समय ही ऐसा है जहां मनुष्य पहले सहकर्मियों से, फिर प्रकृति से और अंत में खुद से भी पराया हो जाता है। ये कविताएं इसी परायेपन को खत्म करने की नन्हीं नन्हीं कोशिशें हैं। यही कोशिश 'सड़क का कुत्ता' नामक कविता में भी दिखायी देती है जहां कवि स्वयं को भी कुत्ता ही मानता है जिसे वह कभी खुल कर तो कभी छुपा कर बताता है।

जिन्हें हम सहज ही समानताएं या साम्यताएं मान कर स्वीकार कर लिया करते हैं, विष्णु नागर उन साम्यताओं की तह में जाते हैं और उनके आधारों का बारीक विश्लेषण करते हैं। वे सवालों के जवाब खोजने की कोशिश करते हैं, न कि घिसे पिटे और प्रचलित जवाबों से संतुष्ट होकर रह जाते हैं। यहां आकर हमें इस चीज का भान होने लगता है कि जिनके जवाब होते हैं, उन्हें सवाल कहने से परहेज करना चाहिए क्योंकि असल में वे सवाल न होकर कुछ स्वाभाविक लगने वाली जिज्ञासाएं भर होती हैं। दिखने में तो सारी कल्पनाएं एक जैसी ही लगती हैं लेकिन उनकी संरचनाएं और उनकी बुनावट में बहुत भारी अंतर होता है। 'आदमी घास नहीं खाता' में आदमी और शेर की समानताओं विषमताओं को कवि ने खंगाला है। इसी तरह संग्रह में एक कविता है, जिसका शीर्षक है 'जिसकी अपनी ही धरती थी', इस कविता का प्रतिपाद्य सोचने पर विवश करता है *जब वह मान लेता था कि वह थक चुका/तो रात हो जाती थी/चाहता तो अमावस हो जाती थी/चाहता तो पूर्णिमा का चांद निकल आता था/और जब उसकी आंख खुलती तो सूरज उसकी सेवा में तैयार मिलता था/सलाम बजाता हुआ।* इस कविता के शिल्प के संदर्भ में तो नहीं, किन्तु प्रतिपाद्य के स्तर पर मुझे मुक्तिबोध की बहुत ही चर्चित कविता 'ब्रह्मराक्षस' याद आती है जहां संवेदनाहीन ज्ञान और ज्ञानहीन संवेदना

से भरे लोग समस्त संसार के सकल साधनों को अपना सेवक ही समझते हैं और इसी तरीके के मुगालतों को जीते हुए वे बीतते चले जाते हैं। सुखी और दुखी आदमी, छोटे मोटे वादे, दीवारों के कान और एक सीढ़ी जैसे तमाम मामूली विषयों को कवि ने अपनी गैर मामूली दृष्टि से देखा जाना है और ऐसा लगता है कि सोचने समझने के बाद पर्याप्त समय लेकर ही कविताओं को रचा है। इन कविताओं में हड़बड़ी नहीं है, बल्कि शांत रहने वाले गहरे जल का धीमा प्रवाह है जो विष्णु नागर की लम्बी रचना प्रक्रिया से उपजा है।

'जीवन भी कविता हो सकता है' की कुछ कविताएं व्यवस्था का या यथास्थिति का विश्लेषण, विरोध करती हैं। आज जब शब्दों के मूल अर्थ कहीं दूर छिटक गये हैं, तब किसी भी साहित्यकार का कर्तव्य यही बनता है कि वह शब्दों को उनके मूल अर्थों से पुनः जोड़े। प्रेम, उदारता और सम्बंधों के मायने ही नहीं, बल्कि वे परिप्रेक्ष्य भी बदल गये हैं जिनके संदर्भ में इन्हें देखा जाता रहा है। इस विस्थापन की लकीरों को चिह्नित करते हुए अपनी कविता 'हंसने का मौका देता हूं' में नागर लिखते हैं *मैं उनके लिए इस धरती पर रहता हूं/अपने लिए आसमान पर/इस चक्कर में कई बार/धरती को आसमान कह देता हूं/उन्हें अपने पर हंसने के मौके देता रहता हूं।* मजदूरों को रोबोट बनाने वालों से स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि वे मजदूरों को रोबोट बनायें तो बनायें, कम से कम रोबोट को तो मजदूर न बनने दें। कवि ने यहां मजदूरों की थकी आंखों और गहरी नींदों में सपनों के दर्शन किये हैं और इस दार्शनिक सिद्धांत की पूर्वपीठिका का मद्धिम रूपायन किया है कि आज तक के दार्शनिकों ने विश्व की व्याख्या की है, पर असल सवाल तो उसे बदलने का है। इसीलिए नागर कहते हैं कि जिसे भी मजदूर बनाओगे, उसे भूख प्यास जरूर लगेगी और उसे पसीने के साथ साथ सपने भी अवश्य आयेंगे। आज की कॉर्पोरेट भागमभाग वाली जीवनशैली में ठीक ही कहा जाता है कि बहुत बुरा होता है यारों, सपनों का मर जाना। लेकिन कितनी भी भागमभाग मची हो तो क्या, सभी लोग दौड़ नहीं रहे। कुछ लोग आज भी अपने विवेक से नीर क्षीर का विवेचन करने का प्रयास करते हैं। 'सपने में प्रधानमंत्री' नामक कविता एक मध्यमवर्गीय परिवार और उसके जीवन के यथार्थ का जबर्दस्त चित्रण करती है और बताती है कि किस प्रकार यह मध्यमवर्ग छोटी छोटी रियायतों पर अपना सब कुछ न्यौछावर करने को सहर्ष तैयार हो जाता है, कि किस प्रकार आतिथ्य सत्कार जैसे मूल्य अंततः महज मध्यमवर्गीय जीवन मूल्य भर बन कर रह जाने को अभिशप्त हो जाते हैं और किस प्रकार परिवर्तन की तमाम मशालें जाने अनजाने बुझ जाया करती हैं।

संग्रह की एक कविता है 'झुकना'। यह आकार में भले ही लम्बी नहीं है लेकिन है यह एक बहुत बड़े फलक की कविता। झुकना एक स्वाभाविक क्रिया है और बिना झुके दुनिया में बहुत चीजें नहीं मिल सकतीं। बिना झुके आप जमीन पर पड़ी कोई चीज नहीं उठा सकते। पर यह झुकना कितने भिन्न अर्थ रखता है, चाहे यह ईश्वर के सामने ही क्यों न किया जाये। ईश्वर में भरोसा रखने वाले लोग ईश्वर के सामने झुकते हैं, पर उनके इरादे भिन्न भिन्न होते हैं। मसलन, कोई आदतन झुकता है, कोई इरादतन और कुछ लोग तो मात्र चापलूसी के लिए झुकते हैं। झुकना अपना हित साधने का साधन और औजार भी है। झुकना सराहनीय भी है, निन्दनीय भी। झुकना त्याज्य भी है तो वरेण्य भी। कैसे साधा जाये झुकने के इन तमाम मायनों के बीच संतुलन! इस कविता समेत संग्रह की अधिसंख्य कविताएं जो कहना चाहती हैं, दरअसल वह परदे के पीछे के सच का प्रकटीकरण है। और ऐसे प्रकटीकरण अभिधा में नहीं किये जा सकते इसलिए कवि ने लक्षणा और व्यंजना का सहारा लिया है। इतिवृत्तात्मकता का विलोपन करते हुए कविता की भावात्मक और रसात्मक गांठों पर खासा ध्यान देते हुए कवि ने संग्रह की कविताओं को रचा है।

पर 'जीवन भी कविता हो सकता है' संग्रह का पूरा सच यही इतना नहीं है। इस संग्रह की अनेक कविताएं ऐसी हैं जिनमें इतिवृत्तात्मक जीवन के बहुविध भाव और रंग हैं, जिनमें अपनी जड़ों की मजबूती है, जिनमें तमाम चिन्तन और द्वंद्व दर्ज हैं और इसीलिए यह संग्रह हिन्दी कविता का विस्तार प्रतीत होता है। राजनीतिक स्थितियों से लेकर सामाजिक विसंगतियों तक के तमाम चित्र पाठकों के मन को छू लेते हैं। चाहे वह स्त्रियों की गुलामी से उपजा आक्रोश हो या फिर हमारी मातृभाषा की मुश्किलें, हमें तमाम ऐसे नये बिम्ब नजर आते हैं जो अपनी मूल प्रकृति में दार्शनिक और चिन्तनपरक हैं। लोकतंत्र जब महज एक औपचारिक ढांचे मात्र में ही बदलता चला जा रहा हो और जनता असल में वोट बैंक से अधिक कुछ न मानी जा रही हो, तब संग्रह की कविता 'लोकतंत्र' एक अधिक औचित्यपूर्ण वैचारिक धरातल का निर्माण करती है। वर्तमान जटिल जीवन को लेकर कवि का मत है कि अनिद्रा के रोगी को जागा हुआ नहीं कहते, जागता वह है जो सोया था। विष्णु नागर की कविताएं असल में प्रतीक हैं कि चीजें किस खतरनाक सरलीकरण के दौर से गुजर रहीं हैं। ये कविताएं हमें शोर, संवाद, मौन और शब्द की महत्ता की दिशा में भी ले जाती हैं। तमाम नीतिकथाओं, गम्भीर वेधन क्षमता से भरपूर सूक्तियों, लतीफेबाजी और खिलंदड़पन के साथ ये कविताएं इतनी अधिक बहुआयामी और बहुरंगी प्रतीत होती हैं कि इन्हें एक साथ रख कर देखना भी किसी चुनौती से कम नहीं है। लेकिन यह कोई काव्यात्मक हाट नहीं, हंसते और उदास जीवन के दर्शन का प्रक्षेपण है, अनुभवों के बीहड़ दायरों से रचा कोई खंडित वृत्त है, जीवन मूल्यों के टकराव से निकली ऊर्जा का सृजनात्मक भंडार है और सबसे बड़ी बात कि इनमें मानवता की गहरी रेखाओं को बचाने की जद्दोजहद है।

छोटी छोटी कविताओं की संख्या इस संग्रह में अधिक है पर वे छोटी कविताएं बंदूक से निकली किसी गोली की तरह पाठक पर अपना असर डालती हैं। मसलन, संग्रह का नाम जिस कविता को ध्यान में रख कर दिया गया है, उस कविता का शीर्षक है 'जीवन भी कविता हो सकता है'। यह कविता महज दो पंक्तियों की बहुत कसी हुई कविता है जो अपने समय और समाज, प्रतिरोध और असहमति, सहमति और विवेकशीलता तथा स्वीकृतियों की तार्किकता को बड़ी गहराई से रेखांकित करती है। यह बताती है *जीवन भी कविता बन सकता है/बस उसे लिखना आना चाहिए।* यह रेखांकन करते समय हंसी ठिठोली के साथ साथ व्यंग्यात्मक लहजे में अपनी बात कहना विष्णु नागर की विशेषता है। तमाम कविताओं के लहजों में गजब का नुकीलापन है जो किसी शल्य चिकित्सक के औजार की तरह उभरता है। 'दिमाग' नामक कविता में यह नुकीलापन हल्के चुटीलेपन के साथ आता है और कविता हमारे समय की सबसे बड़ी समस्या 'बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास' को संरचनात्मक स्तर पर जाकर बारीकी से उकेरती है।

असल में ये ऐसी कविताएं हैं जहां आकर यथार्थ वास्तविक जीवन के और कल्पना अनुभूतियों के समानांतर चलने लगती है। संग्रह की अधिकतर कविताएं गहन प्रेक्षणों और बारीक जीवनानुभवों के माध्यम से पाठकों के अंतस्तल को स्पर्श करती हैं चाहे वे अनुभव दीवारों और घरों से जुड़े हों या फिर घटनाओं की व्याख्या करने वाले हमारे दृष्टिकोण से। व्यवस्था और अव्यवस्था के बीच लटके मानव मन की तरंगों को पकड़ने वाली ये कविताएं चीजों के रखरखाव पर गहरी निगाह डालती हैं और यह निगाह महज प्रेक्षण से कुछ अधिक सिद्ध होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह अधिक होना ही विष्णु नागर की इन कविताओं को पठनीय बनाता है और कुछ कविताओं की पंक्तियों को मर्मवेधी भी साबित करता है। साथ ही हम सबके आसपास की ये जीवंत कविताएं समग्रता में एक ऐसा प्रभाव छोड़ती हैं जो व्यष्टियों के समुच्चय से कुछ अधिक ही है।

जीवन भी कविता हो सकता है : विष्णु नागर, **प्रकाशक :** अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, **मूल्य :** 150 रु.

जीवनानुभव के देसी मुहावरे

अरुण होता

समकालीन हिन्दी कविता के प्रमुख कवियों में **श्रीप्रकाश शुक्ल** एक चर्चित नाम है। राजेश जोशी, अरुण कमल की पीढ़ी के बाद बद्रीनारायण, कुमार अम्बुज, अनामिका आदि के पश्चात जिन युवा कवियों के नाम उल्लेख किये जाते हैं उनमें जितेन्द्र श्रीवास्तव, श्रीप्रकाश शुक्ल, मदन कश्यप, प्रेमरंजन अनिमेष, निरंजन श्रोत्रिय आदि चर्चित हैं। श्रीप्रकाश के अब तक पांच कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं 'अपनी तरह के लोग' (1999), 'जहां सब शहर नहीं होता' (2001), 'बोली बात' (2007), 'रेत में आकृतियां' (2002), और सद्यतम कविता संग्रह **'ओरहन और अन्य कविताएं'** (2014)।

उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण के इस दौर में सब कुछ बड़ी तेजी के साथ बदल रहा है। यह बदलाव घनात्मक न होकर ऋणात्मक हो रहा है। आज के दौर में संवेदनहीनता चारों ओर पसरती जा रही है। कविताविरोधी इस खतरनाक समय में कविता लिखना या साहित्य सृजन करना साहस का काम है क्योंकि भूमंडलीकरण की तेज आंधी में हमारे मूल्य ढहते जा रहे हैं और पूंजी का वर्चस्व बढ़ रहा है। रचनाकार इस भयानक प्रवृत्ति का विरोध करता है और विरोध अथवा प्रतिरोध पूंजी को सख्त नापसंद है। ऐसी स्थिति में श्रीप्रकाश की कविताओं से गुजरना एक सुखद अनुभव है। उनकी काव्ययात्रा पर ध्यान दिया जाये तो स्पष्ट पता चलता है कि कवि अपने समय को भलीभांति जानता है। समझता भी है। आगत प्रतिकूल स्थितियों का सामना करने के लिए उसके पास अपनी जमीन है। देशज मुहावरे हैं। अपने 'लोक' के सहारे वह पूंजीवादी व्यवस्था की चालाकियों से जूझता है। उन्हें सही जवाब देने का प्रयास करता है। इसलिए 'ओरहन और अन्य कविताएं' में परम्परा और नवीनता का समवेश है तो 'स्थानिकता' और 'वैश्विकता' का सुंदर समन्वय भी। कवि के प्रयास में उसकी कविता 'स्टेटमेण्ट' बन कर नहीं रह जाती। ऐसा करते समय उसे पूर्णतया ज्ञात है कि कविता का अपना धर्म होता है। इस दृष्टि से श्रीप्रकाश की कविता औरों से भिन्न है।

'ओरहन और अन्य कविताएं' में सन् 2007 से 2013 के बीच लिखी गयी कविताएं संकलित हैं। सवाल यह है कि अपने पाचवें कविता संग्रह में श्रीप्रकाश नया क्या रचते हैं? अर्थात यह संग्रह पूर्ववर्ती संग्रहों से किस अर्थ में भिन्न है? बताना जरूरी है कि इस कवि ने हमेशा अपने को 'रिपीट' से बचाया है। विषय ही नहीं उसके प्रस्तुतिकरण को भी नये अंदाज में पेश करने की कोशिश की है। मसलन अपने पूर्ववर्ती संग्रहों में कवि की राजनीतिक दृष्टि, नारी दृष्टि तथा समय की हलचलें इतनी मुखर नहीं थीं जितनी कि यहां हैं।

जनतांत्रिक देश में प्रधानमंत्री सर्वाधिक क्षमतासम्पन्न होता है। देश का वर्तमान और भविष्य प्रधानमंत्री की कार्यकुशलता और भविष्यदृष्टि पर निर्भर करता है। लेकिन विडम्बना यह है कि आम जनता अथवा नागरिक के द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों का देश के विकास से कोई मतलब नहीं रहता है। जनतंत्र के नाम पर हो रहे प्रहसनों पर श्रीप्रकाश की दृष्टि पैनी रही है। 'देश के प्रधानमंत्री के नाम देश के एक नागरिक का खत' शीर्षक कविता में प्रधानमंत्री के बनारस दौरे के बहाने कवि की राजनीतिक चेतना स्पष्ट होती है। मौजूदा स्थिति पर कवि की चिन्ता जाहिर होती है। साथ ही,कविता में निहित उसकी व्यापक संवेदना का भी पता चलता है।

'आधुनिकता' के नाम पर हमारे वजूद मिट रहे हैं। उसकी लहरें हमारी सारी विशेषताओं को विनष्ट किये जा रही हैं। लेकिन, नेताओं का दावा है कि वे पूरे देश में आधुनिकता को स्थापित करने के बाद ही चैन लेंगे। आधुनिक बनाने के क्रम में 'मॉल', विदेशी कम्पनियों की पूंजी में इजाफा और अपने बैंक खाते में वृद्धि। सत्ता की इस चालाकी से परिचित है कवि। तभी तो उसका व्यंग्य है *''यदि कभी आधुनिक दिखेगा तो वह आपकी यात्रा से ही सम्भव है।''* (पृ.9) प्रसंगतः ध्यान दिया जाना चाहिए 'दिखेगा' पर। 'दिखना' और 'होना' एक जैसा नहीं है।

श्रीप्रकाश शुक्ल पक्षधर कवि हैं। उन्होंने गरीब, पीड़ित और उपेक्षित लोगों के प्रति अपनी पक्षधरता दिखायी है 'दो पंक्तियों के बीच' में राजेश जोशी ने 'इत्यादि' वर्ग के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए लिखा था *''इत्यादि हर जगह शामिल थे/पर उनके नाम कहीं भी/शामिल नहीं हो पाते थे।'' इस परम्परा को श्रीप्रकाश ने मौलिक ढंग से अपने अंदाज में व्यक्त किया है* 'पक्का महाल' शीर्षक कविता में *''और यह देख कर परेशान था कि जिस महाल को पक्का करने में/न जाने कितने खच्चरों ने दी अपनी आहुति/उनके लिए कहीं नहीं जगह है इस महाल में।''* (पृ.16) कवि को तनी हुई मुट्ठी अधिक सुंदर प्रतीत होती है न कि दूसरे की महानता को ढोने वाली खुली हथेली। कवि को सर्वाधिक भरोसा है तनी हुई मुट्ठी पर भले ही उसे असफलता क्यों न मिली हो। तभी तो कवि लिखता है *''आंधी में टूट कर गिरा हुआ मकान/ज्यादे भरोसे का होता है/अपनी अपनी सम्भावनाओं में/समर्पित सफलता से/ज्यादा मूल्यवान होती है/तनी हुई विफलता।''* (पृ.39-40)

श्रीप्रकाश सम्भावनाओं की तलाश करने वाले कवि हैं। इसलिए इनकी कविता निराश का संगीत नहीं सुनाती और न ही दुख का गीत गाती है। कवि कर्म के सौन्दर्य को उद्घाटित करना चाहता है। जो कुछ भी बचा हुआ है उसे बचाये रखने में विश्वास करता है। बचे हुए के आधार पर नवसृजन सम्भव हो सकता है। कवि के शब्दों में *''तुम्हारे टपकने से सम्भव है कुछ सूखने से बच जाये/कुछ फेंक सके नयी कोपलें/हरियाली उम्मीदों के साथ।''* (पृ.75) 'हाजी अली' शीर्षक कविता में आज के साम्प्रदायिक समय में कैसे आश्वस्त हुआ जा सकता है, उसका सुंदर चित्रण हुआ है *''यह थकेहारे मनुष्य के लिए/हमारी सभ्यता में सबसे बड़ा आश्वासन है/लगभग समुद्र की तरह।''* कहा जा सकता है कि श्रीप्रकाश की कविताई दुनिया में शोषित का अंधेरा, उसका दर्द अंकित हुआ है। उसके लड़ने की जुझारू चेतना से कविता का सौन्दर्य उभर कर सामने आता है। इस संदर्भ में सन् सत्तावन के

दलित क्रांतिकारी गंगू मेहतर पर आधारित कविता का उल्लेख किया जा सकता है। गंगू को 1858 में फांसी दी गयी थी। गंगू को कविता का नायकत्व प्रदान करते हुए कवि ने अपनी दलित चेतना का स्वरूप बताया है। साथ ही, उसका इतिहासबोध भी जाहिर होता है। देश की आजादी के लिए शहीद बने तमाम गुमनाम लोगों की गाथा इतिहास में अनुपस्थित है। भिखारी ठाकुर, दशरथ मांझी आदि का उल्लेख भी मिलता है। कवि ने गंगू पहलवान से आग्रह किया है *''हम चाहते हैं कि हमारे सामने एक बार फिर/तुम वैसे ही आओ/जैसे उस अंग्रेज इंजीनियर के सपने में आये थे/ जो पुल बना रहा था।''* (पृ.133)

आज के इस कठिन समय में सचाई किसी न किसी ओट का सहारा लेकर ही सामने आती है। गंगा के घाट पर बैठे लोगों को ठगते कनफुंकवे झूमते नजर आते हैं। वे अपने को परम ज्ञानी समझते हैं। मीठी, प्यारी बोली से लोगों को लुभाते हैं। इस बहाने अपने स्वार्थों की सिद्धि करते हैं। ऐसे कनफुकओं से सावधानी बरतनी होगी। लेकिन कविता का अर्थ इससे व्यापक है। सत्ता के दलालों से और सत्ताशीनों से देश को खामियाजा भुगतना पड़ रहा है। कवि का मानना है कि सच सच ही रहता है *''सच की दूरी या कि गति इतनी छोटी कैसे हो सकती है कि हम इन चीखों को/सुनना बंद कर दें जो भोपाल और दिल्ली से उठ कर हमारी आत्मा में हथौड़े की तरह बज रही हैं।''* (पृ.156)

श्रीप्रकाश के 'बोली बात' संग्रह में गाजीपुर अंकित हुआ है जबकि उनके सद्यतम संग्रह 'ओरहन और अन्य कविताएं' में 'बनारस' केन्द्र में है। कई कविताओं में विभिन्न संदर्भों और प्रसंगों में यह 'सनातन शहर' अपनी विशिष्टताओं के साथ चित्रित हुआ है। बनारस का जनजीवन हो अथवा उसके तीज त्योहार, मेले उत्सव आदि को कवि ने कविता में सुंदर ढंग से उकेरा है। कहा जा सकता है कि किसी कविता में बनारस अपने वैशिष्ट्य के साथ पाठकों के सामने आता है तो किसी दूसरी कविता में यह भारत के किसी भी शहर का प्रतिनिधि बन कर पेश होता है। यह भी है कि कवि ने बनारस के उज्ज्वल पक्ष को ही नहीं चित्रित किया है बाजारवादी, उपभोक्तावादी समय में संक्रमित प्रदूषित स्थितियों का भी जायजा लिया है। दरकते रिश्ते और टूटते सम्बंधों पर चिन्ता व्यक्त की है। 'प्रायश्चित', 'बी.एच.यू. परिसर में एक शाम', 'नागनथैया', 'कनफुंकवे', 'अड़ीबाज' आदि कविताओं के माध्यम से कवि ने एक सम्पूर्ण लोक को प्रस्तुत किया है। जनोन्मुखी एवं लोकोन्मुखी हुए बिना ऐसी कविताएं नहीं लिखी जा सकती हैं। कवि ने प्रचलित तीज त्योहारों के चित्रण के माध्यम से अपनी नयी दृष्टि का परिचय दिया है। 'सावन में शिव' कविता में मशीनी सभ्यता में पल रहे मनुष्य की यंत्रणा है और उसका आत्मालोचन भी। बोलबम वाली धार्मिक आस्था नहीं बल्कि *''सम्बंध अब ध्वनियों में कहीं खो गये हैं/हवाएं अब आंधियों में विलीन हो गयी हैं।''* (पृ.84) इसी तरह 'साईं' कविता में स्पष्ट कहा गया है ''मोक्ष उसके यहां/ठीक ठीक आदमी होना है/न कम न ज्यादा।'' (पृ.34)

श्रीप्रकाश के लिए कविता भावों का सहज उच्छलन है। पाठक जानते हैं कि यह सहजता कितनी कठिन है। यह भी सच है कि श्रीप्रकाश की कविता सपाटबयानी से मुक्त है। चंद शब्दों में ज्यादा कुछ कहने की कला इसे मालूम है। 'भूख' शीर्षक कविता की पंक्तियां दृष्टव्य हैं *''यहां अंगीठी थी/जिसकी आग वर्षों से धधक रही थी/जिसमें अंतड़ियों के पकने की आवाज आयी थी।''* (पृ.135) 'अंतड़ियों के पकने की आवाज' सम्भवतः हिन्दी कविता में पहली बार सुनायी पड़ती है।

समकालीन हिन्दी कविता में 'घर' की चिन्ता प्रायः सभी कवियों की रही है। दरअसल आज 'घर' घर नहीं रहे, मकान बन गये हैं। मकान बनते हैं ईंट, पथर, बालू और सीमेण्ट से। घर की स्थापना होती है स्नेह, प्रेम, करुणा, भाईचारा, बहनापा और तमाम मानवीय गुणों से। ताप और ऊष्मा से सम्बलित ध्वनियों सुन कर कवि को घर का अहसास होता है *''जितनी हो बड़ी ध्वनियां/उतना ही सुंदर घर/मेरे घर का पता इन्हीं ध्वनियों में है।''* (पृ.54) कवि को पूरी तरह विश्वास है कि उसके

न रहने पर भी घर रहेगा। क्योंकि घर है तो *''आखिरकार थोड़ी सी नमी, थोड़ी सी रोशनी और थोड़ी सी हवा तो बची ही रहती है/सांस के एवज में/एक घर में।''* (पृ.58)

मुक्तिबोध ने अपने समय में फैली भयानक चुप्पी पर चिन्ता जतायी थी। 'सब चुप' हो जायें तो समय और समाज में मुर्दनी छा जायेगी। श्रीप्रकाश की कविता 'हमारे समय का एक शोकगीत' उपर्युक्त भावबोध की है। उनका कहना है 'बोलो', अर्थात चारों ओर छायी हुई गहरी चुप्पी को तोड़ने की जरूरत है। मूकता को मुखरता में तब्दील करना होगा। कवि का आग्रह है *''खराब कविताओं पर बोलो/खराब रचनाओं पर बोलो/बोलो खराब विचारधाराओं पर।''* दरअसल पूंजी के वर्चस्व ने सबको चुप करा दिया है। 'नपुंसक कृतज्ञता' भरे माहौल से तभी उबरा जा सकता है जब कोई तर्कपूर्ण और अर्थवान संवाद कायम हो। कवि का सपना है कि समाज में व्याप्त दमन, शोषण, अन्याय, अत्याचार आदि का विरोध हो। कवि ने अपनी दूसरी कविता में कहा भी है *''हमारा यह गूंगापन बता रहा है कि हम/एक विकसित समाज के अत्यंत पिछड़े नागरिक हैं।''* (पृ.84) कवि को विश्वास है कि जिस दिन सामान्यजन जागृत और सचेतन हो जायेगा उसका आंदोलन जयांदोलन में बदल जायेगा, आम आदमी की आवाज उठेगी तो दमनकारी ताकत कमजोर साबित होगी *''इनकी आवाजों को जरा गौर से सुनना/ये इनके भीतर से फूटते हुए लावे हैं/जो धरती को कंपा रहे हैं।''* (पृ.81) श्रीप्रकाश की चिन्ता के केन्द्र में आम आदमी और उसका समय मौजूद है। इसलिए कवियों से श्रीप्रकाश का सवाल गौरतलब है *''क्या तुमने कभी सूखते चाम के भीतर के मनुष्य को सिसकते हुए देखा है?''* (पृ.114)

अपने प्रथम कविता संग्रह 'अपनी तरह के लोग' से लेकर अब तक के संग्रहों में श्रीप्रकाश ने अपनी लोकधर्मिता को कविता में पिरोया है। दरअसल उनके कवि को अपने लोक की सही समझ है। केवल लोक में प्रचलित एकाध शब्दों को कविता में संयोजित कर देने से लोकचेतना मुखर नहीं होती। इसके लिए लोक में रच बस कर उसे उज्जीवित करना होता है। श्रीप्रकाश की कविता में लोक का वर्णन नहीं, चित्रण हुआ है। अवध और भोजपुर लोक की कई झलकियां कवि की रचनाओं में देखी जा सकती हैं। 'बाटी' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियां दृष्टव्य हैं *''कौन जाने/को होई/हम पोवब/की उ पोई।''* (पृ.62) इसी तरह 'छठ की औरतें' कविता में कवि ने 'कबीर की कुलबोरिनों' के 'अरघ' को देसी मुहावरे में प्रस्तुत किया है *''अपने पानिब के भार से पराभूत में परवैतिनें/हरही गाय की तरह हरहराते हुए जब चलती हैं/तब वे एक ऐसे सत्याग्रह पर निकली हुई जान पड़ती है...''* (पृ.119) एक उल्लेखनीय बात यह है कि श्रीप्रकाश की लोकधर्मी कविता में लोक की मौजूदगी तो होती ही है उसमें युगीन चिन्ता भी रहती है। लोक के माध्यम से वर्तमान की विसंगतियों से जूझने की शक्ति निहित होती है, ऐसा कवि का विश्वास है। समीक्ष्य संग्रह में 'ओरहन' शीर्षक कविता है और उसके अनुसार संग्रह का नामकरण भी हुआ है। ओरहन लोकभाषा का शब्द है जो उलाहना अथवा शिकायत के अर्थ में प्रयुक्त होता है। ओरहन व्यापक संदर्भों में प्रयुक्त हुआ है। मसलन, नदी का मनुष्यकृत प्रकृति के दोहन से, नागरिक का प्रचलित व्यवस्था से, स्त्री का मर्दवादी व्यवस्था से, लोक का 'आधुनिकता' से, कवि का अपने आप से आदि। 'ओरहन' की काव्य पंक्तियां देखी जा सकती हैं *''बाढ़ जो कि बाढ़ थी/असल में बाढ़ नहीं थी/यह तो नदी का एक ओरहन था/अपनी यातना के खिलाफ!''* (पृ.25) पूछा जा सकता है कि क्या ऐसी शिकायतों से समाज व्यवस्था बदल जायेगी? सपनों का समाज निर्मित हो जायेगा? नहीं, वैसा तो न हो सकेगा लेकिन उसकी बुनियादी जरूरत को बल मिलेगा।

श्रीप्रकाश के लिए प्रकृति का आकर्षण कभी न समाप्त होने वाला आकर्षण है। उन्होंने प्रकृति और जीवन के बीच गहरे रिश्ते को जीवंत रूप में चित्रित किया है। इस दृष्टि से 'कलंगूट', 'बसंत' आदि कविताएं पढ़ी जा सकती हैं। यहां कवि का जीवनानुभव स्पष्ट तौर पर झलकता है *''सन्न*

झम्प झांय झूं/सनन सनन झनन झनन/झट पट/झपट झपट/झनझनाती आ रही है।'' (पृ.33) श्रीप्रकाश की कविताएं यह बताती हैं कि समय की शुष्कता को परे धकेलने के लिए प्रकृति की आदि दुनिया में लौटना आवश्यक है। इसके लिए शब्दों की झाड़ियां नहीं बल्कि नैसर्गिकता को महसूस करना जरूरी है। ऐसे मौकों पर कवि यथासम्भव मितव्ययिता को अपनाता है।

ध्यातव्य है कि इस संग्रह की अनेक कविताएं स्त्री को केन्द्र में रख कर रची गयी हैं। इनमें बिना किसी चीख पुकार के नारी के विविध रूपों का अंकन हुआ है। गांव, शहर, कस्बे की नारी की विविध मनःस्थितियों को कवि ने संजीदगी के साथ उकेरा है। स्त्री विमर्श का मंच बनाना, नारीवाद का झंडा गाड़ना अथवा पुरुष विरोधी नारी का चित्रण करना इन कविताओं का उद्देश्य नहीं है। इन कविताओं में वंचित ठगी हुई, निरुपाय नारी के बिम्ब हैं तो पूजा करती स्त्री, आधुनिक स्त्री, छठ की औरत, बच्ची आदि के बहाने कवि की नारी दृष्टि का स्वरूप स्पष्ट होता है। साथ ही नारी केन्द्रित कविताओं के माध्यम से कवि की अंतर्दृष्टि और उसकी अटूट संलग्नता का भी पता चलता है।

आज के उपभोक्तावादी दौर में नारी अस्मिता के समक्ष भयानक संकट खड़ा है। धार्मिक पुरुत्थानवाद ने इस संकट को और भी गहरा बनाया है। नारी की चीख को मर्दवादी व्यवस्था लील लेना चाहती है। ऐसी स्थिति में श्रीप्रकाश की नारी संघर्षशील रूप में सामने आती है। श्रीप्रकाश की नारी चूल्हे चौके तक सीमित नहीं है बल्कि अपने अस्तित्व की तलाश करना भी जानती है। वह विश्वास दिलाती है *''सृष्टि के सारे चमत्कार त्रिपुंड से ही शुरू नहीं हाते/कभी कभी वे एक कुंड से भी शुरू हो सकते हैं।''* (पृ.119) यह नारी केवल प्रेम का पुतला नहीं है, कामिनी नहीं है बल्कि यह *''जहां वह होती है/उसकी हंसी होती हैं/और उसकी गुर्राहट भी।''* (पृ.125) श्रीप्रकाश की स्त्री 'मनुष्य स्त्री' है। वह निर्माण करती है। सृजनशील है। कवि के शब्दों में *''...जितनी बार शापग्रस्त होती है/उतनी बार अपने रकबे का सृजन करती है।''* (पृ.122) साधारण जीवन बिताने वाली श्रमशील लरिकोर के श्रम सौन्दर्य की तलाश करने में तथा उसके अस्मिताबोध को व्यक्त करने में श्रीप्रकाश को सफलता हासिल हुई है *''इस प्रकार अपने जन्म से लेकर अंतिम समय तक वह एक लरिकोर थी/और अपने लरिकोर लेने के दायित्व को/स्वाधीन भारत के एक सभ्य नागरिक की तरह निभा रही थी।''* (पृ.128) कवि ने 'बच्ची' शीर्षक कविता में विकारग्रस्त मानसिकता के बलात्कारियों के द्वारा बच्ची की हत्या के प्रसंग में लिखा है

उसका गला दबाते समय भी यह शब्द निकला होगा अंतिम बार
तो क्या उन्होंने तनिक भी सोचा होगा
यह एक बच्ची की नहीं मां की आवाज है
जो अपनी ही संतान से कद्र ओ रहम की भीख मांग रही है। (पृ.153)

श्रीप्रकाश की कविता की भाषा सहज है। देशज शब्दों और देसी मुहावरों से युक्त। इससे भाषा समृद्ध हुई है तथा कवि के भाव सहज रूप से सम्प्रेषणीय हो जाते हैं। कवि बड़े प्रभावशाली ढंग से अपनी चिन्ताओं और सरोकार से पाठकों को परिचत कराने में समर्थ हो जाता है। लोकभाषा के तमाम शब्द भाषा को प्रखर बनाते हैं। इस कवि के लिए कविकर्म अनुभव आधारित है। उसके 15-20 वर्षों के कविता लेखन का सहज प्रवाह भी समीक्ष्य संग्रह में देखा जा सकता है। एक बात और गौर करने की है कि इस संग्रह तक आते आते कवि का लेखन परिसर पहले से अधिक व्यापक हुआ है। यहां अतीत की स्मृतियों को वर्तमान के संदर्भ में परख कर पेश किया गया है। यहां वर्तमान की चुनौतियां हैं और समय समाज की विसंगतियों का चित्रण भी। कहना न होगा कि 'ओरहन और अन्य कविताएं' एक महत्वपूर्ण कविता संग्रह है।

ओरहन और अन्य कविताएं : श्रीप्रकाश शुक्ल, **प्रकाशक :** राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली-110002, **मूल्य :** 300 रु.

लघुकाया में वृहत आख्यान

राजेन्द्र राव

'खिलाड़ी दोस्त' जैसी कविताओं के संकलन से पहचाने जाने वाले युवा कवि और पत्रकार **हरे प्रकाश उपाध्याय** के सुंतवां कलेवर वाले पुरस्कृत उपन्यास **'बखेड़ापुर'** ने जैसे एक बार फिर से देहात सम्बंधी खटराग को छेड़ कर हिन्दी कथाधारा में तेजी से पनपती सम्भ्रांत और दीप्तिमान प्रतिभाओं को अनायास ही असुविधापूर्ण स्थिति में डालने का उपक्रम रचा है। अपने सम्भावित विकास सूचकांक पर इतराते देश के नफासतपसंद बुद्धिजीवियों की अत्यंत परिष्कृत पठन अभिरुचि पर जैसे सुनियोजित प्रहार करने के सदुद्देश्य से लिखी गयी उपन्यासिका के नखशिख इतने दुरुस्त हैं कि पढ़ते हुए कभी कभी ब्लाक बस्टर फिल्म की पटकथा होने का भ्रम और संदेह भी होता है। वह शायद इसलिए कि अपने पहले ही उपन्यास में भला कोई इतना सजग होता है क्या! अपनी लघु काया के बावजूद यह साहित्य की राजनीति में एकदम पोलेटिकली करेक्ट वितान वाली ग्राम्य गाथा है। कैसे, यह जरा बाद में देखेंगे मगर इस सूत्र को पहले ही हृदयंगम कर लिया जाये कि अपने तमाम अंधकार और पिछड़ेपन के बावजूद बखेड़ापुर स्वतःस्फूर्त प्रतिरोध और पिछड़ी जातियों की संघर्षशील मुद्रा के चलते रेण के उपन्यास मैला आंचल के गांव मेरीगंज और श्रीलाल शुक्ल के रागदरबारी के शिवपालगंज के बरक्स कहीं अधिक प्रेरणादायी और प्रगतिशील प्रतीत होता है। हालांकि यह स्थिति किसी भी सूरत में आश्वस्तिदायक न होकर महज प्रतीकात्मक है। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के दर्मियान बसी भोजपुर पट्टी में जातीय संघर्ष और नक्सली अपरूपों की मौजूदगी यथास्थिति के विरुद्ध स्पष्ट सम्भावनाओं की ओर इंगित करती है।

लगभग तीन दर्जन रंगबिरंगे पात्रों के बावजूद उपन्यास नायकविहीन है या तो फिर बखेड़ापुर को ही आख्यान का नायक मान लिया जाये। गांव की भाषा में परिभाषित करें तो यह एक लफंडूस गांव है। अपनी दकियानूसी सोच,पिछड़ेपन और विकास के अवसरों से वंचित होने के क्रम में यह प्रेमचंद, रेणु, नागार्जुन के गावों को टक्कर देता है। यहां तक कि शिवपालगंज भी इसके मुकाबले कहीं

अधिक समृद्ध और विकसित कहा जा सकता है। यूं तो बखेड़ापुर की बदहाली के अनेक कारक कृति में उभरते हैं परंतु लेखक ने सबसे प्रमुख कारण लचर और लगभग ध्वस्त शिक्षा व्यवस्था को माना है। कथा का प्रारम्भ दो ग्रामीण बालकों सुदामा और धीरू के स्कूल गमन से होता है। यह स्कूल कैसा था जरा देखिये ''रामदुलारो देवी मध्य विद्यालय, बखेड़ापुर में मास्टर कुल तीन थे, कमरे कुल चार और कक्षाएं कुल आठ। पढ़ने वाले छात्र कुल सौ के करीब होंगे। पहली और दूसरी कक्षाएं एक कमरे में लगती थीं और तीसरी तथा चौथी कक्षाएं एक कमरे में। पांचवीं और छठी एक कमरे में और सातवीं आठवीं एक कमरे में। चार छोटे छोटे कमरों में सौ सवा सौ छात्र छात्राएं भेड़ बकरियों की तरह भरे रहते।... अक्सर बात बेबात छुट्टियां होती रहतीं। जैसे कभी तीन मास्टरों में से कोई एक छुट्टी कर लेता तो किन्हीं दो कक्षाओं की छुट्टी कर दी जाती। और ऐसा अक्सर होता ही रहता... स्कूल तो वैसे भी पढ़ने वाले लगनशील बच्चों के भरोसे ही चल रहा था? अक्सर पढ़ाने का काम भी बच्चों से ही लिया जाता।"

इस स्कूल में बगल के गांव पचमा के एक मास्टर हैं जिन्हें बच्चे पचमा मास्साब कहते हैं। वे अक्सर स्कूल की प्रार्थना के बाद अपने खेतों की बुवाई या कटाई या पटवन का काम देखने निकल जाते हैं। वे अपने घर के अकेले कमासुत आदमी हैं। हेड सर को इतनी मीटिंगों में बाहर जाना होता कि महीने में कुछ दिन ही बच्चों को उनके दर्शनों का सौभाग्य मिल पाता। वे बीमार भी रहते थे इसलिए स्कूल आते तो छात्रों में उनकी सेवा के लिए होड़ लग जाती। एक बार छठी में पढ़ने वाली रिंकी तो हेड सर के सिर में चम्पी के लिए घर से सरसों तेल की शीशी ले आयी। हेड सर का जी बहुत ललचाया, पर एक तीसरे मास्टर साहब, उगना मास्साब ने हेड सर से साफ साफ अपनी असहमति जता दी "देखिये, स्कूल की लड़कियों से तेल लगवाइयेगा तो ठीक नहीं होगा। किसी दिन बवाल हो जायेगा। फिर हम सब बदनाम होंगे।" हेड सर को इस आनंद से वंचित रखने की सजा उगना मास्साब के तबादले के रूप में होती है। उनकी जगह शहर से आती हैं संगीता मैडम तो गांव में हलचल मच जाती है। स्कूल भी जैसे सोये से जाग उठता है। पहली बार यह प्रश्न उठता है कि विद्यालय में लड़कियों का शौचालय क्यों नहीं है? संगीता मैडम भले ही परेशान हों मगर गांव के लोग और स्वयं हेड मास्साब इसे कोई गम्भीर समस्या नहीं मानते। ग्राम प्रधान का मानना तो यह है कि लिख पढ़ कर लड़के किसी काम के नहीं रहते मगर एक बात पर सब एक राय हैं कि लड़कियों के लिये आठवें का प्रमाणपत्र अत्यावश्यक है ''उस प्रमाणपत्र के बूते ही इस इलाके की लड़कियों को मनचाहे 'घर वर' मिल सकते थे। जिस लड़की को वह प्रमाणपत्र नहीं मिलता था उसके बाप को उसकी शादी के मामले में इतनी जगह शर्मिन्दगी और इस तरह की आर्थिक और सामाजिक परेशानियां उठानी पड़तीं थी कि वह आत्महत्या जैसे अंतिम विकल्प पर भी एक बार विचार करने को बाध्य हो जाता था।... यह अनायास नहीं था कि उस पूरे इलाके में रामदुलारो मध्य विद्यालय की पढ़ाई को 'विवाह पढ़ाई' कहा जाता था। 'पढ़ेगा का, विवाह पढ़ रहा है।" उत्तर भारत के प्राथमिक शिक्षातंत्र का हाल ही कुछ ऐसा है कि कितनी ही संजीदगी से चित्रण किया जाये, हर अभिव्यक्ति की परिणिति व्यंग्य में ही होकर रहेगी। इसमें नुकसान इसलिए हो जाता है कि हिन्दी कथा साहित्य में व्यंग्य को दोयम दर्जे का लेखन माना जाता है और बहुत कम लोगों को व्यंग्य और विनोद का अंतर समझ में आता है।

अशिक्षा के बाद लेखक ने गांव में व्याप्त अंधविश्वासों और पोंगापंथ को विकास की राह का बड़ा रोड़ा माना है और बखूबी निरूपित किया है। इस गांव के स्कूली बच्चों के मन में भूत प्रेत चुड़ैल गहरी पैठ बना लेते हैं क्योंकि उनके चारों तरफ ऐसे किस्से ही किस्से हैं जिनका जन्म कुछ तो समय बिताने और कुछ ठलुओं की गप्प गोष्ठियों में रहस्य रोमांच का तड़का लगाने के फेर में होता है। यह अंधविश्वास असहाय और वंचित महिलाओं के शोषण और उत्पीड़न की कारगर भूमिका

तैयार करते हैं इसलिए इनके विरोध में मुखिया लोग खड़े नहीं होते। चिकित्सा और उपचार की आधुनिक सुविधाओं के अभाव में गम्भीर रोगों से पीड़ित असहाय स्त्री पुरुष झाड़फूंक और ओझाओं की शरण में जाने को विवश हैं। उपाध्याय ने इस उपन्यास में कुछ मार्मिक और मन में कड़वाहट छोड़ जाने वाले दृश्य प्रस्तुत किये हैं। जैसे लोटन बहू ''उसके बारे में सब मानते थे कि वह एक मानी हुई डायन है। उसके बारे में लोगों का कहना था कि शादी के साल भर बाद ही उसे एक बहुत सुंदर बेटा पैदा हुआ जिसे वह जन्मते ही खा गयी और अगले साल अपने हट्टे कट्टे पति को।... उसके बारे में कहा तो यहां तक जाता है कि गांव के कई जवान मर्दों और बच्चों को वह खा चुकी है। इसलिए बहुत मजबूरी न हो तो उसे जल्दी कोई अपने घर फटकने नहीं देता था।" लेकिन उसी लोटन बहू से सुदामा के भैरो चाचा के यौन सम्बंध हैं। यौन शोषण में यह चुड़ैल होना बाधक नहीं होता। उधर पचमा मास्साब के लड़के की शादी को चार साल हो गये हैं और बहू की गोद अभी तक हरी नहीं हुई है तो पढ़े लिखे और चालाक होने के बावजूद उनके सामने धुरीराम ओझा के पास जाने के अलावा कोई चारा नहीं है। ''धुरीराम गांव का माना हुआ ओझा है। बहुत ख्याति है उसकी। जवार भर के पांच छै गांवों में जबरदत पूछ है। किसी को 'हवा बयार' लग जाये, किसी को भूतिन प्रेतिन पकड़ ले, किसी को बेटा चाहिए, किसी का मरद नहीं मान रहा है, किसी का सवांग कलकत्ता से लौटा नहीं चार साल से, दौड़ो धुरिया के पास, पकड़ लाओ। किसी को भभूत देता है, किसी को फूल देता है, किसी से अंग्रेजी दारू लेके श्मशान में साधना करता है और सबके बाधा दूर कर देता है। दूर न भी करे तो मुसीबत हलुक कर ही देता है।" भूअर दुसाध की दर्दनाक मौत एक नीमहकीम और ओझा के चक्कर में होती है और उसकी असहाय विधवा लछमनिया और जवान बेटी परवतिया गांव के दबंगों की नोचखसोट के लिए सुलभ हो जाती है।

यूं तो औसत भारतीय गांव में जाति आधारित तनाव होना सामान्य स्थिति है लेकिन बखेड़ापुर एक विशिष्ट किस्म का टेस्ट केस (नमूना) है। इसमें सवर्ण और छोटी समझी जाने वाली जातियों के बीच तो गहरी खाईं है ही, सजातीयों में परस्पर राग द्वेष भी कम नहीं है ''वैसे तो पूरा गांव आपसी संकट में परस्पर एकजुटता, परोपकार और समरसता का परिचय देता था। पर भीतर भीतर भयंकर घृणा और भेदभाव भी व्याप्त था। ...कोई पिछड़ा या दलित अच्छा कपड़ा पहन ले या वह बाबू लोगों के कहने पर काम करने से मना कर दे तो, उसका सारा 'आकी बाकी' पूरा हो जाना तय था।" इस तरह एक न एक बखेड़े की भूमिका बनती ही रहती थी लेकिन जातीय संघर्ष तब तीव्र हो उठता है जब दलितों और पिछड़ों को सत्ता में भागीदारी देने की वैधानिक विवशता को और अधिक टालना मुश्किल होने लगता है। गांव के समृद्ध सवर्ण परिवार जो सदियों से लाठी के बल पर मनमानी करते आये हैं अपनी सामंतवादी सोच को किसी भी कीमत पर छोड़ने को तैयार नहीं हैं। ऐसा ही एक परिवार है ज्वाला सिंह का ''गांव में ज्वाला सिंह की तूती बोलती थी। धन जन दोनों से बीस थे। पैसा पावर सब था उनके पास। वे छह भाई थे। चार भाई गोविन्द सिंह,ज्वाला सिंह,जमुना सिंह और गंगा सिंह के भरे पूरे परिवार थे। सबके चार चार पांच पांच बेटे थे। बाकी दो भाई छेदी सिंह और छांगुर सिंह में छांगुर सिंह की शादी ही नहीं हुई थी। उनके अलग ही किस्से थे। लोग कहते थे कि छांगुर बाबू रेज टोली के चंदना दुसाध बो से लटपटाए हुए हैं। और छेदी सिंह गांव में निर्मोहिया बालम के नाम से प्रसिद्ध हैं। लोग कहते हैं कि गांजा दारू के डबल नशे में उन्हें एक दिन जाने क्या सूझा, न जाने उन्होंने क्या देखा, न जाने उनके मन में क्या आया कि अपनी बीवी को काट डाला मछली की तरह कई खंडों में। सारे भाइयों ने मिल कर बात संभाल ली।"

लछमनिया और परवतिया के बलात्कार और लछमनिया की नृशंस हत्या के बाद गांव की दबी ढंकी सी राजनीति में उबाल आ जाता है। मुखिया, पुलिस, विधायक ही नहीं छोटी जातियों के लोग

भी हरकत में आ जाते हैं। गांव के दलितों और पिछड़ों का नेतृत्व रूप चौधरी कर रहा है। ''रूप चौधरी एक पिछड़ी जाति से आता था और न सिर्फ पिछड़ों और मुसलमानों के बीच बल्कि गांव के बहुसंख्यक दलितों यानी छोटी जाति वालों के बीच भी लोकप्रिय हो रहा था। रूप चौधरी थोड़ा पढ़ा लिखा और तेज तर्रार नेता था।... यही कारण था कि गांव के सवर्णों की आंखों का कांटा भी बनता जा रहा था। वह सीपीआई (एमएल) का कार्यकर्ता था।'' यहां से कहानी थोड़ी सी रूमानी होती है जब रूप चौधरी अपने बाप के विरोध के बावजूद परवतिया को अपने घर में रख लेता है। उधर पति की उपेक्षा की मारी संगीता मैडम भी अपने प्रेमी डाक्टर से सम्बंध बना लेती है और गांव के खालीपन में उनका साहित्य प्रेम सुप्तावस्था से जाग उठता है ''जिस तरह कादम्बिनी से वह हंस पर उतर आयी थीं, उसी तरह वे कविता से कहानी पर भी उतर आयी थीं। अभी हाल में ही दिल्ली के दरियागंज से प्रकाशित होने वाली एक चिड़िया नामधारी पत्रिका में उनकी लम्बी कहानी 'दो टांगों के बीच' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी, जिसकी जबर्दस्त चर्चा दिल्ली के मंडी हाउस नामक जगह के आसपास हो रही थी और यह सम्भावना जतायी जा रही थी कि नामचीन रंगनिर्देशकों के निर्देशन में उसका कभी भी और कहीं भी मंचन हो सकता है।... कुछ का मानना था कि कहानी लेखिका के अत्यधिक सुंदर और कमनीय होने के कारण प्रकाशित हुई है और इसका पुनर्लेखन स्वयं पत्रिका के सम्पादक द्वारा सम्पन्न हुआ है।" कथा के इस मोड़ पर समकालीन सहित्यिक परिदृश्य पर चुटकी लेते हुए संगीता जी (जो स्वयं पिछड़ी जाति से हैं) साहित्य से बरास्ते पत्रकारिता (मार्फत रसिक विधायक जी) सीधे राजनीति में प्रवेश कर जाती हैं। भले ही देहाकर्षण उनकी एकमात्र प्रतिभा रही हो मगर इस तरह खटाखट राजनीति की सीढ़ियां चढ़ जाना कुछ अस्वाभाविक सा लगता है। दूसरी ओर गांव के दबे कुचले लोग दलित नेतृत्व के इर्द गिर्द संगठित होने लगे हैं। बदलाव की गर्म बयार बहने लगी है।

''पार्टी (माले) के कार्यकर्ता जगह जगह दूसरे गांवों में लम्बी चौड़ी जोत वाले 'भू सामंतों' के खेतों पर लाल झंडा गाड़ कर हथियारों के बल पर कब्जा कर रहे थे जिसकी खबरें बखेड़ापुर के लोगों को डरा रही थीं।" फलतः सवर्णों की महावीर सेना अस्तित्व में आ जाती है। ''पूरे ज्वार भर में दहशत फैल गयी थी। तेजी से जातीय अविश्वास और हिंसा फैलने लगी थी।" इस तरह भीषण हिंसक टकराव की स्थिति उत्पन्न तो होती है मगर अनायास ही टल जाती है। शायद इसलिए कि लेखक को बुलेट के बजाय बैलट की लड़ाई का चित्रण करना और वर्तमान निर्वाचन प्रणाली और प्रक्रिया की निष्फलता को रेखांकित करना अधिक महत्वपूर्ण लगता हो। लेकिन यह उल्लेखनीय है कि 'बखेड़ापुर' अपने मिजाज और तेवर में मेरीगंज और शिवपालगंज से बहुत आगे है जाहिर सी बात गांव की नहीं उसके सर्जक की सोच और समझ की हो रही है। हरे प्रकाश उपाध्याय भले ही नियमित कथाकार न हों, उनकी कहानियां अक्सर दिखायी न देती हों मगर इस साहसिक और बेहद सजगता से लिखे गये आख्यान में वह एक निष्णात किस्सागो के अवतार में सहसा उतर कर चौंका देते हैं। मुझे लगता है कि वह लम्बी तैयारी के बाद मैदानेजंग में उतरे हैं। उत्तरार्ध में बखेड़ापुर भी खासा मैदानेजंग बन जाता है जब नक्सली किस्म की छापामार टुकड़ियां और पराक्रमी महावीर सेना जातीय संघर्ष की प्रतीकात्मक लड़ाई में उलझने को लगभग तैयार हो जाती हैं। ''पार्टी कार्यकर्ता और महावीर सेना के जवान केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल की तैनाती के बावजूद गांवों में गुप्त रूप से घूमते रहते और अपने समर्थकों के घरों में छिप कर रहते, मीटिंग करते और चंदा वसूलते। गांव वालों के पास आमदनी का कोई स्रोत नहीं बच सका था, मगर अपने अपने संगठनों को चंदा देना विवशता थी। ''यहां दृष्टव्य है कि चंदा और खाने पीने, रहने की सुविधाएं निर्ममतापूर्वक वसूल करने वाले ये संगठन अंततोगत्वा शोषक और उत्पीड़क की भूमिका में उतर आते हैं। यहां कथाकार सूचित करता है कि ''फिर भी

नक्सली पार्टी के दस्तों के उत्पात और अत्याचार की शिकायत कम से कम पार्टी के भीतर की जा सकती थी और उसकी सुनवाई भी होती थी, मगर महावीर सेना के दस्तों के अत्याचार और जुल्म की कहीं कोई सुनवाई नहीं थी? उसे सहने और चुप रहने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था।" जाहिर होता है कि कथावाचन में ईमानदार किस्म की साफगोई है आरोपित पक्षधरता नहीं, इसने कथ्य की विश्वसनीयता बढ़ाने में उल्लेखनीय योगदान किया है। एक बीयर बार में धीरू और सुदामा मिलते हैं तो गांव को लेकर कुछ मुक्त चिन्तन होता है। धीरू का मानना था "लोगों में हथियारों की होड़ पैदा करने के लिए कम्युनिस्ट पार्टियां भी जिम्मेदार हैं। वे वर्गशत्रुओं से लड़ने की जगह कमोबेश एक ही तरह की समस्याओं और आर्थिक स्थितियों से घिरे लोगों को आपस में लड़ा रही हैं। जिन गांवों में कम्युनिस्ट पार्टियों ने इस तरह का युद्ध छेड़ा है वहां खेती किसानी का काम बंद हो गया है। किसान और मजदूर दोनों छटपटा रहे हैं।" सुदामा बताता है कि महावीर सेना को मुख्यमंत्री की ओर से परोक्ष आर्थिक और प्रशासनिक मदद मिल रही है। वहीं कम्युनिस्टों के प्रति भी सरकार का रुख नरम है। उपाध्याय चूंकि लम्बे अर्से तक पत्रकार रहे हैं इसलिए उनके द्वारा बेबाकी से प्रस्तुत किये गये तथ्यों को नकारा नहीं जा सकता। बीयर के प्रभाव में ढीले हुए सुदामा के ज्ञानतंतुओं में व्याप्त निराशा को देखिये ''भाई धीरू अब गांवों का कुछ नहीं हो सकता। वहां तमाम असुविधाएं हैं। जाति पांति है। पढ़ने लिखने की सुविधा नहीं है। मारकाट है। वहां अब न कोई मास्टर जाना चाहता है न डाक्टर ऐसे में हम क्या कर सकते हैं?''

यहां तक तो उपन्यास की लघुकाया कथ्य को निबाह ले जाती है मगर जब चुनावी युद्ध का डंका बज जाता है तो कहानी एक दिलचस्प मोड़ पर आकर जैसे ठहर जाती है। सत्तारूढ़ दल की ओर से संगीता मैडम को टिकट दिया गया है जिनका कोई राजनीतिक इतिहास नहीं है। जनसंघर्षों में भागीदारी तो छोड़िये किसी किस्म की कोई भी जनचेतना या समझ नहीं है। लेकिन रूप चौधरी जैसे जुझारू युवा नेता को चुनावी अखाड़े में चित्त करने के लिए मुख्यमंत्री के आदेश से संगीता मैडम को चुनावी अखाड़े में उतार कर भारी बहुमत से जितवा दिया जाता है। यह अपने आप में एक आंख खोलने वाली घटना है परंतु इसे अंतिम अध्याय में जिस फुर्ती से निपटा दिया गया है वह पाठक को बीच भंवर में लगभग अतृप्त छोड़ जाती है। यह भी सम्भव है कि इस प्रकरण पर कोई स्वतंत्र आख्यान लिखे जाने की राह देख रहा हो।

इस उपन्यास की सबसे बड़ी खूबी इसकी जीवंत, धड़कती हुई और सीधे मन में उतर जाने वाली सहज भोजपुरी भाषा की अद्‌भुत छटा और बांकपन है। लेखक ने गांव में बोली जाने वाली खांटी भोजपुरी के मौलिक तत्वों से कोई छेड़छाड़ नहीं की है (वहां अरे को 'आरे' बोला जाता है तो आरे ही लिखा है)। सार, सुकवार, जानर, सिकड़ी, असहीं गरम गाय, बंड, जेठवार, लफंडूस, लवंडा, नान्ह, मलिकार, टप, नौछटिहे, रांडी, सुभेख, टोटरम, निसरधी, मजिगर, मसवा जैसे टटके आंचलिक शब्दों की एक अनवरत झांकी है जो बराबर कहानी के साथ साथ चलती रहती है। आधा मन तो इसी लटके झटके वाली भाषा में भरमाया रहता है। भले ही रेणुजी की तरह रससिक्त और संगीतमय न हो। इस किस्म का एकदम गैररूमानी और खुल्ला उपन्यास लिखते हुए भी हरे प्रकाश उपाध्याय भूले नहीं हैं कि वे एक सिद्ध कवि भी हैं इसीलिए प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में जाने माने आधुनिक कवियों के उद्धरण नाज ओ अदा से दिये गये हैं। दलित और पिछड़ों के युयुत्सु जुलूसों को गोरख पांडेय और नारायण कवि के समूह गीत गाते हुए दिखाया गया है। कुछ मार्मिक लोकगीत और दिलचस्प उपकथाएं पाठकीय रुचि के प्रवाह को अक्षुण्ण बनाये रखती हैं। इसे पढ़े बिना छुटकारा कहां मिलेगा?

बखेड़ापुर : हरे प्रकाश उपाध्याय, **प्रकाशक :** भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, **मूल्य :** 170 रु.

भटकती जिन्दगियां, पराजय और स्वप्न

वैभव सिंह

चित्रा मुद्गल हिन्दी की उन लेखिकाओ में हैं जिन्होंने स्त्री विमर्श, बेहद निजी संवेदनों और प्रगतिशील मूल्यों को एक जगह लाने का काम किया है। उनकी कथाएं महानगरों से लेकर गांव जवार से जुड़े लोगों की दुनिया तक फैली हैं। यह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि वे अपनी संवेदना से ही कहानियां नहीं लिखतीं बल्कि संवेदना का निरंतर विस्तार करते हुए कहानियां लिखती हैं। साहित्य में एक समय रोमांटिसिज्म और प्रयोगवाद के मिलजुले असर से अनुभव पर आश्रित लेखन पर खास जोर बढ़ा था। इधर के अस्मितावादी लेखन ने उसे नये तरीके से समर्थन प्रदान किया है और बड़ी मात्रा में औसत रचनाओं का पहाड़ खड़ा कर दिया है। इन प्रवृत्तियों ने साहित्यकार के आत्मानुभवों से बाहर निकल कर लेखन के लिए नये विषय जुटाने की संवेदनात्मक क्षमता पर सवाल खड़े कर दिये। अनुभव को भी सीमित, जड़ तथा स्थिर मान कर उसका दोहन करने की बातें दोहरायी4 जाने लगी थीं। मानों अनुभव न हों कोई कैदखाना हों जिसमें एक बार डाल दिये गये तो निकलना जुर्म है। बस इस कैदखाने में पड़े रह कर 'अनुभव अनुभव' का शोर मचाते रहो। लेखक स्वयं के अनुभवों की गतिशीलता को ही नकारने लगा है। पर चित्रा मुद्गल अनुभव और प्रेक्षण, दोनों ही का सहारा लेकर कथा लेखन करती हैं जो इस बात का प्रमाण है कि संवेदनशील प्रेक्षण भी प्रामाणिक अनुभव बन सकता है और लेखन में खाद पानी का काम करता है। संवेदना गहरी हो तो अनुभवों की आत्मारोपित सीमाओं को लांघा जा सकता है। स्वप्नदर्शिता इसमें सर्वाधिक सहायक होती है। संसार से कथाएं निकलती हैं और कथाएं ही उस संसार को प्रभावित करती हैं। चित्रा मुद्गल भी कथाओं में संसार को नहीं गढ़ती हैं बल्कि संसार को कथाओं के माध्यम से गढ़ने का स्वप्न देखती हैं। और ये एक ऐसा स्वप्न है जिसके बारे में हर कथाकार को पता होता है कि कभी पूरा नहीं हो सकता। लेकिन कभी पूरा न हो सकने वाले स्वप्न उसे सहारा देते हैं और निरंतर आगे की ओर बढ़ाते हैं। उनका नया कथा संग्रह **पेण्टिंग अकेली**

है भी ऐसी ही कथाओं का संकलन है जिसमें कथाओं के वैविध्य में उदास व हताश मानवचरित्र को रचा गया है। कथाओं में दिखाया गया है कि अंततः इंसान निराशाजनक पराजयों से घिरा हुआ है पर उसकी पराजय से ही जीवन के सबसे महान स्वप्नों का जन्म होता है। पराजय न होती तो स्वप्न न होते। पराजित होना उसका स्वभाव नहीं है पर यह व्यवस्था सारे गुलाबी वादों उत्सवों के बीच उसे पराजित ही देखना चाहती है। मनुष्य अगर जीत गया तो व्यवस्था हार जायेगी और व्यवस्था की विजय के लिए यह होने नहीं दिया जा सकता है।

लेखिका चित्रा मुद्गल ने इस कथा संग्रह की भूमिका में लम्बे समय तक कहानियां न लिखने की स्थितियों पर भी चर्चा की है और कुछ ऐसे महत्वपूर्ण संकेत छोड़े हैं जो सृजनात्मक बंजरता और साहित्य विमुख होने के कारणों पर प्रकाश डालते हैं। उन्होंने खुद ही अपने से सवाल पूछा है कि क्या कारण है कि 14 साल में मैंने केवल आठ दस कहानियां ही लिखीं, हालांकि उपन्यास प्रकाशित होते रहे हैं। परिस्थितियों के आगे सृजनात्मकता की हार को लेकर हर लेखक जीवन के किसी न किसी मोड़ पर चिन्तित अवश्य हो जाता है। वह तब स्वतः ही कहानी के ही नहीं बल्कि अपने पूरे समय के समाजशास्त्र को समझने के लिए उन्मुख हो जाता है। ऐसे ही आत्मावलोकन के क्षणों में लेखिका ने लिखा है ''समस्त विश्व भूखंड को अपने हाट में बदलते पूंजीवादी देशों की बाजारवादी साजिशों ने जिस चतुराई से विकास के झांसे में विकासशील देशों को आर्थिक दबावों की लीलती खाइयों में धकेल, उसे चारों ओर से निहत्था कर विकल्पहीनता के मानसिक अनुकूलन से अनुकूलित कर संघर्ष विमुख किया है, क्या आमजन की उसी विकल्पहीनता ने मुझसे मेरी कहानियों को छीन लिया है, कि अब वे उस तरह से मेरे पास नहीं आतीं जैसे पहले आया करती थीं। क्या कहानियां भी स्वयं को निहत्था महसूस कर रही हैं।'' दुनिया की विकल्पहीनता को कहानियों से अपने लगाव को कमजोर पड़ने, उन्हें लिखने में असमर्थता का मुख्य जिम्मेदार माना है। यह स्थिति आज बहुत सारे लेखकों के साथ है। वे जिन संघर्षों और आंदोलनों की शक्ति से प्रेरित होकर साहित्य लिखते थे, वे संघर्ष आंदोलन परिदृश्य से लुप्त होने के बाद उन लेखकों को भी काफी अकेला कर गये हैं। उनकी हताशाएं भी कहानियों का रूप लेने से इनकार करने लगीं। बीसवीं सदी में साहित्य व राजनीति का जो गहरा आत्मीय रिश्ता बना था, वह खास तरह के दुखांत की ओर बढ़ता प्रतीत होने लगा है। राजनीति के साथ चलने की कोशिश कर रहे साहित्य के पास अपनी सबसे प्रिय राजनीति की मृत देह ही बची है। पर एक चीज और भी है जो कहानियों से कई बार लेखक को दूर करती है। वह है अपने अनुकूल किसी दूसरी बेहतर विधा का चयन। जैसे कि स्वयं चित्रा मुद्गल के उपन्यास इस बीच आये जहां उन्होंने अपने को तथा समाज को काफी व्यक्त भी किया और इस बात की पूरी सम्भावना है कि उपन्यास लेखन ने उनके कहानी लिखने के कौशल को निरंतर स्थगित भी किया है।

संग्रह में चित्रा मुद्गल की दस कहानियां शामिल हैं पेंटिंग अकेली है, ठेकेदार, आंगन की चिड़िया, हथियार, जंगल, गिल्टी रोजेस, तर्पण, जोंकें, तकिया और सन्निपात। उनकी ये कहानियां दस वर्षों के दौरान पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। इन कहानियों में घर के बूढ़ों, सतायी गयी लड़कियों, गरीब मजदूरों और स्वार्थी मध्यवर्ग के विभिन्न चित्र उभरे हैं। उदाहरण के लिए संकलन की कहानी 'ठेकेदार' हिन्दी कहानी में विलुप्त होते कामगार वर्ग की कठिनाइयों पर रचित कहानी है। यह गांव से आजीविका की खोज में आये किसान के रिक्शाचालक बनने, पुलिस के डंडे खाने और लगभग तबाह हो जाने की मार्मिक कथा है। वहां सरकार का मतलब है डंडा नचाता एक मामूली कान्स्टेबल और उससे जबानदराजी की हिमाकत करने का मतलब है सरकार पर शक करना। सरकार अगर रिश्वत मांगे और न दी जाये तो सरकार के पास किसी को भी अपराधी घोषित करने के सभी कानूनी अस्त्र शस्त्र मौजूद

रहते हैं। यहां समाज के सबसे कमजोर इनसान के लिए व्यवस्था का सबसे कमजोर प्रतीक ही व्यवस्था कानून का प्रतीक होता है। इसीलिए मामूली इनकार के बदले में पिटाई धुनाई। गिड़गिड़ाने और पैर पकड़ने से सरकार नामक प्राणी का दिल नहीं पसीजता। आज की कहानियों में गांव के विलुप्त होने को लेकर कुछ जायज चिन्ताएं व्यक्त की जाती हैं। पर गांव के बाहर गांव से जुड़े लोगों के जो संकट व संघर्ष हैं, वे भी गांव देहात की ही अभिव्यक्ति का जरूरी पक्ष है। शहरों में रोजी रोटी की लड़ाई लड़ते ग्रामीण मजदूर किसानों के चित्र हमें गांव में फैले रोजगार संकट के बारे में भी बताते हैं और शहरों में उनके साथ होने वाली ठगी, बदमाशी तथा धोखाधड़ी के बारे में भी जागरूक करते हैं।

संकलन की एक अन्य कहानी 'जोंके' इसलिए ध्यान आकृष्ट करती है क्योंकि यह कहानी समाजसेविका के जीवन की दुविधाओं को दर्शाती है और साथ ही यह भी कि मनुष्यता से जुड़े सरोकार अंततः मनुष्य के सामने खड़े स्वार्थों के आगे गौण पड़ जाते हैं। कहानी में आठवीं कक्षा की छात्रा पुष्पा है जो बड़ी होनहार है पर बेहद गरीबी के कारण पढ़ाई नहीं कर पाती। तब उसकी मदद के लिए स्त्रियों के लिए लड़ने वाली समाजसेविका आगे आती है और उसे स्कूल में प्रवेश दिलाती है, उसकी आर्थिक मदद करती है। उसी पुष्पा पर एक लड़का प्रेम कुंठा में तेजाब डाल उसे घायल कर देता है। कहानी में घटना इतनी सी है और बाकी उस समाजसेविका की मनःस्थिति। वह अपने दूसरे कामों के लिए पटना जा रही और उस लड़की को देखने अस्पताल नहीं जा पाती। सहानुभूति उसके भीतर उमड़ कर झाग की तरह वापस बैठ जाती है। उसके निर्णय उसे धिक्कारते हैं पर वह व्यवहारिकता को अपने अंदर से झटक कर निकाल नहीं पाती है। भीतर चलने वाले अंधड़ में मन किसी तिनके की तरह उड़ रहा है। ट्रेन में बैठी वह सोच रही है 'वह बच्ची मुझसे किये वादे पर दृढ़ता से कायम रही किन्तु मैंने शायद उसके साथ होने के उसके भरोसे को तोड़ दिया।' मानव जीवन अपराधबोधों की ही शृंखला है क्योंकि उसके पास चुनाव के लिए हमेशा ही स्वतंत्रता नहीं रहती है। इस स्वतंत्रता के अभाव ने उसे अनचाहे फैसलों का शिकार बनाया और दुःखद परिस्थितियों से खुद को अलग करने से रोका। कहानीकारों का काम केवल यह नहीं होता कि वे मनुष्य के कर्म का लेखाजोखा लिखने वाले मुनीम का कार्य करें बल्कि यह भी होता है कि वे स्थितियों के संघात से क्षतविक्षत होते मनुष्यों की चेतना की पड़ताल करें। यह कहानी इस अर्थ में सफल है कि वह समाजसेविका के उदात्त व्यक्तित्व को उभारने के साथ साथ उसकी चेतना को खरोंचते अपराधबोध को भी व्यक्त कर देती है।

इन प्रभावशाली कथाओं में ही पहली कहानी 'पेण्टिंग अकेली है' भयानक रूप से उलझी हुई कहानी के रूप में भी सामने आती है। इसमें कहां का परिवेश है, समझ में नहीं आता। अमेरिकी शहर वाशिंगटन डीसी, दिल्ली व हाथरस, सबका एक साथ उल्लेख है। कहानी क्या है, पहेली है। लिव इन सम्बंधों पर प्रतीत होती है पर लगता है कि जो समझ रहे हैं वह नहीं, बल्कि कोई और ही विषय है। एक ऐसी स्त्री की कहानी जो दूसरों के लिए बच्चे जनती है और आत्मनिर्भर है। कहानी में जरूरत से ज्यादा संवाद नहीं लिखने चाहिए। बीच में नैरेटर को पात्रों के नाम और कहानी का मर्म बताने के लिए प्रवेश करना चाहिए। पात्रों के नाम पहचान बताये बगैर कई पृष्ठों को केवल वर्णनों के सहारे नहीं खींचना चाहिए। पाठक इस कहानी को पढ़ने की कोशिश करता है पर बहुत बाद में उसे पता चलता है कि वह जिसके बारे में पढ़ रहा है वह कौन है। कहानीकार बड़े अहसान जताने के अंदाज से बताता है कि वह किसका जिक्र कर रहा है और कौन सा देशकाल है। तब तक पाठक की आधी रुचि कहानी में समाप्त हो चुकी होती है। जिस कहानी को मुख्य कहानी की तरह पेश किया गया है, वह इसी उलझन में पाठक को डालती है। कथालेखन का यह फार्मूला न तो मनोवृत्तियों को उभार पाता है और न प्रसंग को। कई बार लगता है कि बेहद आधुनिक परिवेश को अमूर्त चित्रकला, जिसका

सम्बंध खुद भी आधुनिकता से है, की शैली में व्यक्त करने का प्रयास किया जाता है। पर कहानी अमूर्त पेण्टिंग नहीं है क्योंकि वह अंततः तो पात्रों का जीवित संसार है जिसमें पाठक को भी शामिल करना है। कहानी ऐसा चित्र नहीं जिसमें दर्शक बाहर खड़ा होकर उसके अर्थों पर माथापच्ची करता रहे। पर गनीमत है कि इस कथा जैसा अमूर्तन व फालतू के संवादों को भरने की चेष्टा कहानीकार ने दूसरी कहानियों में नहीं की है। कहानी में प्रयुक्त शब्दबिम्ब भी कहीं कहीं असंगत प्रतीत होते हैं। जैसे एक स्थान पर ऐसा ही बिम्ब है 'लंगूरों की ललाई से अरुणिम, गदबदे खिलखिलाते बच्चे।' अब ललाई की उपमा के लिए लंगूर के मुख का सहारा लेना काफी विचित्र है। खासकर तब जब भारत में लंगूरों के मुंह भी लाल नहीं काले ही होते हैं। बाकी खिलखिलाते बच्चों के लिए 'गदबदे' शब्द का प्रयोग भी सामान्य बातचीत में नहीं होता। इसलिए इस शब्द की भी आवश्यकता न थी। कई बार प्रवाह में लिखने के कारण भी ऐसी भाषा का प्रयोग होने लगता है पर भाषायी प्रवाह को शब्दों के उचित प्रयोग के अनुशासन के भीतर ही स्थान मिलना चाहिए।

इसी संग्रह की कहानी 'हथियार' भारत में बदलते परिवारों, बच्चों की बदलती दुनिया और तलाकशुदा पुरुषों की दशा पर लिखी गयी है। भारत में तलाक के मामले बढ़ रहे हैं और तलाक मध्यवर्ग में भी स्वीकार्य हो रहे हैं। विवाह को जन्म जन्मांतर का सम्बंध मान उसे निभाने की विवशता कम हुई है। विवाह को सम्बंध, घटना या जीवन अवस्था माना जाने लगा है जिसे किसी असुविधाजनक स्थिति में उसकी समीक्षा कर उसे समाप्त किया जा सकता है। याद होगा कि पहले की अधिसंख्य कथाएं केवल दाम्पत्य सम्बंधों के तनाव को व्यक्त करने तक सीमित थीं। उनमें परिवार टूटने की कगार पर थे पर समझौते के बल पर बचा लिए जाते थे। पति पत्नी बेहद तनावग्रस्त हाल में रह कर जीवन जीते थे पर परिवार के बाहर निकल कर अकेले जीवन जीने के जोखम से बचते थे। पर आज की कहानियां परिवारों के टूटने के बाद की हालत पर भी निगाह दौड़ाती हैं। किसी समय पति पत्नी रह चुके लोगों के जीवन को व्यक्त करती हैं। उसमें बच्चों और बुजुर्गों को क्या झेलना पड़ रहा है, वह भी उनका अनिवार्य विषय है। 'हथियार' कहानी में भी एक तलाकशुदा व्यक्ति है जिसकी पत्नी कई साल पहले उसे छोड़ कर किसी अन्य के साथ चली गयी थी और साथ में अपनी बेटी को भी ले गयी थी। वह व्यक्ति अपनी बेटी से मिलता जुलता रहता है। न तो अकेलापन महसूस करता है और न अकेलेपन की ऊब से डर कर दूसरा विवाह करता है। उसे लगता है कि बेटी हमेशा उसके आसपास है। पिता की मनोदशा का यह मार्मिक चित्र है 'दूसरी शादी क्यों नहीं की उन्होंने? शादी वह करे, जिसे अकेलापन काटे। उस घर में रहते हुए प्रतिपल वह उसके पास बनी रहती है। घर के प्रत्येक कोने में उसकी तस्वीर सजी है। घर की कुंडी खोलते ही वह किसी भी तस्वीर से छलांग लगा कर, उनके स्वागत में छोड़ कर उनकी टांगों में लिपट जाती है।' पिता और पुत्री का यह बेहद नाजुक व आत्मीय सम्बंध भी वहां नाटकीय मोड़ लेता है जब बेटी स्वयं पिता पर निर्भर नहीं बल्कि उनसे अलग रह कर जीवन बिताने का फैसला सुना देती है। वह वन रूम विद किचेन वाले घर में रहना चाहती है, न कि मां या पिता के साथ। यानी परिवार केवल एक बार नहीं टूट रहे हैं बल्कि निरंतर टूटने की प्रक्रिया में हैं। अब वे बसने से नहीं बल्कि बिखरने से पहचाने जाने लगे हैं। चेतना को खास किस्म के अहं केन्द्रित व्यक्तिवाद की दिशा में ढाला जा रहा है जहां परिवार स्वतंत्रता में बाधा की तरह प्रतीत होने लगता है। बच्चे स्वयं मां पिता के सामने यह घोषणा करने के लिए उतावले हैं कि वे बालिग हो चुके हैं। बालिग होने का ऐलान उन्हें बगावत लगता है। बालिग होने का अर्थ उत्तरदायित्व लेना नहीं या मां बाप का बोझ हल्का करना नहीं बल्कि अपने लिए अधिकारों से सुसज्जित स्वतंत्र दुनिया बसाना है। परिवार पर ही एक अन्य कहानी 'तर्पण' भी इसी संकलन में मौजूद है।

यह कहानी परिवार के फालतू, नाकारा या बोझ घोषित कर दिये गये वृद्धों के प्रति नयी पीढ़ी के दुर्व्यवहार को व्यक्त करती है। किसी जमाने में उम्र बढ़ने पर पुरुष को परिवार के भीतर नये अधिकार मिलते थे और लोगों को डांट डपट कर सही रास्ते पर लाने वाले के रूप में उसे स्वीकार किया जाता था। अक्सर नयी पीढ़ी को सम्पत्ति सौंपने वाले वर्ग के रूप में भी उन्हें सम्मान मिल जाता था। पर अब बाजार ने, जहां हर किसी को लाभ पैदा करने वाले श्रमिक के रूप में देखा जाता है, वृद्धों को अनुपयोगी करार दिया है। मौजमस्ती, उपभोग व वीकेण्ड की संस्कृति में वृद्धजन खप नहीं सकते हैं। घर में फोन, बिजली, साग सब्जी के बिल उनके ही बच्चों को खटकते हैं। इस विषय पर सबसे सशक्त कथा कभी भीष्म साहनी ने 'चीफ की दावत' या प्रेमचंद ने 'बूढ़ी काकी' के नाम से लिखी थी जिनमें घर के वृद्धजनों की उपेक्षा का मार्मिक अंकन हुआ था। अंतर यह आया है कि पहले जहां वे कोने में डाल दिये जाते थे और लोग उनकी केवल उपेक्षा करते थे, वहीं अब वे निरंतर धिक्कारे जाते हैं और उनका अनादर करना किसी को अजीब नहीं लगता है। अब वे इसलिए ज्यादा अकेले प्रतीत होते हैं क्योंकि समुदाय से उनका सम्बंध टूट चुका है और एकाकी परिवारों में उनके लिए किसी के पास खास वक्त नहीं बचा है। बाहर की दुनिया और परिवार के भीतर, दोनों जगह वे अकेले ही हैं। संकलन की आखिरी कहानी 'सन्निपात' गांव से जुड़े एक ठाकुर साहब की वृद्धावस्था के दिनों के अकेलेपन, पुराने प्रेम की स्मृति तथा मायूसियत को उभारने के लिहाज से याद रखने योग्य कहानी है। उनके पास लखनऊ में शानदार कोठी है, गांव में एक गरीब स्त्री से उनका प्रेम है और अपनी ही संतान से तीखा वैमनस्य भाव है। ये संतान अपने पिता से विवाहेतर सम्बंध रखने वाली स्त्री को बदजात बेड़िन और पतुरिया कह कर पुकारता है और पिता का अपमान करता है। ये वह संतान भी है जो नोएडा में बसी पीढ़ी की प्रतीक है जिसकी निगाह गांव की जमीनों पर भी है और पुरखों की जमीन को वह निवेश के माध्यम के रूप में देखने लगी है। एक छोटे से फ्लैट की एवज में वह खुले आसमान, दूर तक चली गयी मेड़ों तथा लहलहाती फसलों वाले खेत को बिकवा देना चाहती है।

देख सकते हैं कि चित्रा मुद्गल जैसी परिपक्व स्त्री संवेदना वाली लेखिका बड़े अनोखे तरीके से घर गांव के वृद्ध पुरुषों के जीवन की कहानियां लिख रही हैं। वह अघोषित तरीके से स्त्रीवादी हैं और स्त्रीवादी होकर केवल स्त्रियों की पीड़ा को व्यक्त नहीं कर रही हैं बल्कि समाज में जो कमजोर, गरीब, असमर्थ व लाचार पुरुष हैं, उनकी भी कथाएं लिख रही हैं। नारीवाद के भीतर से जो 'जेण्डर थ्योरी' निकली है, उनकी कथाएं उसके ज्यादा नजदीक हैं। इस 'जेण्डर थ्योरी' में माना जाता है कि लिंगवादी धारणा से केवल स्त्री पुरुष के सम्बंध को नहीं समझा जा सकता बल्कि यह देखना पड़ता है कि किसी सम्बंध विशेष में कौन सा लिंग ज्यादा कमजोर और कौन सशक्त है। नारीवाद न्यायोचित प्रतिशोध का सिद्धांत नहीं बल्कि न्यायवादी दृष्टिकोण के विकास का माध्यम है। यानी, नारीवाद का यह दायित्व भी है कि वह समाज के कमजोर, अपाहिज, अकेले व निर्वीर्य पुरुषों की समस्या को भी अपने विमर्श के दायरे में ले आये। अगर वह ऐसा नहीं कर पायेगा तो पुरुषवाद का ही कोई संस्करण (alter ego) बनता जायेगा।

चित्रा मुद्गल के इस संग्रह की कथाएं अजनबियत को बढ़ावा देते समाज में दुनिया से खास ढंग की आत्मीयता को विकसित करती हैं। ये कथाएं इस बात की भी गवाह हैं कि लेखिका की सामाजिक संवेदना निरंतर पैनी तथा सूक्ष्म होती चली गयी है और उन्होंने कथा लेखन में नकली संवेदनाओं नहीं बल्कि असली व खरी संवेदनाओं का परिचय दिया है।

पेंटिंग अकेली है : चित्रा मुद्गल, **प्रकाशक :** सामायिक बुक्स, नयी दिल्ली, **मूल्य :** 250 रु.

पराजित परिवेश की अपराजित कहानियां

प्रताप दीक्षित

मुझे सच के चेहरे को देख लेने दो, मुझे बताओ कि सच का चेहरा कैसा होता है।

जैक लंडन

समय की अबाध गति के साथ मनुष्य कदमताल करते हुए परिवर्तन के प्रत्येक चरण को पकड़ने की कोशिश करता रहा है, सभ्यताओं का इतिहास इसका प्रमाण है। बीसवीं सदी के अंतिम दशकों से बदलाव की गति इतनी तीव्र, कि मनुष्य बहुत पीछे छूट गया। क्रूर महत्वाकांक्षाओं के छद्म संसार में जनाकांक्षाओं के सपने दुःस्वप्न में बदल गये। स्वार्थ और राजनीति की लिप्सावादी निजता ने सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों, आदमी के रिश्तों, परिवेश और पर्यावरण का अवमूल्यन और ध्वंस ही नहीं किया, आम आदमी जो हर युग में परिवर्तन के केन्द्र में रहा था, हाशिए पर ढकेल दिया गया।

एस.आर. हरनोट की कहानियां उपर्युक्त पतनशील और विघटन की स्थितियों की मात्र दृष्टा बन कर विवरण नहीं पेश करतीं बल्कि सजग हस्तक्षेप करती हैं। यह कहानियां आम आदमी के अभाव, शोषण, बेचारगी, त्रासद स्थितियों के साथ इनके असमाप्त संघर्ष एवं जिजीविषा को, जीवंत शिल्प और भाषा में, पाठकों के अनुभव संसार का हिस्सा बना देती हैं।

पर्यटकों के लिए हिमालय की उपत्यकाएं सुरम्य स्थल हैं परंतु इस सच का दूसरा चेहरा भी है। उसी पहाड़ के जीवन की दुश्वारियां, गांवों के बदलते परिदृश्य, सामाजिक आर्थिक विषमताएं, गांवों को अतिक्रमित करता शहर तथा शहरी जीवन की विसंगतियों के साथ इन कहानियों के कैनवस का विस्तार प्रकृति और पर्यावरण के क्षरण की समस्याओं तक हुआ है। इन कहानियों के पात्र, परिवेश और विषयवस्तु हिमाचल के दुर्गम स्थलों में बसे गांवों की समस्याओं, दर्द, जंगल जमीन के इर्दगिर्द की है। हरनोट की कहानियों को आंचलिक कहना इनकी संवेदनाओं को सीमित करना होगा। अपनी सम्पूर्णता में ये कहानियां व्यापक मानवीय सरोकारों की कहानियां हैं।

एस.आर. हरनोट के नवीनतम कहानी संग्रह **लिटन ब्लॉक गिर रहा है** के केन्द्र में इन सवालों के साथ मनुष्य की पतनशीलता, गांवों में प्रविष्ट उपभोक्तावाद, नष्ट होती प्रकृति की चिन्ताओं की शोकांतिका उभर कर आती है। ये कहानियां हिमाचल के गांवों के परिप्रेक्ष्य में पूरे देश में विकास की अवधारणा के अंतर्विरोधों को बेबाकी से बयां करती हैं।

संग्रह की पहली कहानी 'आभी' की कथावस्तु आभी नामक चिड़िया द्वारा पहाड़ी झील से तिनके बीन कर प्रदूषण मुक्त करने की है, जिसे वह सदियों से कर रही है। कथ्य पर्यटकों द्वारा झील में और उसके आसपास कचरा फैलाने, प्रदूषित करने तक सीमित नहीं है वरन् उसकी चिन्ताओं में वन माफिया, उसका मददगार सरकारी अमला, पुलिस, नेताओं के साथ साथ मारे जाते वन्य जीव, असहायता, जीवन और सृष्टि के कितने अनुत्तरित प्रश्न शामिल हैं। आभी के असमाप्त संकल्प से, जिसे वह गाते हुई निरंतर जारी रखती है, आदमी को कितना कुछ सीखना है। बर्फ की झील पर जब बर्फानी चीते, कस्तूरी मृग, जंगली बकरे, बारहसिंगा, भालू एक साथ अठखेलियां कर सकते हैं तब आदमी एक साथ क्यों नहीं रह सकता? 'बूढ़ी नागिन मां' अपने मंदिर में स्वार्थों के बाजार में मांगी गयी दुआओं से व्यथित है। कहानी में संवेदना का चरम बिन्दु आता है जब जंगल माफियाओं के द्वारा मारी गयी मादा चीता कराहती, छटपटाती, घिसटती झील तक आ गयी है। चार पांच शिशु चीते इससे बेखबर 'उसके दूधुओं में लिपटे दूध पी रहे' हैं। इस पीड़ा को कौन वाल्मीकि 'मा निषाद प्रतिष्ठां' के स्वर देगा? आश्वस्ति केवल यह है कि जंगल में लगी आग, जो नशे में डूबे उन्हीं माफियाओं में से किसी के द्वारा फेंकी गयी बीड़ी से लगी है, की लपटों में वह जल मरा है।

दूसरी कहानी 'हक्वाई' (तिपाईनुमा उपकरण जिस पर मोची जूतों की मरम्मत करते हैं) गरीब मोची भागीराम के शोषण, प्रताड़ना, अपमान और बेगारी के विरोध के कारण उसकी दूकान, पटरी जहां वह अपना काम करता है, से बेदखली और उसके संघर्ष और अथक जिजीविषा की कहानी है। कहानी में भागीराम अपनी उम्र 'तीन कम सत्तर' यानि सड़सठ साल बताता है। आजादी पाये हुए भी तो इतना ही वक्त गुजरा है। वस्तुतः कहानी आजादी के बाद आम आदमी के सपनों के दुःस्वप्न में बदल जाने का लेखाजोखा है। भागीराम के शुरुआती दिन तो ऐसे नहीं थे। विकास के नाम पर उसकी दूकान ही नहीं सभी कुटीर उद्योग साजिशन नष्ट कर दिये गये। जंगल जमीन से बेदखली हुई। देवदार, बुरांश कट गये। कांक्रीट के जंगल फैलते गये। परंतु आश्वस्ति यह है कि भागीराम की युयुत्सता बची हुई है और परिदृश्य में सहृदय संवेदनशील 'महिला थानेदार' जैसे पात्र मौजूद हैं।

'शहर में रतीराम' लम्बी बीमारी के बाद अस्पताल से लौटे घर के मुखिया की अपनों की उपेक्षा के दर्द की कहानी है। मनुष्य के अंदर घुसपैठ कर चुकी संवेदनहीनता के कारण अपने ही घर में रतीराम जैसे लोग गैरजरूरी हो गये हैं। उसका अपना शहर उसके लिए अजनबी हो गया है, जहां किल्टा लेकर बाजार में जाने की अनुमति नहीं है, लघुशंका लगने पर निवृत्त होने के लिए भी पेशाबघर में उसे पैसे देने होते हैं। कहानी में पूरी व्यवस्था पर तीक्ष्ण व्यंग्य और आक्रोश है, जब पेशाब करते हुए रतीराम का गुस्सा बूंद बूंद कर झर रहा है, उसे लगता है कि 'वह पूरे शहर पर मूत रहा है।' वह शहर जो इस अमानवीय व्यवस्था का प्रतीक है।

कहानी में 'रतीराम' की अपेक्षाएं कुछ अधिक हैं? उसका अपना अतीत उसके लिए ज्यादा ही सुख संतोष का सबब हो सकता है, लेकिन 'अपने समय' को, पुत्रों बहू पर थोपना क्या उचित है? आवश्यकता पीढ़ियों के अंतर्द्वंद्व के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक विश्लेषण की है। बहू की चिन्ता, संवेदना कम हो सकती हैं परंतु उसके रहन सहन पर टिप्पणी भले ही 'रतीराम' की हो, समझी लेखक की जायेगी। 'ढोल, गंवार, शूद्र...' की तरह।

'लोग नहीं जानते थे कि उनके पहाड़ खतरे में हैं' कहानी में केन्द्रीय सरोकार विकास के नाम पर निजी शिक्षा संस्थानों, कम्पनियों, फैक्ट्रियों के लिए जमीन जंगल का अधिग्रहण तथा उसे बचाने की चिन्ता और प्रतिरोध है। प्रकृति को नष्ट होने से बचाने के उपाय परम्पराओं, पूजा और आस्था के रूप में पहले भी थे, आमतौर पर जिन्हें अंधविश्वास मान लिया गया है। देवताओं, गूरों पर आस्था के मूल में प्रकृति के सरोकार ही किसी न किसी रूप में हैं। इक्कीस देवदारों के बराबर पीपल, गर्म पानी के चश्मे, चरांद, कंदराएं बचाना केवल पर्यावरण की नहीं, समूची संस्कृति को बचाने की चिन्ता है।

'मांएं' विस्तृत सरोकारों की कहानी है ममता, आत्मकेन्द्रीयता, लुप्त होती संवेदना, मीडिया, पुलिस, राजनेता रूपी गिद्ध आदि कोलॉजों का एक समूह चित्र, जिन्हें कथाकार ने रचना कौशल से विशृंखलित नहीं होने दिया है। मां सृष्टि का एकमात्र ऐसा सम्बंध है, जिसमें दो प्राणियों के बीच जैविक और भावनात्मक अविच्छिन्नता होती है।

कहानी में पांच मांएं हैं। एक मां बंदरिया जो अपने मृत बच्चे को सीने से सटाये भटकती रहती है। उसके गिरते हुए अंग छीजती संवेदना ही तो हैं। दूसरी मां एक जवान होती भिखारिन है। हर साल बच्चे जनती। बच्चों को नहीं मालूम कि दुनिया में पिता नाम की भी कोई संज्ञा होती है। इस लोकतांत्रिक व्यवस्था में अमानवीय शोषण की शिकार 'मां' 'इसी देस की है महराज'। बाकी मांएं भी जो कन्या शिशु को कचरे में फेकने या अति सम्पन्नता के कारण वृद्धाश्रम में रहने के लिए अभिशप्त हैं, इसी देश समाज की हैं।

'जूजू' हमारे आसपास की कहानी है। हम कौन सी पीढ़ी, किस प्रकार से तैयार कर रहे हैं। स्तनपान के लिए तमाम सरकारी, गैर सरकारी प्रचार के बावजूद सम्पन्न परिवारों में कुछ मांएं इससे परहेज रखती हैं। बच्चों को खिलौने मिलते हैं आग उगलती बंदूक, एके 47 आदि लेकिन प्यार नहीं। कहानी में बच्चे का लगातार रोना उसका प्रतिरोध ही तो है। कहानी के माध्यम से दाम्पत्य, संयुक्त परिवार, आत्मकेन्द्रीयता, अंधविश्वास, टीवी, स्टेटस जैसे अनेक सवाल उठाये गये हैं।

'गाली' अन्याय के प्रतिरोध, श्रम की महत्ता, आत्मसम्मान की करुण गाथा है। कथानायक मुश्कीराम ने गोबराई, ऊन कातने, लकड़ी काटने, बैल बच्छुओं को तैयार करने जैसे अनेक कामों से जीवनयापन किया है। इसकी भी उम्र, 'हक्वाई' के भागीराम की तरह 67 वर्ष है। (अजब इत्तफाक है, वही आजादी के 67 साल।) लेकिन भ्रष्टाचार ने सब कुछ निगल लिया है। गांव का तालाब भी। निजी स्वार्थ के लिए सार्वजनिक संसाधनों, प्राकृतिक स्रोतों से आम आदमी को वंचित कर दिया जाता है। यह लड़ाई एक आदमी की नहीं सम्पूर्ण प्रकृति, पशु पक्षियों, जीवों, कुदरत की तरफ से इन्हें बचाने की बन जाती है। इसी की अनिवार्य परिणति है मुश्कीराम द्वारा प्रधान की हत्या जिसका जाहिर कारण है प्रधान द्वारा मुश्की राम को गाली देना, वह भी तीसरी बार। प्रधान ने मुश्कीराम को 'नेता' कह कर ताना मारा था। फंतासीनुमा कहानी के माध्यम से सृजित यथार्थ सम्पूर्ण व्यवस्था को नंगा कर देता है।

अंधविश्वास, धर्म के नाम पर स्वार्थपूर्ति, शोषण के विरोध में लिखी गयी कहानी है 'आस्थाओं के भूत'। देवी मंदिर के मुख्य पुजारी, कमेटी मेम्बर चढ़ावे से सम्पन्न होते जा रहे हैं। परंतु कामगर गूरों, बजंतरियों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। बिरादरी का यह विभाजन उस व्यवस्था को व्यंजित करता है जिसका आधार जाति अथवा वर्ग नहीं, निहित स्वार्थ के आधार पर एकत्रित कुछ लोग हैं। कहानी प्रतिरोध की सफलता और चुन्नी के माध्यम से पूरी व्यवस्था से मोहभंग की कहानी है। कहानी का विषय पुराना है। इस पर अनेक कहानियां, आलेख लिखे जा चुके हैं। सतही

वर्णन के बजाए यदि स्थितियों के मूल में गहराई से उतर, अंतर्द्वंद्वों सहित अभिधा के बजाए व्यंजना में लिखी जाती तो संग्रह की अन्य सशक्त कहानियों की तरह यह भी प्रभावपूर्ण कहानी बन सकती थी।

'लिटन ब्लॉक गिर रहा है' संग्रह की महत्वपूर्ण कहानी है। लिटन ब्लॉक शिमला में सौ साल से ज्यादा पुरानी इमारत थी, जिसे तमाम घोषित अघोषित कारणों से गिरा दिया गया। लेखक के अनुसार 'जैसे एक युग ढह गया है।' यह ध्वंस अतीत का ध्वंस है। अतीत के अरण्य में इतिहास के अनजाने पक्ष मिलते हैं। समय मिथक बन जाता है। साहित्य को मिथकों से काटने का अर्थ, इतिहास ही नहीं, भविष्य को भी अवरुद्ध करना है। कहानी, राजनीतिक सामजिक विसंगतियों, भ्रष्टाचार, राजनीतिकों नौकरशाही की संवेदनहीनता की प्रतीत होती है परंतु ये वितान कथा गढ़ने के उपकरण मात्र हैं। वस्तुतः कहानी का मूलस्वरूप, जो ज्यादा महत्वपूर्ण है, लिटन ब्लॉक के गिरने के माध्यम से स्वतंत्रता के बाद मनुष्यता के क्षय, उसकी पतनशीलता की शोकगाथा है। संस्कृति की विरासत पर किसी का एकाधिकार नहीं होता। इसका ध्वंस एक ओर इतिहास, सभ्यता, संस्कृति से विच्छिन्नता है, दूसरी तरफ मूल्यों और मनुष्यता का पतन। शायद यही कारण है कि अंग्रेजों के जाने के बाद भी मानसिकता में कोई परिवर्तन नहीं आया है। आजादी के पहले जिस माल रोड पर भारतीयों और कुत्तों के प्रवेश पर प्रतिबंध था, उसी पर आज भी रतीराम ऐसे लोग अपनी साइकिल या किल्टे के साथ नहीं जा सकते।

भले ही अंग्रेजों में हिन्दुस्तानियों के प्रति हिकारत का भाव रहा हो, परंतु परिवेश, पर्यावरण, स्वच्छता, तहजीब के प्रति उनकी निष्ठा संदेह से परे थी, जिसे उनके भारतीय संस्करण अपनी फूहड़ता, स्वार्थ और संवेदनहीनता और अहं के कारण समझ ही नहीं सके हैं। शहर में कुत्ते, बंदर और भिखारी भी हैं। प्रशासन की नजरों में उनमें कोई अंतर नहीं। उन्हें बार बार भगाया जाता। उनकी जगह को फिनाइल से धोया जाता। बंदर और कुत्ते तो फिर भी ठिकाना ढूंढ़ लेते। उनके लिए कुत्ता घर बनाये जाते हैं। लेकिन विवश भिखारी नसमू और उसकी कुबड़ी बीवी से तो लिटन ब्लॉक गिरने के बीच यह ठिकाना भी छिन चुका था।

कहानी का तीसरा आयाम है इस दम्पति का असीम प्रेम जिसके पीछे न देह है न कोई विमर्श। नसमू कुबड़ी के सफेद बालों को सहलाता, कंघी करता, उसे खिलाता, मुंह साफ करता। वह नसमू की टूटी टांग को सिरहाना बना सो जाती। उसे याद नहीं कि कभी उन दोनों की पूरी भूख मिटी होगी। (सादृश्य घीसू माधव)। एक दिन जब दुर्घटना में कुबड़ी मर चुकी है, असमाप्त प्रतीक्षा के बाद सोते समय नसमू आदतन बगल में हाथ फेरता है। वहां एक कुतिया पांच छह बच्चों के साथ है। ठंड से कांपती कुतिया पर वह मैले, फटे कम्बल का एक छोर ओढ़ा देता है। कहानी में 'पूस की रात' की करुणा का विस्तार होता है। यह वह दया नहीं जो भरे पेट के बाद बचा हुआ उच्छिष्ट देकर हमें अपनी ही नजरों में महान बना देती है। मानवीय करुणा एक व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में बदल जाती है।

संग्रह की कहानियों में संवेदना का घनापन है और व्यक्तिगत अनुभूतियों को वृहद सामाजिक मानवीय भवनाओं, अनुभवों का हिस्सा बनाने की अद्‌भुत क्षमता है। संग्रह की अधिसंख्य कहानियों में पाम्परिक किस्सागोई नहीं है। कहानी के स्वीकृत ढांचे को वे तोड़ती हैं। फिर भी इनकी पठनीयता पाठकों को बांधे रहने की क्षमता के साथ विचार के लिए विवश करती हैं। इन कहानियों को यथार्थ के धरातल पर किसी स्थापित सत्य के पैमाने से समझना कठिन होगा। वस्तुतः इन कहानियों की पर्तों के अंदर यथार्थ का वह चेहरा निकलता है, जिसे पहचानने के लिए कथा आवरण, सीधी सादी प्रतीत होती भाषा को भेदना पड़ता है।

लिटन ब्लॉक गिर रहा है : एस.आर. हरनोट, **प्रकाशक :** आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, **मूल्य :** 25 रु.

अभिनेत्री का वास्तविक जीवन

आलोक पराड़कर

'अज्ञेय अपनी निगाह में' में अज्ञेय कहते हैं ''अपने बारे में लिखनेवालों में एक वर्ग ऐसों का भी है जो कि वास्तव में अपने बारे में नहीं लिखते हैं अपने को माध्यम बना कर संसार के बारे में लिखते हैं। इस कोटि के कलाकार की जागरूकता का ही एक पक्ष यह है कि यह निरंतर अपने देखने को ही देखता चलता है, अनवरत अपने संवेदन के खरेपन की कसौटी करता चलता है। जिस भावयंत्र के सहारे वह दुनिया पर और दुनिया उस पर घटित होती रहती है, उस यंत्र की ग्रहणशीलता का वह बराबर परीक्षण करता रहता है। भावयंत्र का ऐसा परीक्षण एक सीमा तक किसी भी युग में आवश्यक रहा होगा, लेकिन आज के युग में वह एक अनिवार्य कर्तव्य हो गया है।'' 102 वर्ष की अवस्था में पिछले दिनों दिवंगत हुईं अपने ढंग की अनूठी और मंच एवं फिल्मों में सबसे बुजुर्ग कलाकार के तौर पर लम्बे समय तक सक्रिय रहीं अभिनेत्री **जोहरा सहगल** अपनी आत्मकथा **करीब से** के आरम्भ में ही सवाल करती हैं ''कोई अपने बारे में किताब क्यों लिखता है...? यह एक तरह की आत्ममुग्धता है, भला किसे परवाह है तुम्हारी भावनाओं की, तुम्हारे संघर्ष की, तुम्हारे सुख या दुख की?'' तो इसका जवाब भी अज्ञेय के कथन में ढूंढ़ा जा सकता है। हम यह जानना चाहते हैं कि दुनिया को देखने की उनकी संवेदना क्या है? और इतना ही नहीं, उनका अपने बारे में किताब लिखना इसलिए भी जरूरी हो जाता है कि उनके दर्शकों और प्रशंसकों में यह जिज्ञासा है कि मंच और फिल्मों में इतने लम्बे समय तक सक्रिय रही अभिनेत्री की इस उर्जा का राज क्या है? वह क्या है जो उन्हें इतने उत्साह से जीने की प्रेरणा देता रहा है, बारबार उनसे कहलाता है 'अभी तो मैं जवान हूं', बातचीत के इस चुटीले लहजे और इन जोरदार ठहाकों के पीछे क्या जीवन की किन्हीं स्थितियों पर उपहास या व्यंग्य तो नहीं, मंच और फिल्मों में चरित्र के कई सारे रंगों को दर्शाने वाली इस बुजुर्ग अभिनेत्री का वास्तविक जीवन भी क्या इतना ही खुशमिजाज है? इस अभिनेत्री के अंतरविरोध,

आत्मसंघर्ष और आत्मस्वीकृतियों को लेकर भी उत्सुकता तो होती ही है। हालांकि खुद जोहरा मानती हैं ''मेरे लिए इस किताब को लिखने की खास वजह एक ऐसा काम हाथ में लेना था जिसमें मैं खुद को डुबा सकूं, साथ ही मैं अपनी जिन्दगी में जो कुछ हुआ उन सब बातों को पूरी तरह से भूल जाने से पहले ही लिख डालना चाहती थी। इसमें से बहुत सारी बातें बहुत पुरानी हैं, ऐसा लगता है वो सब किसी और जन्म में हुआ था, इसके बावजूद कुछ यादें इतनी जीवंत हैं जैसे कल ही की बात हो।'' (पृ. 23) उनकी खुशमिजाजी के राज शुरुआती पन्नों से ही मिलने लगते हैं। जो यह मानता हो ''धर्म एक खूंटी ही तो है जिस पर जरूरत के समय टंगा जा सके। लेकिन मेरा विश्वास है कि यह खूंटी, यह सहारा इनसान को अपने भीतर ही ढूंढ़ना चाहिए। खुद से कहो कि तुममें तमाम मुसीबतों से पार पाने की ताकत है और तुम पाओगे कि तुम्हारे अंदर की ताकत हर मुश्किल का सामना करने में मदद करेगी।'' उनके आत्मविश्वास और सफलता के कारण को समझा जा सकता है। वह बताती हैं ''रोज नियम से काम करने के अलावा, मुझे खुशी के सदाबहार सोते की बख्शिश मिली है जो मेरे अंदर लगातार बहता है और मुझे तमाम दुखों, चाहे वह कितने ही गहरे क्यों न हों, उबार लेता है। ...मेरे अंदर खुशी का वह जादुई सोता जरूर धीमा पड़ गया है।'' (पृ. 10) कहना गलत न होगा कि यह सोता धीमा भले ही पड़ा हो, जीवन के अंत तक बहता जरूर रहा। जोहरा साहित्यकार नहीं हैं लेकिन साहित्य की गम्भीर पाठक हैं। उन्हें फैज, अली सरदार जाफरी की रचनाओं की प्रस्तुतियों के लिए भी याद किया जाता है। वे जानती हैं कि आत्मकथाएं किस प्रकार खुद पर प्रहार करने या अपना उपहास उड़ाने का अवसर भी देती हैं। वास्तव में आत्ममुग्धता आत्मकथाओं का कबाड़ा कर देती है जबकि अपने प्रति तटस्थता और निस्संगता में ईमानदारी झलकती है। वह बारबार जिक्र करती हैं कि वह बदसूरत हैं। इस बहाने अपने पूर्वजों पर टिप्पणी करने का उनका अंदाज काबिलेगौर है ''खासकर अपनी चीनियों जैसी छोटी आंखों को लेकर एक बात है जो परिवार से वाबस्ता तमाम लिखी और सुनी हुई बातों में मुझे समझ नहीं आती। वह यह कि सब जगह हमारे यहूदी और पठान मूल के होने का दावा किया गया है लेकिन कहीं भी यह नहीं कहा गया गया कि हमारी नसों में चीनी खून है, जबकि मौजूदा पीढ़ी के तमाम बच्चे और नाती पोतों की चीनियों की तरह छोटी आंखें हैं। मुझे ही देख लो, मैं हो चि मिन्ह की भद्दी छाया लगती हूं। कहीं ऐसा तो नहीं कि हमारे पूर्वज इस्राइल से अफगानिस्तान के बीच आते आते अपनी बीवियां बनाने के लिए तातार औरतों को ले आते हों? या बाद में भारत आने के बाद? शायद बाद की पुश्तों में से कोई इस पहेली का हल निकाल पाने में कामयाब हो।'' (पृ. 22) बचपन से ही वह पढ़ाई में कुशल रही हैं। दो बार दोहरा प्रमोशन मिलने के बावजूद दसवीं में ढाई साल तक रोका गया क्योंकि स्कूल के नियमानुसार किसी छात्रा को 15 साल में मैट्रिक की परीक्षा की अनुमति नहीं थी। इस पढ़ाई के बीच ही नृत्य और अभिनय से रिश्ते को लेकर एक द्वंद्व भी शुरू हो जाता है जो जीवन भर चलता रहता। हालांकि ये दोनों ही पूरक हैं लेकिन कई बार इन्हें लेकर वे उलझन में दिखती हैं हालांकि कैरियर में इससे उन्हें लाभ भी मिला है ''जब मैं दस साल की थी और 'जैक एंड द बीनस्टाक' नाटक में जैक की भूमिका कर रही थी तो मैंने अपनी अंग्रेजी की अध्यापिका मिस हार्वे को कहते सुना, 'यह लड़की लंदन में नाटक करके हफ्ते में दस पाउंड तक कमा सकती है।' मुझे बिल्कुल भी अंदाजा नहीं था कि दस पाउंड कितने होते हैं लेकिन सुनने में यह रकम बहुत ज्यादा लग रही थी। मुझे यह अहसास हुआ कि चांद तक पहुंचने का आधा रास्ता तो मैंने पार कर लिया। अपनी अध्यापिका की कही यह बात मेरे दिमाग में धंस कर रह गयी थी, शायद अभिनय को कैरियर के रूप में चुनने के पीछे भी कहीं न कहीं इसी बात का प्रभाव रहा हो।''(पृ. 28) लेकिन उन्हीं दिनों की एक घटना का जिक्र करते हुए वह लिखती हैं ''कमरे में जाते

वक्त मैं होटल के गलियारों से आ रही संगीत की लय पर ताली और चुटकी बजाने लगी। जब मैंने गौर किया कि महमूद प्रशंसा भरी नजरों से देख रहा है तो मेरा हौसला और बढ़ गया और मैं लुड्डी की ताल पर नाचने लगी। यह पंजाबी लोकनृत्य हम स्कूल में किया करते थे। 'अरे वाह जोहरा, तुम कितना सुंदर नाचती हो, तुम्हें तो डांसर बनना चाहिए।' महमूद ने मेरी तारीफ करते हुए कहा। उन दिनों मैं इसोला डंकन की आत्मकथा 'माई लाइफ' पढ़ रही थी, और उस किताब ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला था। अगले दिन नाश्ते की मेज पर मैंने अभिनय की बजाय नृत्य का प्रशिक्षण लेने का अपना इरादा जाहिर कर दिया।''(पृ. 33) यहां यह रेखांकित करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि यह वह दौर था जब अच्छे घरों में लड़कियों के नृत्य सीखने को लेकर पाबंदियां थीं लेकिन विद्रोही स्वभाव और दृढ़निश्चय तो उनके व्यक्तित्व की स्थायी पहचान रहे। वे नृत्य सीखने जर्मनी गयीं ''मैं डांस सीखने जर्मनी आयी हूं, इस बात से उन्हें आश्चर्य होता था। हालांकि उनका यह रवैया ठीक भी था, लेकिन उन्हें कैसे समझाती कि घर में हालात बिल्कुल अलग हैं। उन्हें कैसे बताती कि मेरे जैसी परिवार की लड़की को कभी भी डांस सीखने की मंजूरी नहीं मिलती, कि उत्तर भारत में डांस सीखना बुरा माना जाता है, कि डांस करना सड़कछाप लड़कियों के लिए ही उपयुक्त समझा जाता है... वगैरह.. .वगैरह। मैरी विगमैन, जो कम से कम मेरे लिए सबसे दयालु अध्यापिका थीं (दूसरी लड़कियां उनसे डरी रहती थीं), ने मुझसे साफतौर पर कहा कि मैं डांस के लिए कभी भी जर्मन लड़कियों की नकल न करूं बल्कि अपने अंदर की गति को समझ कर उसे अपनी स्वाभाविक लय से जोड़ने की कोशिश करूं। शायद यही सलाह है जिसकी मदद से मैं बाद के वर्षों में भारतीय नृत्य अपेक्षाकृत आसानी से सीख सकी।'' (पृ.40)

जोहरा ने आत्मकथा के एक प्रसंग में उल्लेख किया है कि उनके अब्बाजान ने एक बार उनसे पूछा था ''तुमने अपने लिए अब तक कोई पक्का ठौर ठिकाना जमाया या नहीं, या तुम यूं ही हवा में तैरते खस के तिनके की तरह यहां वहां भटकती रहोगी?'' यह सितम्बर 1975 की बात थी जब वह उनसे मिलने पाकिस्तान गयी थीं और तब उन्होंने थोड़ा मजाक भरे लहजे में जवाब देकर बात टाल दी थी ''अब्बाजान आखिर में तो वहां एक पक्का ठिकाना होना है।'' (पृ. 217)

लेकिन उनकी आत्मकथा से पता चलता है कि दुनिया के विभिन्न देशों में यात्राएं एवं प्रवास करती रहीं। पुस्तक में हर कुछ पन्नों बाद किसी देश और उसके शहर का विवरण मिल जाता है। उन्होंने जीवन का एक बड़ा हिस्सा विदेश में गुजारा। इसकी वजह यह भी रही होगी कि अपने स्वभाव के कारण वे बहुत दिनों तक एक जगह बंध नहीं सकीं। एक जगह वे मानती हैं ''मुझमें कुछ हुनर था और मुझे वह मौके मिले जो मेरी पीढ़ी की बहुत सी औरतों को नहीं मिले। मैंने उनका क्या किया जोरेश (अपने पति के साथ शुरू की गयी अकादमी) में भागीदार के बतौर काम करने के अलावा, मैंने कभी भी अपना खुद का कोई काम शुरू नहीं किया। अपनी सोच और अपने तजुर्बों के हिसाब से सिखाने और निर्देशित करने की पूरी जिम्मेदारी लेने के लिहाज से मैं बहुत आलसी थी।'' (पृ. 241)

यह उनका खुद का उपहास उड़ाने का अंदाज हो सकता है लेकिन उनकी सक्रियता बताती है कि वह आलसी नहीं थीं। पारिवारिक जीवन को लेकर जोहरा ने बहुत सारी बातें पुस्तक में कहीं हैं। अब्बाजान और मामूजान के अलावा अपने पति, बेटे और बेटी से रिश्तों को लेकर भी वे काफी चर्चा करती हैं। कामेश्वर सहगल से उनकी मुलाकात प्रसिद्ध नर्तक उदयशंकर के नृत्य दल में हुई थी जिससे जोहरा और कामेश्वर दोनों जुड़े थे। वे खुद तो हंसोड़ थीं ही, कामेश्वर के प्रति आकर्षित भी 'हंसी मजाक को लेकर उसकी जबरदस्त समझ' के कारण हुई लेकिन उनका विवाह इतना आसान नहीं था।

''शादी की खबर से मेरे मामा जी बहुत खुश थे लेकिन अब्बाजान बहुत दुखी। जब हम उनसे

मिलने देहरादून गये तो उन्होंने कहा कि वह शादी करने के मेरे इस फैसले को समझते हैं लेकिन अपनी बेटी की एक हिन्दू से शादी की बात स्वीकार करना उनके लिए मुश्किल हो रहा है। उन्होंने कहा कि मैं इसके लिए खुद को तैयार नहीं कर पा रहा हूं। उनकी यह बात सुन कर कामेश्वर ने कहा कि वह धर्म बदल कर मुसलमान बनने के लिए तैयार है। 'बिल्कुल नहीं' अब्बाजान ने जोर से मना करते हुए कहा 'अगर जोहरा हिन्दू बनेगी तो मुझे कैसा अहसास होगा? जरा अपने मां बाप के बारे में सोचो।' आखिरकार उन्होंने शादी के लिए अपनी रजामंदी दे दी, लेकिन उन्होंने गुजारिश की कि हम यह शादी देहरादून में न करें क्योंकि इससे उन्हें अपने मुसलमान दोस्तों के सामने शर्मिन्दगी का अहसास होगा।'' (पृ.81)

इस हिन्दू मुस्लिम विवाह के कारण भविष्य में भी कई दिक्कतें आयीं ''जब हम लाहौर वापस पहुंचे तो पाया कि देश के बंटवारे की सम्भावना के चलते पंजाब असंतोष की आग में जल रहा है। हमारे पुराने मुसलमान दोस्त हमें कुछ शक की निगाहों से देखने लगे थे। हमारे दोस्तों के साथ हमारे रिश्तों के बीच एक अजीब सी दुश्मनी भरी तल्खी आ गयी थी। नये बनने वाले पाकिस्तान में हम जैसे हिन्दू मुसलमान पति पत्नी के लिए कोई जगह नहीं होगी, हमने महसूस किया कि इससे पहले कि कोई खतरा हम तक पहुंचे, हमें यहां से दूर चले जाना चाहिए।'' (पृ. 87) लेकिन दो जिन्दादिल और खुशमिजाज लोगों के इस साथ का अंत बहुत अच्छा नहीं रहा। इसकी महत्वपूर्ण वजह यह रही कि एक ओर जहां जोहरा अपने कैरियर में कामयाब रहीं और उन्हें सम्मान मिला वहीं कामेश्वर प्रतिभाशाली होने के बावजूद सफलता हासिल न कर सके ''बॉम्बे में 14 साल की रिहाइश के दौरान कामेश्वर ने तकरीबन हर काम में किस्मत आजमायी फिल्म निर्देशन, पटकथा लेखन, अपनी पेण्टिंग और मूर्तियों की प्रदर्शनियां, हमारी नयी बनी कम्पनी सहगल बैले के बैनर तले डांस के कार्यक्रम, एक रजिस्टर्ड होमियोपैथ के बतौर दवाइयां देना उन्होंने सब काम गिये। हालांकि उन्होंने जो भी काम किया उसमें पूरी तरह हुनरमंद होने के बावजूद उन्हें वह कामयाबी नहीं हासिल हुई जिसके वे हकदार थे। ...एक के बाद एक नाउम्मीदी की वजह से वह धीरे धीरे सबसे अलग थलग होते गये और उनकी उदासी लगातार गहराती गयी जिसका असर यह हुआ कि वह बहुत ज्यादा शराब पीने लगे। इसके अलावा वह खुद पर कई तरह के नशे आजमाने लगे थे जिसके लिए नशे के तरह तरह के जहरीले मिश्रण इस्तेमाल करते थे। हिप्पियों से बहुत पहले ही उन्होंने दिलो दिमाग पर चरस से होने वाले असर का पता कर लिया था।'' (पृ. 120)

नाउम्मीद, उदास कामेश्वर को अकेला छोड़ दिया जाता था और एक रोज 'परेशान मत करना, मैं छिप रहा हूं' की पर्ची लगा कर वे सदा के लिए छिप गये। ये 1959 के दिन थे।

लेकिन क्या इसकी वजह कुछ और भी थी, जोहरा ने इसका कोई जिक्र नहीं किया है सिवाय इस पंक्ति के ''मेरी बीती जिन्दगी से जुड़ा दौर जिसमें कामेश्वर मौजूद नहीं था, उसे परेशान करता था। मेरे प्यार और भरोसे की कसमें खाने के बावजूद यह बात उसे बहुत ज्यादा दुखी करती थी।'' (पृ. 123)

आखिर बीते दौर की वह कौन सी बात थी जिसने कामेश्वर को भीतर ही भीतर इतना तोड़ डाला, एक अच्छी आत्मकथा की मांग तो यही थी कि जोहरा इसका भी जिक्र करतीं लेकिन जगह जगह लगता है कि जोहरा जीवन के कुछ रंगों को छिपा गयी हैं। पूरी आत्मकथा का मूल स्वर वर्णनात्मक अधिक है, जैसे जीवन कोई यात्रा हो और वे उसे अपनी डायरी में उतार रही हों लेकिन उन्हीं प्रसंगों को जो उजाले में बिताये गये हैं। वे जिन प्रसिद्ध शख्सियतों का जिक्र भी करती हैं उनकी कमजोरियों पर कम बोलती हैं, वे अभिनय या नृत्य की अपनी कमजोरियों की चर्चा तो करती हैं लेकिन व्यक्तित्व या चरित्र के इन पक्षों से प्रायः बच निकलना चाहती हैं। ऐसी ही एक शख्सियत हैं विख्यात अभिनेता पृथ्वीराज कपूर। पुस्तक में उनका विस्तार से जिक्र है, चित्र हैं और ढेर सारे पत्र भी शामिल

किये गये हैं। इसकी वजह भी है। जोहरा 1944 में शुरू हुए पृथ्वी थिएटर से एक साल बाद जुड़ गयी थीं और करीब 14 साल तक जुड़ी रहीं। जोहरा लाहौर का अपना जोरेश डांस इंस्टीट्यूट बंद कर बॉम्बे किस्मत आजमाने आयी थीं। बॉम्बे के बारे में वे लिखती हैं ''बॉम्बे रहने के लिहाज से एक आरामदायक शहर है। मुझे लगता है कि किसी भी बड़े शहर की तरह, यहां के लोग भी अपने आसपास के लोगों के बारे में ज्यादा परवाह नहीं करते जिससे आप कमोबेश बिना किसी की दखलंदाजी के आसानी से रह सकते हैं। बॉम्बे में पैसों का खेल ऐसा है कि रातोंरात लोगों की किस्मतें बदल जाती हैं। इसीलिए शायद यहां के लोग अपने आसपास के उतार चढ़ाव की परवाह नहीं करते।'' (पृ. 90)

उस दौरान बॉम्बे में काम की तलाश का उनका अनुभव बहुत खराब रहा ''मेरे डांसर होने की वजह से मुझे फिल्मों में बहुत ही अजीबोगरीब किस्म के रोल मिलते थे, जिनमें 'सेक्स' और 'बॉक्स ऑफिस' जैसे जुमलों पर ऐसे जोर दिया जाता था कि सुन कर सिहरन होती थी। एक निर्देशक ने मशवरा दिया कि मैं मछली के मर्तबान से लगभग बिना कपड़ों के बाहर निकल कर कामुक डांस करूं। जबकि उदय शंकर के साथ काम करते हुए हमें इसकी बिल्कुल उलट सोच के साथ डांस सिखाया जाता था। कला में इस तरह की गिरावट को देख कर मुझे बहुत ही खराब लगता था।'' (पृ. 90)

लेकिन उनकी यह निराशा जल्द ही तब दूर हो गयी जब वह पृथ्वी थिएटर के दूसरे नाटक 'दीवार' का प्रीमियर शो देखने गयीं। हालांकि पृथ्वीराज कपूर शुरू में उन्हें पृथ्वी थिएटर में शामिल नहीं करना चाहते थे लेकिन जोहरा की जिद के कारण अंततः उन्हें शामिल कर लिया गया। जोहरा के जीवन में जिन दो लोगों ने सर्वाधिक प्रभाव डाला उनमें नर्तक उदय शंकर और अभिनेता पृथ्वीराज कपूर शामिल हैं। उदय शंकर और उनके बैले कम्पनी के बारे में उन्होंने लिखा है ''मंच का अनुशासन, समय की पाबंदी और प्रदर्शन के दौरान लगभग धार्मिक सा माहौल, दिन या रात में किसी भी समय रेल या नाव पकड़ने के लिए तैयार रहना और कहीं भी किसी भी समय सोकर नींद पूरी करने का हुनर यह सारी बातें मैंने उदय शंकर की डांस कम्पनी में आकर सीखीं।'' (पृ. 58)

पृथ्वीराज कपूर की प्रशंसा में वह कहती हैं ''यह सच है कि कोई भी आदमी ऐसा नहीं हो सकता जिसमें कोई कमी न हो, अगर कोई ऐसा होगा तो वह खुदा हो जाएगा। मगर मैंने पृथ्वी जी के अलावा आज तक एक भी आदमी ऐसा नहीं देखा जिसमें एक साथ खुदा जैसी इतनी सारी अच्छाइयां हों, और जो साथ ही इतना मानवीय, प्यारा, विनम्र, सच्चा, शारीरिक और नैतिक रूप से चट्टान जैसा मजबूत भी हो।'' (पृ. 94)

''हालांकि उन्होंने न तो विदेश में थिएटर की पढ़ाई की थी और न ही इससे जुड़े तकनीकी पहलुओं के बारे में औपचारिक तौर पर तालीम ली थी लेकिन इसके बावजूद उनके नाटकों में अदाकारी और निर्देशन बिल्कुल नये जमाने के साथ तालमेल रखते थे।'' (पृ. 117)

लेकिन उन्हें तब थोड़ी निराशा होती है जब वह अपनी बेटी को थिएटर में बतौर अदाकारा शामिल करने से मना कर देते हैं। जोहरा लिखती हैं ''पापाजी की बेटी उम्मी ने भी दूसरे कलाकारों के बच्चों की तरह बहुत छोटी उम्र में ही थिएटर में हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। जल्दी ही डांस और अदाकारी में अपनी काबिलियत दिखानी शुरू कर दी, लेकिन जब उसने कम्पनी में बतौर अदाकारा काम करने की इच्छा जाहिर की तो पापाजी ने इसके लिए इजाजत देने से मना कर दिया। उनके इस फैसले से मुझे बहुत धक्का लगा क्योंकि इसका मतलब यह था कि वह अपनी बेटी के थिएटर में आने को सही नहीं मानते थे, जबकि वह हमेशा इस काम को इज्जतदार बनाने पर जोर देते थे और उन्होंने थिएटर में काम करने वाली हम सभी औरतों की हमेशा तारीफ की और इज्जत दी थी।'' (पृ.117)

रंगमंच की दुनिया से उनका गहरा जुड़ाव पृथ्वी थिएटर के साथ ही इप्टा के माध्यम से भी

रहा। उन्होंने इप्टा के नाटकों में बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया था। उनका मानना था कि भारत ने अपनी थिएटर कला की एक भरीपूरी विरासत को खो दिया है जबकि दुनिया भर में यह एक अकेला देश है जिसमें नाटक कला पर आधारित एक पूरा शोधग्रंथ मौजूद है। हालांकि विदेश में भी रंगजगत का उनका अनुभव हर जगह बहुत अच्छा तो नहीं रहा। वह लंदन गयीं तो उन्हें छोटी मोटी नौकरियां करनी पड़ीं और इस दौरान वह रंगजगत की कई कमियों से भी वाबस्ता हुईं। लंदन में 1962 के दौरान उन्होंने जो नौकरी की वह ड्रेसर की थी, जहां उनसे कहा गया था कि वे टिप लेने से मना न करें। जोहरा लिखती हैं ''पहली बार टिप लेना बहुत ही शर्मनाक अहसास था। मैंने बहुत मुश्किल से अपने चेहरे पर मुस्कुराहट बनाए रखी लेकिन घर पहुंचते ही आंखों से आंसुओं का सैलाब निकल पड़ा।'' (पृ.154)

''इसी दौरान मुझे ब्रिटिश थिएटर की 'जाति व्यवस्था' को जानने का मौका भी मिला। इसमें 'ब्राह्मण' मंच की बराबरी वाले जमीनी तल पर रहते थे, 'क्षत्रिय' पहली मंजिल पर, इससे ऊपर की सारी मंजिलों पर 'वैश्य' हर जगह फैले रहते हैं। और मुझे यह महसूस हुआ कि मंच के कामों में मदद करवाने वाले और ड्रेसर जैसे लोगों को इस व्यवस्था में 'शूद्र' यानी सबसे निचले तबके के लोगों का दर्जा दिया जाता था।'' (पृ.155)

''ओल्डविक में अपनी नौकरी के दौरान ही पहली बार मुझे यह अहसास हुआ कि मैं 'अश्वेत' हूं।'' (पृ.156)

जोहरा को हम एक ऐसी महिला कलाकार के रूप में याद करते हैं जिन्होंने तब समाज से विद्रोह कर संगीत और अभिनय के क्षेत्र में पहचान बनायी जब अच्छे घरों की लड़कियों के लिए ऐसा करना मुश्किल था। जोहरा ने बेटी के साथ पृथ्वीराज कपूर के भेदभाव का जिक्र किया है लेकिन जब उन्हें बेटी हुई तो वह बहुत खुश नहीं थीं ''बेटी होने की बात पता चलने पर मुझे हल्की सी निराशा हुई। मुझे दिखाने के लिए जब उसे मेरे सामने लाया गया तो उस छोटे से गुलाबी रंग के जीव के प्रति मेरे मन में ममत्व जैसा कोई भाव ही नहीं उठा।'' (पृ. 86)

बेटे के बारे में वह लिखती हैं ''वह मेरे दिल की धड़कन है, उसके लिए मैं कुछ भी कर सकती हूं लेकिन वह अपने काम और अपने तीन बच्चों के प्यार में इस कदर उलझा हुआ है कि मुझ पर ध्यान देने के लिए उसके पास फुरसत कम है।'' (पृ.9)

बाद के वर्षों में उन्हें इस बात की चिन्ता भी थी कि पेशेवर थिएटर ग्रुप कम हो गये हैं। जोहरा रंगमंच पर 'थैंक्स सर्विस' के खिलाफ थीं। एक जगह वह लिखती हैं ''मैं और ज्यादा काम करना पसंद करती, लेकिन मैं यह भी जानती हूं कि दिल्ली में मुश्किल से ही कोई पेशेवर थिएटर होता है। कई सारे शौकिया थिएटर ग्रुप्स ने मुझसे अपने साथ काम करने के लिए कहा, लेकिन जैसे ही उन्हें पता चलता है कि मैं बिना पैसे लिये कोई काम नहीं करती, वे अपना हाथ खींच लेते।'' (पृ.240)

हबीब तनवीर के निर्देशन में 'मोटेराम का सत्याग्रह' के लोकप्रिय होने के बावजूद आगे के प्रदर्शनों में शामिल न होने की वजह भी यही थी। जोहरा को यह अफसोस था कि अगर उन्होंने अपना थिएटर ग्रुप या स्कूल शुरू किया होता तो वह और भी अधिक प्रसिद्ध हो सकती थीं लेकिन उन्हें इस बात का संतोष रहा ''मैंने अपने लिए थोड़ी सी पहचान बनायी बहुत सारा तजुर्बा कमाया और कड़ी मेहनत के बावजूद अपने काम से बेपनाह खुशियां पायीं।'' हमें मालूम है कि यह थोड़ी पहचान कितनी बड़ी है और हमारे जेहन का किस तरह हिस्सा बन चुकी है। उनकी अनुपस्थिति में यह आत्मकथा हमें उनके और करीब लाती है।

करीब से: जोहरा सहगल, **प्रकाशक:** राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, **मूल्य:** 495 रु.

इस अंक के लेखकों के पते

विश्वनाथ त्रिपाठी : बी-5/एफ 12 दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, मो. 9871479790

अरविन्द सिंह तेजावत : हिन्दी विभाग, हरियाणा केन्द्रीय वि.वि., जांटपाली, जिला-महेन्द्रगढ़-123029, हरि., मो. 9991477790

समीर कुमार पाठक : हिन्दी विभाग, गांधी फैज ए आम कॉलेज, शाहजहांपुर-242001, उ.प्र. मो. 9453114192

रवीन्द्र वर्मा : वातायन, वी-103, नेहरू इनक्लेव, गोमती नगर, लखनऊ, उ.प्र., दूरभाष-2308102

अनामिका : बी-5/3 मल्टी स्टोरीड अपार्टमेण्ट, रामकृष्णपुरम, सेक्टर-13, नयी दिल्ली-110066, मो. 9810737469

जितेन्द्र श्रीवास्तव : हिन्दी संकाय, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, मैदानगढ़ी, नयी दिल्ली-110068, मो. 9818913798

पीयूष दईया : द्वारा श्री संदीप मेहता, सिद्धार्थ लेक सिटी, आनंद नगर, रायसेन रोड, भोपाल, म.प्र., मो. 9999875660

मिथिलेश शरण चौबे : द्वारा श्री सुरेश कुमार मिश्र, महाकाली मंदिर के पास, इंदिरा कालोनी, 5 सिविल लाइंस, सागर-470001, म.प्र., मो. 9300687422

प्रत्यूष चंद्र मिश्रा : 326/800 शास्त्री नगर, निकट मनसा मंदिर, पटना-800023, बिहार, मो. 9122493975

अमृत सागर : जनतंत्र, ई-52 टॉप फ्लोर, सेक्टर-03, नोएडा, उ.प्र., मो. 8373953025

भानु भारती : 56 ए, पॉकेट-एफ, मयूर बिहार-II, दिल्ली-110091, मो. 9811320632

अरुण कमल : 4 मैत्री शांति भवन, बी.एम. दास रोड, पटना-800004, बिहार, मो. 9931443866

उर्मिलेश : फ्लैट 218, वार्तालोक अपार्टमेण्ट, सैक्टर-4 सी, वसुंधरा, गाजियाबाद-201012, उ.प्र., मो. 9899867717

नीलाक्षी सिंह : 403 अम्बा रेसिडेन्सी, रिलाएंस ट्रेण्ड के निकट, बोरिंग कैनाल रोड, पटना-800001, बिहार, मो. 9835745525

विजय बहादुर सिंह : 29 निराला नगर, दुष्यंत कुमार मार्ग, भोपाल-462003, म.प्र., मो. 9425030392

प्रांजल धर : 2710 भूतल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009, मो. 9990665881

अरुण होता : 2 एफ, धर्मतल्ला रोड, कस्बा, कोलकाता -700042, मो. 9434884339

राजेन्द्र राव : 374 ए-2, तिवारीपुर, जे के रेयन गेट के सामने, जाजमऊ, कानपुर-208010, उ.प्र., मो. 9935266693

वैभव सिंह : 403 समित टावर, सेक्टर-86, ओमेक्स हाइट, फरीदाबाद-121002, हरि., मो. 9711312374

प्रताप दीक्षित : ए डी एच - 2/33 सेक्टर-एच, जानकीपुरम, लखनऊ-226021, मो. 9956398603

आलोक पराड़कर : 3/51 विश्वासखंड, गोमतीनगर, लखनऊ-226010, उ.प्र., मो. 9415466001

जैव प्रौद्योगिकी पार्क, लखनऊ

प्रो0 पी.के. सेठ,

मुख्य अधिशासी अधिकारी, बायोटेक पार्क, लखनऊ

जैव प्रौद्योगिकी विज्ञान का एक अग्रणी क्षेत्र है, जो स्वास्थ्य, कृषि एवं पर्यावरण के क्षेत्र में अनगिनत अवसर प्रदान करता है। सूचना प्रौद्योगिकी की भांति जैव प्रौद्योगिकी ज्ञान पर आधारित वह तकनीक है, जो गरीब एवं समृद्ध के लिए एक ही जैसी गुणवत्ता की जीवन शैली प्रदान करने की क्षमता रखती है।

जैवप्रोद्योगिकी पार्क के केन्द्र क्षेत्र

स्वास्थ्य सुरक्षा

कृषि

पर्यावरण

उद्योग

ऊर्जा

लखनऊ देश की वैज्ञानिक गतिविधियों का एक प्रमुख स्थान है यहां राष्ट्रीय एंव अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अनेक शोध संस्थान हैं। इसको दृष्टि में रखते हुए वैज्ञानिकों की विशिष्ट मंडली लखनऊ में आयोजित भारतीय विज्ञान कांगेंस के 89वें सत्र के दौरान 3 जनवरी 2002 को लखनऊ को जैव प्रोद्योगिकी नगर घोषित किया गया। प्रथम चरण में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उपलब्ध सुविधाओं विशेषज्ञों एंव तकनीकि आधारित सूचना प्रदान करने के लिये एक जैव सूचनाकेन्द्र की स्थापना की गयी तथा द्वितीय चरण में जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार एवं विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, उ.प्र. द्वारा संयुक्त रूप से 8 एकड़ भूमि कुर्सी रोड पर जैव प्रौद्योगिकी पार्क स्थापित किया गया जो वर्तमान में पूर्णतः कार्यरत है। यह पार्क नये उद्यमियों के लिए प्रथमतः टेक्नोलोजी इन्क्यूबेटर के रूप में कार्य कर रहा है और टिशू कल्चर, बायोफर्टिलाइजर, क्वालिटी कन्ट्रोल एवं मॉल्यूकिलर बायोलाजी लैबोरेट्री एवं विकसित भू-भागों से सुसज्जित है।

बायोटेक पार्क जैवप्रोद्योगिकी के क्षेत्र में सकारात्मक परिवर्तन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है तथा उच्चकोटि की उद्यमशीलता हेतु आदर्श विज्ञान एंव प्रोद्योगीकरण का आदर्श है जो कि अधिक लाभप्रद उद्योग की स्थापना करने में सहायक है।

बायोटेक पार्क, स्थानीय वैज्ञानिकों एवं उद्यमियों को बायोटेक्नोलॉजी में उद्यमिता हेतु प्रेरित कर तथा बायोएग्री-उद्योगों को प्रोत्साहित कर प्रदेश के शहर एंव ग्राम्य क्षेत्र के जनमानस विकास में विशिष्ट भूमिका निभा रहा है। पार्क ने 25 उद्यमियों को पार्क में अपनी इकाइयां स्थापित करने हेतु आकर्षित किया है जिनमें से एक बायॉफार्मा में, तीन बायोइन्फार्मेटिक्स/बायोसर्विसेज, 11 हेल्थकेयर (डायग्नोस्टिक, हर्बल कॉस्मेटिक, न्यूट्रास्यूटिकल्स प्रसाधन) एवं दो बायोएग्री क्षेत्र में (पी.पी.पी. मॉडल के अंतर्गत कार्यरत है।) इन 25 कम्पिनियों में से 7 कम्पनियां ग्रेजुएट आउट हो चुकी है। पार्क में WHO-GMP पर आधारित एक कम्पनी लाइफ केयर इनोवेशन प्राइवेट लिमिटेड, फंगस एवं कालाजार के

संक्रमण के उपचार हेतु **''फंजीसोम''** का निर्माण कर रही है जो कि उत्तर भारत में इस स्तर की प्रथम कम्पनी है। इसके अतिरिक्त पार्क में स्थापित मेंर्सस चंदन हेल्थकेयर लिमिटेड कुछ विशेष रोगों का परीक्षण करने में सक्षम "**डायग्नोस्टिक किट**" का निर्माण कर रही है जिससे जनमानस के इन रोगों से परीक्षण का लाभ हो रहा है। कुछ वैज्ञानिक भी उद्यमी बने तथा उन्होंने पार्क में अपनी इकाइया स्थापित कर जैव प्रोद्योगिकी को जनमानस के उपयोग हेतु सक्षम एवं सरल बनाने में अपना योगदान दिया है। पार्क के उद्यमियों द्वारा 300 से अधिक सीधे रोजगार के अवसर उपलब्ध हुए हैं। अगले 4 से 5 वर्षों में पार्क में स्थापित इकाइयों की गतिविधियों के विस्तृत होने से कई नये रोजगार के अवसर उत्पन्न होगें।

बायोटेक पार्क की टिश्यू कल्चर प्रयोगशाला, टिश्यू कल्चर पद्धति का प्रयोग कर केले के पौधों का उत्पादन करने वाली प्रदेश की प्रथम बड़ी प्रयोगशाला है। बायोटेक पार्क की टिश्यू कल्चर फैसीलिटी को टिश्यू कल्चर पौधों के उत्पादन हेतु राष्ट्रीय प्रमाणन BCIL (NCS-TCP) के अंतर्गत मान्यता प्राप्त है।

पार्क द्वारा उत्पादित केले के पौधे उच्च गुणवत्ता वाले है एवं यहां पर हो रहे उत्पादन के कारण केले के पौधों का मूल्य रु. 24/- प्रतिपौधा से घट कर रु. 14/- प्रति पौधा हो गया है। इस प्रकार पौधों के मूल्य में 33 प्रतिशत तक की गिरावट हुई है। उत्तर प्रदेश केले के पौधों के उत्पादन का एक बड़ा केन्द्र बन गया है। इस समय उत्तर प्रदेश में लगभग 3500 हेक्टेअर केले की खेती की जा रही है जिसमें से लगभग 1600 एकड़ में किसान बायोटेक पार्क से उत्पादित केले के पौधे की खेती कर रहें है। कुछ किसानों ने बायोटेक पार्क द्वारा केले की खेती का प्रशिक्षण प्राप्त कर स्वयं की नर्सरियां स्थापित करी हैं तथा अपना व्यावसाय कर रहें हैं।

बायोफ्यूल के राष्ट्रीय मिशन में भी इस पार्क का काफी योगदान है। प्रारम्भ से ही बायोटेक पार्क, उ.प्र. सरकार द्वारा चलाये गये बायोएनर्जी मिशन से सम्बधित रहा है। पार्क ने ग्रामीण क्षेत्रों की सहायता हेतु 1000 हेक्टेअर में जेट्रोफा की खेती में योगदान दिया तथा 18 उत्तम नर्सरियों का निर्माण किया है जिनके द्वारा उच्च गुणवत्ता की जेट्रोफा एवं अन्य पौधे प्राप्त किये जा सकें। पौधों एवं खाद सामग्री के साथ ही साथ बीजों की गुणवत्ता का भी पूरा ध्यान रखा गया है।

जैव प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में बी.टेक, एम.टेक, स्नातक, परास्नातक एवं बायोफार्मा के विद्यार्थियों की प्रशिक्षण की मांग को देखते हुये पार्क ने 1 माह से लेकर 6 माह तक के प्रशिक्षण कार्यक्रम आरम्भ किये हैं। उनके पाठ्यक्रम तथा उन्हें जैव प्रोद्योगिकी उद्योग क्षेत्र में रोजगार पाने के लिये ये कार्यक्रम काफी उपयोगी हैं। अब स्थानीय विद्यार्थी यहीं पर प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। बायोटेक पार्क अब तक लगभग 3000 से भी अधिक युवा छात्रों को प्रशिक्षण प्रदान कर चुका है। हाल ही में पार्क ने जैव प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में प्रशिक्षण हेतु एक फिनिशिंग स्कूल कोर्स भी प्रारम्भ किया है। यह छः माह का एक सर्टीफिकेट कोर्स है जिसके द्वारा अब तक 50 से भी अधिक विद्यार्थियों ने जैव प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में प्रशिक्षण प्राप्त किया है तथा 70 प्रतिशत विद्यार्थी रोजगार प्राप्त कर चुके हैं।

सुदूर संवेदन उपयोग केन्द्र, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

सुदूर संवेदन तकनीक के माध्यम से उत्तर प्रदेश के उत्थान में तत्पर प्रदेश स्तर का अग्रणी वैज्ञानिक संस्थान

विगत लगभग चार दशक पूर्व उपग्रहीय सुदूर संवेदन तकनीक के प्रादुर्भाव के पश्चात् वर्ष 1981 में उत्तर प्रदेश सरकार ने सम्पूर्ण देश में अग्रणी स्थान प्राप्त करते हुए प्रदेश स्तर का प्रथम सुदूर संवेदन उपयोग केन्द्र, लखनऊ में 14 मई 1982 को एक स्वायत्तशासी संस्था के रूप में स्थापित किया। प्रारम्भ से ही वायुवीय तथा उपग्रहीय सुदूर संवेदन तकनीक एवं पारम्परिक तकनीकों के समन्वय से इस केन्द्र द्वारा प्रदेश के विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों सम्बंधी अध्ययन किये जाते रहे हैं। प्रदेश के चहुँमुखी विकास में योगदान देने हेतु इस केन्द्र द्वारा भू-सम्पदा, जल संसाधन, वन एवं कृषि सम्पदा, मृदा, भूमि उपयोगिता/भूमि आच्छादन तथा नगरीय संरचना सम्बंधी कोष्ठों में अनेक बहुमूल्य आंकड़े सृजित किये गये हैं। केन्द्र की कार्यप्रणाली प्रमुखतः दो प्रारूपों में सम्पादित की गयी प्रदेश के विभिन्न उपयोगकर्ता विभागों के अनुरोध पर सम्पादित कार्यों के रूप में तथा केन्द्र द्वारा स्वचालित शोध परियोजनाओं के रूप में। प्रदेश सरकार के उपयोगकर्ता विभागों में शनैः-शनैः सुदूर संवेदन की क्षमता एवं उपयोगिता के प्रति जागरूकता बढ़ी है तथा उनके द्वारा पोषित परियोजना कार्यो में दिन-प्रतिदिन बढ़ोत्तरी हो रही है।

मुख्य उद्देश्य :

- वायुवीय एवं उपग्रहीय सुदूर संवेदन तकनीक एवं सामान्य/पारम्परिक तकनीकों के समन्वय से उत्तर प्रदेश के विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों यथा जल संसाधन, भू-संसाधन, वन संसाधन, कृषि एवं मृदा संसाधन इत्यादि का सुचारू रूप से अध्ययन, समुचित दोहन एवं सुनियोजित उपयोग।
- उच्चतम उपग्रहीय तकनीक एवं वास्तविक उपयोगकर्ता के मध्य तारतम्य विकसित करना।

प्रमुख कार्य क्षेत्र :

जल संसाधन संबंधी अध्ययन :	भू–संसाधन संबंधी अध्ययन :
• हिमाच्छादित हिमालय क्षेत्र का अध्ययन। • नदियों पर बनने वाले रेल/सड़क पुलों के लिए उचित स्थलों के चयन हेतु प्रदेश की प्रमुख नदियों के बहाव में आये परिवर्तनों का कालिक अनुश्रवण। • बाढ़ एवं सूखा ग्रसित क्षेत्रों का रेखांकन। • भूमिगत जल विषम क्षेत्रों में ट्यूबवेल/हैण्डपम्प छिद्रण हेतु उपयुक्त स्थलों का चयन। • नहर प्रणालियों के सन्निकट जल प्लावित क्षेत्रों का अध्ययन। • प्रदेश में अधिक आद्रता वाले क्षेत्रों तथा जलाशयों का चिह्नीकरण एवं मानचित्रीकरण। • भूमिगत जल, जलाशयों एवं नदी समूहों में जल की गुणवत्ता सम्बंधी अध्ययन। • सम्पूर्ण प्रदेश में जनपदवार हाइड्रोजियोमार्फोलाजिकल मानचित्रीकरण।	• प्रदेश के बुंदलेखण्ड एवं हिमालय क्षेत्र में खनिज सम्पदा एवं भू-स्खलन सम्बंधी अध्ययन। • पहाड़ी क्षेत्रों में रास्तों के निर्माण हेतु उचित स्थलों का चयन। • भू-आकृतिक मानचित्रीकरण। • उत्तराखण्ड प्रदेश के मालपा, ओखीमठ, मसूरी एवं नैनीताल क्षेत्रों तथा प्रमुख तीर्थ मार्गों पर भू-स्खलन सम्बंधी अध्ययन। • प्रमुख नदियों के सन्निकट भू-आकृतियों का रेखांकन एवं मानचित्रीकरणी। • प्रमुख नदियों एवं जलाशयों में अवसादी भार की मात्रा के आंकलन सम्बंधी अध्ययन।
वन संसाधन सम्बंधी अध्ययन :	**कृषि संसाधन सम्बंधी अध्ययन :**
• वन निम्नीकरण एवं वन आच्छादित क्षेत्रों में आये परिवर्तनों का आकलन। • राष्ट्रीय प्राणी उद्यानों में वन सम्पदा, चारागाह एवं जलश्रोतों सम्बंधी अध्ययन।	• गेहूँ, धान, गन्ना एवं सरसों की फसल के खेतिहर क्षेत्रों के क्षेत्रल एवं उपज सम्बंधी पूर्वानुमान। • फसलों में लगी बीमारी एवं ओलावृष्टि से फसलों को हुई क्षति का आंकलन।

• हिमालय क्षेत्र में वन अग्नि सम्बंधी अध्ययन। • प्रदेश में वनाच्छादित क्षेत्रों का मानचित्रीकरण एवं क्षेत्रफल का आकलन। • वनाच्छादित क्षेत्रें में विभिन्न प्रकार के वनों, वृक्षों का चिह्नीकरण। • सामाजिक-वानिकी के लिए वृक्षारोपण हेतु उचित स्थलों का चयन।	• रेशम विकास कार्यक्रम में सुदूर संवेदन तकनीक का उपयोग। • केला, आम आदि बागानों सम्बन्धी अध्ययन। • सूखाग्रस्त क्षेत्रों का आकलन।
मृदा संसाधन सम्बंधी अध्ययन :	**प्राकृतिक संसाधनों का एकीकृत अध्ययन :**
• ऊसर भूमि, परती भूमि एवं लवण ग्रसित क्षेत्रों का रेखांकन, तदोपरांत उनका खसरा मानचित्रों पर स्थानांतरण एवं ऊसर भूमि सुधार के पश्चात भूमि उपयोग सम्बंधी अध्ययन। • यमुना एवं चम्बल घाटियों में बीहड़ क्षेत्रों का रेखांकन एवं अनुश्रवण। • प्रदेश के अन्य भागों में बीहड़ एवं अपघटित भूमियों के अध्ययन। • प्रदेश में जनपदवार परती भूमि मानचित्रीकरण। • प्रदेश के समस्त जनपदों हेतु मृदा संसाधन सम्बंधी मानचित्रीकरण।	• प्रदेश के 17 जनपदों के चयनित क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों का एकीकृत सर्वेक्षण। • प्रदेश के आठ जनपदों में कम्प्यूटरीकृत प्राकृतिक संसाधन आंकड़ा प्रबंधन प्रणाली का सृजन। • प्रदेश के समस्त जनपदों हेतु प्राकृतिक संसाधनों सम्बंधी सूचना प्रणाली का गठन। • उत्तरांचल के टेहरी गढ़वाल क्षेत्र में बायोजियो डाटाबेस सम्बंधी अध्ययन। • विकेन्द्रीकृत नियोजन हेतु अंतरिक्ष आंकड़ों पर आधारित सूचना तंत्र का गठन
भूमि उपयोग एवं नगरीय सर्वेक्षण सम्बंधी अध्ययन :	**अन्य अध्ययन :**
• प्रदेश के समस्त जनपदों में भूमि उपयोगिता/भूमि आच्छादन सम्बंधी मानचित्रीकरण। • प्रदेश के प्रमुख नगरीय क्षेत्रों के विस्तार का रेखांकन एवं कालिक अनुश्रवण।	• डिजीटल डाटा बेस फॉर कैडेस्ट्रल रिसोर्स मैपिंग। • प्रदेश के प्रमुख शहरों में मलिन बस्तियों एवं उपलब्ध स्वास्थ्य सुविधाओं का रेखांकन एवं चिन्हीकरण। • प्रदेश के चयनित जनपदों में प्राकृतिक आपदा प्रबंधन प्रणाली का गठन।
• **प्रशिक्षण कार्यक्रम :** प्रदेश सरकार के विभिन्न उपयोगकर्ता विभागों के अधिकारियों एवं प्रमुख विश्वविद्यालयों/कालेजों के प्रवक्ताओं/शोध छात्रों हेतु विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन। • **रिमोट सेन्सिंग एवं जी.आई.एस. के क्षेत्र में एम.टेक. पाठ्यक्रम का संचालन** (वर्ष 2013-14 से)	

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

डॉ0 हरशरण दास
(आई.ए.एस.)
प्रमुख सचिव,
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग,
उत्तर प्रदेश शासन
दूरभाष - 0522-2238063
फैक्स - 0522-2235241

निदेशक
सुदूर संवेदन उपयोग केन्द्र
सेक्टर-जी, जानकीपुरम्,
कुर्सी रोड, लखनऊ-226021
दूरभाष - 0522-2730968, 2730451
फैक्स - 0522-2730535
ई-मेल : director@rsacup.org.in
वेबसाइट : www.rsacup.org.in